आत्म-निरीक्षण

[एक आत्मकथा]

गोविन्ददास

१९५८

प्रकाशक

भारतीय विश्व-प्रकाशन

फव्वारा—दिल्ली

गोविन्ददास ग्रन्थावली खण्ड ४ और ५

आत्म-निरीक्षण (तीन भाग)

प्रयत्न (भाग १)

प्राप्त्याशा (भाग २)

नियताप्ति (भाग ३)

मुख्य वितरक

भा र ती सा हि त्य म न्दि र

(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

आसफअली रोड़ नई दिल्ली

फव्वारा दिल्ली

माई हीरां गेट जालन्धर

लालबाग लखनऊ

मूल्य ८)

मुद्रक—रसिक प्रिंटर्स, ५ सन्त नगर, करौलबाग, नई दिल्ली-५

दूसरा भाग

प्राप्त्याशा

दूसरे भाग की सूची

	पृष्ठ
१. असहयोगी में	१
२. असहयोग आन्दोलन और हमारे प्रान्त में उसकी स्थिति ...	१२
३. जबलपुर का भयानक प्लेग	३७
४. राजस्थान का दौरा और अहमदाबाद कांग्रेस ...	४०
५. पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र	५८
६. असहयोग आन्दोलन समाप्त	६४
७. असहयोग की देन	६७
८. हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में पहला राजनैतिक झगड़ा ...	७९
९. सत्याग्रह-जाँच कमेटी और उसका जबलपुर आगमन ...	८४
१०. गया कांग्रेस और झंडा सत्याग्रह तथा उनमें मेरी स्थिति	८८
११. कांग्रेसियों में तू-तू मैं-मैं, इसका मुझ पर प्रभाव ...	९३
१२. पहाड़ी सैर और सोलन में मिश्रजी की बीमारी ...	९६
१३. सन् १९२३ के चुनाव और हमारे प्रान्त में स्वराज्य पार्टी की जीत	१०३
१४. केन्द्रीय असेम्बली का जीवन और कार्य ...	१०८
१५. सन् २४ और २५ की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ...	११५
१६. एक बड़े पद के लिए सरकार का मुझे गुप्त निमन्त्रण ...	१२३
१७. स्वराज्य पार्टी में फूट	१२६
१८. कौंसिल ऑफ स्टेट में मेरा काम	१३३
१९. सन् २६ के आम चुनाव और हमारे प्रान्त की स्थिति ...	१४१
२०. एक दैवी प्रकोप	१५२
२१. माहेश्वरी महासभा में फूट	१५५
२२. साइमन कमीशन	१५९

पृष्ठ

२३. एक अंग्रेजी फौजी अफसर की एक गाड़ीवान से माफी ... १६३
२४. सन् २८ की कांग्रेस में पिता-पुत्र संघर्ष १६६
२५. दुर्गावती आश्रम १६९
२६. मैं प्रान्तीय कांग्रेस का सभापति १७४
२७. लाहौर-कांग्रेस १७८
२८. सन् १९३० का सत्याग्रह १८४
२९. मेरी गिरफ्तारी १९८
३०. हवालाती की हैसियत से जेल में २०१
३१. हमारा पहला राजनैतिक मुकदमा २०४
३२. कैदियों की हैसियत से जबलपुर जेल में २०९
३३. बुलढाना जेल में एकान्तवास २१३
३४. दमोह जेल को तबादला २२६
३५. जेल से रिहाई २३८
३६. गान्धी-अर्विन समझौता २४४
३७. कांग्रेस का करांची अधिवेशन २५५
३८. प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् २५९
३९. फिर से काले बादल २६२
४०. सन् ३२ के सत्याग्रह का हमारे प्रान्त में अद्भुत आरम्भ २६८
४१. सन् ३२ का जेल-जीवन और रिहाई २७५
४२. पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र २८७
४३. पत्नी को लेकर राजस्थान में २९५
४४. सन् ३३ के आरम्भ में फिर जेल और सन् ३३ का जेल-जीवन ३०३
४५. सन् ३२ के सत्याग्रह की समाप्ति और उसके परिणाम ... ३०९
४६. बिहार का भूकंप ३१७
४७. बम्बई-कांग्रेस ३२१
४८. जीविका के मार्ग का अनुसन्धान और मार्ग का निर्णय ... ३२४
४९. महाकोशल में फिर राजनैतिक झगड़ा ३२७
५०. सन् ३४ के केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव और केन्द्रीय धारा सभा ३३१

		पृष्ठ
५१.	आदर्श चित्र और उसमें मैं तथा मिश्रजी	३३६
५२.	सन् ३७ का चुनाव	३४३
५३.	आदर्श चित्र का नया चित्र—"दलित कुसुम" ...	३५४
५४.	हसीना काण्ड	३५७
५५.	कांग्रेस मन्त्रिमण्डल और मुझ पर एक नया आघात ...	३६२
५६.	मेरी अफ्रिका यात्रा	३६७
५७.	अफ्रिका से लौटते ही मुझ पर एक नया संकट ...	४००
५८.	त्रिपुरी में कांग्रेस का अधिवेशन	४०४
५९.	राजनीति से अवकाश ग्रहण	४१०
६०.	सन् १९३४ से ३९ तक की राजनैतिक घटनाओं पर एक विहंगम दृष्टि	४१३
६१.	मेरा कलकत्ते का जीवन	४२१
६२.	व्यक्तिगत सत्याग्रह	४३१
६३.	मुझ पर पहली शल्य क्रिया	४४०
६४.	घर उन्नति के पथ पर	४४२
६५.	मेरा एक नवीन कौटुम्बिक जीवन	४४६
६६.	सन् ४२ के स्वतन्त्रता युद्ध की भूमिका और वह युद्ध ...	४५०
६७.	बिना किसी निश्चित अवधि के जबलपुर जेल में ...	४५५
६८.	सन् ४२ के आन्दोलन के समय के नागपुर जेल के कुछ संस्मरण	४६२
६९.	वैलोर जेल का जीवन	४६६
७०.	वैलोर से जबलपुर, जबलपुर में पिताजी से भेंट ...	४६९
७१.	जबलपुर जेल से पुनः तबादला	४७६
७२.	जबलपुर की अस्पताल में	४८०
७३.	अस्पताल के बाद का दमोह जेल का जीवन ...	४८६
७४.	लगभग तीन वर्ष बाद जेल से रिहाई	४९२

असहयोगी मैं

असहयोग की मेरी दीक्षा में चाहे लोकेषणा की भावना ही अधिक रही हो, परन्तु उस समय के गान्धीवाद का प्रवाह कुछ ऐसा पवित्र था कि उस प्रवाह में पड़ी हुई मलिनता भी नष्ट हुए बिना न रहती थी। बाद का गान्धीवाद वैसा पवित्र न रह पाया। सन् १९४२ के आन्दोलन ने चाहे स्वराज्य की स्थापना कर दी हो, परन्तु उसमें भी वह पवित्रता न थी, जो सन् १९२० तथा १९३० के असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलनों में थी। सन् १९३७ में कांग्रेसवादी राजनैतिक पदों का स्वाद चख चुके थे। अतः उनमें से अधिकांश सन् १९४२ के आन्दोलन में भी सम्मिलित रहे, इनमें से अनेक इस कारण भी कि सन् ३७ में उन्हें जो प्राप्त हुआ था वह कहीं वे खो न बैठें। जो सन् १९३० के सत्याग्रह में भाग न लेने के कारण इन पदों से वंचित रहे थे, वे स्वराज्य को निकट देख, तथा यदि वे थोड़ा बहुत भी त्याग कर सके तो उन्हें भी पद प्राप्त हो सकेंगे, इस भावना से सन् १९४२ के आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। परन्तु सन् १९२१ की बात बिल्कुल अलग थी। उस समय का गान्धीवाद था गंगोत्री की गंगा का प्रवाह और बाद का गान्धीवाद हो गया कलकत्ते की हुगली का प्रवाह। फिर सन् १९२० में असहयोग का जो कार्यक्रम कांग्रेस ने स्वीकार किया था, और उसके कुछ महीनों के पश्चात् की बैजवाड़ा में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जो खादी का कार्यक्रम उसमें जोड़ा था, वह सारा कार्यक्रम ही ऐसा था जो मानव को एक ऐसी दिशा में ले जाता था जहाँ त्याग, बलिदान, पवित्रता के अतिरिक्त पदलोलुपता तथा इस प्रकार की अन्य भावनाओं का स्थान ही न था। और कार्यक्रम के नवीन होने के कारण तथा केवल निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं के सम्मिलित होने के कारण बेईमानी की गुंजायश भी बहुत कम थी। फिर इस सबके ऊपर एक बात जो और थी; जिसने इस कार्यक्रम को देश के सामने रखा था, वह व्यक्ति चरित्र को ही सबसे अधिक महत्त्व देता था। उसके लिए साध्य एवं साधन में कोई अन्तर न

था। उसकी पैनी दृष्टि सदा अपने अनुयायियों पर रहती थी। कौन क्या करता है और कहाँ क्या होता है इसकी वह सदैव स्वयं ब्योरेवार जाँच किया करता था।

मेरा अब तक का जीवन जिस प्रकार और जिस परिस्थिति में व्यतीत हुआ था उसमें और जिस गान्धीवादी जीवन को अब मैं चलाना चाहता था उसमें आकाश-पाताल और रात-दिन का अन्तर था; फिर इस गान्धीवादी जीवन में मेरा एक कुटुम्बी भी मेरे साथ न था। इतना ही नहीं, सब मेरे विरोधी थे, घोर विरोधी। मैं अकेला, सर्वथा अकेला था और इस प्रकार के एकाकी मुझ को गान्धीवाद के कठिन कार्यक्रम का अपने जीवन में पालन करते हुए सरकार तथा अपने कुटुम्बियों दोनों से युद्ध करना था।

जिस राजा गोकुलदास महल में मेरा जन्म हुआ था और जिस महल के वायुमण्डल में मेरा लालन-पालन, सच्चे गान्धीवादी का जीवन उसके ठीक विपरीत था। कहाँ राजा गोकुलदास महल का शाही, वैभवशाली जीवन और कहाँ गान्धीवादी का सादगी, केवल सादगी से भरा हुआ जीवन। खाने में सादगी, वस्त्रों में सादगी, हर बात में सादगी, केवल सादगी ; यहाँ तक कि सँवारने योग्य बालों का सिर पर रहना भी उस समय के गान्धीवादी के लिए एक खटकने की वस्तु थी। मैं देखने में अच्छा माना जाता था। कला और साहित्य में अभिरुचि होने के कारण मैं सौन्दर्य का उपासक भी था। पहले तो केवल स्त्रियाँ ही नहीं, पुरुष भी नाना प्रकार के शृंगार करते थे, पर इस ज़माने में सबसे बड़ा शृंगार बालों को व्यवस्थित रखना था। मेरे बाल काफी बड़े थे और मैं उन्हें बड़ी सावधानी से सँवारा करता था। कपड़ों का भी मुझे बहुत शौक था। दिन में तीन बार मैं कपड़े बदलता था। मेरे अंग्रेजी ढंग के कपड़े बम्बई के एस्किथ एण्ड लार्ड के यहाँ से बनकर आते थे और भारतीय ढंग के कपड़ों में ढाका और चँदेरी की सामग्री काम में ली जाती थी। एक बात का सदा ध्यान रखा जाता था कि धोती इतनी पतली हो जो लम्बाई में अँगूठी में से निकल जाय। कुरतों आदि पर लखनऊ के चिकन का काम कराया जाता था। सोने के गद्दों, रजाइयों और तकियों में मुलायम से मुलायम रेशम काम में लिया जाता था और उनमें पक्षियों के पंख भरे जाते थे। खाने

का भी मुझे कम शौक न था। राजा गोकुलदास महल के खाने में विविध वस्तुओं की भरमार रहती थी और फिर इस भोजन में जुड़ी रहती थीं हमारे कौटुम्बिक मन्दिर के प्रसाद की भिन्न-भिन्न सामग्रियाँ।

सबसे पहले पतली से पतली दाँतों वाली मशीन से मैंने अपने बाल कटवाये। मानसिक दृष्टि से शायद मुझे सबसे अधिक कष्ट इन बालों के बिछोह से हुआ। कलियुग में बाल ही शृंगार रहेंगे, यह एक पुस्तक में मैंने सुना था, परन्तु बालों का महत्त्व केवल कलियुग में है ऐसा नहीं। त्रेता और द्वापर के हमारे राम और कृष्ण के अवतारों के भी बालों के सौन्दर्य का रामायण और महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णन आया है। गौतम बुद्ध को वैराग्य लेते समय अपने शृंगार की सारी वस्तुएँ अपने सारथी छन्दक को देने में हर्ष हुआ, पर जब उन्होंने खड्ग से अपने बालों को काटा उस समय उन्हें भी कुछ न कुछ दुख हुआ था इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है।

युवावस्था में बालों से कितना प्रेम रहता है यह सभी युवक जानते हैं। जो असुन्दर और कुरूप हैं वे भी बड़े चाव से बाल बढ़ाते और उन्हें सँवारते हैं। ऐसे व्यक्ति भी जब बाल सँवार अपना मुख दर्पण में देखते हैं तब उन बालों के कारण मन ही मन सोचने लगते हैं—"कहाँ मैं इतना कुरूप हूँ जितना समझा जाता हूँ।" क्योंकि जब तक कोई गंजा न हो तब तक सुन्दर और असुन्दर सब के बाल तो समान ही होते हैं। युवक हर सप्ताह या हर पक्ष में बड़े चाव से अपने बाल कटवाते हैं और बाल कटवाते समय एक नहीं पर दो काँचों में इस प्रकार अपना मुख देखते हैं जिससे सामने के ही नहीं पर पीछे के बाल भी दिखें। यदि नाई ने बाल ठीक काटे होते हैं तो हर्ष उनके मुख से टपकने-सा लगता है और यदि कहीं जरा भी गड़बड़ होती है तो क्रोध का पारा ऐसा चढ़ता है कि नाई पर शब्द और वाक्यों की तड़ातड़ चपतें लगने लगती हैं।

बालों के बाद कपड़ों के बिदा करने की बारी आयी। कपड़ों से पूरी एक गोदाम भरी हुई थी। इन कपड़ों की होली जलायी गयी और खादी ने इनका स्थान लिया। उस समय की खादी और बाद में जो खादी आयी उसमें बहुत अन्तर था। उस समय की खादी टाट से मिलती-जुलती थी। फिर उसका

अरज बहुत छोटा होता था अतः धोती बीच में जोड़ डालकर दो पाट की बनती थी। कहाँ अँगूठी में से निकलनेवाली ढाके और चँदेरी की धोतियाँ और कहाँ खद्दर की उस समय की धोतियाँ। मुझे उन धोतियों के पहनने में सचमुच ही अत्यधिक कष्ट हुआ। पहले तो उनको पहनना कठिन, फिर पहन कर चलते-फिरते समय सँभालना कठिन, जान पड़ता सेरों नहीं, मनों बोझ शरीर पर लदा हुआ है और वजन के साथ ही उनमें इतना खुरदरापन था कि मालूम पड़ता कि अंग-प्रत्यंग छिल रहे हैं। कई बार तो सन्देह-सा होने लगता था कि सचमुच ही चमड़ी छिलकर खून तो नहीं निकलने लगा है।

शरीर पर पहनने के कपड़ों के साथ ही बिस्तर भी बदले गये। मोटी खादी की छींट के बिस्तर और गद्दी-तकियों तथा रजाइयों में रुई। खादी के कपड़े पहन इन बिस्तरों पर तो मुझे बहुत दिनों तक नींद न आयी।

खाने की चीजें भी मैंने घटायीं। पहले उनकी संख्या सात की, फिर पाँच और अन्त में तीन।

जबलपुर से जब बाहर जाना होता था तब साथ में जानेवालों की संख्या कितनी रहती इसका उल्लेख पहले हो चुका है। दौरे में १५-२० आदमियों की सदा बरात रहती थी। इसे भी घटाकर मैं ५-६ पर लाया—१ सैक्रेटरी, १ रसोइया, १ रसोईघर का कहार, १ खिदमतगार और १ चपरासी। इससे अधिक आदमियों की घटती उस समय मैं स्वयं भी न कर सका।

जीवन का यह परिवर्त्तन मेरे लिए उस समय क्रांतिकारी परिवर्त्तन था। इससे मुझे शारीरिक कष्ट भी कम न हुआ; पर मन में एक अद्‌भुत प्रकार की स्फूर्ति थी। मैं कोई महान् कार्य कर रहा हूँ यह भावना और साथियों तथा जनता की दाद इस स्फूर्ति के कारण थे। मेरे शारीरिक कष्ट का यह स्फूर्ति परिमार्जन कर रही थी।

परन्तु मेरे कुटुम्ब का बुरा हाल था। मेरा असहयोगी होना मुझ पर और कुटुम्ब पर बड़ी से बड़ी आपत्ति ला सकता है यह भावना तो सारे कुटुम्बियों पर अत्यधिक आतंक जमाये हुए थी ही, पर इसी के साथ मेरे जीवन के उपर्युक्त परिवर्त्तन ने उन्हें एक ऐसे भय में डाल दिया जिससे सरकार का कोई सम्बन्ध न था। हर कुटुम्बी को इस बात का विश्वास-सा हो गया था कि

जीवन के ये परिवर्त्तन मेरा शरीर कदापि न सह सकेगा और मुझे भयानक रूप से बीमार होने में बहुत समय न लगेगा। मेरे कुटुम्बी सबसे अधिक चिन्तित थे मेरे खाने की चीजों को घटाकर तीन की संख्या तक ले आने से। जीवन का यह सारा व्यक्तिगत परिवर्त्तन मैंने नागपुर कांग्रेस से लौटते ही लगभग एक सप्ताह के भीतर कर डाला। वह सप्ताह जीवन में अनेक बार मुझे याद आ जाता है। आन्तरिक परिवर्त्तन तो बहुत समय से मुझमें हो ही रहा था अब हो गया बाह्य परिवर्त्तन भी; और जिस सप्ताह में मैं अपना यह बाह्य तूफानी परिवर्त्तन कर रहा था जबलपुर में बड़ा भारी प्राकृतिक तूफान भी चल रहा था। जाड़े का मौसम तो था ही, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी और इस सर्दी में हो रही थी जोर की महावट! काली-काली घटाएँ, उनमें चमचमाती शुभ्र सौदामनी! घटाओं की गरज और बिजली की कड़क! पानी तथा पानी के बाद ओले! फिर वर्षा समाप्त होने पर गहरा कुहरा! हेमन्त के मेह में जबलपुर की मौसम सदा ही इस प्रकार की हो जाती है, पर उस वर्ष का यह तूफान शायद कुछ अधिक रहा। मेरे मन में उस समय बार-बार उठा कि क्या मेरा भावी जीवन भी अब ऐसा ही तूफानी रहेगा? जो कुछ हो, अन्त में सघन कुहरे को प्रखर सहस्रांशु की अंशुओं ने तितर-बितर कर अपने प्रकाश से धरित्री को द्युतिवन्त कर दिया। मुझे भी विश्वास हो गया कि चाहे मेरे जीवन में कितने ही तूफान क्यों न आवें, इस देश का वायुमण्डल कैसे ही काले कुहरों से क्यों न व्याप्त हो अन्त में स्वराज्य का सूर्य चमक कर रहेगा। स्वराज्य प्राप्त होने तक देश पर अनेक बार अगणित ढंग की घटाएँ उठीं, नाना प्रकार की गरज और चमक हुई, अनेक प्रकार का कुहरा पड़ा, उन दुर्दिनों में कई हतोत्साह हो मार्गभ्रष्ट हो गये, पर स्वराज्य के सूर्य में मुझे सदा ही कुछ ऐसा विश्वास रहा कि मेरे जीवन में आनेवाले ये कोई भी दुर्दिन मुझे अपने संकल्प में पथ-भ्रष्ट न कर सके।

मैंने असहयोगी होकर केवल व्यक्तिगत जीवन में ही परिवर्त्तन नहीं किया, उसके अन्य कार्यक्रमों को भी पूरी-पूरी ईमानदारी के साथ कार्य रूप में परिणत करने का संकल्प किया। असहयोग के कार्यक्रमों में जिनसे मेरा और मेरे घर का सम्बन्ध आता था वे दो थे—सरकारी अदालतों का बहिष्कार

और विलायती कपड़े के व्यापार की समाप्ति। हमारे यहाँ मालगुजारी होने के कारण किसानों की बेदखली आदि की अनेक अदालती कार्रवाइयाँ चलती रहतीं और कलकत्ते में हमारी दूकान के पास ग्लैण्डर अरबथनाट कम्पनी की विलायती कपड़े की एजेन्सी थी, जिससे हमारी कलकत्ते की दूकान को कोई एक लाख रुपया साल की कमीशन की आमदनी थी। कुटुम्ब के कर्त्ता पिताजी थे, अतः मैं यह कहकर छुट्टी पा सकता था कि जब तक पिताजी हैं तब तक ऐसे मामलों में मैं क्या कर सकता हूँ, परन्तु उस समय के गान्धीवाद में इस प्रकार के छल-छन्द करने की इच्छा ही न होती थी इसलिए मैंने पिताजी को दोनों बातें बन्द करने के लिए विवश किया। वे पहले तो इन दोनों बातों को करने के लिए तैयार न हुए पर जब मैंने अनशन आरम्भ कर दिया और दो दिनों तक कुछ न खाया तब वे झुक गये। तीन वर्षों तक, जब तक कांग्रेस के कार्यक्रम में सरकारी अदालतों का बहिष्कार रहा तब तक हमारे घर से सारी अदालती कार्रवाई बन्द रही और इन तीन वर्षों में हमारा कई लाख रुपया बेरूनमियाद हो गया। ग्लैण्डर के कपड़े की एजेन्सी छोड़ने से लाख रुपया साल का नुकसान तो सदा के लिए हो ही गया; अन्त में हमें कलकत्ते की दूकान ही उठा देनी पड़ी। जहाँ तक मुझे मालूम है जिन वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ी उनके सिवा जिस रूप में हमारे घर से सरकारी अदालतों का बायकाट हुआ उस प्रकार का बायकाट अन्य किसी ने नहीं किया और विलायती कपड़े के रोजगार के सम्बन्ध में तो मैं भली भाँति जानता हूँ, उस समय कलकत्ते में या कहीं भी विलायती कपड़े का रोजगार इस प्रकार किसी ने नहीं छोड़ा।

पिताजी से मैं उनकी रायबहादुरी भी छुड़वाना चाहता था, पर इस पर मैं उन पर सरकारी अदालतों के बहिष्कार तथा विलायती कपड़े के रोजगार छोड़ने के सदृश जोर न दे सका। बात यह थी कि अदालतों के बहिष्कार और विलायती कपड़े के रोजगार से घर का सम्बन्ध था जिसका मैं भी एक हिस्सेदार था। रायबहादुरी से उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध था। उन्होंने रायबहादुरी न छोड़ी इतना ही नहीं, मेरे असहयोगी होने के कुछ ही समय बाद सरकार ने उन्हें दीवान बहादुर बना अपने दायरे की एक और ऊँची सीढ़ी पर चढ़ा दिया।

इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में गान्धीवाद का पूरा अनुसरण कर, असहयोग के कार्यक्रम के अनुरूप अपने घर को बना, मैंने अपना पूरा समय कांग्रेस के कार्यक्रम को कार्यरूप में परिणत करने में लगाया। शहर के मुहल्ले-मुहल्ले में मैंने कांग्रेस कमेटियाँ स्थापित कीं। जिले की तहसील-तहसील, कस्बों-कस्बों, गाँव-गाँव में घूमकर मैंने अथक परिश्रम से कांग्रेस का प्रचार किया। वैशाख और जेठ की धूप और लू में मैं १०-१०, १२-१२ मील पैदल चला। कुछ ही दिन में जबलपुर शहर और जिला ही मेरे काम का दायरा न रहकर सारा हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त मेरे कार्यक्रम का क्षेत्र हो गया। उस समय जिन चीजों से मुझे सबसे अधिक सहायता मिली उनमें से कुछ ये हैं— मेरा मजबूत एवं निरोग शरीर, अनैतिकता से मुक्त चरित्र, किसी भी व्यसन से रहित रहना, प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व उठकर रात को सोने तक टाइम-टेबिल के अनुसार दिनचर्या चलाने का मेरा बचपन से अभ्यास, मेरी धार्मिक भावनाएँ जो गान्धीवाद के अनुकूल थीं, मेरी ऊँची आवाज तथा भाषण देने की शक्ति, और हाथ में लिये हुए काम के डण्डा लेकर पीछे पड़ जाने की मेरी आदत।

असहयोग आन्दोलन में स्वयं कार्य करने के अतिरिक्त मैंने प्रान्त भर के कार्यकर्त्ताओं से सम्पर्क स्थापित कर अनेक को इस क्षेत्र में आने के लिए प्रोत्साहित भी किया। यह काम मैंने शुरू किया जनवरी सन् १९२१ में एक गश्ती पत्र प्रान्तीय कार्यकर्त्ताओं को भेजकर। मेरा यह गश्ती पत्र उस समय अपनी एक विशेषता रखता था, क्योंकि प्रान्त के किसी व्यक्ति द्वारा लिखा गया प्रान्त के सभी कांग्रेसवादियों को भेजा जाने वाला यह पहला पत्र था। यह भेजा गया था नागपुर कांग्रेस के बाद हमारे प्रान्त की पृथक् प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के संगठन होने के अवसर पर, इसलिए इसका महत्त्व और बढ़ गया था। इस पत्र के कुछ अंशों को मैंने परिशिष्ट १ में इसलिए दिया है कि हमारे प्रान्त में असहयोग का कार्य किस प्रकार चलाया जाय, इसकी इस पत्र में एक रूपरेखा है और हमारे प्रान्त में आगे का कार्य इसी रूपरेखा के अनुसार चला भी।

मेरे पत्र के जितने उत्तर आये उनकी मैं आशा न करता था। कुछ उत्तरों

के अंश भी मैंने परिशिष्ट १ में दिये हैं।

कुछ ऐसे सज्जनों को भी मैंने यह पत्र भेजा था जो असहयोग आन्दोलन के प्रति खिंच रहे थे; पर पूर्णतया नहीं। इनमें से कुछ से मेरा पत्र-व्यवहार चलता रहा और मुझे हर्ष है कि कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को मैं आन्दोलन में खींच सका। नमूने के लिए एक ही पत्र-व्यवहार के कुछ अंश मैंने परिशिष्ट १ में उद्धृत किये हैं जो पत्र-व्यवहार सिवनी के श्री दुर्गाशंकरजी मेहता से हुआ था।

इस प्रथम गश्ती पत्र के भेजे जाने का जो नतीजा निकला उसने मुझे इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के लिए इतना प्रोत्साहित किया कि समय-समय पर इसी प्रकार के गश्ती पत्र मैं प्रान्त के कार्यकर्त्ताओं को भेजता रहा। उनके उत्तर भी मुझे मिलते रहे। इसी प्रकार के कुछ और पत्र-व्यवहार तथा उनके उत्तर परिशिष्ट १ में दिये गये हैं।

असहयोग के काम के कठिन परिश्रम करने के कारण मैं कुछ बीमार हो गया, पर उस समय देश का कुछ ऐसा वायुमण्डल था कि बीमारी की अपेक्षा मुझे कांग्रेस के कार्य की कहीं अधिक चिन्ता थी। उस बीमारी की अवस्था में जबलपुर और देवलाली जहाँ मैं वायु-परिवर्त्तनार्थ गया, यह पत्र-व्यवहार चलता ही रहा। उस पत्र-व्यवहार के भी कुछ पत्र परिशिष्ट १ में दिये गये हैं।

इस प्रकार एक ओर मैं स्वयं अपने शरीर से श्रम कर असहयोग का कार्य-रूप में परिणत करने का काम करता और दूसरी ओर अन्यों को काम करने के लिए प्रोत्साहन देता।

प्रान्त के कार्यकर्त्ताओं तथा जनता ने मेरा कितना अधिक साथ दिया, जो सहयोग और प्रेम मैंने अपने प्रान्त के कार्यकर्त्ताओं और जनता से पाया वह इस देश के कम व्यक्तियों को प्राप्त हुआ होगा। सन् १९२१ से अब तक इन बत्तीस वर्षों में मेरे प्रान्त की जनता का तो मेरे साथ अखण्ड सहयोग और अक्षुण्ण प्रेम रहा है।

काश, यही मेरे कुटुम्ब का भी हो सकता। जहाँ तक स्नेह का प्रश्न है, मुझ पर मेरे हर कुटुम्बी जनों का अत्यधिक स्नेह रहा है, परन्तु जहाँ तक मेरे सार्वजनिक जीवन का सम्बन्ध है उसमें मेरे किसी भी कुटुम्बी ने कभी भी

किसी प्रकार का कोई सहयोग नहीं दिया। यथार्थ में कुटुम्ब का सहयोग ही एकाकीपन मिटाता है। इतने पर भी इस एकाकी कर्मण्य जीवन से मुझे जो सन्तोष प्राप्त हो रहा था वह शायद दुनिया का सबसे बड़े सन्तोषों में एक सन्तोष कहा जा सकता है। ऐसे ही जीवन के लिए कवि-सम्राट् रवि बाबू ने लिखा है—

यदि तोर डाक सुने केउना आसे तवे एकला चलो रे,
एकला चलो रे, एकला चलो, एकला चलो रे।
यदि केउ कथा ना कय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि सवाई थाके मुख फिराये, सवाई करे मय तवे परान खुले,
ओरे, तुई मुख फुटे तोर मनेर कथा एकला बोले रे।
यदि सवाई फिरे जाय, ओरे, ओ अभागा,
यदि गहन पथे जवार काले केउ फिरे ना तबे पयेर कांटा,
ओ, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो ना घरे, ओरे, ओर, ओ अभागा,
यदि भानु बादले आंधार राते दुआर देय घरे तबे बजानले
आपन बुकेर पाँचर ज्वालिये निये एकला चलो रे।

मैंने असहयोग आन्दोलन के हर पहलू पर पत्रों में लेख लिखना भी आरम्भ किया। ये लेख हमारे प्रान्त के तथा प्रान्त के बाहर के पत्रों में छपते, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में। इन लेखों में खादी पर लिखे गये एक लेख की उस समय बड़ी चर्चा हुई। गान्धीजी तक को यह लेख बहुत पसन्द आया। उनकी ओर से श्रीयुत कृष्णदासजी ने मुझे साबरमती से ७ दिसम्बर सन् २१ को निम्नलिखित पत्र भेजा था—

"Mahatama Gandhi desires me to thank you for your interesting communication."

भाषण भी उस समय मैंने बहुत दिये। ये भाषण अनेक विषयों पर होते, पर अधिकतर ये रहते राजनीतिक, साहित्यिक और सामाजिक। पर चाहे किसी भी विषय पर मैं बोलता असहयोग का कार्यक्रम तो उसमें किसी न किसी ढंग से आ ही जाता। इन भाषणों की प्रशंसा भी बहुत होती। इस सम्बन्ध में भी

कुछ पत्रों के उदाहरण परिशिष्ट १ में दिये गये हैं।

एक बात यहाँ और लिख दूँ। सन् १९१३ में जो आर्थिक आपत्ति हमारे कुटुम्ब पर आयी थी उससे हम सम्हल अवश्य गये थे, पर कर्ज की पूरी अदाई न हो पायी थी। सन् १३ का रहा हुआ कर्ज बढ़ा ही था, घटा नहीं। खर्च आमदनी से अधिक था ही, इसमें मेरे सार्वजनिक जीवन का खर्च और जुड़ गया। न पिताजी घर देखते थे और न मैं। इस सम्बन्ध में उस समय यदि कभी मेरी माताजी और पत्नी कुछ कहतीं तो मैंने एक नयी बात सीख ली थी। मैं उन्हें उत्तर देता—"धन-दौलत की जरूरत ही क्या है ! मैं तो अपनी गुजर-बसर तीस रुपया महीने में कर सकता हूँ।" गान्धीवाद के उस समय के पवित्र प्रवाह में मैं सोच भी न सकता था कि हमारे देश की जैसी समाज रचना है उसमें रुपये का बहुत बड़ा स्थान है और दरिद्रनारायण के पूजक गान्धीजी के आश्रम तक में दरिद्रनारायण की पूजा के साथ ही नारायण की लक्ष्मी भी पूजी जाती है। कांग्रेस की जो सेवा हमारे घर के रुपये कम करने तथा हमारे घर को आर्थिक संकट में फिर से डालने का एक बहुत बड़ा कारण हुई, आगे चलकर उसी कांग्रेस में तथा कांग्रेस के नेताओं में रुपये की कमी के कारण मेरी प्रतिष्ठा भी घट गयी।

यथार्थ में मेरे सार्वजनिक जीवन में मेरी आर्थिक अवस्था बुरी ही रही और इसके कारण मुझे कष्ट भी कम नहीं उठाने पड़े। इंग्लैण्ड के एक उपन्यासकार टामस हार्डी ने ठीक ही कहा है—"वह बुरी अवस्था होती है जब सम्मान के अनुपात में साधन कम रहते हैं।" पर जो कुछ हो सन् १९२० से स्वराज्य प्राप्ति तक का वह काल एक महान् विश्वास का काल था। उद्देश्य में विश्वास और नेता में विश्वास। ऐसे युगों के सम्बन्ध में इमरसन ने एक स्थान पर लिखा है—

"सारे महान् युग विश्वास के युग रहे हैं।"

इस विश्वास के सम्मुख ये आपत्तियाँ अन्य अनेक के सदृश मेरे लिए भी नगण्य रहीं।

असहयोग आन्दोलन में कार्य करते-करते मुझे महाकवि गेटे का निम्न-लिखित कथन कितना सत्य है इसका पता चल गया—

"आत्मज्ञान का सच्चा बोध विचार से न होकर कृति से होता है। अपने कर्त्तव्य-पालन का प्रयत्न करो, तुम्हें शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि तुम किस चीज के बने हो।"

और शनैः शनैः मुझे यह भी मालूम हुआ कि लांगफैलो का यह कथन भी कितना यथार्थ है—

"सहन करना और मजबूत रहना कितनी महान् बात है—जानो।"

असहयोग आन्दोलन और हमारे प्रान्त में उसकी स्थिति

नागपुर कांग्रेस के उपरान्त सब लोग जी-जान से असहयोग के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने को तैयार हो गये थे। इसके पहले या तो लोग विचार ही विचार में गोते लगाया करते या फिर लुके-छिपे कहीं बम आदि चला कर कोई मूर्खतापूर्ण कृति कर डालते। किसी भी कार्य की पूर्णता विचार और कृति के सामंजस्य पर निर्भर रहती है। अकेला विचार निष्क्रिय बना सकता है, अकेली कृति मूर्खता की ओर ले जा सकती है। असहयोग के मुख्य अंग चार निम्नांकित बहिष्कार थे—

(१) सरकारी उपाधियों का त्याग।

(२) सरकारी शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्ध-विच्छेद।

(३) सरकारी अदालतों का बहिष्कार अर्थात् न उनमें मुकदमे दायर करना और न उनमें वकालत करना।

(४) धारा सभाओं में न जाना और न उनसे कोई लाभ उठाना।

यद्यपि देश के दुर्भाग्य से धारा सभाओं की जगहें भर चुकी थीं, परन्तु मतदाताओं के द्वारा वोट देने न जाने के कारण कांग्रेस की नैतिक विजय तो हो ही चुकी थी। अब गान्धीजी की पुकार पर सैकड़ों वकील एवं सहस्रों विद्यार्थी अदालतें और विद्यालय छोड़कर निकल आये। ये वकालत और विद्यालय छोड़नेवाले स्वार्थ-त्यागी वीर सबके सब निकल पड़े कांग्रेस और महात्मा गान्धी का सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाने। प्रति नगर, प्रति गाँव, प्रति घर, क्या महल, क्या झोपड़ी—में इन्होंने इन पुनीत सन्देशों को पहुँचाया। इस साध्य के प्रति उनकी ऐसी तीव्र लगन थी कि यथासुलभ साधनों द्वारा प्रत्येक इस राष्ट्रीय हित के पवित्र कार्य में अपना हाथ बटा रहा था। प्रत्येक स्थान पर कांग्रेस कार्यकर्त्ता बैलगाड़ी, साइकिल, टट्टू पर और पैदल भी जाने का प्रयत्न करते। इन कार्यकर्त्ताओं में केवल नवयुवक ही न होकर अबला

कहलानेवाली स्त्रियाँ, बेसमझ कहलानेवाले बच्चे और बढ़ती आयु के साथ दुर्बल होते हुए बूढ़े भी थे। इस देशव्यापी महान् जागृति के साथ लोगों की लगन और ईमानदारी भी देखने योग्य थी। एक बार रूस के महापुरुष लेनिन ने कहा था—"कोई राष्ट्र तब तक यथार्थ में स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक उसकी आधी आबादी केवल रसोईघर में रहती है।" इस देश की स्त्रियों की दशा तो इस दृष्टि से अत्यन्त दयनीय थी ही और परदा प्रथा ने यहाँ की महिलाओं की इस दशा को सबसे अधिक खराब कर रखा था। महिलाओं में देशव्यापी सच्ची जागृति का आरम्भ यथार्थ में असहयोग आन्दोलन से हुआ।

पंडित नेहरू के शब्दों में ये कार्यकर्त्ता एक नशे जैसी हालत में काम करते थे। इस देश-प्रेम में दीक्षित कार्यकर्त्ताओं ने अपने इस पवित्र उद्देश्य से जीवन का तादात्म्य स्थापित कर लिया था। यही वे सोचते, चर्चा का विषय भी यही होता तथा इसी के वे स्वप्न देखते। जागने पर कांग्रेस के तिरंगे झण्डे के साथ राष्ट्रीय गान गाते हुए नित्य प्रातःकाल प्रभात फेरियाँ निकलतीं। विशिष्ट अवसरों पर तो ये प्रभात फेरियाँ समुद्र के समान उमड़ पड़तीं। इनमें इतने झण्डे रहते कि उनकी फहर इस समुद्र की तिरंगी लहरें दिख पड़तीं और जयघोष उस समुद्र का गर्जन जान पड़ता। सार्वजनिक सभाओं तथा जुलूसों में ऐसी भीड़ होती जो इसके पहले देखी क्या सुनी भी नहीं गयी थी। लोग विलायती कपड़ों की होलियाँ जलाते तथा स्वदेशी और खादी पहनने की प्रतिज्ञाएँ करते। बम्बई में सबसे पहले विलायती कपड़ों की होली में महात्मा गान्धी ने स्वयं अपने हाथों से आग लगायी थी। इस आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं में ध्येय में ही शुद्ध विश्वास नहीं था, पर कार्यकर्त्ताओं के बीच कोई ईर्ष्या और द्वेष की भावना न रहने के कारण उनका आपसी व्यवहार भी नितान्त शुद्ध था। सभी ध्येय की प्राप्ति के लिए तन, मन और धन को न्यौछावर कर, मस्तिष्क और हृदय की पूर्ण शक्ति को लगा व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अपने कार्य में डटे हुए थे। कैसे दृश्य थे उस काल के! ओह!

इस असहयोग आन्दोलन को पूर्ण प्रगति प्राप्त हुई थी बेजवाड़ा में कांग्रेस महासमिति की बैठक के उपरान्त। इस महासमिति के तिलक-स्वराज्य फण्ड में एक करोड़ रुपयों की माँग के अतिरिक्त कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनने

एवं बीस हजार चर्खे चालू करने की माँग की। लोगों के जोश का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि एक महीने के भीतर ही निर्धारित रकम में १५ लाख रुपये आ गये तथा आधे से ऊपर सदस्यों की संख्या पहुँच गयी। इसके थोड़े दिनों बाद ही तीनों बातें पूरी भी हो गयीं—एक करोड़ रुपये से अधिक तिलक-स्वराज्य फण्ड में जमा हो गया, एक करोड़ के ऊपर कांग्रेस सदस्य बन गये और बीस हजार से अधिक चर्खे भी चलने लगे।

परन्तु बैजवाड़े में कांग्रेस ने देश की जनता से जो एक करोड़ रुपये की माँग की थी और उस माँग की पूर्ति के लिए जो समय नियुक्त किया था उस समय के समीप पहुँचते-पहुँचते एक ऐसी घड़ी भी आयी थी जब यह शंका होने लगी थी कि कहीं ऐसा न हो कि निश्चित समय पर एक करोड़ की रकम पूरी न हो सके।

मेरा उस समय अखिल भारतीय नेताओं से सम्बन्ध होता जा रहा था, इनमें उस समय सबसे निकट का मेरा सम्बन्ध हो गया था सेठ जमनालालजी बजाज से। इसके दो कारण थे—पहला यह कि हमारे कुटुम्बों का आपसी सम्बन्ध था और दूसरा यह कि हम दोनों एक ही प्रान्त के थे। सेठ जमनालालजी ने मुझे लिखा कि यदि ३० जून सन् २१ तक एक करोड़ रुपये एकत्रित न हुए तो कुछ व्यक्तियों को बची हुई रकम की जिम्मेदारी लेनी होगी और जिम्मेदारी की रकम यदि निश्चित समय के भीतर एकत्रित न कर सके तो उन्हें पास से देनी होगी। सेठ जमनालालजी के साथ मैंने साढ़े सात लाख रुपये की जिम्मेदारी ली। इस विषय में जमनालालजी का और मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसका कुछ अंश परिशिष्ट १ में उद्धृत है।

वह तो गनीमत हुई कि निश्चित तारीख पर तिलक-स्वराज्य फण्ड की एक करोड़ की रकम पूरी हो गयी अन्यथा अपने वचन को पूर्ण करने में मेरे कुटुम्ब की न जाने कितनी जायदाद या तो बिकती या रहन होती।

बात यह है कि उस समय जो लोग असहयोग आन्दोलन में आये थे उनमें से अधिकांश की भावनाएँ ही कुछ निराली थीं और मैं तो अपने मन में निश्चय कर ही चुका था कि मैं तीस रुपये महीने में अपनी गुजर-बसर करूँगा।

एक और इस उत्साहपूर्ण वातावरण में नेता और जनसाधारण कंधे से

कंधा मिलाकर काम कर रहे थे और दूसरी ओर कुछ कायर निष्क्रिय भी बैठे हुए थे। जब बाजे की ध्वनि और जयजयकार का घोष होता, जब उड़ते हुए तिरंगे झण्डे और केशरी रंग की साड़ियाँ दिखतीं, जब ऐसे समुदायों पर किये गये नाना प्रकार के दमन की खबरें सुन पड़तीं, तब मानवों की दो ही स्थितियाँ होतीं या तो जोश से उनका हृदय भर जाता और वे कुछ न कुछ करने को अग्रसर होते या भय से उनका हृदय थर्रा उठता और वे लुकने-छिपने के लिए उद्यत हो जाते। मेरी समझ में ही न आता था कि जिसके हृदय में उदात्त भावना का स्पर्श भी होता रहे ऐसे समय में वह चुपचाप कैसे बैठा रह सकता था?

ऐसे अवसरों पर परिस्थिति ही ऐसी है, हम क्या कर सकते हैं, यह कायर अथवा स्वार्थी के मुख से ही निकल सकता है। जिनके हृदय में किसी प्रकार के बल का थोड़ा भी लवलेश है, जो कायरता को घृणा की दृष्टि से देखते हैं वे परिस्थिति पर सारा भार डाल कर्त्तव्य-पथ से विमुख नहीं हो सकते। जिस देश में लाखों भूख से तड़प-तड़प कर मर रहे हों, जहाँ करोड़ों को दो बार पेट भरने को भी सूखे टुकड़े न मिलते हों वहाँ परिस्थिति पर सारी जिम्मेदारी डाल नाना प्रकार के व्यंजनों को खाते हुए कौन वीर अपना समय सुख से व्यतीत कर सकता है? जहाँ लाखों स्त्रियों को अपनी लज्जा ढाँकने के लिए भी वस्त्र न मिलते हों, जहाँ करोड़ों बिना वस्त्रों के जाड़ों में काँपा करते हों, वहाँ सारा बोझ परिस्थिति पर रख नाना प्रकार के वस्त्रों में लपटा हुआ कौन कर्त्तव्य-निष्ठ सुख की नींद सो सकता है? यदि परिस्थिति ठीक नहीं है तो उसे ठीक करने का उत्तरदायित्व किस पर है? जिन्होंने इस देश में जन्म लिया है, जो यहाँ की मिट्टी से बने और यहाँ की जलवायु एवं अन्न से पोषित हुए हैं उन्हीं पर तो इस हालत के ठीक करने की जिम्मेदारी है। यह सम्भव है कि वे अपने यत्न में सफल न हों। यदि प्रयत्न के पश्चात् भी सफलता नहीं मिलती तो वे अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रयत्न में यदि उन्हें अपने प्राणों को भी उत्सर्ग कर देना पड़े तो उन्हें महान् सन्तोष मिलता है। ऐसे स्त्री-पुरुषों के जीवन-वृत्तान्त हमें इतिहास में मिलते हैं और इतिहास से ही हमें यह पता भी लगता है कि ऐसे व्यक्तियों को अपने

कर्त्तव्य-पालन में कैसा सन्तोष, कैसी शान्ति प्राप्त हुई थी। परिस्थिति ही ऐसी है, हम क्या करें कहनेवाले कायरों और स्वार्थियों को कभी वैसा संतोष मिल सकता है ?

कितने मनों में असहयोग के उस काल में इस प्रकार के विचार उठते थे। गान्धीजी ने कहा था कि यदि उनके कार्यक्रम को पूर्ण ईमानदारी और तत्परता के साथ काम में लाया जावेगा तो वर्ष भर के भीतर ही स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। बस, उनका यह कथन जादू का सा असर कर गया तथा प्रत्येक शहीद होने की भावना से प्रेरित होकर काम करने लगा। अपने अभीप्सित उद्देश्य को इतने पास देख लोग प्रत्येक बलिदान के लिए तैयार थे। सच है किसी महान् उद्देश्य से ओत-प्रोत मन प्राणों की बाजी भी लगा देता है। पर यहाँ एक बात मैंने बड़े मार्के की देखी। जिस हृदय की पवित्र प्रेरणा एवं निस्वार्थ स्फूर्ति से साधारण कार्यकर्त्ता काम करता था उसका अधिकांश नेताओं में अभाव था। बात कटु होने पर भी सत्य है। और आत्म-निरीक्षण करने का दावा करने वाला मनुष्य यदि ऐसी बातें छिपा जावे तो वह न केवल अपने उद्देश्य से गिरता है अपितु देश के प्रति अपना कर्त्तव्य भी अच्छी तरह नहीं निभाता। बात यह है कि जहाँ साधारण कार्यकर्त्ता कांग्रेस क्षेत्र में प्रधानतः देश-सेवा की भावना से प्रेरित होकर आये थे, क्योंकि उस समय पदों का लोभ न था, वहाँ कई नेता लोकेषणा से भरे थे तथा इनके मनों में और अधिक आत्ममहत्त्व की भावना का प्रादुर्भाव हो गया था।

पर इतने पर भी हम कह सकते हैं कि असहयोग के वातावरण से कई ठोस कार्य हो रहे थे। नवीन शिक्षालय खोले गये तथा वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा दी जाने लगी। अदालतों के बहिष्कार स्वरूप पंचायतों का जन्म हुआ। विदेशी कपड़ों के बहिष्कार से खादी को प्रोत्साहन मिला तथा चरित्र-निर्माण की दृष्टि से शराब-बंदी को भी असहयोग के कार्यक्रम में स्थान दिया गया। अपने परिवर्त्तित विधान के अनुसार कांग्रेस अति सुव्यवस्थित एवं अनुशासित संस्था हो गयी। असहयोग आन्दोलन सन् १८५७ के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पहला क्रियात्मक आन्दोलन था। उस काल के अधिकांश विद्वान् कहा करते थे कि ऐसे क्रियात्मक आन्दोलन के लिए जिन साधनों की आवश्यकता थी वे देश में

नहीं थे। पर साधनों को दोष देने से ध्येय में कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। नये साधन उत्पन्न करना सम्भव नहीं होता, क्योंकि इसके लिए समय की आवश्यकता होती है, वह ठीक वक्त मिल ही नहीं सकता। इसलिए हमें इस आन्दोलन से यह शिक्षा मिल गयी कि साधन चाहे अल्प ही क्यों न हों, उन्हीं को ले आगे बढ़ना चाहिए, अन्यथा कोई क्रियात्मक कार्य हो ही नहीं सकता।

सरकार गिद्ध दृष्टि से यह सब देखते हुए मौके की घात में थी।

जूलियन हक्सले ने एक स्थान पर लिखा है—

"कोई व्यक्ति चाहे इस बात पर विश्वास करे कि वह किसी कार्य के लिए अपने को पूर्णरूप से अर्पित कर देगा यहाँ तक कि अपने देश, सत्य, किसी कला अथवा प्रेम के लिए अपना बलिदान तक कर देगा, पर यथार्थ में वह इस आत्म-समर्पण और बलिदान के कारण ही अपने सच्चे रूप को प्राप्त करता है और व्यक्तियों के ऐसे आत्म-समर्पण तथा बलिदान से ही कार्य मूल्यवान होते हैं।"

असहयोग आन्दोलन के समय और उसके बाद स्वराज्य प्राप्त होने तक देश में जो कुछ हुआ उससे ज्ञात होता है कि हक्सले का कथन कितना सत्य है।

सरकार शक्तिशाली थी पर असहयोगियों की दशा थी लिंकन के निम्न-लिखित कथन के अनुसार—

"हमें विश्वास होना चाहिए कि सत्य ही सच्ची शक्ति है और इस विश्वास के आधार पर अन्त तक हमें उस कर्त्तव्य को करते जाना चाहिए जिसे हम सही समझते हैं।"

साथ ही असहयोग आन्दोलन के समय हमें यह भी मालूम हो गया कि हीगल का यह कथन यथार्थ है—

"हमें यह मान लेना चाहिए कि संसार में कोई भी महान् बात बिना जोश के सफल नहीं हो पायी।"

असहयोग आन्दोलन के एक क्रियात्मक और सफल आन्दोलन होने के दो कारण और थे। एक था मुसलमानों की मजहबी वृत्ति के कारण खिलाफत के प्रश्न की वजह से कांग्रेस के साथ पूरी तौर पर खिच आना और दूसरे गान्धीजी का उस समय के हर प्रान्त के महान् व्यक्तियों को अपने साथ कर लेने में सफल होना। कैसे-कैसे लोग गान्धीजी के सहचर हो गये और साथ

ही कैसे-कैसे नये लोगों का गान्धीजी निर्माण कर सके। अनेक तो ऐसे व्यक्ति भी गान्धीजी के साथ खिच आये जो आरम्भ में असहयोग आन्दोल के पूरे पक्ष में न थे। पंडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरंजन-दास ऐसे महानुभावों में प्रधान थे। और इस प्रकार के अनेक पुराने तथा अनेक नये लोगों ने असहयोग में सम्मिलित हो देश के हर प्रान्त में कैसी अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की। पंजाब में लाला लाजपतराय; उत्तर प्रदेश में पंडित मालवीय, पंडित मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और अलीबन्धु; बिहार में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद; बंगाल में देशबन्धु दास, श्री सेन गुप्त, श्री सुभाषचन्द्र बोस और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद; बम्बई में श्रीमती सरोजिनी नायडू; गुजरात में श्री बल्लभभाई पटेल; मद्रास में श्री राजगोपालाचारी; दिल्ली में हकीम अजमल खाँ और डाक्टर अन्सारी उस समय के प्रमुख नेता थे। मैंने उसी समय से इन्हें कांग्रेस के तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशनों एवं अन्यत्र भी निकट से देखा। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय की दहाड़ एक प्रकार का कम्पन्न उत्पन्न करती। पंजाब के वे सच्चे प्रतीक जान पड़ते। उत्तर प्रदेश के तीन पंडितों में अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ थीं। मालवीयजी भारतीय संस्कृति के मूर्तमंत रूप दिखते और उनके प्रति हृदय में एक असीम श्रद्धा की उत्पत्ति होती, मोतीलालजी का शाही व्यक्तित्व का ऐसा रोब पड़ता जैसा किसी का नहीं, जवाहरलालजी उस समय, कम से कम अखिल भारतीय क्षेत्र में कभी कोई भाषण न देते और इस चुपचाप व्यक्ति के प्रति जितना आकर्षण होता उतना शायद किसी के प्रति नहीं। मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली की भारी-भरकम आकृति, विशेषकर शौकत अली की, चेहरे की दाढ़ियाँ, उनके शरीर पर के लम्बे-लम्बे झोले और सिर पर की चाँद लगी हुई ऊँची-ऊँची टोपियाँ मुसलमानों का उन्हें सच्चे प्रतिनिधि का रूप देतीं। राजेन्द्र बाबू अपने नेता के जितने बड़े भक्त दिखायी पड़ते उतने अन्य कोई नहीं। देशबन्धु चित्तरंजनदास जब बोलते जान पड़ता सचाई का उच्चतम रूप जोश की पराकाष्ठा से उनकी वाणी द्वारा मुखरित हो रहा है और उनके दाहिने-बायें श्री सेन गुप्त तथा सुभाष बाबू किस प्रकार चुपचाप चलते हुए अपनी और अपने नेता की श्री वृद्धि करते रहते। मौलाना आजाद

के चेहरे पर विद्वत्ता और शरीर में नाजुकपन उसी समय से अंकित रहता। सरोजिनी देवी से बढ़कर कोकिलकंठी कांग्रेस में कभी नहीं रही। श्री वल्लभभाई पटेल जो बाद में लौह-पुरुष की उपाधि से विभूषित किये गये वह लौह-मयी दृढ़ता सबसे अधिक उनकी आँखों से टपकती। राजाजी के उस समय लम्बी काली शिखा थी। उनका श्याम और कृष शरीर तथा इस लम्बी शिखा से युक्त उनका बड़े पैने से अवयवोंवाला मुख देख चाणक्य की याद आये बिना न रहती। हकीमजी मुगल परम्परा के प्रतीक जान पड़ते और डाक्टर अन्सारी सब प्रकार के पालिश से चमकते हुए एक विशेष प्रकार के व्यक्ति।

और ऐसे विविध प्रकार के व्यक्तियों से घिरे बापू ! क्या कहूँ उनके सम्बन्ध में ! वह वर्णन शब्दों द्वारा शायद सम्भव ही नहीं है।

मध्य प्रदेश और बरार प्रान्त देश के अन्य अधिकांश प्रान्तों के सदृश अंग्रेजी राज्य की देन हैं। जिस प्रकार अन्य अनेक प्रान्तों का निर्माण विभिन्न क्षेत्रों के अंग्रेजों के अधिकार में आने पर शासन चलाने की सुविधा की दृष्टि से हुआ उसी प्रकार मध्य प्रदेश और बरार का भी। स्थानीय भाषा, इतिहास, संस्कृति आदि का ध्यान किसी भी प्रान्त के निर्माण में नहीं रखा गया, हमारे प्रान्त के निर्माण में भी नहीं। इसीलिए अन्य अनेक प्रान्तों के सदृश हमारे प्रान्त में दो भाषाएँ—हिन्दी और मराठी बोली जाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रान्त के भिन्न-भिन्न विभागों का कोई सामंजस्य नहीं और यदि हम सांस्कृतिक दृष्टि से इस प्रान्त को देखें तो यों तो समस्त भारत की संस्कृति को मैं एक ही संस्कृति मानता हूँ तथापि एक संस्कृति रहते हुए भी जो स्थान विशेष में इस संस्कृति में छोटी-छोटी विभिन्नताएँ दिखती हैं, और जिनका दिखना सर्वथा स्वाभाविक भी है, हमारा प्रान्त इन विभिन्नताओं का एक बंडल है।

हर प्रान्त में कांग्रेस का काम अधिक सुचारु रूप से चल सके इसलिए नागपुर कांग्रेस ने कांग्रेस-विधान में भाषावार प्रान्तों की रचना की थी। भाषावार प्रान्तों की रचना के सिद्धान्त के अनुसार एक भाषा के एक से अधिक प्रान्त हो सकते थे, परन्तु एक प्रान्त में दो भाषाएँ न हो सकती थीं अतः मध्य प्रदेश और बरार के तीन कांग्रेस प्रान्त बने थे—हिन्दी भाषा-भाषी १४

जिलों का एक प्रान्त हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त। मराठी भाषा-भाषी ८ जिलों के दो प्रान्त—चार जिलों का एक मराठी मध्य प्रान्त और चार जिलों का दूसरा बरार प्रान्त।

मराठी मध्य प्रान्त और बरार में जन-जागृति काफी पुरानी थी। राजनैतिक दृष्टि से भी मध्य प्रदेश और बरार का यह हिस्सा देश के राजनैतिक कामों में यथेष्ट भाग ले चुका था। नरम दल की कांग्रेस में नागपुर के श्री माधवराव चिटनवीस, अमरावती के श्री मुधोलकर आदि का ऊँचा स्थान रह चुका था। श्री मुधोलकर तो कांग्रेस के एक अधिवेशन के सभापति भी हो चुके थे। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में उस समय जो राजनैतिक दल गरम दल कहलाता था उसके भी नागपुर के डा० मुंजे, अमरावती के श्री खापर्डे, यवतमाल के श्री अणे आदि अनेक उच्च कोटि के नेता थे। परन्तु हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में इस काल की राजनीति यथार्थ में आरम्भ हुई असहयोग आन्दोलन से। इसमें सन्देह नहीं कि भारत के प्राचीन इतिहास में यह क्षेत्र अपना विशिष्ट स्थान रख चुका था। महाभारत काल का चेदि वंश, उसके बाद कलचुरि और मुस्लिम राज्य काल के राज गोंड इसी क्षेत्र में हुए, पर आधुनिक काल में यह क्षेत्र सर्वथा निद्रा-मग्न रहा था।

हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त का अलग कांग्रेस प्रान्त निर्माण होते ही इस क्षेत्र में राजनैतिक चेतना की अभूतपूर्व लहर बही और इस नयी चेतना ने सम्पूर्ण रूप से कांग्रेस का साथ दिया। इसका कारण था मराठी मध्य प्रान्त और बरार में नरम दल भी पनप चुका था और लोकमान्य तिलक का गरम दल भी जिसके इस काल के नेता इस समय की कांग्रेस के साथ पूर्ण रूपेण नहीं थे, हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त चूँकि अब तक घोर निद्रा में मग्न रहा था, इसलिए यहाँ न नरम दल का कोई नेता और उसके अनुयायी थे और न लोकमान्य के गरम दल का कोई नेता और उसके कोई अनुयायी। मध्य प्रदेश में विधान सभा भी बहुत देर से बनी थी। इसके सदस्य इस क्षेत्र से भी चुने जाते थे, परन्तु उस समय मतदाता मुट्ठी भर रहते थे अतः इनका भी कोई सामूहिक अनुसरण न था। फिर इनमें से भी अधिकांश कांग्रेस के साथ आगये।

नागपुर कांग्रेस के बाद ही हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त की पृथक् प्रान्तीय

कांग्रेस कमेटी का निर्माण हुआ। पहले एक अस्थायी कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी की पहली बैठक जबलपुर में मेरे ही स्थान पर हुई। जैसा पहले कहा जा चुका है हमारे इस क्षेत्र के प्रधान राजनैतिक नेता पण्डित विष्णुदत्तजी शुक्ल का देहान्त हो चुका था अन्यथा यदि शुक्लजी असहयोगी कांग्रेस में रहते तो हमारे प्रान्त की इस प्रथम अस्थायी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति सर्वमत से शुक्लजी ही चुने जाते, परन्तु उनके न रहने पर हमारा कर्णधार कौन बनाया जाय यह प्रश्न एक जटिल-सा प्रश्न हो गया। उस समय हमारे प्रान्त के जो लोग कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे उनमें मुख्य सज्जनों के नाम परिशिष्ट ४ में दिये गये हैं, क्योंकि इन सभी से मेरा सम्बन्ध था।

इनमें से कई ऐसे सज्जन भी थे जो कांग्रेस में तो आ गये थे, वरन् कुछ तो पहले से ही कांग्रेस में थे, परन्तु जिन्होंने असहयोग प्रस्ताव को पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत न किया था, इनमें प्रधानतया वकील थे, जिन्होंने असहयोग के प्रस्ताव के अनुसार अपनी वकालत न छोड़ी थी।

जहाँ तक मुझे याद है उपर्युक्त सज्जनों में से अधिकांश जबलपुर की उपर्युक्त बैठक के लिए जबलपुर आये थे।

हमारी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का प्रथम सभापति कौन हो यह उस समय की चर्चा का मुख्य विषय बन गया था। यद्यपि यह चर्चा प्रान्तीय कमेटी की इस बैठक के पहले से ही भिन्न-भिन्न जिलों तथा स्थानों में चल रही थी, परन्तु जबलपुर की बैठक के समय इस चर्चा ने बड़ा उत्कट रूप ग्रहण किया और इस पद के लिए दो नामों पर विशेष चर्चा आरम्भ हुई—एक बिलासपुर के श्री राघवेन्द्र राव एवं दूसरा मैं।

यद्यपि १९२० की कांग्रेस में मेरे कुटुम्ब के किसी व्यक्ति का आना एक आश्चर्यजनक बात मानी गयी थी, और प्रान्त में सर्वत्र ही मैं अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता था तथा समूचा प्रान्त उसी समय से मुझसे न जाने कितनी आशाएँ रखने लगा था, पर मेरी अवस्था उस समय केवल २४ वर्ष थी। मुझे राजनैतिक कार्य का कोई अनुभव भी न था। मेरे मन में उस समय महत्वाकांक्षा काफी परिमाण में मौजूद थी, पर मुझे यह भय भी था कि ऐसा न हो कि मैं इस गुरुतम भार को न सँभाल सकूं। पं० माधवरावजी

सप्रे ही इस समय ऐसे व्यक्ति थे जिनसे मैं सलाह लेता था और उनकी सम्मति का मेरे मन पर प्रभाव भी बहुत पड़ता था। जब मैंने सप्रेजी से इस विषय में सलाह ली तब उन्होंने स्पष्ट कहा कि मुझे यह पद कदापि स्वीकार न करना चाहिए। महत्वाकांक्षा के रहते हुए भी मेरे मन में झिझक थी ही अतः मैंने अपना नाम इस पद के लिए देना अस्वीकृत कर दिया। श्री राघवेन्द्रराव ने भी यही किया और अन्त में दमोह के वयोवृद्ध नेता श्री दामोदरराव श्रीखण्डे सर्वमत से प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गये। सभापति के चुनाव के पश्चात् कमेटी के अन्य पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। उपसभापतियों में एक मैं था और प्रधान मन्त्री हुए नरसिंहपुर के श्री माणिकलालजी कोचर।

इसके बाद स्थायी प्रन्तीय कमेटी की नियमावली बनायी गयी, जो मुख्यतः श्री राघवेन्द्रराव ने तैयार की।

और इसके पश्चात् प्रान्त में असहयोग आन्दोलन का कार्य आरम्भ हुआ। कैसा जोश, कैसा त्याग, कैसी शुद्धता थी कार्यकर्त्ताओं में! किस मतैक्य से प्रान्त की जनता अनुसरण कर रही थी इन नेताओं का! कांग्रेस के चार आने वाले सदस्य बनने के लिए तो लोगों की बाढ़-सी आ गयी। स्वयंसेवकों की भी कमी न रही। विलायती कपड़े की दूकानों और कलारियों पर जोर का पिकेटिंग शुरू हुआ। स्थान-स्थान पर चरखे चलने लगे और लोगों ने खादी का उपयोग आरम्भ किया। शहर-शहर, कस्बे-कस्बे, गाँव-गाँव नित्य प्रभात-फेरियाँ निकलतीं, समय-समय पर जुलूस निकलते और आम सभाएँ होतीं। काम करनेवालों में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी निकली थीं, पर हमारे प्रान्त में परदा-प्रथा के कारण अधिक नहीं। असहयोग के पूर्व हमारे प्रान्त ने ऐसे दृश्य कभी न देखे थ।

थोड़े दिन बाद ही प्रान्त के कुछ स्थानों में गान्धीजी का दौरा हुआ। उनके जबलपुर के दौरे के मुझे कई दृश्य आज भी जैसे के तैसे स्मरण हैं। जबलपुर में वे श्यामसुन्दरजी भार्गव के यहाँ इसलिए ठहरे कि उनका मकान जबलपुर के सबसे बड़े बाजार के बीचोंबीच है। उस समय गान्धीजी एकान्त स्थान पर न ठहरते थे, वरन् ऐसे स्थान पर जहाँ जनता से अधिक से अधिक सम्पर्क

में आ सकें। गान्धीजी के वास के समय कैसी भीड़ रहती भार्गवजी के मकान में और उसके चारों ओर, मानो बड़ा भारी मेला हो। पहले स्त्रियों की सभा में गान्धीजी का भाषण हुआ। जबलपुर में उसके पहले कभी भी इतनी बड़ी संख्या में स्त्रियाँ एकत्रित न हुई थीं। इस सभा में जब गान्धीजी ने तिलक-स्वराज्य फण्ड के लिए स्त्रियों से जेवर माँगे तब उन्हें काफी जेवर मिले। फिर सार्वजनिक सभा हुई। उस समय लाउड स्पीकर न निकले थे अतः यह सभा सर्वथा असफल हो गयी। लोग गान्धीजी का भाषण न सुन सके और इतना हो-हल्ला मचा कि गान्धीजी सभा को यों ही छोड़ वापस आ गये। गान्धीजी उस दिन की सभा में हमारे यहाँ की चौकड़ी की बग्घी पर गये थे। हो-हल्ले में लौटने के कारण चौकड़ी के घोड़े कुछ चमके भी, पर गान्धीजी ने उसकी भी परवाह न की। स्वराज्य फण्ड में गान्धीजी को जबलपुर नगर से कोई बीस हजार रुपये मिले। इसमें से दस हजार हमारे कुटुम्ब ने दिये थे। गान्धीजी के साथ माता कस्तूर बा भी पधारी थीं। इस समय तक गान्धीजी ने लँगोटी नहीं लगायी थी पर अब वे अँगरखा और पगड़ी भी नहीं पहनते थे। अब वे पहनते थे गान्धी टोपी, कुरता और धोती।

गान्धीजी जबलपुर से बहुत प्रसन्न होकर गये और उन्होंने कलकत्ते के श्री गुणदा बाबू नामक एक पत्र-प्रतिनिधि से एक मुलाकात में जबलपुर के कार्य के लिए श्री श्यामसुन्दरजी भार्गव की और मेरी कुछ प्रशंसा कर दी।

गान्धीजी का यह कथन जबलपुर के एक बैरिस्टर श्री ज्ञानचन्द्रजी वर्मा को पसंद न आया। उन्होंने गान्धीजी को एक पत्र लिखा। यह पत्र तथा इसका उत्तर गान्धीजी ने ता० २० अप्रैल सन् २१ के "यंग इंडिया" में छापा। श्री वर्माजी का पत्र और गान्धीजी का उत्तर अन्य प्रकार से तो मनोरंजक है ही, पर उसमें एक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन हुआ है अतः उसे यहाँ उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

वर्माजी ने गान्धीजी को लिखा—

Sir,

The other day when you left Jubbulpore for Cuttack you had an interwiew with Gunada Babu at Calcutta. I have seen that interwiew in the *Independent* of the 2nd instant,

which appears to have borrowed it from the *Servant*. I refer you to a statement in that article attributed to you.

It runs thus :—

"At Jubbulpore, from where he (Mahatma Gandhi) was coming, two young men (sons of rich merchants) were leading the movement very successfully against a whole host of lawyers. Being businessmen, they were carrying on the work of organization most effectively."

This statement is incorrect.

The facts are :—

These young men are not merchants. They are foundation stones of the British Government in India. They are Malguzars. Their trade is to realize Rs. 100 from the poor tenants, give the Government Rs. 55 and keep Rs. 45 with themselves as commission, and guarantee to recover the money even in the worst times What a Non-co-operation with the Government ! If these Malguzars are not co-operators, no one else is a co-operator. The Malguzari system was an invention of Todermal by which means people could be systematically dominated by the rulers through their mercenaries. These mercenaries are the Malguzars, who you have said, are leading the movement.

If a lawyer who has not suspended his practice is not a proper person to be an officebearer, certainly a Malguzar too should not be an officebearer. A Malguzar is more attached to the Government than a lawyer.

In Jubbulpore these youngmen, Malguzars, are not leading the movement.

The movement in Jubbulpore is being led by the lawyers and the whole host of them are supporting it.

You did not give sufficient time to Jubbulpore, else the members of the Bar would have gladly seen you and discussed the matter with you. I fully believe that it will never be wealth which will lead the movement. It will always be the intellect and I hope you will correct the wrong impression created by the interwiew.

I suspended my practice in November last.

I am etc.

Jubbulpore, G. C. VARMA
10.4.21 BARRISTER-AT-LAW

गान्धीजी का उत्तर देखिए—

I am glad of Mr. Varma's energetic protest. And I hope that the lawyers of Jubbulpore are leading the N.C.O. Movement. I must howover adhere to my statement that the lawyers were conspicuous by their absence on the day I visited Jubbulpore, and that the two young men referred to by me, were in charge of the whole management. That they are sons of land-holders is true enough. Theirs today is co-operation of necessity. The Congress has not yet called upon land-holders to surrender their lands to the Government nor is it ever likely to. These youngmen, like some land-holders sons elsewhere, are taking an honourable part in the national uplift and they deserve every encouragement from lawyers. There are no two opinions about the fact that intellect rather than riches will lead. It might equally be admitted by the correspondent that the heart rather than the intellect will eventually lead. Character, not brains, will count at the crucial moment. And I fancied that these young men showed character. I should be sorry to find otherwise.—M.K.G.

एक बात और। वर्माजी ने मालगुजारी पद्धति के विरोध में भी अपने इस पत्र में गान्धीजी को लिखा था। मुझे यह बात याद थी। अतः यद्यपि हम लोग मालगुजारी फिरके के ही थे, परन्तु जमींदारी-उन्मूलन आन्दोलन के समय मालगुजारी खत्म की जाय यह आवाज हमारे प्रदेश में सबसे पहले मैंने ही उठायी और मालगुजारी समाप्त करने के लिए प्रस्ताव मध्य प्रदेश की विधान सभा में मेरे भानजे नारायणदास ने उपस्थित किया।

हमारे प्रान्त में असहयोग की यह गति देखकर सरकारी अफसर क्षुब्ध हो उठे; यद्यपि उनका क्षोभ संयुक्त प्रान्त, बंगाल और पंजाब के अफसरों के क्षोभ तक नहीं पहुँचा। यही कारण हुआ कि हमारे प्रान्त में सरकारी दमन

संयुक्त प्रान्त, बंगाल और पंजाब के सदृश नहीं हुआ। यहाँ के कांग्रेस के स्वयं-सेवक संघटन अवैधानिक घोषित नहीं किये गये और कांग्रेस में आने वाले हम अनेक जोशीले आगन्तुकों की जेल जाने की उमड़ती हुई इच्छाएँ मन में ही रह गयीं। हाँ, सरकारी अफसर इस समय किस मनोवृत्ति में थे इसका एक चित्र जबलपुर की एक दिलचस्प घटना द्वारा अंकित हो जायगा।

जबलपुर में इस समय मि० स्लोकाक नामक कमिश्नर थे। ये एकाक्ष थे और अपना नाम अंग्रेजी में लिखते थे —"Slowe Cocke" यदि "स्लो" के अन्त में और "काक" के भी अन्त में "इ" अक्षर न लिख उन्हें कोई पत्र भेजता तो बड़े क्रोध से वे उसे फाड़ फेंकते और कहते "हम सुस्त मुरगा नहीं हैं"। मि० स्लोकाक का अन्य अंग्रेज अफसरों के सदृश हमारे कुटुम्ब से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। मेरे कुटुम्ब के दोनों प्रधान व्यक्ति मेरे ताऊ और पिता दीवान बहादुर थे। मेरे ताऊ दीवान बहादुर वल्भभदासजी सार्वजनिक जीवन में भी रह चुके थे। जैसा पहले लिखा जा चुका है अठारह वर्ष लगातार वे जबलपुर म्यूनिस्पैलिटी के सभापति रहे थे तथा इस समय जबलपुर तथा नर्मदा कमिश्नरियों के मालगुजार और काश्तकार संगठन के अध्यक्ष थे। संयुक्त प्रदेश में असहयोग आन्दोलन के समय वहाँ के ताल्लुकेदार, जमींदार तथा अन्य सरकारपरस्त सरकारी पक्ष के समर्थन के लिए अमन सभाओं का संगठन कर रहे थे। मि० स्लोकाक ने मेरे ताऊजी को बुलाकर संयुक्त प्रदेश के सदृश हमारे प्रान्त में भी अमन सभाओं का संघटन करने के लिए कहा। इसमें सन्देह नहीं कि इस काम के लिए सरकार को दीवान बहादुर वल्लभदासजी से अच्छा आदमी मिल भी न सकता था। वे मध्य प्रदेश के सबसे बड़े जमींदार थे, साथ ही उनका सार्वजनिक जीवन से भी सम्बन्ध था। प्रान्त के जमींदार वर्ग पर उनका सबसे अधिक प्रभाव था, और वे जमींदार एसोसियेशन के सभापति वर्षों से चले आ रहे थे। जब वल्लभदासजी से स्लोकाक साहब ने अपना मन्तव्य कहा तब उन्होंने विचार करने के लिए समय माँगा। दिन पर दिन बीतते चले जाते थे, दीवान बहादुर साहब के पास रिमाइण्डर पर रिमाइण्डर आते थे, पर वे समय पर समय माँगते जाते थ। आखिर एक दिन बेचैन और बदहवास से मि० स्लोकाक राजा गोकुलदास महल के उस हिस्से में खुद पहुँचे जहाँ वल्लभ-

दासजी रहते थे। वल्लभदासजी ने स्लोकाक साहब का आदर-सत्कार तो बहुत किया, क्योंकि उस समय कमिश्नर के सदृश अंग्रेज अफसर का किसी बड़े से बड़े नागरिक के यहाँ आना भी एक महान् घटना मानी जाती थी, पर सत्कार करने के साथ ही दीवान बहादुर ने स्लोकाक को आज उनकी माँग का स्पष्ट नकारात्मक उत्तर भी दे दिया। उनके कथन का आशय यह था— "मेरा भतीजा असहयोगी है। हम घर में झगड़ा नहीं करना चाहते। अमन सभाओं का संघटन मुझसे न होगा।" उस समय यह सुना गया कि मि० स्लोकाक मध्य प्रदेश के गवर्नर को यह वचन दे चुके थे कि मध्य प्रान्त में वे वल्लभदासजी के द्वारा अमन सभाओं का संघटन करा देंगे अतः उन्हें दीवान बहादुर के इस उत्तर से इतना धक्का लगा कि उन्होंने जबलपुर से अपना तबादला करा लिया। हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में कांग्रेस के विरुद्ध जो सरकार-परस्त संपन्न व्यक्तियों का भी कोई संघटन न हो सका और इस प्रान्त के इस प्रकार के जमींदार और महाजन आदि भी जो कांग्रेस के ही साथ रहे इसका श्रेय बहुत दूर तक दीवान बहादुर वल्लभदासजी को है।

असहयोग आन्दोलन में जबलपुर में एक विशेष बात और हुई वह थी यहाँ के सबसे प्रधान हाईस्कूल हितकारिणी का राष्ट्रीय शाला में परिणत होना। और यह जब हुआ उस समय की एक घटना शायद मुझे कभी विस्मृत न हो सकेगी।

हितकारिणी हाई स्कूल जिस संस्था के द्वारा चलाया जाता था उसका नाम था और आज भी है हितकारिणी सभा। सन् १९२१ में यह सभा हितकारिणी हाई स्कूल तथा कुछ माध्यमिक शालाएँ जबलपुर में चलाती थी। अब तो इसके सिटी कालेज, लॉ कालेज आदि भी हो गये हैं और इसके द्वारा चलनेवाली संस्थाओं में भिन्न-भिन्न वर्गों के लगभग पाँच हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं में महाकोशल में इसका प्रधान स्थान है। पर सन् १९२१ में भी हाई स्कूल की दृष्टि से हितकारिणी हाई स्कूल ही जबलपुर में सबसे बड़ा था। उस समय हितकारिणी सभा के सभापति थे श्री श्यामसुन्दरजी भार्गव और हितकारिणी हाई स्कूल के हैडमास्टर थे पंडित रघुवरप्रसादजी द्विवेदी। भार्गवजी द्विवेदीजी के विद्यार्थी रह चुके थे और

बहुत दिन से सभा के वे ही सभापति चले आ रहे थे। द्विवेदीजी तो न जाने कितने वर्ष से हाई स्कूल के हैडमास्टर थे। उन्हीं के अथक परिश्रम से इस हाई स्कूल को जबलपुर में यह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। मैं उस समय हितकारिणी सभा का एक सदस्य था।

हितकारिणी हाई स्कूल को राष्ट्रीय करने के लिए हितकारिणी सभा की बैठक बुलायी गयी। उस समय किसी शाला को राष्ट्रीय करने का सबसे बड़ा अर्थ होता था सरकारी सहायता बन्द कर पाठ्यक्रम को बदलना। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के राष्ट्रीयकरण के इसी कारण मालवीयजी इतने विरुद्ध रहे। सभा की इस बैठक का सभापतित्व कर रहे थे श्री श्यामसुन्दरजी भार्गव और शाला को राष्ट्रीय करने का प्रस्ताव उपस्थित किया मैंने। पंडित रघुवरप्रसादजी इस प्रस्ताव के विरोधी थे। उन्हें भास होता था कि सारी संस्था के नाश का यह आयोजन है। उन्होंने बड़े कारुणिक और साथ ही बड़े जोशीले भाषण में मेरे प्रस्ताव का घोर विरोध किया। कुछ और भाषणों के बाद जब बहुमत से मेरा प्रस्ताव पास हो गया तब तो एक अद्भुत घटना घटित हुई।

द्विवेदीजी उठ खड़े हुए। उनकी आँखों से चौधारे आँसू बह रहे थे और उनका सारा शरीर बेंत के समान काँप रहा था। उन्होंने यज्ञोपवीत निकाल उसे दाहने हाथ में लेकर कुछ इस प्रकार कहा :

"श्यामजी, तुम मेरे विद्यार्थी रहे हो। गोविन्दी तुम मेरे विद्यार्थी तो नहीं थे, पर मैंने तुम्हारी परीक्षाएँ ली हैं। इस प्रकार मैं तुम दोनों का गुरु हूँ और तुम मेरे शिष्य। तुम दोनों ने मेरे जीवन भर के काम का आज नाश किया है। मैं गुरु के नाते तुम दोनों को शाप देता हूँ कि तुम्हारा यह काम कदापि सफल न होगा।"

आँसू बहाते और काँपते हुए द्विवेदीजी ने तत्काल उस सभा-स्थल को छोड़ दिया। कैसा रौद्र और करुण रस का मूर्तिमंत स्वरूप था उस समय उनका। सारी सभा स्तब्ध-सी रह गयी। कुछ देर तो ऐसा सन्नाटा रहा कि उपस्थित लोगों के साँस खींचने और छोड़ने का शब्द भी उस सभा में सुनायी देता था। इसका कारण कदाचित यह भी था कि इस घटना के कारण वहाँ बैठे और खड़े हुए लोगों की साँसें भी तेजी से चलने लगी थीं। कुछ देर बाद

कानाफूँसी शुरू हुई पर किसी का अब यह साहस न होता था कि कोई आपस का संभाषण भी किसी ऊँचे स्वर से कर सके। हाई स्कूल के राष्ट्रीय-करण का प्रस्ताव पास हो ही चुका था। अन्य कोई काम उस वायुमण्डल में होना एक असम्भव कल्पना थी। कुछ देर में सभा भंग हुई और सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

हितकारिणी हाई स्कूल राष्ट्रीय तो हो गया, परन्तु बहुत काल तक उसका वह रूप न रह सका। थोड़े दिन बाद वह पुनः अपने पूर्व रूप में परिणत हुआ। जिस समय उसका रूप फिर बदला उस समय राष्ट्रीय शिक्षा का कार्यक्रम शिथिल हो चला था, पर फिर भी काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि कई राष्ट्रीय शिक्षा की संस्थाएँ चल रही थीं। हितकारिणी के राष्ट्रीय रूप के इतने शीघ्र पुनः परिवर्त्तन में उस ऋषितुल्य शुद्ध ब्राह्मण के ब्रह्म-शाप का कितना अंश था इसे कौन कह सकता है?

हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में जिन जिलों के असहयोग आन्दोलन का सबसे अधिक जोर रहा, वे थे—जबलपुर, छिंदवाड़ा, सागर, बैतूल, रायपुर और बालाघाट।

असहयोग आन्दोलन के पहले भी प्रान्तीय राजनैतिक परिषदों का काफी महत्त्व था। अनेक वर्ष पूर्व जबलपुर में मध्य प्रदेश और बरार की प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का एक अधिवेशन हुआ था, जिसकी स्वागत-समिति के सभापति थे मेरे ताऊ दीवान बहादुर वल्लभदासजी। उन दिनों जितने भी आयोजन होते उनकी स्वागत-समिति के सभापति वे ही होते थे। अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन की स्वागत-समिति के भी वे ही सभापति थे, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

हिन्दुस्तानी मध्य प्रदेश के कांग्रेस विधान में निर्माण के बाद जो प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् समूचे मध्य प्रान्त और बरार की होती थी वह अब जबल-पुर में केवल हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त की करने का निश्चय किया गया और इस परिषद् के इस अधिवेशन की स्वागत-समिति का मैं अध्यक्ष निर्वाचित हुआ। परिषद् के सभापति श्री राघवेन्द्र राव चुने गये और बड़ी धूमधाम के साथ इस परिषद् की तैयार आरम्भ हुई। इस परिषद् के साथ अन्य भी कई आयोजन

रखे गये, जिनमें प्रधान थे मध्य प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन और राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर का वार्षिकोत्सव। सम्मेलन के सभापति चुने गये मध्य प्रान्त के प्रसिद्ध कवि श्री लोचनप्रसाद पाण्डे और राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर के वार्षिकोत्सव के सभापति स्वामी श्रद्धानन्दजी। इस संस्था के वार्षिकोत्सव सदा ही बड़ी शान से मनाये जाते थे और इन उत्सवों के सभापतित्व के लिए बहुत बड़े-बड़े व्यक्ति बुलाये जाते थे। एक बार महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय भी एक उत्सव के सभापति हो चुके थे, जिसका उल्लेख भी किसी पिछले अध्याय में आया है। महान् व्यक्तियों का आज देश में जितना अभाव हो गया है, वैसा उस समय नहीं था। फिर वह युग प्रचारात्मक युग होने के कारण ये महान् व्यक्ति कहीं जाने-आने में भी इतनी कठिनाइयाँ उपस्थित न करते थे जितनी आजकल करने लगे हैं। सभापति पदों के अतिरिक्त वक्ताओं के रूप में भी ये उपलब्ध रहते। जबलपुर की ही इस प्रान्तीय परिषद् में मौलाना मुहम्मद अली, उनकी पूज्य माताजी, डाक्टर किचलू आदि अनेक बाहर के नेताओं ने आने की कृपा की थी।

असहयोग को आरम्भ हुए अभी बहुत समय न बीता था। सरकारी दमन का दौरदौरा भी अभी आरम्भ न हुआ था। देश का यह पहला सक्रिय आन्दोलन था अतः परिषद् के लिए नेताओं और जनता दोनों के मनों में बड़ा जोश, बड़ा उत्साह था। और मेरे मन में तो जोश की कोई सीमा ही न थी। पर आह! उस जोश को मेरी अचानक बीमारी ने ठण्डा-सा कर दिया। जैसा पहले भी कहा जा चुका है, मैं बड़े स्वस्थ और ठोस शरीर का व्यक्ति हूँ। सन् १९१८ के इन्फ्लूएंजा और मोतीझरे के सिवा अन्य कोई ऐसी बीमारी मुझे नहीं हुई जो उल्लेखनीय हो, परन्तु असहयोग आन्दोलन में की गयी महनत ने मेरे मजबूत शरीर को भी झकझोर डाला और मैं ऐसा बीमार हुआ कि न उस बीमारी का कोई निदान ही होता था और न मुझे कोई दवा ही लगती थी। मुझे बुखार आना शुरू हुआ, कभी कम कभी अधिक। जब तक वह कम रहा तब तक तो मैंने उसे छिपाने का भी प्रयत्न किया। यह इसलिए कि परिषद् के मेरे काम को कहीं रोक न दिया जाय; पर अन्त में जब बुखार बढ़ा तब वह कैसे छिपता? किसी दिन बुखार ९९ या ९९॥ रहता और किसी दिन १०४

और १०५ तक पहुँचता। किसी दिन उतर भी जाता और यह आशा होती कि अब न आयगा, पर दूसरे दिन ही फिर आ जाता। और इस बुखार के साथ परिषद् तथा अन्य आयोजनों के कारण कितनी मानसिक छटपटाहट थी मुझे उस समय। आज जब मै उस समय की अपनी मानसिक अवस्था का सिंहावलोकन करता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि कितने छोटे-छोटे काम थे वे और कितने महान् दिखायी देते थे उस समय वे मुझ को। मेरी बीमारी के कारण इन आयोजनों को मुल्तवी करने की बात भी सोची गयी, पर वह मैंने नहीं माना, क्योंकि मुझे रोज ही आशा होती कि मैं अच्छा हो जाऊँगा।

आखिर परिषद् तथा अन्य आयोजनों का समय आ ही पहुँचा। निश्चित की हुई वस्तु का समय तो आता ही है। पर मेरी बीमारी न गयी। प्रान्त के बाहर के और प्रान्तीय निमंत्रित मेहमान पहुँचे। जनता उमड़ी। बाहर से आने वाले सभी लोग मुझे देखने आते। श्री राघवेन्द्र राव, मौलाना मुहम्मद अली, उनकी माँ, डाक्टर किचलू, श्री लोचनप्रसादजी पाण्डे, स्वामी श्रद्धानन्दजी सभी मुझे देखने आये। कई बार तो इन लोगों से मिलते समय मेरी आँखों में आँसू तक छलछला आते। मेरी बीमारी को पाँच सप्ताह हो चुके थे। शारीरिक अस्वस्थता और घोर मानसिक अशान्ति के कारण मैं सूखकर काँटा हो गया था। घर के और बाहर के सभी लोग अब मेरी बीमारी के कारण चिन्तित भी होने लगे थे। पिताजी तो छिपे-छिपे लोगों से यह कहते कि "इस निगोड़ी ांग्रेस ने लड़के को बीमार किया है। न खाने का ठिकाना न सोने का। उस इतनी मेहनत कि कभी कड़कड़ाती सरदी और कभी झुलसती धूप और लू ां दस-दस, बारह-बारह मील पैदल चलना! बीमार न होंगे तो होगा क्या?"

मैं बीमारी के कारण मन मसोसकर घर ही में बैठा रहा। स्वागत-समिति के मंत्री थे श्यामसुन्दरजी भार्गव। भार्गवजी के कारण मेरे बीमार रहने पर भी प्रबन्ध में कोई गड़बड़ न हुई। स्वागत-समिति के अध्यक्ष पद का मेरा भाषण श्री नाथूरामजी मोदी ने पढ़ा। उस भाषण के कुछ अंशों को परिशिष्ट २ में इसलिए दिया गया है कि उन्हें पढ़ने से उस समय प्रान्त तथा जबलपुर में असहयोग का कितना काम हुआ था इसका कुछ पता लग जाता है।

श्री राघवेन्द्र राव, मौलाना मुहम्मद अली, उनकी माता, डा० किचलू,

पं० माधवरावजी सप्रे, पं० माखनलालजी चतुर्वेदी तथा अन्य नेताओं के राजनैतिक परिषद् के मंच से, श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी, श्री लोचनप्रसादजी पाण्डे, श्री विनायकरावजी, श्री गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री, श्री कामताप्रसादजी गुरु, श्री रघुवरप्रसादजी द्विवेदी, आदि के साहित्य सम्मेलन और राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर के मंच से, सुना गया, सुन्दर भाषण हुए। समय के अनुकूल प्रस्ताव भी पास हुए।

परिषद् के अन्तिम तीसरे दिन यद्यपि मेरा बुखार उतरा नहीं था, पर कम अवश्य हो गया था अतः मैं किसी के रोके न रुका और परिषद् में जा ही पहुँचा। मेरी बीमारी का हाल सभी जानते थे और दुर्बल मैं अत्यधिक हो ही गया था अतः मुझे परिषद् में देख कैसा हर्ष-घोष हुआ ! जीवन में जनता का वैसा स्नेहमय नितान्त शुद्ध भावनाओं वाला हर्ष-घोष मैंने या तो उस समय देखा या दो बार और। एक बार जब मैं पहली बार की जेल-यात्रा के बाद छूटा था और दूसरी बार जब मैं न्यूजीलैण्ड कामनवैल्थ पार्लियामेण्टरी कांफ्रेंस में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के नेता के रूप में गया था। परिषद् में जा मैं चुपचाप बैठा रहता तो भी गनीमत थी, पर मुझ में जैसा जोश था वह भला मुझे चुपचाप कैसे बैठने दे सकता था ? अतः खड़े होकर न सही, कुरसी पर बैठे-बैठे ही मैंने बोलना भी शुरू किया। लाउडस्पीकर निकले न थे और भगवान ने मुझे ऊँची आवाज दी ही है, मैं अपनी पूर्ण शक्ति के साथ बोलने लगा। पर मैं अत्यधिक कमजोर था अतः बोलते-बोलते मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा। जब मुझे होश आया तब मैं राजा गोकुलदास महल में था, चारों ओर कुटुम्बियों और मेहमानों से घिरा हुआ। मेरी बेहोशी से एक बड़ा भारी तहलका मच गया था। पिताजी जोर-जोर से कुछ कह रहे थे, शायद कांग्रेस के विरुद्ध ही कुछ होगा, पर मुझे होश में देखते ही एकदम चुप हो गये। मेरी बेहोशी जितनी चिन्ता लायी थी उतनी ही हर्ष की हिलोर दीख पड़ी। अब अपने कमरे से मैं जरा भी न निकल सकता था। डाक्टरों ने एक प्रकार का पहरा-सा बिठा दिया था।

परिषद् के अन्त में स्थायी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक ने एक वर्ष के लिए श्री राघवेन्द्र राव को सर्वसम्मति से सभापति

चुना । प्रान्तीय कमेटी की अस्थायी बैठक के बाद गत कुछ महीनों में प्रान्त भर में और विशेषकर जबलपुर जिले में घूम-घूमकर दिन और रात एक कर मैंने जैसा काम किया था उसके कारण यदि प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् जबलपुर में न होकर किसी अन्य स्थान पर होती तो प्रान्तीय परिषद् एवं प्रान्तीय कमेटी दोनों के लिए मेरा सभापति पद पर निर्वाचन निश्चित-सा था, पर उस समय के प्रान्तीय कांग्रेस के विधान के अनुसार प्रान्तीय परिषद् का जो सभापति चुना जाता वही एक वर्ष तक प्रान्तीय कमेटी का सभापति रहता और जब परिषद् जबलपुर में हुई तथा मैं स्वागताध्यक्ष था तब सभापति पद पर मैं न रह सकता था । मैं फिर से प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का उपसभापति चुना गया ; साथ ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जो सदस्य चुने गये थे उनमें सबसे अधिक मत मुझे ही मिले थे ।

इसके बाद हमारे यहाँ परिषद् में आनेवाले सभी लोगों को एक वृहत् भोज दिया गया, जिसमें लगभग एक हजार मेहमान थे । उस समय न कहीं कण्ट्रोल था और न राशनिंग । बड़े-बड़े प्रीति-भोजों के लिए हमारा कुटुम्ब प्रान्त भर में प्रसिद्ध था ही । अंग्रेज अफसरों की गार्डन पार्टियों में हजारों रुपए की शैम्पीन बह जाती थी, पर शायद इस प्रीति-भोज से बड़ा प्रीति-भोज हमारे यहाँ भी अब तक न हुआ था । परिषद् की अन्य बातों के सदृश इस प्रीति-भोज की भी मैंने प्रशंसा ही सुनी । बीमारी के कारण इस भोज में भी मैं सम्मिलित न हो सका ।

अन्य आयोजनों के साथ हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त के इस राजनैतिक परिषद् का उस समय के प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में अपना एक विशेष स्थान माना गया और वर्षों तक इस परिषद् की चर्चा होती रही ।

इस परिषद् के पश्चात् मैं वायु-परिवर्तनार्थ देवलाली चला गया ।

असहयोग आन्दोलन पूर्ण वेग से चल रहा था । अगणित कार्यकर्त्ता असहयोग और स्वराज्य का सन्देश गाँव-गाँव में पहुँचा रहे थे । इससे होनेवाली जागृति का वर्णन हो चुका है । सरकार देख रही थी कि इस प्रकार के कार्यों के फलस्वरूप लोगों पर से उसका रोब उठता जा रहा है और वे निर्भीक होते

जा रहे हैं। वह दाव की घात में थी ही; परन्तु अहिंसा के दृढ़ विश्वासी अनुशासनबद्ध कार्य करनेवाले स्वयंसेवक कानून भंग कर सरकार को मौका ही नहीं देते थे। इतने पर भी जहाँ चाह है वहाँ राह निकाल ली जाती है। अन्त में सरकार चुप न रह सकी। उसने कई प्राचीन कानूनों का प्रयोग कर गिरफ्तारियाँ आरम्भ कीं और कुछ प्रान्तों में स्वयंसेवक दल को गैरकानूनी करार दे दिया गया। पर सरकार दंग रह गयी यह देखकर कि न तो पकड़ा जाने वाला मुकदमे की पैरवी करता है और न जमानत ही देता है। वह खुशी से जेल चला जाता है और उसके हृदय से जेल का भय निकल गया है। इतना ही नहीं गिरफ्तारियों की संख्या बढ़ती ही जाती है। वह तो २० हजार और ३० हजार के बीच पहुँच गयी थी।

अब दमन-चक्र ने बड़ा भयावह रूप धारण कर लिया। पंजाब, बंगाल, और संयुक्त प्रान्त में विशेष दमन हुआ; अन्यत्र इतना अधिक नहीं। खास कर संयुक्त प्रान्त में इसका विशेष जोर था। कई जगह गोली-काण्ड की घटनाएँ भी घटीं। घटना-चक्र तेजी से घूम रहा था। इसी बीच कराँची में अखिल भारतीय खिलाफत परिषद् में सभापति मौलाना मुहम्मद अली ने बड़ा साहसिक भाषण दिया जिसमें यहाँ तक कह दिया गया था कि आज से किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में नौकर रहना, या उसकी भर्ती में नाम लिखाना या उसमें मदद करना हराम है। जब गान्धीजी को पता चला कि कराँची के उनके भाषण पर अली बन्धुओं को पकड़कर उन पर मुकदमा चलाया जाने वाला है, तो बम्बई की सभा में उन्होंने स्वतः उस भाषण को पढ़ा और सारे देशवासियों से उसे दुहराने को कहा गया। वह भाषण १६ अक्तूबर को देश भर में हजारों सभाओं में दोहराया गया। सरकार कांग्रेस का यह प्रभाव देखकर स्तब्ध रह गयी। ऐसी ही परिस्थिति के सम्बन्ध में वाइसराय ने कहा था कि "मैं तो इससे घबरा गया हूँ, चक्कर में आ गया हूँ।"

आखिर सरकार ने अपनी गिरती हुई लोक-प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के हेतु भारत में युवराज को बुलाने का आयोजन किया। एक बार सन् १६११ में पंचम जार्ज का यहाँ अभिषेक कराके बंग-भंग से विक्षुब्ध जनता में राजभक्ति जागृत कराने में सफलता पाकर वह फिर उसे दोहराना चाहती थी; पर

यह उसका भ्रम था। युग बदल चुका था। सरकार की इस चाल को समझ कर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव कर सरकार से युवराज को बुलाने के निश्चय को बदल देने को कहा। साथ ही चेतावनी दी कि ऐसा न करने पर देश उनका मजबूरन बहिष्कार करेगा। प्रस्ताव में कहा गया कि यद्यपि हमारा युवराज से कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं है, वरन् उनके लिए हमारे हृदय में आदर ही है, तथापि वर्त्तमान परिस्थिति में उनका बहिष्कार भी अनिवार्य हो जायगा।

यह कैसे होता कि इतनी शक्तिशाली ब्रिटिश गवर्नमैण्ट इतना सब सह लेती। उसने और अधिक दमन का निश्चय किया। एक ओर देश में जोरों का असहयोग चल रहा था दूसरी ओर सरकार और उसके कुछ पिट्ठू युवराज के स्वागत की तैयारियाँ करने लगे। पहले वातावरण को प्रतिकूल देख कर भारत सरकार ने ड्यूक ऑफ केनाट को बुलाया। तदुपरान्त अपनी शान बनाये रखने के लिए नवम्बर में युवराज पधारे। युवराज के आगमन पर बम्बई में बहिष्कार सम्बन्धी जो घटनाएँ घटीं उनसे सारे देश में खलबली मच गयी। सरकार ने आगे के ये अप्रिय दृश्य रोकने के लिए नेताओं को जेल में ठूँसना आरम्भ कर दिया। अलीबन्धु तो पहले से ही बन्द थे, दिसम्बर में सर्वश्री देशबन्धु-दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, मौलाना आजाद, राजगोपालाचारी आदि सार्वदेशिक नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सरकार ने सोचा था कि केवल नेताओं को अलग करने से ही काम चल जायगा, पर यह जनता का जोश तो भीतरी था। अतः नेताओं के बाद कार्यकर्त्ता भी सहस्रों की संख्या में गिरफ्तार किये गये। परन्तु रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की ; जहाँ-जहाँ भी युवराज गये, बहिष्कार और भी अधिक संगठित होता गया।

आखिर वाइसराय ने अपना मुँह दिखाने लायक रखने की गरज से समझौते का प्रयत्न किया और चाहा कि कम से कम कलकत्ते में तो युवराज का अच्छी तरह स्वागत हो जाय। मध्यस्थ बने पं० मालवीय। देशबन्धु से जेल में ही टेलीफोन से बातें हुई तथा समझौते की आशा होने लगी। सरकार चाहती थी कि यदि कलकत्ते में युवराज के बहिष्कार न करने का आश्वासन मिल जाय

तो वह सत्याग्रहियों को छोड़ देगी तथा एक गोलमेज परिषद् द्वारा कांग्रेस से अन्य बातों पर समझौता करने का प्रयत्न करेगी।

परन्तु सूक्ष्मदर्शी गान्धीजी ने गोलमेज के आश्वासन के खोखलेपन और अलीबन्धुओं के न छूट सकने के कारण समझौता न किया। लार्ड रीडिंग ने सोचा कि अब बहिष्कार तो रोका ही नहीं जा सकता तो मध्यस्थ लोगों के डेपुटेशन को बड़ा रूखा-सा जवाब देकर टरका दिया। आखिर युवराज का बहिष्कार कलकत्ते में भी पूर्ण सफल रहा।

परन्तु गान्धीजी के ऊपर चारों ओर से बौछार पड़ने लगी। समझौता भंग करने के लिए उन्हें भला-बुरा कहा जाने लगा।

पहले कहा जा चुका है कि केवल तीन प्रान्तों में ही दमन विशेष रूप से हुआ था। मध्य प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मद्रास, आसाम आदि में विशेष दमन न हुआ था। मध्य प्रान्त में तो उस समय जिनका प्रान्त के राजनैतिक क्षेत्र में महत्त्व था उनमें से केवल तीन महानुभाव ही गिरफ्तार हुए थे। ये थे सर्व-श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री तपस्वी सुन्दरलाल और महात्मा भगवानदीन। मैं देवलाली से स्वस्थ होकर लौट आया था और कितना आतुर था गिरफ्तार होने के लिए, परन्तु "नर चेती नहीं होत है" इससे मन मारे बैठा रहा।

जबलपुर का भयानक प्लेग

सन् १९२२ के आरम्भ में जाड़ों में जबलपुर नगर में प्लेग का भयानक प्रकोप हुआ। कहते हैं कि सन् १९०३ में जब बादशाह सप्तम एडवर्ड के सिंहासनारूढ़ होने के उपलक्ष्य में दिल्ली में उस समय के भारत के वाइसराय लार्ड कर्जन ने दरबार किया था उस वर्ष पहले-पहल जबलपुर ने प्लेग के दर्शन किये थे और उस पहली साल जैसा भीषण प्लेग हुआ था करीब-करीब उससे मिलता-जुलता ही सन् २२ का प्लेग था। इसके चार वर्ष पहले सन् १८ में एक और भयानक महामारी इन्फ्लूएंजा को सारे देश के साथ जबलपुर भी भोग चुका था। परन्तु सन् १९०३ के प्लेग तथा सन् १९१८ के इन्फ्लूएंजा के समय में और १९२२ के समय में बहुत अन्तर हो गया था। यह अन्तर हुआ था असहयोग आन्दोलन के कारण। असहयोग आन्दोलन यद्यपि एक राजनैतिक आन्दोलन था और उसका उद्देश्य था स्वराज्य की प्राप्ति तथापि उसने गान्धीजी के नेतृत्त्व के कारण राजनैतिक चेतना के साथ ही जिस सार्वजनिक सेवा की भावना को उत्पन्न किया था उसके कारण उसके कार्य-कर्त्ताओं ने सन् १९०३ के प्लेग और सन् १९१८ के इन्फ्लूएंजा के सदृश सन् १९२२ के प्लेग सम्बन्धी कार्य का भी समस्त भार म्युनिसिपैलिटी तथा सरकार पर छोड़ हाथ पर हाथ रखे बैठे रहने में लज्जा का अनुभव किया और गैर सरकारी तौर से जो कुछ वे कर सकते थे उसे करने के लिए अपनी कमर कसी। प्लेग के सदृश भीषण रोग में यह काम कोई सरल काम न था, परन्तु जब भावना शुद्ध होती है और उस भावना के अनुसार दिखावे के लिए नहीं पर सच्ची सेवा के लिए हृदय में लगन तथा जोश की उत्पत्ति होती है तब कठिन से कठिन काम भी सरल से सरल हो जाते हैं। असहयोग के उस काल में कार्य-कर्त्ताओं की भावना शुद्ध थी, वे दिखावे के लिए काम न कर सच्ची सेवा-वृत्ति से काम करना चाहते थे और ऐसे काम करने की उनके हृदय में लगन थी, जोश था—जबलपुर के कार्यकर्त्ताओं की मनोवृत्ति भी ऐसी ही थी; इसका प्रमाण उन्होंने उस भीषण प्लेग में सेवा कर दे दिया।

इस सेवा के लिए प्लेग रिलीफ कमेटी के नाम से एक संस्था का संगठन किया गया। कांग्रेसवादी ही नहीं, सभी प्रकार के लोग इस संगठन में सम्मिलित हुए। कांग्रेस जनों में जिस वृत्ति का उदय हुआ था उसका असर अन्यों पर भी जो पड़ा था। मेरे ताऊ दीवान बहादुर वल्लभदासजी इस संगठन के सभापति हुए, श्री श्यामसुन्दर भार्गव कोषाध्यक्ष और श्री ताजुद्दीन खाँ तथा मैं मन्त्री। पदाधिकारियों के अतिरिक्त कुछ सज्जन कार्यकारिणी में आये। आज मुझे उन सबके नाम तो स्मरण नहीं हैं और न उस संगठन के कोई कागज़ात ही उपलब्ध हैं, पर जिन्होंने उस समय बड़ी तन्देही से जान की जोखिम उठा-उठा कर काम किया था उनमें से कुछ सज्जनों के नाम अवश्य याद हैं। उनमें मुख्य थे श्री हरप्रसाद पाण्डे और श्री देवीप्रसाद श्रीवास्तव।

सबसे पहले तो हम सबने प्लेग का टीका लगवाया। फिर कमेटी के लिए धन एकत्रित कर काम आरम्भ किया। म्युनिसिपैलिटी के काम को कितनी अधिक सहायता मिली इस गैर सरकारी काम से।

बीमारी इतनी अधिक फैल गयी थी कि जबलपुर का कोई ऐसा मुहल्ला न बचा था जहाँ लोग बीमार न हों। यद्यपि मदन महल की तरफ कैम्प बने थे, पर एक तो वे यथेष्ट न थे और सरदी ऐसी भीषण पड़ रही थी कि उस सरदी में साधन-विहीन लोग कैम्प में जाना न चाहते थे, चाहे घर में बीमार होकर मर ही क्यों न जायें। उस वर्ष एक बात और हुई थी। दिसम्बर और जनवरी में बार-बार पानी बरसा था। इस वृष्टि ने उस कड़कड़ाती हुई सरदी को और अधिक बढ़ा ही न दिया था पर लोगों के घर से निकल कैम्प में जाकर रहने में भी एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित कर दी थी। लोग भयभीत भी बहुत थे और जब कहीं कोई बीमार हो जाता, बहुधा उसे छोड़कर चम्पत हो जाते। जबलपुर की आबादी उस समय एक लाख के कुछ ऊपर थी। एक लाख के आबादी वाले शहर में नित्य प्लेग से मरनेवालों की संख्या सौ से ऊपर थी और बीमार होनेवालों की इससे भी अधिक।

जब हम लोगों ने काम शुरू किया तब कई मुहल्लों के मुरदे नहीं उठे थे और वहाँ मुरदों के सड़ने की बदबू तक आती थी। सबसे पहले हमने मुरदों की अन्त्येष्टि की व्यवस्था की, जो सबसे भयानक काम था। पर सच्ची लगन

के सामने भयानकता कहाँ ठहरती ? श्यामसुन्दरजी भार्गव और मेरे सदृश व्यक्तियों को ऐसे काम के लिए आगे देख तमाम शहर में एक बिजली-सी दौड़ गयी और कितने लोग आ गये सामने ऐसा भयानक काम करने के लिए भी ! बहुत जल्दी मुहल्ले मुरदों से साफ हुए। दो नये प्लेग अस्पताल खुलवा बीमारों को अस्पतालों में हटाया गया। इसके बाद मुहल्ले रहे हुए लोगों से खाली कराये गये और इन लोगों को जैसे भी बना वैसे कैम्पों में बुलाया गया। इसके बाद टीके लगवाये गये। और अन्त में मुहल्लों के मकान वैज्ञानिक पदार्थों से साफ कराये गये। लिखने में यह सब विवरण कुछ वाक्यों में आ गया, पर यह सब करने में जैसी कठिनाई, जैसा श्रम हुआ तथा इस कठिनाई और श्रम में जिस अभय और साहस की आवश्यकता हुई वह वर्णनातीत है। कितने लोग निकल आये थे इस काम के लिए, मेरा अनुमान है उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँची थी। और पर्याप्त कार्यकर्त्ताओं के मिलने के कारण सारे शहर का काम सुचारू रूप से बाँटकर ठीक ंग से किया गया था।

हम कार्यकर्त्ता तो सर्वथा अभय होकर साहस से काम करते, पर हमारे कुटुम्बियों की मानसिक अवस्था वैसी न थी। वे हम सबके लिए कितने अधिक भयभीत रहते !

यह सब काम होते-होते कोई दो सप्ताह लग गये। यद्यपि बीमारी दो हफ्तों में शहर से गयी नहीं, उसे जाते-जाते तो दो महीनों से अधिक लग गये, पर मरने और बीमार होनेवालों की संख्या एकदम घट गयी।

मुझे याद नहीं पड़ता कि जबलपुर में कभी भी इतनी शुद्ध भावना से ऐसे भयानक अवसर पर ऐसी साहसपूर्ण सेवा की गयी हो !

इस प्लेग रिलीफ कमेटी की चर्चा वर्षों तक हमारे नगर में और नगर के बाहर भी दूर-दूर तक होती रही है। मैं जब इस सच्ची सेवा के कार्य में लगा हुआ था उस समय मुझे फ्रांस के तत्त्ववेत्ता श्री रूसो का कभी पढ़ा हुआ निम्नलिखित कथन न जाने कितनी बार याद आ जाया करता था—"सारी नैतिकता के बावजूद भी यदि मानव-मन में निसर्ग ने तर्क की सहायता के लिए दया न दी होती तो वह राक्षस से अच्छा कदापि न हो पाता।"

राजस्थान का दौरा और अहमदाबाद कांग्रेस

राजस्थान हमारे पूर्वजों का प्रान्त है। सभी को अपने पूर्वजों और उनकी जन्म-भूमि से प्रेम होता है, मारवाड़ियों को कुछ अधिक है जो उनके अधिकतर अन्य प्रान्तों में रहने के कारण उनके लिए अहितकर है। इसका कुछ विवेचन पुस्तक के आरम्भ में किया जा चुका है। हमारा कुटुम्ब भी मध्य प्रदेश में राजस्थान से ही आया था, पर हम लोगों का राजस्थान से सम्बन्ध नहीं के बराबर रह गया था। फिर भी हमारे पूर्वज राजस्थान के थे यह बात हम भी भूल न सकते थे। और इस बीच एक बात और हुई थी जिसके कारण मेरा राजस्थान से कुछ अधिक सम्बन्ध हो गया था। यह बात थी माहेश्वरी महासभा में मेरा आना। अग्रवालों में जिस प्रकार मारवाड़ी और देशी अग्रवाल हैं उस प्रकार माहेश्वरियों में नहीं। माहेश्वरी प्रायः सभी मारवाड़ी ही हैं। कोलवार और गुजराती माहेश्वरी बाद में माहेश्वरी महासभा में आये। जिस सन् १९२१ की चर्चा यहाँ की जा रही है उस समय माहेश्वरी महासभा में मारवाड़ियों के अतिरिक्त और कोई न था। माहेश्वरी महासभा में मेरे आने से ऐसे माहेश्वरियों से मेरा बहुत निकट का सम्बन्ध हो गया जिनका राजस्थान से घनिष्ठ सम्बन्ध था। और हम लोगों में से कुछ ने राजस्थान का एक दौरा करने का निश्चय किया। राजस्थान के इस दौरे के कई कारण थे। पहला कारण था हमारे प्रान्त में सरकारी दमन न होना। मध्य प्रदेश में दमन न होने के कारण मेरी गिरफ्तारी न हुई थी। लोकेषणा वृत्ति इस समय मेरी प्रधान वृत्ति थी। मैंने सोचा राजस्थान जाकर वहाँ मैं शायद गिरफ्तार हो सकूँ। दूसरा कारण था मेरी बड़ी साली के लड़के का विवाह। और तीसरा कारण था राजस्थान का पिछड़ा हुआ प्रान्त रहना तथा हम सब समाज-सुधारकों का अपने पूर्वजों की जन्म-भूमि में जा वहाँ जागृति करना। श्री ब्रिजलालजी बीयाणी, भोपाल के श्री विट्ठलदासजी बजाज और पिपरिया के श्री हीरालालजी सोनी इन समाज-सुधारकों के साथ मैं राजस्थान के दौरे के लिए चल पड़ा। पंडित

माधवरावजी सप्रे से माहेश्वरी महासभा अथवा समाज-सुधार आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न था, पर मुझ से बड़े निकट का सम्बन्ध था। मैंने उनसे भी हमारे साथ चलने की प्रार्थना की। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे भी हमारे साथ हो गये। नौकर उस समय भी मेरे साथ अधिक ही रहते थे। इसलिए हमारा यह काफिला कोई दस-बारह आदमियों का हो गया।

हम लोगों ने अपना दौरा सुजानगढ़ से आरम्भ किया, जहाँ मेरी साली के पुत्र का विवाह था।

नवम्बर का अन्त होकर दिसम्बर आरम्भ हो रहा था। हेमन्त ऋतु अपनी पूर्ण युवावस्था में थी। खूब जाड़ा पड़ रहा था। राजस्थान की रेतीली भूमि में ठण्ड और बढ़ गयी थी। पहाड़ों पर बरफ गिरने से जैसी ठण्ड बढ़ जाती है वैसी तो नहीं, पर रेत की ठण्डक भी अपनी एक विशेषता अवश्य रखती है। ऐसे जाड़े में हम लोग सुजानगढ़ पहुँचे। सुजानगढ़ शहर न होकर एक कस्बा था, बड़ा सा कस्बा, परन्तु हमने देखा कि राजस्थान के कस्बों के अधिकांश घर भी काफी बड़े थे और पत्थर के बने हुए। वहाँ ईंटें नहीं होतीं, सीमेंट का उस समय ऐसा चलन न था, जैसा अब हो गया है। राजस्थान के मकानों में पत्थर और चूना ही लगता है। वहाँ का चूना शायद सीमेण्ट से अधिक मजबूत होता है। चूँकि हमारे जबलपुर के मकान भी राजस्थान के कारीगरों के ही बनाये हुए थे और मैं जयपुर हो आया था अतः मुझे सुजानगढ़ के मकानों में एक बात को छोड़कर कि एक कस्बे में भी इतने बड़े-बड़े मकान थे, और कोई नयी बात नहीं दिखी। सड़कें पक्की नहीं थीं। मकानों की कतारों के बीच बालू थी और इस प्रकार एक तरह से बालू की ही सड़कें बन गयी थीं।

देश में इस समय जो आन्दोलन चल रहा था वह देश के केवल उन हिस्सों में था जिन हिस्सों पर अंग्रेजी राज्य था। देश के जो भाग राजों, महाराजों, नवाबों आदि के अधिकार में था वहाँ यह आन्दोलन न चलाया जाय इस सम्बन्ध में गान्धीजी और कांग्रेस के स्पष्ट आदेश थे। ऐसे स्थानों पर कांग्रेस संगठन तक न था। आगे चलकर जब देश में जागृति बढ़ी और रियासतों में भी उसका असर आया तब भी इन हिस्सों में कांग्रेस संगठन नहीं किया गया।

यहाँ प्रजामण्डल बने और इन प्रजामण्डलों का एक अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के नाम से संगठन किया गया। संगठन यथार्थ में कांग्रेसी नेताओं के ही हाथ में रहा, परन्तु कांग्रेस के नाम से नहीं। सन् २१ में यह संगठन भी न था और इस संगठन में राजस्थान के जिन नेताओं एवं कार्य-कर्त्ताओं ने काम किया उनका भी पता न था। अतः हम कांग्रेसवादियों का राजस्थान के एक कस्बे सुजानगढ़ में आना वहाँ के अधिकारियों को क्षुब्ध करने के लिए बड़ी भारी घटना सिद्ध हुई। हम सब कांग्रेसवादी उस समय खादी तो पहनने लगे थे, पर उस समय तक गान्धी टोपी न मैं लगाता था और न बीयाणीजी। मैं उस समय खादी की पगड़ी बाँधता था और बीयाणीजी खादी की काली टोपी पहनते थे। सप्रेजी खुले सिर रहते थे और सोनीजी पगड़ी लगाते थे। हमारे साथियों में गान्धी टोपी पहननेवाले केवल एक विट्ठलदासजी बजाज थे। परन्तु खादी के कपड़े तो सभी पहनते थे। अतः राजस्थान की सीमा में प्रवेश करते ही पुलिस ने हमारा पीछा आरम्भ किया, जो समस्त राजस्थान के दौरे में रहा और हमार तथा पुलिस के बीच कई मनो-रंजक घटनाएँ भी घटीं।

राजस्थान की सीमा में घुसते ही पुलिस हमारे साथ हो गयी थी। सुजानगढ़ में जहाँ हम लोग ठहरे वहाँ पुलिस का एक प्रकार का पहरा ही हो गया। हमारे ठहरने के स्थान से कोई बीस-पच्चीस गज दूर बिना वरदी के कुछ पुलिसवाले घूमते रहते। हम में से कोई कहीं जाता तो उसका पीछा करते, कोई हम से मिलने आता तो उसका नाम लिखते। जिस राजस्थान का किसी समय वीरों की भूमि में सर्वोत्कृष्ट स्थान था वहाँ के लोग आज कैसे कायर हो गये थे! अंग्रेजी राज्य भारत के जिन हिस्सों में था वहाँ के लोगों की अपेक्षा राजस्थान के लोगों को अंग्रेजी राज्य की सुरक्षा की कहीं अधिक चिन्ता जान पड़ी। पुलिस द्वारा इस नाम लिखाई के कारण हमारे पास आनेवालों की संख्या नहीं के बराबर रह गयी।

हम आये थे राजस्थान में जागृति करने, परन्तु ऐसी हालत में हम वहाँ क्या करें यह हमारे सामने एक समस्या हो गयी। हमारे सुजानगढ़ पहुँचने के दूसरे दिन मेरी साली के लड़के का विवाह था। दो दिन तो विवाह में गये।

विवाह के दूसरे दिन हम सुजानगढ़ में व्याख्यान देना चाहते थे, पर व्याख्यान का प्रबन्ध कोई सरल बात न थी। सुजानगढ़ के ही लोगों से व्याख्यान के प्रबन्ध कराने का काम विट्ठलदासजी को सौंपा गया। विवाह के दूसरे दिन दोपहर को किसी तरह खोज कर विट्ठलदासजी सुजानगढ़ के दो युवकों को लाये। उस समय एक दिलचस्प घटना घटी। सप्रेजी दोपहर का भोजन कर कुछ देर आराम करते थे। जब सुजानगढ़ के इन युवक द्वय के साथ विट्ठलदासजी पहुँचे तब सप्रेजी आराम कर रहे थे और बीयाणीजी तथा मैं बैठे हुए थे। दोनों युवक बड़े डरते-डरते आये थे। व्याख्यान की प्रबन्ध सम्बन्धी बात-चीत होते-होते यह तय पाया कि ये युवक घर-घर खबर देकर रात को एक दरख्त के नीचे लोगों को इकट्ठा करने का प्रयत्न करेंगे। बिछायत हमें लानी होगी और प्रकाश का इन्तजाम भी हम करेंगे। जब ये युवक जाने लगे तब सप्रेजी एकाएक उठे और गरजकर कुछ इस प्रकार बोले—"इस तरह व्याख्यान कभी नहीं होगा। बिछायत हम ढोकर लाएँ, तेल बत्ती हम करें और आप जायँ घर-घर चोरों की तरह लोगों को खबर देने। लानत है आपकी तरुणाई पर और ऐसी जगह पर जहाँ ऐसे लोग रहते हैं।" उन युवकों को फटकारते हुए सप्रेजी ने और भी कुछ बातें कहीं जो मुझे स्मरण नहीं रही हैं। सप्रेजी की इस फटकार के कारण उन युवकों के चेहरे तो देखने योग्य थे ही पर हम लोगों के चेहरे भी देखने लायक थे, जो व्याख्यान देने के लिए इतने आतुर थे कि बिछायत ढोने तथा लालटेन ले जाने के लिए भी तैयार थे। युवक द्वय पर सप्रेजी का बड़ा प्रभाव पड़ा और सभा के सारे प्रबन्ध का बीड़ा उठा कर वे वहाँ से गये।

रात को सुजानगढ़ के इतिहास में वहाँ की पहली सार्वजनिक सभा हुई। गाँव का गाँव उपस्थित था। पुलिस भी मौजूद थी। बीयाणीजी का और मेरा भाषण हुआ। बहुत कुछ कहने पर भी सप्रेजी नहीं बोले। वे केवल हम लोगों के साथ रहे। राजस्थान के इस दौरे में कहीं भी उन्होंने कोई भाषण नहीं दिया। पुलिस चुपचाप थी। सभा के बाद कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। मैं समझता हूँ इस सभा ने वहाँ के लोगों पर के पुलिस तथा अधिकारियों के आंतक को बहुत कम कर दिया।

सुजानगढ़ से हम लोग डीडवाना पहुँचे। डीडवाना सुजानगढ़ के समान ही एक कस्बा है। माहेश्वरियों की उत्पत्ति डीडवाने से ही मानी जाती है। इसीलिए उन्हें डीडू माहेश्वरी भी कहा जाता है। आगे चलकर जब कोलवार माहेश्वरियों से विवाह सम्बन्ध करने के पक्ष में माहेश्वरी महासभा ने निर्णय दिया था तब माहेश्वरी महासभा के इस निर्णय के विरुद्ध पुराने ढंग के माहेश्वरियों ने जो आन्दोलन किया था वह डीडू माहेश्वरी महापंचायत के नाम से ही किया था। इस आन्दोलन में एक समय कैसी तेजी आयी थी इसका विवरण आगे चलकर समय पर किया जायगा।

जब हम डीडवाना पहुँचे तब माहेश्वरी जाति के सबसे बड़े धनिकों में से एक श्री मगनीरामजी बाँगड़ के कुटुम्ब में विवाह था। बाँगड़जी यों तो अब अधिकतर कलकत्ता रहते थे, पर विवाह के कारण इस समय डीडवाने में थे। विवाह में भोजन के लिए बाँगड़जी ने हम लोगों को निमन्त्रित किया। जब हम भोजन कर रहे थे उस समय स्त्रियों ने गाली गाना आरम्भ किया। सुधारकों के भोजन में गाली का गीत ! भला कहीं क्षम्य हो सकता था ? मैं तो मारवाड़ी गीत समझा नहीं, पर बीयाणीजी तत्काल समझ गये और उन्होंने खाना फौरन बन्द कर दिया। मैंने भी उनका साथ दिया। फलस्वरूप इस छोटी सी घटना पर वहाँ मच गया एक बड़ा भारी तहलका। गाली का गीत बन्द कर हमें फिर से भोजन आरम्भ करने की अनुनय विनय की जाने लगी, पर हम लोग क्या कोई कच्चे सुधारक थे ? जब तक बाँगड़जी से यह प्रतिज्ञा न करा ली कि अब विवाह में गाली न गायी जायगी तब तक हमने कौर न उठाया। मैं समझा हूँ बाँगड़जी ने अपने आपको हमें निमन्त्रित करने पर बड़ा कोसा होगा।

दूसरे दिन डीडवाने में भी सभा हुई। इस सभा के सभापति वहाँ के एक मठाधीश महोदय थे। इन मठाधीश महोदय और बीयाणीजी के बीच सभा में कुछ कहा-सुनी हो गयी। किस बात पर क्या हुआ था इसका मुझे इस समय स्मरण नहीं है।

डीडवाने से हम बीकानेर आये।

बीकानेर में हमारे पहुँचने के कुछ दिन पूर्व श्री सेठ जमनालालजी बजाज

तथा श्री चाँदकरणजी शारदा का खादी-प्रचार के काम में दौरा हुआ था। हम समाचारपत्रों में पढ़ चुके थे कि किस प्रकार पुलिस ने वहाँ के नवयुवकों को उनसे मिलने से रोका, किस प्रकार उनके स्टेशन से ताँगों में सवार होकर नगर की ओर जाते समय उनके साथ अभद्रता का व्यवहार किया और उन्हें गान्धी टोपी उतार कर नगर में जाने को कहा। जब उन्होंने ऐसा करने से इंकार किया तो उन्हें ताँगे में से घसीटकर नीचे पटक दिया। वे गान्धी टोपी उतारने को किसी प्रकार भी तैयार नहीं हुए और शहर की ओर पैदल जाने लगे तो पुलिस ने कार्डन बना कर उन्हें रोक दिया। इस प्रकार वे शहर में न जा सके थे तथा दूसरी ट्रेन से वापस हो गये थे। हम लोग इस घटना से काफी प्रभावित तथा गान्धी टोपी के अपमान से उत्तेजित तो थे ही अतः ट्रेन के बीकानेर स्टेशन पर पहुँचने से पहले ही हमने यह तय किया कि हम लोग, श्री सप्रेजी तथा साथ के आदमियों को छोड़कर, सब बीकानेर में गान्धी टोपी लगाकर ही प्रवेश करेंगे चाहे कुछ भी हो। इस प्रकार गान्धी टोपी की प्रतिष्ठा की परम्परा जिसको कि हमारे पूर्ववर्त्ती दोनों नेताओं ने वहाँ कायम करने की चेष्टा की थी उसे हमने भी प्रतिष्ठित रखने का निश्चय किया। यद्यपि सप्रेजी हमारे इस प्रकार से रियासती पुलिस के साथ झगड़ा मोल लेने की प्रवृत्ति को पसन्द नहीं करते थे फिर भी वे चुप रहे। श्री विट्ठलदासजी बजाज तो पहले से ही गान्धी टोपी पहनते थे। मुझे, श्री बीयाणीजी को और स्व० सोनीजी को गान्धी टोपी पहनना था। बिट्ठलदासजी ने ट्रंक में से तीन गान्धी टोपियाँ निकालीं और उन्हें हम तीनों ने पहन लिया।

सवेरे सात बजे के लगभग ट्रेन बीकानेर पहुँची। वहाँ हमें लेने कुछ माहेश्वरी नवयुवक स्टेशन पर मौजूद थे। जैसे ही हम डब्बों में से उतरे कि सबसे पहले सादी वर्दी में कुछ पुलिस के आदमी हमारे सामने एक रजिस्टर लेकर आ खड़े हुए। उन्होंने हमारे नाम आदि नोट कर हमसे अपने ठहरने का ठिकाना पूछा। हमें जो सज्जन लेने को आये थे उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोगों को स्टेशन के सामने वाली मोहता धर्मशाला में ठहराने का प्रबन्ध किया गया है। इस प्रकार नाम रजिस्टर्ड कराने के बाद हम लोग धर्मशाला में गये। हमारा काफिला वहाँ पहुँचा ही था और हमारा सामान रखा ही जा रहा

था कि फिर पुलिस के पाँच-सात आदमी एक बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा-तथा मोटा रजिस्टर लेकर हमारे पास आये और हम लोगों से फिर नाम लिखवाने को कहा। हम लोगों ने कहा कि अभी-अभी स्टेशन पर यह रस्म पूरी की जा चुकी है फिर इसकी अब क्या आवश्यकता बाकी रह गयी है ? इस पर उनमें से एक आदमी, जो पुलिस का क्लर्क था और जिसे पुलिस की भाषा में दीवानजी कहते थे, बोला पहले स्टेशन पर पुलिस ने जो नाम लिखे थे वे मामूली जानकारी के लिए थे अब हम आपसे आपके नाम-पतों के साथ ही आपके यहाँ आने का कारण भी पूछना चाहते हैं। हमने फिर से उन्हें अपने नाम-पते बता दिये और यह भी बता दिया कि हम माहेश्वरी महासभा के प्रस्तावों का प्रचार करने यहाँ आये हैं जो समाज के लोगों को एकत्रित कर सभा द्वारा करेंगे। यह बात उन्होंने हमारे बयान के रूप में लिखकर हमसे हस्ताक्षर करने को कहा। हम सबने तो अपने-अपने नाम के सामने हस्ताक्षर कर दिये, पर श्री विट्ठलदासजी ने हस्ताक्षर न कर अपना बायें हाथ का अँगूठा सामने कर दिया। इस पर हम सब लोग हँस पड़े। बजाजजी बोले कि आप लोगों को अपने एक साथी के बे पढ़ा लिखा न होने पर इस प्रकार उसका मजाक नहीं उड़ाना चाहिए। पुलिसवाले इस दृश्य को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह देख रहे थे कि श्री बजाजजी ने उनको अँगूठा दिखाकर जोर से कहा कि आप अँगूठा लगवाना चाहें तो लगवा लें वर्ना मुझे दूसरे काम से जाना है। बेचारे पुलिसवाले क्या करते उन्होंने मजबूर होकर उनके अँगूठे पर स्याही लगादी और उन्होंने अपना अँगूठा रजिस्टर पर लगा दिया। इस रस्म के पूरा होने पर हम लोग नित्य-कर्म से निपटने लगे। श्री विट्ठलदासजी बजाज तो शीघ्र ही निपटकर शहर माहेश्वरी बन्धुओं से सभा का प्रबन्ध करवाने चले गये और हम मुश्किल से स्नान कर पाये थे कि शहर कोतवाल व खुफिया पुलिस के इंस्पेक्टर हमसे मिलने आये और हमसे सभा में होनेवाले भाषणों के बारे में तरह-तरह के विचित्र प्रश्न पूछने लगे। उनका मतलब था कि हम जो भाषण रात में देवें उन्हें पहले सुना देवें तथा जो बोलें उनकी पूर्व-स्वीकृति से बोलें। इस वाद-विवाद में करीब तीन बज गये और किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा जा सका। अन्त में पुलिस ने थककर ३॥ बजे के लगभग हमारा पिंड छोड़ा। उनके जाने के बाद हम

लोगों ने भोजन किया। भोजनोपरान्त हम लोग मोटर द्वारा नगर में से होते हुए लालगढ़ पैलेस देखने गये। राजस्थान के अन्य नगरों के समान ही बीकानेर भी था। पत्थर के मकान, उनके झरोखे, जालियाँ, टोड़ियाँ। उस समय बीकानेर की अधिकांश सड़कें बालू की ही थीं। लालगढ़ महल भी एक विशाल राजाओं के महल के सदृश था। घूमघामकर हम नगर के प्रसिद्ध रईस श्री केदारनाथजी डागा से मिलने गये। मिलना तो हमें और भी लोगों से था पर पुलिस की बदतमीजी के कारण हमारा दिन का बहुत बड़ा समय व्यर्थ में नष्ट हो गया था। रात्रि को हम सभा-स्थल को गये। बीकानेर की सभा केवल माहेश्वरियों तक ही सीमित थी, क्योंकि पुलिस के आतंक के कारण वहाँ के लोग सार्वजनिक सभा करने का साहस नहीं कर सकते थे। सभा माहेश्वरियों के पंचायती मन्दिर में की गयी थी। सभा में जो माहेश्वरी बन्धु उपस्थित थे वे वहाँ के माहेश्वरियों का प्रतिनिधित्व करते थे। बीकानेर में एक कुटुम्ब के जितने घर होते हैं उनकी ओर से कुटुम्ब का जो सबसे बड़ा पुरुष होता है वही सभा या पंचायत में जाता है। आज की सभा का सभापतित्व मोहता कुटुम्ब में से किसी ने किया था। सभा में श्री बीयाणीजी का तथा मेरा भाषण हुआ। आज के भाषणों का विषय मुख्यतया समाज-सुधार था, पर उसमें खादी का समावेश तो था ही। सभा बहुत सफल रही। सभा के बाद उपस्थित माहेश्वरी बन्धुओं से कुछ समय तक चर्चा करने के बाद हम लोग धर्मशाला लौट आये।

बीकानेर में इस समय एक श्रीकृष्ण माहेश्वरी मण्डल नामक संस्था थी। इस संस्था के संचालकों ने हमारी सभा का प्रबन्ध किया था। सुजानगढ़ और डीडवाने की सभाओं का बीकानेर की सभा का उसी प्रकार मुकाबला नहीं हो सकता जिस प्रकार सुजानगढ़, डीडवाने और बीकानेर का।

बीकानेर से हम नागोर पहुँचे। नागोर में मूँडवा के श्री रामकृष्णजी भट्टड़ ने वहाँ हम लोगों को वीर श्रेष्ठ अमरसिंह राठौर की छतरी के पास तेजू महाराज की बगीची में ठहराने का प्रबन्ध किया था। यह स्थान नागोर शहर के बाहर एक छोटी-सी झील, जिसे झड़ा कहते हैं, उसके किनारे पर स्थित है। बगीची में से अमरसिंह की छतरी का भव्य दृश्य दिखता है।

छतरी की भव्यता देखकर उस वीर राठौर की वीर गाथाओं का स्मरण हो आता है और मन में वीर रस के भाव भरे बिना नहीं रहते। यहाँ हम लोग दिन भर ठहरे। सभा का प्रबन्ध प्राय: सब जगह श्री विट्ठलदासजी बजाज के जिम्मे रहता था। अतः वे यहाँ के माहेश्वरियों से भी मिले और सभा करने को कहा, पर उनसे मालूम हुआ कि वे वहाँ के पुलिस थानेदार से पूछे बगैर कोई सभा न कर सकेंगे। इसके पहले कि वे लोग थानेदार से मिलें श्री बजाजजी खुद ही थानेदार के पास गये। थानेदार एक प्रौढ़ काश्मीरी व्यक्ति थे। अपना परिचय देने के बाद श्री बजाज ने उन्हें बताया कि वे माहेश्वरी महासभा के प्रस्तावों के प्रचार व खादी-प्रचार के सिलसिले में राजस्थान का दौरा कर रहे हैं। देशी राज्यों में राजनीतिक बातें वे नहीं कहते और वे चाहते हैं कि आज की सभा थानेदार साहब के सभापतित्व में हो। थानेदार स्वयं खादी-प्रेमी थे और जब उन्हें समझाया गया कि सभा के अध्यक्ष वही होंगे तो बताये हुए विषय के सिवा अन्य विषयों का समावेश उनके आदेश के बिना कैसे होगा तो उन्होंने सभा करने की अनुमति दे दी। उसी समय वहाँ के माहेश्वरी भी उनके पास आ गये और जब उन्होंने उनकी सभा करने की स्वीकृति की बात सुनी तो वे खुशी-खुशी सभा का प्रबन्ध करने को तैयार हो गये। रात को बंसीवाला के मन्दिर के विस्तृत प्रांगण में सभा हुई। सभा में माहेश्वरियों के अतिरिक्त साधारण जनता भी काफी संख्या में एकत्रित हुई थी। नागौर के इतिहास में इससे पहले इतनी विशाल सभा कभी नहीं हुई थी। सभा के अध्यक्ष थानेदार थे। खादी की आड़ में विदेशी साम्राज्य के बारे में जो कुछ भी वहाँ कहा जा सकता था, कहा गया। सभा के मुख्य भाषणकर्त्ता मैं और श्री बीयाणीजी थे, पर आज की सभा में श्री विट्ठलदासजी भी बोले थे। राजस्थान के दौरे के बाद मालूम हुआ कि इस सभा की अध्यक्षता करने के कारण इन थानेदार से जोधपुर राज्य द्वारा जवाब तलब किया गया और बाद में उन्हें पदच्युत भी कर दिया गया।

नागौर से रात की गाड़ी से रवाना होकर उसी रात को हम लोग मारवाड़ मूँडवा पहुँचे। यहाँ हम लोग श्री विट्ठलदासजी बजाज के साले स्व० श्री जुगलकिशोरजी भट्टड़ के मेहमान हुए। भट्टड़जी यद्यपि स्वयं सुधारक तो नहीं

कहे जा सकते थे, पर सुधार-प्रेमी अवश्य थे। मूँडवे के कस्बे में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी और वहाँ के पुलिसवाले तथा राज्य के हवलदार से भी उनका अच्छा मेलजोल था। दिनभर हमारे पास गाँव के लोग मिलने आते रहे और तरह-तरह के प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा तृप्त करते रहे। यहाँ माहेश्वरियों की ओर से एक कन्या पाठशाला व एक वाचनालय भी चलता था, जिसका हमने निरीक्षण किया। यहाँ एक सार्वजनिक गौशाला व आयुर्वेदिक औषधालय भी खुला हुआ था। रात को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन श्री रामरतनजी गोदानी के सभापतित्व में हुआ जिसमें मेरा व श्री बीयाणीजी का भाषण हुआ। यहाँ की सभा में महिलाओं की उपस्थिति उल्लेखनीय थी। सभा के अनन्तर अर्धरात्रि की ट्रेन से हमारा दल जोधपुर के लिए रवाना हुआ।

दूसरे दिन सवेरे हम लोग जोधपुर पहुँचे। जोधपुर रेलवे स्टेशन पर, जहाँ हमारे स्वागत के लिए कुछ माहेश्वरी बन्धु उपस्थित थे वहाँ पुलिस के कुछ जवानों की एक टुकड़ी भी मौजूद थी। यहाँ हम लोग स्टेशन के सामने स्थित जसवन्त सराय में ठहराये गये। हम लोग सराय के ऊपर की मंजिल में ठहरे थे और नीचे सराय के दरवाजे पर पुलिस का पहरा लगा था। पुलिस ने हम लोगों का नाम-पता आदि स्टेशन पर ही लिख लिया था। पुलिस हमारे पहुँचने के बाद से दिन भर जितने भी लोग हमसे मिलने को आये उन सबका नाम व पता आदि उनकी वल्दियत व हमसे क्यों मिलनें आये हैं इत्यादि बातें रजिस्टर में लिखती रही। हमसे मिलने आनेवालों में श्री गिरधारीलालजी अजमेरा, शाह गोवर्धन-लालजी काबरा व अन्य कई माहेश्वरी वकील भी थे, जिनके साथ भी यह रस्म पूरी की गयी। यहाँ के माहेश्वरी बन्धु हमें वहाँ की माहेश्वरी पाठशाला दिखलाना चाहते थे अतः हमने उनसे दोपहर बाद स्वयं पहुँच जाने को कह दिया। अपरान्ह में जैसे ही हम लोग तैयार होकर पाठशाला देखने जाने को नीचे उतरे कि एक मनोरंजक घटना घट गयी, जिसको हम पुलिस के साथ अपनी आँख-मिचौनी भी कह सकते हैं। जैसे ही हम दरवाजे पर आये कि सामने सड़क पर एक ताँगा खड़ा था। उसे हमने बुलाया। ड्यूटी पर तैनात पुलिसवालों ने देखा कि हम ताँगे पर कहीं बाहर जा रहे हैं तो उनको भी हमारा पीछा करने के लिए ताँगे की आवश्यकता पड़ी। ताँगा लाने के लिए

उन्होंने स्टेशन की तरफ आदमी भेजा। हम लोग गिनती में पाँच आदमी थे अतः हमारे लिए एक ताँगा पर्याप्त न था। हमें भी एक दूसरे ताँगे की आवश्यकता थी, पर वहाँ कोई दूसरा ताँगा मौजूद न था। अकस्मात् हमारी दृष्टि स्टेशन की तरफ गयी तो उस तरफ से एक ताँगा आता दिखायी दिया। इसी ताँगे को देखकर जो पुलिसवाला ताँगे की तलाश में उस तरफ जा रहा था, रुक गया। जैसे हमने ताँगा आता हुआ देखा कि श्री बिट्ठलदासजी बजाज ने यहीं से खड़े-खड़े ताँगेवाले को आवाज लगाना शुरू किया कि ताँगा इधर लाओ। वह पुलिसवाला ताँगा पास आने पर उस पर सवार होकर सराय के दरवाजे तक आया। जैसे ही वह अपने साथियों को ताँगे में बैठाने के लिए उतरा कि श्री बजाजजी उस पर चढ़ गये और पुलिसवालों से कहा कि यह ताँगा हमने बुलाया है अतः हम इस पर बैठकर जावेंगे, तुम लोग दूसरा ताँगा लो। पुलिसवालों ने फिर ताँगे की तलाश में आदमी भेजा। इसी बीच हम लोगों ने दोनों ताँगों में बैठकर शहर की ओर प्रस्थान किया। दो कान्सटेबिल हमारे ताँगों के पीछे पैदल दौड़ते हुए रवाना हुए। रेलवे स्टेशन से जोधपुर शहर में जाने के लिए दो सड़कें एक दूसरे की विरुद्ध दिशा में जाकर चक्कर के साथ नगर में मिलती हैं अतः हमने पुलिसवालों को चकमा देने तथा परेशान करने के लिए एक ताँगा एक तरफ के रास्ते से और दूसरा ताँगा दूसरे रास्ते से ले चलने को कहा। उन दो कान्सटेबिलों ने भी हमारे ताँगों के पीछे एक ने एक दिशा और दूसरे ने दूसरी दिशा पकड़ी। हमने ताँगेवालों को तेजी से चलने को कहा। ताँगे इतनी तेजी से चले कि पुलिसवाले दौड़ते हुए भी पीछे रह गये। हम लोगों को नगर में स्थित माहेश्वरी पाठशाला में पहुँचना था जो हमने ताँगेवालों को बाद में बतलाया था। हम लोग लगभग तीन बजे पाठशाला पहुँचे जहाँ शाला के अधिकारी, छात्र एवं अन्य माहेश्वरी बन्धु हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमने शाला का निरीक्षण किया। सप्रेजी ने बालकों के सामने समयोचित कुछ शब्द कहे। इस प्रकार करीब एक घंटा तक हम पाठशाला में रहे। हम लोग पाठशाला से बाहर निकल ही रहे थे कि हमने देखा कि पुलिसवाले भी हमारी तलाश में परेशान होते हुए वहाँ आ पहुँचे हैं और उनके साथ भी दो ताँगे हैं। इसके बाद हम शहर घूमने निकले।

जोधपुर भी अन्य राजस्थान के नगरों के सदृश ही था। वहाँ के महाराजाओं की छतरियाँ और एक स्थान पर कुछ बड़ी-बड़ी मूर्तियों का संग्रह दर्शनीय है। सन्ध्या को नगर से दूर मन्डोर नामक स्थान में स्थानीय माहेश्वरी बन्धुओं ने हमारे सम्मान में एक गोठ का आयोजन किया था। रात को आम सभा का आयोजन था, जिसमें जोधपुर नगर के अनुरूप ही जनता एकत्रित हुई थी। वैसे तो हम मुख्यतया माहेश्वरी महासभा के प्रस्तावों के प्रचार के लिए ही निकले थे, पर खादी की आड़ में अन्य सार्वजनिक बातों का समावेश भी हमारे भाषणों में रहता था और सामाजिक सुधार की दृष्टि से राजस्थान के सभी वर्ग एक ढंग के ही पिछड़े हुए थे। इसलिए हमारी सभाओं में आम जनसमुदाय का एकत्रित होना अस्वाभाविक न था।

जोधपुर में उस समय गिरधारीलालजी जयसलमेरिया नामक एक माहेश्वरी सुधारक निवास करते थे। गिरधारीलालजी ने हमारी बड़ी आव-भगत की और हमारी सार्वजनिक सभा का भी प्रबन्ध उन्हींने किया। इस सभा में हमें यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि पुलिस मौजूद न थी। पर जब सभा का अन्तिम धन्यवाद का भाषण समाप्त हो रहा था तब हमने देखा कि पुलिस बड़े दल-बल के साथ आ रही है। पुलिस इन्स्पैक्टर ने जल्दी से आकर कहा कि सभा न करने की राजाज्ञा है और आज्ञा का यह फर्मान भी उस इन्स्पैक्टर ने बड़े शान से पढ़ डाला। पर जब उसे गिरधारीलालजी ने सूचना दी कि सभा न करने की आज्ञा वह उस समय दे रहा है जब सभा समाप्त हो चुकी है तब तो उसकी सारी शान किरकिरी हो गयी। उस किरकिरेपन पर और ठण्डा पानी पड़ गया सभा से जाती हुई जनता के अट्टहास से। पर बेचारी पुलिस अब कर ही क्या सकती थी।

हम लोग अपनी यात्रा के दौरान में जोधपुर लगभग दिसम्बर के द्वितीय सप्ताह में पहुँचे थे और हमको दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अहमदाबाद में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होना था। हमारे पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार राजस्थान के कई स्थानों का दौरा करना शेष था अतः हमने यहाँ से आगे के भ्रमण के लिए हमारे प्रतिनिधिमण्डल को दो हिस्से में बाँट लिया। एक हिस्से में मैं तथा श्री सप्रेजी और दूसरे में श्री ब्रिजलालजी बीयाणी,

श्री बिट्ठलदासजी बजाज और श्री हीरालालजी सोनी । हम लोगों ने तय किया कि मैं शेखावाटी का दौरा करूँ और फलोदी, पाली व पीपाड़ का दौरा श्री बीयाणीजी तथा श्री बजाजजी करें । इस निश्चय के अनुसार मैं रात की गाड़ी से शेखावाटी के लिए रवाना हो गया और श्री बीयाणीजी तथा श्री बजाजजी फलोदी के लिए रवाना हो गये ।

सीकर में कोई उल्लेखनीय घटनाएँ नहीं हुईं । हाँ, सीकर की दो बातें अवश्य उल्लेखनीय थीं । वहाँ की सार्वजनिक सभा बहुत बड़ी थी और सीकर है मेरी ससुराल अतः सीकर में खूब खातिरदारी हुई । मेरी साली के लड़के के विवाह के कारण मेरी पत्नी भी आजकल सीकर आयी हुई थीं ।

अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में जाने के लिए हम लोग फिर से फुलहरा जंक्शन पर इकट्ठे हुए और वहाँ बीयाणीजी ने अपने पृथक् दौरे का हमें बड़ा मजेदार किस्सा सुनाया जिस वृत्त में सबसे मनोरंजक बातें पुलिस से सम्बन्ध रखती थीं । फुलहरा से हम लोग शाम की गाड़ी से रवाना होकर अजमेर होते हुए सबेरे आबू रोड पहुँचे । आबू का पहाड़ राजस्थान तथा अजमेर प्रान्त का ग्रीष्मकालीन निवास-स्थान था जो बीच में जबरन बम्बई राज्य में मिला दिया गया था और अब पुनः राजस्थान को मिल गया है । वहाँ कुछ प्राचीन एवं अर्वाचीन दर्शनीय स्थान भी हैं अतः राजस्थाम की मरुभूमि में एक मास के लगभग घूमने के बाद आबू के सुरम्य पहाड़ की सैर किये बिना आगे बढ़ने को मन नहीं हुआ । आबू रोड की धर्मशाला में सामान रखवा, कुछ नौकरों को वहाँ छोड़, आवश्यक सामान के साथ हम लोग टैक्सी मोटर द्वारा आबू के लिए रवाना हुए । आबू रोड से आबू १७ मील दूर है । हमें पहाड़ के ऊपर आबू नगर तक पहुँचने में लगभग दो घण्टे का समय लगा । आबू पहुँच कर हम लोग सीकर हाउस में ठहरे। वहाँ से हम लोग प्रसिद्ध बिलवाड़ा जैन मन्दिर देखने गये । मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर हम लोगों ने आठ-आठ आने टोल टैक्स देकर एक-एक पास खरीदा, जो शायद आबू के दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए लेना आवश्यक है । पास लेकर हमने मन्दिर में प्रवेश किया । यह मन्दिर मकराने के संगमरमर का बना हुआ है जिसमें पार्श्वनाथजी की मूर्ति प्रतिष्ठित है । निज मन्दिर के दरवाजे के बाहर की दीवाल पर दोनों

ओर दो छोटी अलमारियाँ बनी हैं जिनके भीतर दो मूर्त्तियाँ स्थापित हैं और बाहर अलमारियों की चौखट के चारों ओर संगमरमर के उभरे हुए पत्थर लगे हैं जिन पर बहुत बढ़िया और बारीक खुदाई का काम है। यह पत्थर का काम चार से छः इंच गहरा खोदकर बनाया गया है। इस काम को देखकर कारीगर के हस्तकौशल पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। हमको बतलाया गया कि इन दोनों अलमारियों को जिन सेठ ने यह मन्दिर बनवाया था, उनके दो लड़कों की बहुओं ने अपने पास के पैसे से बनवाया था और इनमें से हर एक में सवा-सवा लाख रुपया खर्च हुआ था। सामने मन्दिर का जगमोहन है और उनके स्तम्भों पर भी बढ़िया खुदाई का काम है। मन्दिर के आस-पास तीन तरफ के प्रांगण में तीनों ओर दोहरी दालानें बनी हुई हैं, जिनके खम्भों की संख्या ५२ है। इन दालानों के भीतर के हरएक चश्मे के पीछे एक-एक कोठा है जिनमें जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। जैसा कि प्रायः जैन मन्दिरों में होता है मूर्त्तियाँ तथा कोठे साफ चिकने और सादे मकराने के पत्थर के बने हुए हैं, पर बाहर की दालानों के खम्भों व छत की खुदाई का काम अलग-अलग नमूनों का है तथा बेल, पत्ते, फूल, फल आदि अनेक चीजें इतनी बारीक व नाजुक बनायी गयी हैं कि जरा हाथ लगा कि टुकड़ा आपके हाथ में आ गया। इसी कारण वहाँ की मरम्मत के लिए कुछ कारीगर स्थायी रूप से नियुक्त हैं। हम लोग जब मन्दिर देखने गये थे ये कारीगर मरम्मत का काम कर रहे थे। कहीं वे लोग जोड़ लगा रहे थे और कहीं पूरा टुकड़ा बैठा रहे थे। संगमरमर में खुदाई का काम आगरा के एतमा-द्दौला के मकबरे के चारों ओर की दीवालों में भी बहुत बारीक और बढ़िया है पर यहाँ खुदाई का काम गहरा और बारीक होने के कारण बहुत ही नाजुक है। यहाँ के खुदाई के काम में जो बेल-पत्ते आदि बनाये गये हैं वे काँच या शक्कर की मिठाइयों के खिलौनों से भी अधिक नाजुक हैं। मन्दिर के एक तरफ एक कमरे में जैन तीर्थंकरों के समय-समय के समारोहों के चित्र कमरों की भीतों पर खोदे गये हैं। इनकी खुदाई में अधिक गहराई तो नहीं है पर काम बहुत ही बारीक किया गया है। कमरे में बीच में ६ हाथी ५-६ फुट लम्बे व लगभग इतने ही ऊँचे तथा इसी अनुपात से मोटे संगमरमर के एक पंक्ति में

खड़े हैं, जो अत्यन्त ही सुन्दर एवं सुडौल हैं। इन हाथियों को देखकर आश्चर्य होता है कि इनको तथा सारे मन्दिर में काम में आनेवाले पत्थरों को मकराने से आबू लाने और १७ मील लम्बी चढ़ाई चढ़ाने में कितनी मेहनत और व्यय हुआ होगा।

विलवाड़ा मन्दिर देखने के बाद हम लोग सनसेट पाइन्ट देखने गये। इस समय लगभग शाम के पाँच बजे होंगे। यह स्थान एक सुन्दर पहाड़ी झील के किनारे है। झील के दो ओर दो पर्वत-श्रेणियाँ झील के किनारे-किनारे बहुत दूर तक समानान्तर जाकर आगे इतनी सकरी हो गयी हैं कि दोनों श्रेणियों के बीच से अस्त होते हुए सूर्य की छटा देखते ही बनती है। नीचे झील का नीला जल, आस-पास श्याम पर्वत-श्रेणियाँ और ऊपर नील आकाश! सारा दृश्य इतना सुन्दर था कि अभी भी वह मुझे कई बार याद आ जाता है। ऐसा लगता था कि किसी प्रोजैक्टर के द्वारा प्रकाशित पट पर हम भगवान भास्कर का उसके पूर्ण विकास के साथ अपनी खुली आँखों से दर्शन कर रहे हैं। इस सुन्दर दृश्य को देखते हुए हम तृप्त न हो पाये थे कि सूर्यदेव का धीरे-धीरे क्षितिज में छिपने का उपक्रम होने लगा। हम अपने हृदय-पटल पर इसी दृश्य को अंकित लेकर जाना चाहते थे इसलिए वहाँ से रवाना हो गये।

इसके बाद हमें एक और स्थान देखना था अहिल्या का मन्दिर, पर झुट-पुटा हो रहा था अतः हम वहाँ न जा सके और बस्ती की तरफ होकर अपने निवास-स्थान को जाने लगे। रास्ते में बाजार से हमें खाने का सामान खरीदना था अतः हम एक हलवाई की दुकान पर खड़े होकर पूरियाँ बनवा रहे थे कि एकदम अँधेरा छा गया। एक बदली आयी और १५, २० मिनिट बरस कर चली गयी। इससे सरदी, जो अब तक कम थी, बढ़ गयी। हम खाना लेकर अपने निवास-स्थान की ओर रवाना हुए। आकाश अभी भी मेघाच्छन्न था और चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। बस्ती से निकलकर हम सीकर कोठी की टेकरी की तरफ चढ़े। अँधेरा अधिक होने के कारण हम सड़क छोड़ चुके थे और अभी बरसे हुए पानी से गीले पत्थरों पर सम्हालकर पैर रखते तथा एक दूसरे को आवाज देते कोठी की रोशनी की ओर लक्ष रखते हुए किसी प्रकार वहाँ पहुँचे। कोठी में पहुँचकर हम लोगों ने भोजन किया और रात भर

आराम से सोये। दूसरे दिन सबेरे बहुत तड़के ही नित्य कर्मों से निवृत हो हम मोटरों से नीचे चल पड़े। हमारी कारें जैसे-जैसे आगे बढ़ रही थीं सामने विस्तृत मैदान में सफेद बादलों के समूह रुई के बड़े-बड़े ढेरों की तरह एक के बाद दूसरे दूर-दूर तक फैले हुए बहुत ही सुन्दर दिख रहे थे। उदय होते हुए सूर्य के कारण इनके सफेद रंगों में कई जगह गुलाबी और सुनहरी झाँई आ गयी थी। सबेरे आठ बजे के करीब हम आबू रोड पहुँच गये। वहाँ से सामान तथा नौकरों को साथ लेकर ११ बजे की गाड़ी से हम अहमदाबाद के लिए रवाना हुए। इस प्रकार अरावली पर्वत की उच्चतम शृंखला आबू की सैर कर हमने अपना राजस्थान का दौरा समाप्त किया।

राजस्थान का मेरा यह दौरा अनेक दृष्टियों से मेरे जीवन के अच्छे से अच्छे संस्मरणों में एक संस्मरण है। इस दौरे के राजस्थान के देखे हुए दृश्य, वहाँ की हर वस्तु में भारतीय संस्कृति की छाप, वहाँ के लोगों का सरल जीवन, वहाँ की उस समय कानून-कायदों से बहुत दूर तक रहित राज्य-व्यवस्था, वहाँ की भोली-भाली पुलिस और उसे हर बात में हम लोगों का चकरा देना, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से प्रायः रहित वहाँ का वायुमण्डल, हम सुधारकों का एक छोटा सा झुण्ड, उसका आपसी प्रेममय निर्मल सम्बन्ध तथा अपने कार्य में अदम्य उत्साह और हम तरुणों के इस छोटे से समुदाय पर सप्रेजी का प्रभाव, न जाने उस समय की कितनी बातें मुझे अभी भी स्मरण आ जाती हैं।

हमारे इस दौरे का वहाँ भी थोड़ा-बहुत असर न पड़ा हो ऐसा नहीं हुआ। हमारे दौरे से वहाँ कुछ समाज-सुधार की भावनाएँ आयीं और कुछ निर्भीकता भी।

पर एक बात मेरी मन की मन में ही रह गयी। यहाँ भी मैं गिरफ्तार न हुआ।

× × ×

सन् २१ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में था, जिसके देशबन्धु सभापति मनोनीत हुए थे, पर वे जेल में थे। उनके स्थान पर हकीम अजमलखाँ सभापति चुने गये। स्वागताध्यक्ष श्री वल्लभभाई पटेल थे। बहुत से नेता, जिन्होंने गत वर्ष बड़े परिश्रम, लगन और उत्साह से देश को जगाकर

संगठित किया था, इस समय जेलों में बन्द थे, परन्तु इन गिरफ्तारियों के कारण कहीं भी उत्साह-हीनता नहीं दिखती थी। लोग उल्लास से पूर्ण थे। गिरफ्तारी से बचे हुए एक मात्र प्रमुख नेता गान्धीजी भी बड़े उत्साह से भरे हुए थे। इसके कुछ दिन पहले ही वे लंगोटी लगाने का व्रत ले चुके थे।

कांग्रेस के इस अधिवेशन की भारी तैयारियाँ हो रही थीं। यह अधिवेशन नागपुर-अधिवेशन से कई रूप में भिन्न था। सबसे पहले तो कांग्रेस प्रतिनिधियों की संख्या ६,००० कर दी गयी थी, जो प्रतिनिधि कांग्रेस के चार आने वाले सदस्यों द्वारा चुने गये थे। कांग्रेस संगठन में यह पहला चुनाव हुआ था। दूसरे बैठने के लिए कुर्सी आदि हटाकर जमीन पर ही बिछायत कर प्रबन्ध किया गया था। इससे जहाँ अनावश्यक खर्च की बचत हुई (ध्यान रहे नागपुर में इसी प्रबन्ध के लिए करीब ४० हजार रुपया केवल कुर्सियाँ बनाने में व्यय हुआ था।) वहाँ लोग अधिक संख्या में बैठाये जा सकते थे। यद्यपि प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित कर दी गयी थी, परन्तु बहुसंख्या में आये हुए दर्शकों को बैठाने के लिए बड़ा पंडाल बना था। तीसरे इस अधिवेशन में हर जगह खादी का ही प्रयोग किया गया था। पण्डाल का शामियाना खादी का, बिछायत खादी की, प्रतिनिधियों की झोंपड़ियाँ खादी की। खादी—सर्वत्र श्वेत खादी। कैसा सुन्दर नज्जारा था वह! लगभग दो लाख रुपयों की खादी इस काम के लिए ली गयी थी। सारे कैम्प का नाम ही "खादी नगर" रखा गया था।

अब अधिवेशन की कार्यवाही पर आइए। सारा वायुमण्डल सत्याग्रह की चर्चा से व्याप्त था। लोगों के हृदय से भय तो निकल ही चुका था। विदेशी सरकार की प्रतिष्ठा और रोब भी निम्नतम स्तर पर पहुँच गये थे। लोगों के मनों में अब राष्ट्र-प्रेम तथा आत्मसम्मान के भाव स्थान पा चुके थे। नेता और कार्यकर्त्ता ही नहीं, जनता भी कुछ कर दिखाना चाहती थी। जन-साधारण ने भी समझ लिया था कि सेवा-भाव और त्याग के बल पर हम अपनी शक्ति का पूर्ण विकास कर सकते हैं।

पुरानी प्रथा के विरुद्ध स्वागताध्यक्ष और सभापति के भाषण संक्षिप्त हुए, क्योंकि यह समय काम करने का था बातें करने का नहीं। इस अधिवेशन मूल प्रस्ताव गान्धीजी ने रखा। यह प्रस्ताव क्या था, असहयोग, उसके

सिद्धान्त और कार्यक्रम पर एक खासा निबन्ध था। गान्धीजी ने प्रस्ताव पर जो भाषण दिया, उसके मार्मिक और ओजस्वी शब्द कभी भी नहीं भुलाये जा सकते। मेरे कानों में तो अभी भी वे शब्द कभी-कभी गूँज उठते हैं। यह प्रस्ताव और भाषण किसी व्यक्ति को कोई ऐसी चुनौती नहीं थी, जो उद्धतता के सिंहासन पर विराजमान हो, वह चुनौती नम्र थी, पर साथ ही दृढ़।

गान्धीजी का सत्याग्रह का यह प्रस्ताव सर्वमत से स्वीकार कर लिया गया और प्रारम्भ में सत्याग्रह के लिए बारडोली ही उपयुक्त स्थान चुना गया। दक्षिण अफ्रीका से कई लोग इस बारडोली परगने में आकर बस गये थे तथा उन्हें गान्धीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह का अनुभव था। इन्हीं की सहायता से सत्याग्रह का यह प्रयोग भारतवर्ष में बारडोली में किया जानेवाला था।

इस प्रस्ताव द्वारा सत्याग्रह से सम्बन्ध रखनेवाले सब अधिकार गान्धीजी को दिये गये। अन्य नेताओं के जेल में होने से गान्धीजी की गिरफ्तारी की सम्भावना भी कम न थी और फिर धीमे पड़ते असहयोग की जगह गान्धीजी सत्याग्रह करके सरकार की परेशानी बढ़ानेवाले थे। इससे उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार भी दे दिया गया। गान्धीजी ने प्रतिनिधियों को सत्याग्रह का उद्देश्य तथा विधि को समझाया और लोग बड़े उत्साह के साथ लौटकर अपने-अपने सूबों में सत्याग्रह की तैयारी करने लगे।

मेरे मन पर अहमदाबाद कांग्रेस का नागपुर कांग्रेस से भी कहीं अधिक प्रभाव पड़ा। कारण स्पष्ट था। नागपुर में मैं केवल दर्शक की हैसियत से गया था, अब असहयोग में दीक्षित पूरा कांग्रेसवादी, कांग्रेस का प्रतिनिधि और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य, फिर नागपुर के बाद कांग्रेस की जो कायापलट हो गयी थी और इस एक वर्ष में मैंने भी कांग्रेस का काम कार्य नहीं किया था।

पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र

जीवन में प्रेम और मैत्री को बहुत बड़ा स्थान है। प्रेम और मैत्री की अधिकांश विचारकों ने प्रशंसा ही की है। परन्तु कुछ ऐसे विचारक भी हैं जो प्रेम-भावना को ही दूषित भावना मानते हैं और मैत्री के विरुद्ध हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम एक भावना है, उत्कट से उत्कट भावना और इस भावना से प्रधानतया हृदय से सम्बन्ध है। इसके प्रकार भी कई हैं—माता का अपनी सन्तति पर स्नेह, पिता का अपनी सन्तति पर स्नेह, माता और पिता की स्नेह भावनाओं में भी कई बार अन्तर होता है। संतान का माता-पिता के प्रति स्नेह। गुरु शिष्य का परस्पर स्नेह सम्बन्ध। पति पत्नी का परस्पर प्रेम। मित्रों का परस्पर प्रेम। देश के प्रति प्रेम, विश्व के प्रति प्रेम, ईश्वर के प्रति प्रेम। अन्तिम तीन प्रकार के व्यापक प्रेम को छोड़ शेष सभी प्रकार के प्रेम व्यक्तियों के बीच ही रहते हैं और उनमें आदान-प्रदान का प्रायः समान महत्त्व रहता है। देश, विश्व और ईश्वर के प्रति प्रेम जिसे मैंने व्यापक कहा है प्रदान वाला प्रेम रहता है, आदान उसमें नहीं रहता।

एक प्रसिद्ध दार्शनिक फ्वेवर बाख ने एक जगह लिखा है—"मानवता के नाते मनुष्य की तीन विशेषताएँ हैं—उसकी बौद्धिक-शक्ति, इच्छा-बल और प्रेम।"

इन तीन विशेषताओं में दर्शन और साहित्य में, विशेषकर साहित्य में, तीसरी भावना प्रेम का जितना वर्णन और इसके पक्ष में जितना विवरण मिलता है, उतना अन्य दो भावनाओं के सम्बन्ध में नहीं। पर इस भावना के विपक्ष में भी कुछ कथन हैं। जैसे टामस हार्डी ने एक स्थान पर लिखा है—"प्रेम निश्चित निर्बलता है और अनिश्चित बल।"

फिर यह सदा रहता है, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का तो मत है कि यह सदा रह ही नहीं सकता। आर्नोल्ड बैनेट ने एक जगह लिखा है—"प्रेम भी मरणशील होता है।" यही बात टामस हार्डी ने

भी लिखी है—"प्रेम चल नहीं सकता। स्पिरिट के सदृश वह उड़ ही जाता है।"

व्यक्तिगत और व्यापक दोनों ही प्रकार के सभी तरह के प्रेम के सम्बन्ध में ये बातें कही जा सकती हैं, व्यक्तिगत प्रेम के सम्बन्ध में तो और अधिक, पर व्यापक प्रेम भी उड़ते हुए देखे गये हैं। देश, विश्व और ईश्वर के प्रेमियों की भावनाओं में क्या कभी परिवर्त्तन नहीं होता ?

मैत्री में जो प्रेम अंकुरित होता है उसी से आगे चलकर इस अध्याय का सम्बन्ध आयगा और उसी का अब यहाँ कुछ विश्लेषण किया जाता है।

जर्मनी की एक कहावत है—"जीवन बिना मित्र के वैसा ही है जैसा जीवन बिना सूर्य के" और जर्मनी की ही एक दूसरी कहावत में कहा गया है—"मैत्री वह प्रेम है जिसमें विचार रहता है।" ऐसे मित्रों के विषय में एक फरासीसी कहावत तो यहाँ तक कहती है—"माता-पिता बनते हैं दैवयोग से, पर मित्र स्वयं के चुनाव से।" पर क्या मित्रों का प्रायः चुनाव होता है ? इमरसन का कथन है—"हम मित्रों के चुनाव की बात कहते अवश्य हैं, पर उनका चुनाव यथार्थ में हम नहीं करते ; वह स्वयं हो जाता है।"

नारवे के इब्सन ने मित्र के विषय में एक बात और कही है—"कोई व्यक्ति भी विश्वासपात्र मित्र के लिए अधिक नहीं कर सकता।" और इब्सन के ही पड़ोसी देश स्वीडन के स्ट्रिंडबर्ग कहते हैं "प्रेम तभी प्रज्वलित रहता है जब उसमें आहुतियाँ पड़ती रहें।" इसीलिए चीन के प्रसिद्ध धर्म-प्रवर्त्तक कन्फ्यूशियस का कथन है—"मैं दिन में तीन बार अपना निरीक्षण कर पता लगाता रहता हूँ कि मैंने सचाई और ईमानदारी के साथ जो कुछ अच्छे से अच्छा करना चाहिए वह अपने मित्र के लिए किया है या नहीं।" यह प्रदान एक अद्‌भुत सुख भी देता है, इसमें सन्देह नहीं। समरसेट मौघम लिखते हैं—"अपने प्रेमी को प्रदान करने से अधिक अद्‌भुत संसार में और कोई वस्तु नहीं।" पर यह कब तक ? तब तक जब तक कि मित्र पर विश्वास रहे। जर्मनी की एक कहावत है—"प्रेम में सबसे महान् बात यह है कि वह विश्वास की उत्पत्ति करता है।" यदि इस विश्वास की नींव में दरार पड़ जाय तब तो फिर एक विचित्र प्रकार की मानसिक दशा हो जाती है। इस दशा के सम्बन्ध में नार्वे के जार्नसन लिखते हैं—"यदि तुम किसी प्रकार भी एक बार

फिर मुझे वह सुख लौटा सकते जो पूर्ण विश्वास देता है।" यद्यपि एक फरासीसी कहावत में कहा है—"अपने मित्र पर अविश्वास करना उसके द्वारा धोखा खाने से अधिक लज्जास्पद है।" लेकिन मानव मानव ही है इसीलिए एक दूसरी फरासीसी कहावत कहती है—"मैत्री या प्रेम में भी किसी को उस वस्तु को स्वीकार न करना चाहिए जिसे वह परिवर्त्तन में न दे सके।" और इसी ध्येय को सम्मुख रख शायद स्वीडन देश में यह मसल मशहूर हो गयी है—"जिसे प्रेम करो उससे बड़े सावधान रहो।" इसी कारण अमरीका के यू० जी० ओ० नील ने लिखा है—"हर व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय आता ही है जब उसे उसका भगवान मित्र के रूप में अनिवार्य हो जाता है, अन्यथा उसका कोई मित्र रह ही नहीं जाता, वह स्वयं भी अपना मित्र नहीं रह पाता।" गान्धीजी ने भी अपने आत्म-चरित्र में इस विषय में एक लम्बी व्याख्या की है। वे लिखते हैं—"सच्ची मैत्री आत्माओं का सम्मिलन है जो दुनिया में क्वचित ही होता है।···मेरी तो राय है कि व्यक्तिगत मैत्रियों से बचना चाहिए।····· जो व्यक्ति भगवान से मित्रता करेगा वह या तो अकेला रहेगा या सारे संसार को अपना मित्र बना लेगा।"

जो कुछ हो, मैं तो शैशव से ही प्रेम के वायुमण्डल में रहा था। कम व्यक्तियों को जीवन में ऐसा प्रेम प्राप्त रहा होगा जैसा मुझे। कितना स्नेह था मुझ पर मेरे पितामह का; कितना स्नेह करती थीं मेरी माताजी मुझ से; कितना स्नेह बढ़ गया था पिताजी का मेरे ऊपर मेरे पितामह के देहावसान के पश्चात्; और कैसे समर्पण वाले अपनी पत्नी के प्रणय का अनुभव किया था मैंने। मेरे कुछ मित्र भी रह चुके थे, इनमें मुख्य थे मेरे बहनोई श्री चमनलाल जी। असहयोग के पूर्व के अपने जीवन का आज जब मैं सिंहावलोकन करता हूँ तो मुझे भास होता है जैसे मेरी जीवन नौका सदा ही प्रेम के समुद्र में खेयी गयी थी। पर असहयोग आन्दोलन में मेरे सम्मिलित होते ही असहयोग आन्दोलन मेरे प्रेम-सागर के लिए अगस्त्य मुनि हो गया। इस दृष्टि से पानी सूखने पर जो दशा नाव की होती है वह मेरे जीवन की हो गयी। असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों से जब मुझे अवकाश मिलता मुझे जान पड़ता जैसे प्रेम-वारि से रहित शुष्क बालू में मेरे जीवन की नौका पड़ी हुई है और इस रूखी-

सूखी रेत के रेगिस्तान का कोई ओर-छोर ही दिखायी न देता। माता, पिता, पत्नी, बहनोई मेरे सारे प्रेम पात्र मौजूद थे। उनका मुझ पर स्नेह कम हो गया हो, यह भी नहीं ; पर न जाने कैसा एक परदा-सा, और यह परदा ठोस, मेरे और इन सबों के बीच में आ गया था। माता-पिता का मुझ पर जैसा स्नेह था उसमें अधिक बातचीत का स्थान न था, परन्तु मेरी पत्नी से तो मेरा वार्तालाप कभी समाप्त ही न होता था, वह सब एकाएक रुक सा गया। हम लोग खुल कर अब एक दूसरे से बातचीत ही न कर सकते। असहयोग आन्दोलन का इतना अधिक काम रहता कि मुझे अपनी पत्नी के पास जाने का अवकाश ही कम मिलता। पर यदि कभी अवकाश मिल भी जाता तो ऐसा लगता कि या तो मैं जल्दी से सो जाऊँ या फिर से असहयोग के कार्यक्रम के किसी काम में लग जाऊँ। सदा प्रेम की शीतल, मन्द, सुगन्धमय वायु का सेवन करते रहने का अभ्यस्त होने के कारण इस नये रूखे-सूखे वायुमण्डल में मेरा गला-सा घुटने लगा था। जब मेरी ऐसी मानसिक अवस्था थी उस समय एक दिन प्रात:काल पंडित माधवरावजी सप्रे ठिंगने से, दुबले-पतले, साँवले रंग के, कोई बीस वर्ष की अवस्था के, असहयोग आन्दोलन में कालेज छोड़े हुए, खादी की पोशाक में, नंगे सिर एक लड़के को लेकर मेरे पास पहुँचे और उस लड़के का मुझसे परिचय कराते हुए कुछ इस प्रकार बोले —"इनका नाम द्वारका-प्रसाद मिश्र है। इनके पिता पं० अयोध्याप्रसादजी मिश्र रायपुर में रहते हैं। ये इलाहाबाद के म्यूर सैण्ट्रल कालेज में बी० ए० में पढ़ते थे। देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेने के लिए इन्होंने गान्धीजी की माँग पर कालेज छोड़ा है। मैं इन्हें राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर में रखने के लिए इस हेतु से लाया हूँ कि ये यहाँ के शारदा भवन पुस्तकालय में अध्ययन कर कांग्रेस का एक वृहत इतिहास लिखें।"

कांग्रेस का वृहत इतिहास यह लड़का क्या लिखेगा, मैंने मन ही मन सोचा, परन्तु सप्रेजी की बुद्धि पर मुझे सन्देह करने का कभी कोई प्रसंग न आया था। राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर अभी चल रहा था। उसका शारदा भवन पुस्तकालय, श्री शारदा मासिक पत्रिका, शारदा पुस्तकमाला, और व्याख्यान समिति सभी ठीक अवस्था में थीं। उसके वार्षिकोत्सव भी खूब उत्साह से मनाये जाते थे।

सप्रेजी के हाथ में ही उसकी सारी व्यवस्था थी अतः मैंने उनके इस प्रस्ताव की कोई आलोचना न की। जिस गोपाल निवास में राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर चल रहा था उसी में एक छोटा-सा कमरा द्वारकाप्रसादजी को दे दिया गया। वे उसमें रहते और दोनों बार भोजन करने हमारे घर में आते।

धीरे-धीरे मेरा और मिश्रजी का सम्बन्ध बढ़ चला। मुझ पर मिश्रजी की प्रचक्षण बुद्धि, राजनैतिक विषयों को समझने की सुलझी हुई विचारधारा तथा साहित्यिक प्रतिभा का प्रभाव पड़ने लगा और कुछ दिनों के बाद तो हम दोनों के अनजाने ही हमारे बीच मैत्री का जन्म हो गया। मैंने मिश्रजी से गोपाल निवास छोड़ राजा गोकुलदास महल में रहने के लिए कहा, पर उस समय वे मेरे इस आमंत्रण को स्वीकार न कर सके। कुछ दिन बाद मिश्रजी ने कलकत्ता जाकर "अमृत बाजार पत्रिका" के सम्पादक श्री मोतीलाल घोष के पास संपादन-कला सीखने की इच्छा प्रकट की। हमारी कलकत्ते की दूकान में विलायती कपड़े का रोजगार तो बन्द हो गया था, पर दूकान अभी उठी न थी। मैंने मिश्रजी के रहने की व्यवस्था अपनी कलकत्ते की दूकान में कर दी और कुछ महीनों के लिए मिश्रजी कलकत्ता चले गये। उनके कलकत्ता जाने से मुझे बड़ा सूना-सा जान पड़ने लगा और मैंने आग्रह किया कि वे जल्दी से जल्दी कलकत्ते से लौटने का प्रयत्न करें।

कलकत्ते से लौटने के बाद मिश्रजी ने मेरा कहना मान राजा गोकुलदास महल में रहना मंजूर कर लिया और अब तो हम दोनों चौबीसों घण्टों के साथी हो गये। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना सब साथ में। अब मेरा और उनका संयुक्त अध्ययन भी आरम्भ हुआ, जिससे बौद्धिक दृष्टि से मुझे बहुत लाभ भी हुआ। इस अध्ययन में साहित्य और इतिहास विषय प्रधान थे। हमारी मैत्री बढ़ चली और असहयोग आन्दोलन के पूर्व प्रेम के जिस समुद्र में सदा मेरी जीवन-नौका चली थी तथा असहयोग आन्दोलन आते ही जिस समुद्र का पानी सूख गया था, वह फिर एक नये नीर से भर गया।

मिश्रजी ने मेरी पत्नी के और मेरे सम्बन्ध को फिर से ठीक कराया। मेरे माता-पिता को समझाया कि जीवन के जिस पथ का अब मैं पथिक हो गया

हूँ, वह पथ परिवर्तित तो हो नहीं सकता, अतः वे उसे सहन कर भय को छोड़ें। मेरे माता-पिता को भी मिश्रजी से काफी ढाढस मिला।

असहयोग का कार्यक्रम अभी भी चल रहा था। पर उस कार्यक्रम की जिम्मेदारी पूरी तौर से निभाते हुए भी हमें अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद के लिए न जाने कैसे समय मिलने लगा। अंग्रेजी नाच और स्केटिंग तो फिर आरम्भ न हो सके, पर टैनिस और बिलियर्ड तथा हौज में नहाना और तैरना फिर शुरू हो गये। मेरी पत्नी और मेरे बीच जो एक ठोस-सा परदा आ गया था वह फट गया। हमारा पुराना सम्बन्ध फिर लौट आया। हमारी बातचीत ने फिर से वही सिलसिला पकड़ा तथा इस सब में एक नयी विशेषता और आ गयी। अब हमारी दो की बातों में एक तीसरे व्यक्ति और जुड़ गये तथा बातों के साथ ही प्रायः ब्रिज की ताश का "कटथ्रोट" का गेम।

असहयोग आन्दोलन समाप्त

पिछले अध्यायों में असहयोग के चरमोत्कर्ष का कुछ वर्णन हो चुका है। अहमदाबाद कांग्रेस के समय केवल गान्धीजी ही ऐसे सार्वदेशिक नेता थे जो जेल के बाहर थे, अन्य सब जेलों में बन्द थे। कारण स्पष्ट था गान्धीजी की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि सरकार उन्हें बन्द करने के परिणामस्वरूप देश में उत्पन्न होनेवाली उथल-पुथल से डरती थी। उसने एक वर्ष से अधिक मौका देखा था और अब उसे अपनी सफलता के लक्षण कुछ दीखने से लगे थे।

यद्यपि नागपुर कांग्रेस के पश्चात् एक वर्ष में देश में जागृति काफी हो चुकी थी, परन्तु उस अस्थायी जोश के पीछे शिथिलता भी छिपी हुई थी। गान्धीजी ने जो एक वर्ष के भीतर स्वराज्य दिलाने को कहा था वह वर्ष बीत गया था और उसके लिए उनकी यह शर्त कि कार्यक्रम का पालन पूर्ण सत्यता और अहिंसात्मक ढंग से होना चाहिए पूरी न होने के कारण स्वराज्य न मिल सका था। तुर्की में कमालपाशा ने राज्य-शक्ति अपने हाथ में लेकर खलीफा को सिंहासन-च्युत कर दिया था इससे भारत के खिलाफत आन्दोलन की तो जड़ ही कट गयी थी। अन्य तीन बहिष्कारों का भी सम्यक पालन नहीं हुआ था। न केवल धारासभाओं की सीटें ही भर गयी थीं, अपितु कचहरी और सरकारी कालेज, स्कूल भी चल रहे थे। कुछ वकीलों और विद्यार्थियों ने कचहरी और विद्यालय छोड़े अवश्य थे, पर इनकी संख्या दाल में नमक के बराबर भी न थी। और फिर क्षणिक जोश मिट जाने पर वकीलों ने वकालत फिर शुरू कर दी थी, तथा यहाँ-वहाँ भटक कर विद्यार्थियों ने भी पुनः विद्यालयों में नाम लिखा लिये थे। चरखे चलते थे, परन्तु विलायती कपड़े के बहिष्कार में भी पूर्ण सफलता नहीं मिली थी।

युवराज का बायकाट यद्यपि पूर्ण रूप से सफल रहा था, फिर भी उसमें कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत खून खराबी हो ही गयी थी, फिर भले ही उसके लिए

पुलिस की गोलियाँ जिम्मेदार हों या आपसी दंगे। महात्मा गान्धी ने सरकार द्वारा समझौते का बढ़े हुए हाथ का किस प्रकार तिरस्कार कर दिया था, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। यद्यपि गान्धीजी का कदम ठीक था, परन्तु अन्य नेताओं की गान्धीजी पर बौछार पड़ने लगी थी। पं० मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल से इस सम्बन्ध में उन्हें लम्बे-लम्बे पत्र लिखे थे। देशबन्धु जो समझौते के लिए तैयार थे, गान्धीजी की इस अस्वीकृति से बहुत ही विक्षुब्ध हुए थे और जेल से बाहर निकलते उन्होंने एक भाषण में का था—"महात्मा ने बहुत भारी और भद्दी भूल की है।"

डा० सीतारमैया के शब्दों में कांग्रेस के सिर पर एक अशुभ मँडरा रहा था। इसी बीच ५ फरवरी को युक्त प्रान्त के चौरीचौरा काण्ड में जनता ने २१ पुलिसवालों को चौकी में बन्द करके जला डाला। सारे देश में इस घटना से स्तब्धता छा गयी और गान्धीजी ने देश की नाड़ी पहचान बारदोली में होनेवाला सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

बस बारदोली का सत्याग्रह स्थगित करते ही लोग गान्धीजी पर टूट पड़े और उन पर चारों ओर से और बौछारें पड़ने लगीं। बंगाल और महाराष्ट्र प्रान्त का विरोधी स्वर सबसे ऊँचा था। मेरी गान्धीजी पर अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति थी, परन्तु मैं जीवन भर किसी का भी अन्ध अनुकरण न कर सका। मुझे भी गान्धीजी का बारदोली में सत्याग्रह बन्द करना उचित न जान पड़ा। मैंने भी उस समय इस विषय में उन्हें अंग्रेजी में एक बड़ी लम्बी चिट्ठी लिखी, जो परिशिष्ट १ में दी गयी है। इसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलायी गयी, जिसमें डा० मुंजे ने महात्माजी पर अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया। गान्धीजी ने सभापति से अनुरोध कर यद्यपि इस प्रस्ताव के विरुद्ध एक भी भाषण नहीं होने दिया तथापि वोट लेने पर यह प्रस्ताव गिर गया।

परन्तु इस सब का सरकार पर असर पड़ा। उसने देख लिया कि अब गान्धीजी को बन्द करने में उतना खतरा नहीं है। सरकार से समझौता कराने के लिए जो मध्यस्थ लोग थे वे इस बात से बड़े निराश हुए कि बारदोली का सत्याग्रह स्थगित कर देने पर भी गान्धीजी ने कांग्रेस का लक्ष्य सत्याग्रह ही

बतलाया और देश द्वारा ठोस कार्यक्रम की माँग को पूरी करने वे व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ करने की आज्ञा देना चाहते हैं।

आखिर १३ मार्च सन् २२ को गान्धीजी गिरफ्तार कर लिये गये और राजद्रोह के अपराध में उन्हें सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

यह ऐतिहासिक मुकदमा तारीख १८ मार्च को अहमदाबाद में आरम्भ हुआ। गान्धीजी पर "यंग इंडिया" में लिखे गये कतिपय लेखों को लेकर मुकदमा चलाया गया था। कैसा विचित्र कैदी था यह जिसके शान्त, कृश और अजेय देह का अदालत में प्रवेश होते ही सब उसके सम्मानार्थ उठ खड़े हुए। अभियोग के पढ़े जाने पर उसे एकदम स्वीकार कर लिया गान्धीजी ने। इसके उपरान्त जो लिखित बयान गान्धीजी ने दिया वह संसार के इतिहास की एक उत्कृष्ट सामग्री है।

न्यायाधीश ने, जो उस समय की सरकार की कठपुतली था, इस मामले को अभूतपूर्व बतलाते हुए गान्धीजी को लोकमान्य तिलक के सदृश मान उन्हें छै वर्ष का कड़ा कारावास दिया। गान्धीजी ने अपनी लोकमान्य से तुलना करने के लिए जज को धन्यवाद देते हुए सिर झुकाकर सजा सिर-माथे ली और इस प्रकार संसार का वह सबसे महान व्यक्ति विधायक कार्यक्रम का उपदेश देते हुए स्वतन्त्रता की अभिलाषा से सहर्ष परतन्त्रता के घेरे में चला गया। एक प्रकार से सन् २० का असहयोग आन्दोलन यहाँ समाप्त हो गया।

मेरे मन पर गान्धीजी के इस मुकदमे का इतना प्रभाव पड़ा कि मैंने लोकमान्य तिलक के मुकदमे तथा उस काल के कुछ अन्य राजनैतिक मुकदमों से सम्बन्ध रखनेवाला साहित्य मँगाकर पढ़ा। मैंने कुछ आश्चर्य से देखा कि कितना अन्तर हो गया था उस काल और इस काल के राजनैतिक वायुमण्डल के सिद्धान्तों तक में। उस समय अंग्रेजी राज्य को कायम रखने में दत्तचित्त उन न्यायालयों तक में हमारे बड़े से बड़े नेताओं का विश्वास था और अपने बचाव की वे सारी कार्रवाइयाँ करते थे और आज ?

असहयोग की देन

जैसा पहला कहा जा चुका है चौरीचौरा के हत्याकाण्ड के कारण बारदोली का सत्याग्रह रुका। राजनैतिक क्रान्तियों के इतिहास में ऐसी घटना कुछ अनोखी न थी। सभी क्रान्तियों में सहस्रों लोगों की जानें गयी ही हैं और इस कारण उन क्रान्तियों के नायकों ने अपनी नीति में परिवर्तन कभी आवश्यक न समझा। किन्तु चौरीचौरा की खबर से महात्माजी चौंक पड़े और उन्होंने यह समझ लिया कि देश की जनता उनके राजनैतिक सिद्धान्त अर्थात् अहिंसा द्वारा राज-शक्ति में परिवर्तन को अभी भली भाँति नहीं अपना सकी। अतः उन्होंने यह माना कि उन्हें जनता को सत्याग्रह करने के लिए आदेश नहीं देना चाहिए। सारा देश उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था जिस दिन बारदोली सत्याग्रह का यह नया कदम उठाया जाना था जिसके बारे में यह धारणा थी कि बस उसके द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य का शेष अस्तित्व भी भारत से उठ जायेगा। कोरी राजनैतिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जनता उस समय अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लेने के लिए पूर्णतः तत्पर थी। उसके अदम्य उत्साह, असीम शक्ति को देखकर यह बात साफ थी कि उसको आदेश मिलने भर की देर है और वह ऐसी महाक्रान्ति कर देगी जिसकी लपटों में अंग्रेजी साम्राज्य भस्म हो जायगा। जिन भारतीय राजनीतिज्ञों के राजनैतिक आदर्शों का निर्माण पाश्चात्य राजनैतिक इतिहास के आधार पर हुआ था, जिनमें उस समय मैं भी शामिल था, वे इस स्थिति को ऐसा स्वर्णिम अवसर मानते थे जो फिर हाथ आने वाला न था और इस बात के लिए लालायित थे कि येन केन प्रकारेण उस स्वर्णिम अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। अतएव उस समय हम लोगों के मन में यह बात न पैठ सकती थी कि चौरी-चौरा में हुई साधारण घटना के कारण देश की राजनीति में कोई परिवर्तन किया जाय। हम यह तो मानते थे कि स्वराज्य के लिए आन्दोलन अहिंसात्मक रहे, पर हमारा यह विचार था कि यह असम्भव है कि तीस-बत्तीस करोड़ की

जनसंख्या वाले एवं लाखों वर्ग मील तक फैले हुए देश में कहीं भी कोई हिंसात्मक घटना न हो। पर यदि देश की ९९ प्रतिशत जनता अहिंसात्मक हो और उसके लाखों ग्रामों तथा नगरों में से लगभग सब ही अहिंसात्मक बने रहें तो फिर कहीं कुछ आदमियों द्वारा किसी सुदूर बस्ती में हिंसात्मक कार्रवाई करने से यह शंका न करनी चाहिए कि देश की जनता अहिंसात्मक नीति नहीं अपना रही है और इस आशंका तथा भय से अगला कदम उठाने से नहीं रुक जाना चाहिए। किन्तु महात्माजी इस राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित न हुए। वे इससे प्रभावित हो भी न सकते थे। उनकी तो यह मान्यता थी कि पाश्चात्य देशों की राज्य-क्रान्तियों से सर्वथा भिन्न प्रकार की राज्य-क्रान्ति वे भारत में कर रहे हैं अतः उनकी दृष्टि में उन राज्य-क्रान्तियों के इतिहास का भारत की दृष्टि से कोई विशिष्ट महत्त्व न था। वे इस बात के भी कायल न थे कि अन्य बातों का विचार किये बिना कोरी राजनैतिक दृष्टि से ही अवसर विशेष पर जन-विक्षोभ एवं जन-उत्तेजना का पूरा लाभ उठाया जाये। इसके विपरीत वे यह जानते थे कि अहिंसात्मक राज्य-क्रान्ति के लिए वह स्थिति सर्वथा प्रतिकूल है जब कि जनता का मन उत्तेजना तथा विरोधियों के प्रति विक्षोभ से परिपूर्ण हो। अहिंसात्मक राज्य-क्रान्ति का तो आधारभूत सिद्धान्त यह है कि क्रान्तिकारियों के हृदय में क्रान्ति विरोधियों के प्रति किसी प्रकार का भी विद्वेष और रोष न हो वरन यह अनुकम्पा की भावना हो कि वे विरोधी अपने भ्रम तथा अज्ञान के ही कारण क्रान्ति का विरोध करने का अपकर्म कर रहे हैं और इसलिए प्रेमपूर्वक ही उनसे निवेदन किया जाय कि वे अपनी भूल सुधार लें। महात्माजी यह मानते थे कि यद्यपि व्यक्ति और उसके कामों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तथा इसी सम्बन्ध के नाते व्यक्ति को कामों का ही पुंज मान लेना एवं व्यक्ति को अपने कामों से लेशमात्र विभिन्न तथा पृथक् न समझना भारी भूल है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपने कामों के पुंज से कहीं अधिक बड़ा और पृथक् होता है। अतः किसी क्षण किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के बुरे कामों को देखकर यह मान लेना कि वह व्यक्ति या व्यक्ति समूह पूर्णतः बुरा है तथा उसके बुरे कामों को रोकने का यदि कोई तरीका हो सकता है तो केवल यही कि उस व्यक्ति या व्यक्ति समूह का खात्मा कर दिया जाय, उनकी

दृष्टि में व्यक्तित्व के ठीक स्वरूप के ज्ञान पर आश्रित न होने के कारण पूर्णत: भ्रमपूर्ण तर्क है। इसके विपरीत उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि व्यक्ति या व्यक्ति समूह के बुरे कामों को रोकने का सही रास्ता यही है कि व्यक्ति या व्यक्ति समूह के उस अंश को सक्रिय किया जाय जो इन बुरे कामों से परे है, अछूता है। व्यक्ति के उस अंश को जागृत एवं सक्रिय करने का यही साधन हो सकता है कि उसके बुरे कामों का विरोध करते समय भी उसके प्रति कोई विद्वेष न रख कर स्नेह तथा अनुकम्पा ही रखी जाय।

वे अन्य राजनैतिक नेताओं की यह बात मान लेने के लिए तो तैयार थे कि न तो कोई व्यक्ति और न कोई जाति इतनी सिद्धावस्था को प्राप्त हो सकती है कि उससे किसी बात में भूल न हो या वह कभी धर्म-पथ से च्युत न हो, परन्तु मानव-दुर्बलता के इस तथ्य को मानने पर भी वे यह मानने को तैयार न थे कि चौरीचौरा की इस अशोभनीय घटना को भी जनता की ऐसी ही क्षणिक भूल कहकर उसे कोई महत्त्व न देना चाहिए। उनका यह विचार था कि यह क्षणिक भूल न होकर ऐसा प्रथम लक्षण है जिससे यह प्रकट होता है कि जनता के हृदय में भयानक विद्वेष और रोषाग्नि का रोग घर किये हुए है। अतएव उन्होंने इस लक्षण को देखकर यह तय कर लिया कि रोषाग्नि से पीड़ित जनता इस योग्य नहीं है कि वह पूर्ण स्नेह पर आश्रित सत्याग्रह जैसे महान शस्त्र का ठीक-ठीक प्रयोग कर सके। उस समय और आज भी ऐसे अनेक लोग हैं जो यह मानते हैं कि गान्धीजी का बारदोली का सत्याग्रह बन्द करने का निश्चय सर्वथा गलत था। उसी का यह परिणाम हुआ कि जनता का उत्साह भंग हो गया, सरकार का यह साहस हुआ कि वह गान्धीजी को पकड़कर जेल में ठूँस दे, जनता को भयाक्रान्त करे और उसके आन्दोलन को पूरी तरह दबा दे। मेरा भी उस समय यही मत था। यह ठीक भी है कि उस समय सत्याग्रह बन्द करने के ये दोनों परिणाम भी निकले। किन्तु आज जब मैं उस समय की परिस्थिति पर विचार करता हूँ तो मेरे मन में उठता है कि यदि वह निश्चय न किया गया होता तो क्या इन परिणामों से भी अधिक भयंकर तथा अहितकर परिणाम न होते? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए

हमें उस परिस्थिति पर ध्यान देना चाहिए जो देश में उस समय पैदा हो गयी थी।

उस समय देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में जनता के प्रत्येक वर्ग में एक प्रकार की हलचल फैली हुई थी। यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय भारत के ३२ करोड़ नर-नारियों के मन में यह आशा तथा यह उमंग थी कि अपने दुःखों और पीड़ाओं से मुक्ति उन्हें मिलने ही वाली है। उनकी यह आशा इतनी उत्कट, इतनी मतवाली हो गयी थी कि उन्हें इसकी पूर्ति में विलम्ब असह्य था। जब व्यक्ति या व्यक्ति समूह के मन की यह स्थिति होती है तब वह सही रास्ता पहचानने के काबिल नहीं रहता। सही रास्ता पहचानने के लिए जो निर्लिप्त भावना चाहिए वह मन में नहीं होती इसके विपरीत ऐसी अवस्था में तो यही अधिक सम्भव होता है कि व्यक्ति या व्यक्ति समूह उन सब रोड़ों, सब बाधाओं, सब विरोधों को उन्मत्त होकर बलपूर्वक मिटा डाले। अतः स्पष्ट है कि देश भर की जनता उस समय उस मानसिक अवस्था में थी जब जरा सी बात पर वह अपने विरोधियों के टुकड़े-टुकड़े कर डालने के लिए पागल हो जा सकती थी। बाहर से वह अहिंसात्मक भले ही हो, किन्तु उसके अन्तस्तल में जो भयानक ज्वाला जल रही थी वह किसी समय भी भयानक हिंसात्मक ज्वालामुखी का रूप धारण कर सकती थी।

जनता के हृदय का यह आवेग ऐसी महाशक्ति होता है जो बड़े से बड़े साम्राज्यों को धराशायी कर सकता है, किन्तु वह ऐसा करने में तभी सफल हो सकता है जब कि वह व्यूहबद्ध होकर योग्य नायकों के संचालन में रह विरोधियों पर आघात करे। परन्तु उस समय तक भारत की यह शक्ति न तो व्यूहबद्ध हुई थी और न इसके लिए पर्याप्त संख्या में नायक ही पैदा हुए थे। व्यूहबद्ध होने के हेतु यह आवश्यक था कि अहिंसात्मक या हिंसात्मक किसी प्रकार के युद्ध के लिए वह सम्यक् अनुशासन सीखे, किन्तु इसके लिए जनता को समय ही कहाँ मिला था। स्मरण रहे कि भारतीय इतिहास में सम्भवतः यह पहला ही अवसर था जब देश की ग्रामीण जनता में भी कुछ दूर तक राजनैतिक लहर फैली थी। उस समय से पूर्व भारतीय राजनैतिक संघर्ष

तथा आन्दोलन अधिकतर नगरों और राजधानियों तक ही सीमित रहे थे। ग्रामीण जनता तो उसकी अधीनता मान लेती थी जो उसके पुराने ठाकुर को जीतकर उसका नया ठाकुर बन जाता था। अतएव देश की ग्रामीण जनता को यह अवसर न मिला था और न उसकी यह प्रवृत्ति हुई थी कि वह राजनैतिक आन्दोलनों के लिए आवश्यक काम करने के ढंग को अच्छी तरह से सीख ले। असहयोग आन्दोलन को आरम्भ हुए भी अधिक समय व्यतीत न हुआ था तथा उतने अल्प समय में यह सम्भव भी न था एवं हुआ भी न था कि लाखों ग्रामों में बिखरी हुई यह बत्तीस करोड़ जनसेना अनुशासनपूर्ण रीति में अपनी गतिविधि का संचालन कर सके और इस प्रकार अपनी उत्तेजना तथा आवेग की एकसूत्रता के अतिरिक्त अपनी गतिविधि की एकसूत्रता में बँध जाय। आवेग की एकसूत्रता का विशिष्ट फल नहीं होता, क्योंकि उससे बँधे होने पर भी व्यक्ति एक से काम में न जुटकर और एक ही दिशा में न चलकर विभिन्न एवं विशृंखल रूप में कार्य करने लगते हैं, जिसका बहुधा यह परिणाम होता है कि वे एक दूसरे के कार्य को निरर्थक कर देते हैं और विरोधियों द्वारा एक-एक करके मार दिये जाते हैं। अतः सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आवेग के साथ-साथ गतिविधि की एकसूत्रता हो। इन दोनों के ही मेल के कारण सेना की एक छोटी टुकड़ी भारी भीड़ पर जरा सी देर में विजय पा जाती है। समस्त देश की जनता में यह आवेग होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता था कि समय पड़ने पर वह अपनी गतिविधि को भी एक सूत्रित रखेगी और आवश्यक आदेशों का अनुशासनपूर्ण ढंग से पालन करेगी।

इसके अतिरिक्त इस महासेना के नायकत्व के लिए जितने नायकों की आवश्यकता थी वे भी उतनी संख्या में तैयार न हो पाये थे। यह ठीक है कि प्रधान सेनापति और कुछ अन्य प्रमुख सेनापति पर्याप्त योग्य थे और इस महासेना के आदर के पात्र थे, किन्तु महासेनापति तथा सेनापतियों के ही कारण कोई सेना अच्छी नहीं समझी जाती। सेना तभी अच्छी होती है जब उसकी छोटी टुकड़ियों के नायक पर्याप्त चतुर, दक्ष एवं लगन वाले होते हैं। सेनाओं के इतिहासों से यह सत्य भली भाँति व्यक्त है। उस समय तक इस महासेना की ग्रामीण टुकड़ियों के लिए आवश्यक संख्या में योग्य नायक

उपलब्ध न थे। सन् १६१६ से पूर्व ऐसी कोई राजनैतिक संस्था न थी जो देश के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में फैली हुई हो। इतना ही नहीं, कांग्रेस के सिवा ऐसी अन्य कोई राजनैतिक संस्था न थी जो कि समस्त देश के विशिष्ट नगरों में भी अपना अस्तित्व रखती हो। कांग्रेस का अस्तित्व भी देश के कुछ बड़े नगरों तक ही सीमित था और इनमें भी वर्ष के कुछ दिनों ही वह जागृत या सक्रिय होती थी, उन दिनों के अतिरिक्त वर्ष भर यह सुप्त प्राय: रहती थी। अत: इन बड़े नगरों में ही कुछ जननायक तैयार हुए थे, किन्तु इन जननायकों को भी यह अवसर न मिला था कि वे राजनैतिक संघर्ष के सब दाँव-पेंचों में पारंगत हो जायें। हाँ, इन जननायकों में से कुछ ऐसे अवश्य थे जो अपनी बुद्धि की कुशाग्रता के कारण और वकालत के कामों में आने-वाले दाँव-पेंचों में दक्ष होने के कारण किसी सीमा तक राजनैतिक क्षेत्र में भी कुछ दाँव-पेंच खेल सकते थे, परन्तु निम्न श्रेणियों के जननायकों का तो सर्वथा अभाव ही था। फल यह था कि देश में महासेनापति और सेनापतियों के होने पर भी यह सम्भव न था कि इस महासेना का प्रभावी संचालन और नायकत्व किया जा सके। यदि यह सेवा एक ही स्थान में एकत्रित होती तो भी सम्भवत: महासेनापति और सेनापति इसका संचालन कुछ हद तक कर लेते, किन्तु यह तो लाखों ग्रामों और नगरों में बिखरी हुई थी तथा इन ग्रामों और नगरों में संदेश, सूचना एवं समाचार भेजने के प्रभावी और शीघ्र फलदायी साधन भी न थे। अत: छोटे नायकों के अभाव में यह पूर्णत: असम्भव था कि इसका सफल संचालन किया जा सके। बराबर यह सम्भावना थी कि इसकी एक टुकड़ी यदि एक काम हाथ में ले तो दूसरी टुकड़ी उसके सर्वथा विपरीत कार्य करे।

इन दोनों अभावों की अवस्था में आवेगपूर्ण व तीस करोड़ की इस महा-जनसेना को रण के हेतु इसी आशा से आह्वान करना कि वह अपने कोरे उत्साह से विरोधियों का सुसज्जित और सुरक्षित गढ़ ढा देगी, भारी मूर्खता की बात होती, क्योंकि उसका यह अनिवार्य परिणाम होता कि विरोधियों की सुनियंत्रित और सुसंगठित लघु सेना इस महासेना को जरासी देर में हरा ही न देती वरन् छिन्न-भिन्न कर देती। जिन लोगों का यह विचार है कि बारदोली

में सत्याग्रह की तैयारी इस राजनैतिक क्रान्ति का अन्तिम कदम था और उसके रोक देने से इस क्रान्ति की कमर टूट गयी वे यह बात भूल जाते हैं कि बारदोली को तो महात्माजी सत्याग्रह की प्रयोगशाला और अनुशासन भूमि ही बनाने की बात सोच रहे थे। उनका यह प्रयोजन था कि यह इस महासेना में अनुशासन की शिक्षा देने का प्रथम कदम होगा। वे यह भी सोचते थे कि इस प्रकार के छोटे पैमाने के सत्याग्रह में पर्याप्त लोगों को इस नयी रणनीति की इतनी शिक्षा मिल जायगी कि वे बाद में इस महासेना की छोटी टुकड़ियों का सफल नायकत्व कर सकें। अतः बारदोली में सत्याग्रह अन्तिम कदम न हो कर इस महासेना को समर्थ बनाने के लिए आवश्यक शिक्षा देने तथा इसके लिए अत्यन्त समर्थ नायक तैयार करने का ही कदम था। बारदोली में सत्याग्रह आरम्भ करने की तारीख को स्थगित करके महात्माजी ने केवल यही प्रयास किया कि वह भयानक ज्वालामयी परिस्थिति बदल जाय जो चौरी-चौरा जैसे सुदूर प्रदेश में वास्तविक ज्वाला के रूप में फूट पड़ी थी। यह स्पष्ट था कि यदि वैसी बस्ती में भी यह माँग इतनी तेज है तो बड़े-बड़े स्थानों में तो वह अत्यन्त भयानक रूप धारण कर सकती है। उसका परिणाम यह हो सकता है कि भारतीय जनजीवन पूर्णतः विशृंखल न हो जाय। जो लोग हिंसात्मक क्रान्ति में आस्था रखते हैं वे भी यह मानते हैं कि असमय और असंयत हिंसा जनता के हेतु ही हानिकारक सिद्ध होती है, क्योंकि अपने पागलपन में जनता विरोधियों के गढ़ों को न तोड़कर अपने ही घरों को बरबाद कर डालती है। अतएव वे भी इस बात का प्रयास करते हैं कि जनता को हिंसात्मक क्रान्ति के लिए पहले छोटे-छोटे क्षेत्रों में क्रान्ति करके आवश्यक शिक्षा देनी चाहिए। यदि वे देखते हैं कि अभी जनता महाक्रान्ति के लिए तैयार न हो पायी है तो वे अपने चारों ओर से किये जाने वाले हमले की तारीख को बदलकर आगे को बढ़ा देते हैं। जन्मजात क्रान्तिकारी महात्माजी यह बात स्वभावतः समझते थे। इसलिए यह अनिवार्य था कि वे अपने सर्व-क्षेत्रीय हमले की तिथि को आगे बढ़ादें। किन्तु जैसा मैं कह चुका हूँ बारदोली सत्याग्रह तो इस सर्वक्षेत्रीय हमले का प्रथम कदम न था। वह तो ऐसे हमले के लिए जनता को आवश्यक शिक्षा देने का कदम था। उसकी तारीख बदलना

उस समय इसलिए अनिवार्य था जिससे लोगों के मन में आशाजनित वह ज्वाला शान्त हो जाय जिसकी प्रखर लौ चौरीचौरा में दिखायी दे गयी थी।

यदि अब तक का हमारा यह विश्लेषण ठीक है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि महात्माजी वह कदम न उठाते तो यह अनिवार्य-सा था कि यह महा-सेना पूर्णतः पराजित होकर छिन्न-भिन्न हो जाती और देश निरुत्साह में इतना ग्रस्त हो जाता कि फिर दशाब्दियों तक सर न उठा सकता। स्मरण रहे कि उससे पूर्व भारतीय राजाओं को विदेशियों के समक्ष हार पर हार उठानी पड़ी थी। सन् १८५७ के विद्रोह में भी भारतीय ही हारे। इन सब हारों का यह परिणाम हुआ था कि लोगों के हृदय में यह विचार घर कर गया था कि वह अपने विपक्षियों के मुकाबले में सफलता नहीं पा सकते। असहयोग आन्दोलन ने दशाब्दियों के पश्चात् यह आशा प्रदान की थी कि इस नये अस्त्र से वह सम्भवतः अपने विपक्षियों के विरुद्ध सफल हो जायें। इस बात की पूर्ण आशंका थी कि यदि कहीं इस बार भी देश को हार खानी पड़ी तो लोगों का मन इतना बैठ जायगा कि उसे पुनः सक्रिय एवं आशापूर्ण करने में दशाब्दियाँ लग जायेंगी। अतएव समय ऐसा न था जब एक ही बाजी पर देश का भाग्य रख दिया जाय और वह भी ऐसी बाजी जिसमें हार लगभग निश्चित ही थी।

इसके विपरीत इस कदम के स्थगित करने से यह स्पष्ट था कि देश को साँस लेने का इतना समय मिल जायगा कि पुनः वह रणक्षेत्र में आने को तैयार हो जाय। यह ठीक है कि रण-नीति के सिद्धान्तों के अनुसार यह प्रत्यक्ष था कि पीछे हटने के इस कदम से विपक्षी यह समझ लेगा कि क्रान्ति सेना में दुर्बलता आगयी है और वह अपने पूरे वेग से आघात करेगा, किन्तु उसका वह आघात उसे थोड़ी देर के लिए चाहे विजय प्रदान करदे पर वह विजय पूर्णतः थोथी ही होगी, क्योंकि उसके कारण न तो वह जनता के मन को परास्त तथा निरुत्साह कर पायेगा और न जनता के राजनैतिक संगठन को ही ध्वस्त कर सकेगा। यदि यह हिंसात्मक युद्ध होता तो यह सम्भव था कि पीछे हटनेवाली सेना का कत्लेआम ही हो जाता या उसके सिपाही स्वेच्छा से हथियार डाल देते, किन्तु यह युद्ध तो अहिंसात्मक था। इससे शत्रु पक्ष के लिए यह सम्भव न था कि वह इस पीछे हटनेवाली सेना के सिपाहियों को जीवन हानि का भय

दिखाकर उन्हें अपना असहयोग रूपी अस्त्र फेंक देने को विवश कर सके। यह सम्भव था कि कुछ लोग इस सेना की पंक्तियों से अलग हो जायें, यह भी हो सकता था कि इसके सिपाहियों में से कुछ हतोत्साह हों, किन्तु ये ऐसे परिणाम न थे जिनको शीघ्र ही दूर न किया जा सके। अतएव दोनों ओर विचार करने से यह स्पष्ट था कि सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय देश के लिए हितकर ही होगा।

इस निश्चय का परिणाम यह अवश्य हुआ कि आन्दोलन में शनैः शनैः शिथिलता आने लगी और लोगों के मन में से यह विश्वास कुछ उठ-सा गया कि स्वराज्य उनकी द्वार देहरी पर आ गया है।

यह भी स्पष्ट हो गया कि एक वर्ष में स्वराज्य की प्रतीक्षा अब पूरी न हो सकेगी, किन्तु इस कारण ही यह कहना कि असहयोग आन्दोलन असफल हुआ, ठीक न होगा। देश के राजनैतिक जीवन में जो बातें इसने पैदा कर दीं उनको ध्यान में रखकर यह कहना ही अधिक उपयुक्त होगा कि यह आन्दोलन बहुत दूर तक सफल ही हुआ।

सर्वप्रथम बात जो इस आन्दोलन ने की वह यह थी कि देश की जनता में जो राजनैतिक असहायता की भावना छायी हुई थी वह जाती रही। इस आन्दोलन से पूर्व देश की ग्रामीण जनता के लिए राज्यकर्मचारी अमानवी दैत्यों के समान थे जिनके समक्ष सिर झुकाकर उनका सब अत्याचार सहने के अतिरिक्त उन्हें अन्य कोई चारा न था। यद्यपि नगरों में इन कर्मचारियों का उतना आतंक बहुत समय से राष्ट्रीय भावनाएँ फैलते रहने के कारण अब नहीं था तथापि वहाँ भी साधारण जन इन लोगों से डरते ही थे तथा उनकी इच्छाओं का विरोध करने का साहस न कर सकते थे।

अंग्रेजी साम्राज्य का एक आधार जनता में उनका यह दबदबा भी था। असहयोग आन्दोलन ने जनता के हृदय से इस आतंक को हटा दिया। यह किसी के मन में आशंका न हो सकती थी कि असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होने से हर असहयोगी के प्राणों पर ही आ बनेगी। कुछ के प्राणों का भी भय हो सकता था, पर हरेक के नहीं। अतः इस आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए उस वृत्ति की आवश्यकता न थी जो हिंसात्मक क्रान्ति के लिए आवश्यक होती

है। इसमें बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब अपनी-अपनी सामर्थ के अनुसार सम्मिलित हो सकते थे। ऐसा ही हुआ भी। अतः यह आन्दोलन देश के इतने व्यापक भाग में एवं इतने लोगों में फैल गया जितना कि भारत ही क्या संसार के इतिहास में कोई राजनैतिक आन्दोलन कभी न फैला था। सच्चे अर्थों में यह जन आन्दोलन था। परिणाम यह हुआ कि लोगों के मन से पुलिस तथा नौकरशाही का आतंक उठ-सा गया, या कम से कम वह इतना कम हो गया कि उसके सहारे ही राजकाज चलाना आसान न रहा या दूसरे शब्दों में साम्राज्य के सुदृढ़ आधार को असहयोग आन्दोलन ने खोखला कर दिया।

असहयोग का द्वितीय परिणाम यह हुआ कि देश में ऐसे लोगों का दल तैयार हो गया जो अपना पर्याप्त समय देश में राजनैतिक जागृति फैलाने में लगाते थे। देश के अनेक भागों में ऐसे स्थान हो गये जिनमें वे लोग रहने लगे जिन्होंने अपनी वकालत या सरकारी सहायता प्राप्त पाठशालाओं में अध्यापक पद पर से अपनी नौकरी छोड़ दी थी। वहाँ रहकर ये लोग राष्ट्रीय पाठशालायें चलाते तथा अन्य छोटे पैमाने वाले उद्योग करते थे। ऐसे स्थानों ने आश्रम का रूप ले लिया। ये आश्रम देश के विभिन्न भागों में राजनैतिक आन्दोलन फैलाने के केन्द्र हो गये। इन आश्रमों के अतिरिक्त देश के अनेक भागों में खादी विक्रय के भण्डार भी राजनैतिक विचारधारा के प्रसार केन्द्र हो गये। ये आश्रम और ये खादी भण्डार यद्यपि शुद्ध रूप से राजनैतिक केन्द्र न थे तथापि इनके आधार तल में जो राजनैतिक विचारधारा थी और इनमें बसनेवालों की जो राजनैतिक मनोवृत्ति थी उसके कारण ये राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के मिलन केन्द्र स्वतः ही हो गये। इस प्रकार देश में स्थायी कार्यकर्त्ताओं का एक दल तैयार हो गया और राजनैतिक या अर्ध राजनैतिक केन्द्रों का एक जाल बिछ गया जिसके कारण देश का राजनैतिक जीवन अविरल धारा में बहने लगा। स्मरण रहे कि यद्यपि इस राजनैतिक दल के लोगों को यह अधिकार प्राप्त न था कि वे जनता से कर वसूल कर सकें या उद्दण्ड लोगों को जेल में डाल सकें और यद्यपि इन केन्द्रों में राजशक्ति के कार्यालय न थे, फिर भी ये दल और ये केन्द्र एक प्रकार से अंग्रेजी साम्राज्य के विपक्ष में ऐसी शक्ति बन गये जिनका जनता के हृदय

पर राज्य था। असहयोग आन्दोलन से पूर्व देश में केवल एक राजनैतिक शक्ति थी—वह थी अंग्रेजी सरकार। कांग्रेस थी, परन्तु साधारण जनता पर उसका कोई विशेष प्रभाव न था। उसका प्रभाव वकीलों, डाक्टरों तथा कुछ पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित था इसलिए वह भी कुछ प्रमुख नगरों के ही इने-गिने लोगों पर था ; किन्तु असहयोग आन्दोलन ने ग्राम, तहसील, नगर, प्रदेश इन सब क्षेत्रों में अंग्रेजी सरकार के मुकाबले में एक स्वतन्त्र जन शक्ति खड़ी कर दी जो कुछ सीमा तक जन जीवन का नित्य-प्रति नियन्त्रण करती थी। इस शक्ति का आधार जनता का स्वेच्छा से दिया गया समर्थन तथा सहयोग था। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि असहयोग आन्दोलन ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध लोकतन्त्रात्मक शक्ति की स्थापना और विकास का आरम्भ कर दिया।

असहयोग आन्दोलन ने अंग्रेजी साम्राज्य का जो स्थायी आर्थिक आधार था उसे भी खोखला कर दिया। अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए आये थे। उसी व्यापार को बढ़ाने के हेतु उन्होंने आरम्भ में यहाँ की राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया था। वे लोग यहाँ जिन कारणों से डटे हुए थे उनमें एक यह भी था कि भारत का साम्पत्तिक दोहन किया जाये। इस देश से एक स्वर्ण गंगा बहकर लन्दन के कुबेर सागर में गिरती थी और उसको भरापूरा करती थी। किन्तु असहयोग आन्दोलन ने इस स्वर्ण गंगा को सुखाना आरम्भ कर दिया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के कारण भारत में विदेशी कपड़े का आयात कम होने लगा। यहाँ की कपड़ा मिलों का कपड़ा और खादी बिकने लगे, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी साम्राज्य का आर्थिक आधार भी खोखला होने लगा।

असहयोग आन्दोलन समाप्त हो गया। आज जब मैं उस समय का सिंहावलोकन करता हूँ तब मुझे मालूम होता है कि हिटलर का कथन कितना सत्य है कि—"मानव रोजगार-धन्धों के लिए नहीं मरते। आदर्शों के लिए मर सकते हैं।"

असहयोग आन्दोलन स्वराज्य तो प्राप्त नहीं करा सका पर जैसा ऊपर कहा गया है यह मानना कि वह असफल हो गया, एकदम गलत है। ऐसे क्रान्तिकारी

आन्दोलनों के सम्बन्ध में फ्रांस के महान साहित्यकार विकटर ह्यूगो ने एक स्थान पर लिखा है—"जय भव्य है और पराजय दिव्य"। इतना ही नहीं, जिन्होंने इस आन्दोलन में भाग लिया उनमें से भी अधिकांश को कोई निराशा नहीं हुई। बात यह है कि ऐसे आन्दोलनों के सिद्धान्तों में विश्वास करने के पश्चात् उस पर सब कुछ न्योछावर करने की वृत्ति का उदय होता है। ऐसी मानसिक स्थिति में जय और पराजय गौण बातें हो जाती हैं। हाँ, जय से आनन्द अवश्य मिलता है, पर पराजय भी दुःख नहीं देती, क्योंकि पराजय में भी पीछे कदम न रखने की तुष्टि रहती है। राजपूत इतिहास की अनेक घटनाएँ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। किसी भी सिद्धान्त में विश्वास होने के बाद कृति के समय बगलें झाँकना कायरता है। ऐसी वृत्ति के लिए संघर्ष की जय और पराजय मुख्य बातें हो जाती हैं, जय से दुःख मिलता है क्योंकि स्वयं बगलें झाँकने की बात याद आती है और पराजय इसलिए दुःख देती है कि दूसरे उस पराजय का उत्तरदायित्व पीछे हटनेवालो पर डालते हैं और पीछे हटनेवाले खुद भी इसे महसूस किये बिना नहीं रह सकते।

असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में एक अन्तिम बात और ध्यान में रखने योग्य है। महात्माजी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि देश की सर्वसाधारण जनता तभी राजनैतिक आन्दोलन में अनुराग ले सकेगी जब उसका संचालन उनकी भाषा में हो। इसी कारण उन्होंने कांग्रेस संगठन को भाषावार प्रदेशों के अनुसार बनाया और इसीलिए उन्होंने भरसक प्रयत्न किया कि कांग्रेस का सारा काम-काज हिन्दी तथा देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा हो।

हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में पहला राजनैतिक झगड़ा

यह प्रायः देखा गया है कि ज्यों ही कोई युद्ध अथवा व्यापक आन्दोलन समाप्त होता है और उसमें काम करनेवालों को अवकाश मिलता है त्यों ही उनमें आपसी झगड़े आरम्भ हो जाते हैं। बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के बाद सेनाओं से मुक्त सेनापतियों एवं सिपाहियों के बीच यही बात देखी गयी है और क्रान्तियों के पश्चात् उस क्रान्ति के नेताओं और कार्यकर्ताओं के बीच भी।

असहयोग आन्दोलन के ढीले पड़ते ही अनेक स्थानों पर कांग्रेसवादियों के बीच आपसी संघर्ष दृष्टिगोचर होने लगा था। हमारे प्रान्त में भी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह संघर्ष अधिकाधिक बढ़ने लगा। हमारे प्रान्त का यह संघर्ष हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त की राजधानी जबलपुर से आरम्भ हुआ। जबलपुर के उन्हीं बैरिस्टर श्री ज्ञानचन्द वर्मा ने, जिन्होंने श्री श्यामसुन्दरजी भार्गव और मेरे विरुद्ध गान्धीजी को पत्र लिखा था, जिस पत्र का उल्लेख पिछले एक अध्याय में आया है, "तिलक" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इस पत्र ने इस समय के हमारे प्रान्त के उस दल पर आक्रमण आरम्भ किया जो दल प्रान्तीय और जबलपुर जिला कांग्रेस कमेटी के अधिकार में था। ये आक्रमण पहले तो कुछ सौम्य रूप में शुरू हुए, पर धीरे-धीरे इनमें उत्कटता आने लगी और कुछ दिन के बाद तो गन्दी से गन्दी गालियाँ आरम्भ हुईं। हमारे देश में यह बात प्रायः देखी गयी है कि विरोध बहुधा संयत नहीं रहता। उसका प्रारम्भ किसी न किसी सिद्धान्त की आड़ लेकर होता है, पर धीरे-धीरे स्तर नीचा होता जाता है और अन्त में गाली-गलौच तक नौबत पहुँचती है। जब इस आक्रमण की सतह गाली-गलौच तक पहुँच चुकी थी उसी समय श्री माखनलालजी चतुर्वेदी और श्री सुन्दरलालजी जेल से निकले। इसके कुछ दिन पहले सिवनी के श्री दुर्गाशंकरजी मेहता भी कांग्रेस में आ गये थे। माखनलाल जी और सुन्दरलालजी के साथ जेल का त्याग था। मेहताजी भी उनके साथ

हो गये और यह त्रिमूर्ति परोक्ष रूप से ज्ञानचन्दजी वर्मा के "तिलक" पत्र का समर्थन करने लगी। अब तक जबलपुर के सबसे पुराने कांग्रेसवादी श्री नाथूराम जी मोदी तटस्थ से थे। अब वे भी इसी दल में सम्मिलित हो गये। जबलपुर का यह विरोधी दल धीरे-धीरे एक प्रान्तीय दल बन गया।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी तथा जबलपुर एवं अन्य अधिकांश जिलों का कांग्रेस संगठन जिनके हाथ में था उन्हें जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त न हो पाया था। फिर एक बात और थी। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष और उस समय के उस दल के नेता जो कांग्रेस संगठन में अधिकार में था, श्री राघवेन्द्र राव अनेक कांग्रेसवादियों के द्वारा कुछ सन्देह की दृष्टि से देखे जाने लगे थें। कई लोग कहते कि श्री राघवेन्द्र राव को गान्धीवाद पर कभी भरोसा ही न था और वे कांग्रेस में केवल अपनी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए आये थे। इस मत के समर्थन में ये लोग असहयोग आन्दोलन के ठीक पहले श्री राघवेन्द्र राव द्वारा लिखे हुए "डायरकी" शीर्षक कुछ लेख अन्य लोगों को बताते जो अंग्रेजी के दैनिक पत्र "लीडर" में छपे थे।

श्री राघवेन्द्र राव ने उस समय जो अनेक पत्र मुझे लिखे थे उनमें से एक पत्र के कुछ अंश से ऐसे मत की पुष्टि अवश्य मिलती है। वे लिखते हैं—

श्रीयुत गोविन्ददासजी,

महात्माजी के आगे के कार्यक्रम से मैं सहमत नहीं हूँ। महात्माजी के कार्यक्रम का स्वरूप कुछ आर्थिक और कुछ समाज सेवात्मक है। जब तक वह सर्वथा राजकीय स्वरूप का न होगा कुछ निष्पत्ति नहीं होगी।

आपका विनीत

ई० राघवेन्द्र राव

जिन कांग्रेसवादियों के श्री राघवेन्द्र राव पर सन्देह थे उनमें कदाचित कोई तथ्य भी हो, पर इन सन्देहों के न कोई प्रमाण उस समय मिले और न उसके बाद ही कभी। "डायरकी" शीर्षक लेख इन सन्देहों के लिए प्रमाण नहीं माने जा सकते। मुझे लिखे हुए जिस पत्र का ऊपर उद्धरण दिया गया है वह भी पूरा प्रमाण नहीं। फिर जो लोग श्री राघवेन्द्र राव पर इस प्रकार के आरोप करते थे उनमें भी कितनी शुद्धता थी, उनकी भावनाएँ कहाँ तक कांग्रेस

संघटन को शुद्ध करने के लिए थीं और कहाँ तक श्री राघवेन्द्र राव को गिरा कर अपना स्वयं महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए, यह भी विचारणीय है।

प्रान्त का जब ऐसा वायुमण्डल था उस समय छिंदवाड़े में हिन्दुस्तानी मध्य-प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का दूसरा अधिवेशन हुआ। स्वागत समिति के अध्यक्ष थे श्री विश्वनाथरावजी सालपेकर और परिषद् की सभानेत्री चुनी गयी थीं श्रीमती सरोजिनी नायडू। इस परिषद् की ये दो विशेषताएँ तो थीं ही कि इसकी स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री सालपेकर के सदृश वयोवृद्ध और शुद्ध गान्धीवादी व्यक्ति थे तथा सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू के सदृश अखिल-भारतीय ही नहीं परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त महिला, पर इन दो विशेषताओं के साथ एक विशेषता और थी। यह थी श्री ठाकुर छेदीलालजी के नेतृत्व में स्वयंसेवकों की रैली। मुझे याद नहीं पड़ता कि उससे अच्छी स्वयंसेवकों की कोई रैली हमारे प्रान्त में फिर कभी हुई हो। परिषद् के साथ अन्य कई आयोजन भी थे, पर जबलपुर की परिषद् के उस महान जोशमय वायुमण्डल का अब पता न था। असहयोग आन्दोलन के साथ वह जोश ठंडा भी पड़ गया था। फिर भी परिषद् सफल हुई। श्री सालपेकरजी के भाषण के प्रत्येक वाक्य से शुद्धता टपकी पड़ती थी। श्रीमती नायडू ने अपना भाषण मौखिक दिया और हिन्दी में। अंग्रेजी सदृश ही वे हिन्दी में भी बोल सकती थीं, उतना ही मधुर, उतना ही प्रभावोत्पादक, यह सर्वप्रथम कदाचित छिंदवाड़ा की उस परिषद् में सिद्ध हुआ।

परिषद् तो सफलतापूर्वक समाप्त हो गयी, पर परिषद् के बाद जो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, उसमें खूब गन्दगी धुली। एक ओर लोगों ने श्री राघवेन्द्र राव और उनके हम सब साथियों पर घृणित से घृणित आक्षेप किये और दूसरी तरफ के लोगों ने श्री ज्ञानचन्द वर्मा और उनके साथियों पर। श्री वर्माजी पर तो पहले के सी० आई० डी० होने तथा श्री सावरकर बन्धुओं को गिरफ्तार करवाने का अभियोग तक लगाया गया। बहुमत श्री राघवेन्द्र राव का ही था, पर श्री राव अंग्रेजी में जिसे "सेन्सिटिव" कहते हैं, ऐसे व्यक्ति थे। वे इस बैठक की कार्यवाही को सहन न कर सके और बैठक के बाद तत्काल ही उन्होंने प्रान्तीय कांग्रेस के सभापति पद से स्तीफा दे दिया। उस समय

प्रान्तीय कार्यकारिणी सभापति नामजद न करता था, वह प्रान्तीय कमेटी द्वारा चुनी जाती थी अतः श्री राव के त्याग-पत्र के पश्चात् भी हम लोग कार्यकारिणी में बने रह सकते थे, पर उस समय के वायुमण्डल में हम लोगों ने भी अलग हो जाना ही उचित समझा और श्री राव के साथ ही उस समय की सारी प्रान्तीय कार्यकारिणी ने भी त्याग-पत्र दे दिया।

अब प्रान्तीय सभापति कौन बनाया जाय, यह प्रश्न उठा। विरोधी दल ने मुझे इस भार को ग्रहण करने के लिए समझाना आरम्भ किया, पर भला मैं उस स्थिति में यह क्यों करने लगा था।

फिर से प्रान्तीय बैठक हुई। रस्मी तौर पर श्री राघवेन्द्र राव से त्याग-पत्र वापस लेने की प्रार्थना की गयी, पर जब वे अपनी टेक पर कायम रहे तब श्री सुन्दरलालजी प्रान्तीय अध्यक्ष निर्वाचित कर लिये गये और उन्हीं के साथ प्रान्त की नयी कार्यकारिणी, जिसके लिए हम में से कोई भी खड़ा न हुआ।

"तिलक" पत्र की अब शायद आवश्यकता न रही, इसीलिए वह "कभी-कभी" के नाम से कभी-कभी निकालने लगा और उसका आदर्श वाक्य रखा गया—

"सच्ची बात सुनाने को मैं
आ जाता हूँ कभी-कभी।"

इस "कभी-कभी" का भी वैसा ही गाली-गलौच वाला स्तर था।

आज जब मैं प्रान्त के इस प्रथम राजनैतिक झगड़े की ओर दृष्टि डालता हूँ तो मेरे मन में एक भावना उठती है—

गाली-गलौच भी अपना कुछ-न-कुछ असर डालती ही है। यद्यपि गाली देनेवालों के भी वह प्रतिकूल ही जाती है तथापि जिन्हें गाली दी जाती है उनकी भी उससे कोई भी हानि नहीं होती यह नहीं कहा जा सकता। इसीलिए अंग्रेजी में एक कहावत है कि कीचड़ उछाले जाने पर उसका कुछ न कुछ अंश तो लग ही जाता है और संस्कृत में भी कहा है—"अतहय्यस् तत्थ्योवाहरति महिमानं जन रवः।" हमारे देश के सार्वजनिक जीवन में आरम्भ से ही यह रोग विद्यमान है और अभी भी इसका शमन नहीं हो रहा है। यदि इसका

कोई इलाज न हुआ तो इससे देश के सार्वजनिक जीवन को बड़ी हानि भी पहुँच सकती है। लिखने और बोलने की स्वतन्त्रता तो रहनी ही चाहिए और सैद्धांतिक दृष्टि से स्वस्थ विरोध भी अवांछनीय नहीं, परन्तु लिखने एवं बोलने की स्वतन्त्रता तथा स्वस्थ विरोध एक बात है और गाली-गलौच, मिथ्या प्रचार सर्वथा दूसरी। कानून के द्वारा इसे रोकना भी उचित नहीं, पर हमारा प्रयत्न यह अवश्य होना चाहिए कि शनैः शनैः हम ऐसे वायुमण्डल का निर्माण कर सकें जिससे किसी प्रकार का भी गाली-गलौच और मिथ्या प्रचार सम्भव न रहे।

सत्याग्रह-जाँच कमेटी और उसका जबलपुर आगमन

गान्धीजी अपनी गिरफ्तारी के समय रचनात्मक कार्यक्रम करने की बात पर जोर डाल गये थे। उनके कारावास के उपरान्त कुछ महीने कांग्रेस की कार्य-समिति ठीक-ठाक काम करती रही, परन्तु यथार्थ में देश की नाड़ी को पहचानकर उपयुक्त औषधि देने वाले गान्धी के न होने से देशवासी किंकर्त्तव्य-विमूढ़-से थे। जहाँ कुछ उत्साही लोगों का यह मत था कि सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जाना चाहिए वहाँ दूसरों का मत था कि देश को सत्याग्रह के लिए तैयार न होने की हालत में धारासभाओं पर अधिकार जमाकर वहाँ अड़ंगा नीति से काम लेना चाहिए।

इस प्रकार लार्ड रीडिंग से समझौता असफल होने पर कांग्रेसवादियों में जो मतभेद का बीज पड़ गया था वह सत्याग्रह बन्द करने के बारदोली के निश्चय से अंकुरित हो उठा और पं० मोतीलाल नेहरू तथा देशबंधु चित्तरंजनदास के जेल से छूटने पर उसके पल्लवित होने में और भी अधिक सहायता मिली।

आखिर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा यह तय किया गया कि एक सत्याग्रह जाँच कमेटी स्थापित की जाय जो देश भर में दौरा कर इस बात की जाँच करके रिपोर्ट दे कि क्या देश सत्याग्रह के लिए तैयार है। इस जाँच कमेटी की स्थापना भारत सरकार की टाल-मटोल करने की नीति के अनुसरण जैसा ही एक कदम था, पर गान्धीजी की देश के यथार्थ रुख जान लेने की अलौकिक प्रतिभा के अभाव में ऐसी आवश्यकता आ ही पड़ी थी। इस कमेटी में छः सदस्य थे—सर्व श्री मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, श्री बिट्ठलभाई पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, श्री कस्तूरी रंगा आयंगर और हकीम अजमल खाँ (सभापति)।

सत्याग्रह-जाँच कमेटी ने प्रश्नावली तैयार कर सभी कांग्रेस कमेटियों से

उत्तर माँगे। उसके उपरान्त स्वयं प्रान्तों का चक्कर लगा वहाँ कार्यकर्त्ताओं से बात कर उनके इजहार लेने आरम्भ किये।

सत्याग्रह-जाँच कमेटी का जब जबलपुर आगमन होगा तब मैं उसे अपने गोविन्द-भवन में ठहराऊँगा, यह उसके दौरे का कार्यक्रम प्रकाशित होते ही मैंने निश्चय कर लिया था। पिताजी की अनुमति की भी मैंने इसमें कोई आवश्यकता न समझी थी। आजकल पिताजी से और मुझसे एक तो बातचीत ही बहुत कम होती थी और यदि कभी बातचीत होती भी तो सार्वजनिक विषयों पर कभी नहीं। बिना किसी सलाह के हम दोनों अपने-अपने मार्ग पर चल रहे थे। वे बराबर सरकारपरस्त थे और मैं असहयोगी। न मैं उनसे उनका मार्ग छोड़ने को कहता और न वे मुझसे मेरा मार्ग त्यागने को। और हम ऐसा कर भी कैसे सकते थे ? विचार-स्वातन्त्र्य की अवहेलना तो क्षणमात्र में संयुक्त परिवार प्रथा की इति श्री कर सकती है। संयुक्त परिवार प्रथा में साथ रहने पर भी यह आजादी तो रहनी ही चाहिए। हाँ, पिताजी के कई कार्यों से मुझे ठेस पहुँचती और मेरे कई कृत्यों से उन्हें भय लगता। पर इन दोनों बातों का कोई इलाज ही न था। मिताक्षरा कानून से शासित होने के कारण कौटुम्बिक सम्पत्ति पर हम दोनों का समान अधिकार था, इसीलिए गोविन्द-भवन में अपने-अपने महमानों को ठहराने का भी। सत्याग्रह-जाँच कमेटी को गोविन्द-भवन में ठहराने के लिए पिताजी से पूछने की मेरे मन में कल्पना तक न उठी, पर यह एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हो गया जिससे सत्याग्रह-जाँच कमेटी का गोविन्द-भवन में ठहरने का प्रश्न पिताजी के लिए एक बड़ी भारी समस्या बन गया।

मध्यप्रान्त-बरार के उस काल के गवर्नर सर फ्रेंक स्लाइ उस समय जबलपुर में ही थे, जब सत्याग्रह कमेटी वहाँ आने वाली थी। जब उन्होंने सुना कि सत्याग्रह-जाँच कमेटी गोविन्द-भवन में ठहर रही है तब उन्होंने पिताजी को बुला भेजा और और उनसे कहा कि उनके रहते इस प्रकार की राज-द्रोही कमेटी उनके मकान में कैसे ठहर सकती है ? पिताजी ने इसका उन्हें उचित उत्तर भी दे दिया कि गोविन्द-भवन पर जितना अधिकार उनका है उतना ही मेरा भी अतः वे उस कमेटी का गोविन्द-भवन में ठहरना कैसे रोक सकते हैं,

पर सर फ्रेंक इस बार इस मामले पर कदाचित कुछ तुल से गये थे। उन्होंने एकाएक कह डाला कि "मालूम होता है कि आप बाप-बेटे मिले हुए हैं। एक सरकार का साथ दे रहा है और एक सरकार के विरोधियों का। यह नहीं चल सकता। या तो आप अपने लड़के को घर से निकाल दें या फिर आप भी सरकार का साथ छोड़ दें।" बाप-बेटे के मिले-जुले रहने की बात इतनी गलत थी कि पिताजी के सदृश सरकारपरस्त व्यक्ति भी गवर्नर की वह बात न सह सका और उन्होंने सर फ्रेंक स्लाइ को इस सम्बन्ध में एक बड़ा सख्त पत्र लिखा, जिसका नतीता यह निकला कि सर फ्रेंक दब गये और मामला निपट गया।

बहुत समय के बाद मुझे यह सारा काण्ड हमारे कुटुम्ब के वकील श्री मनोहरकृष्ण गोलवलकर ने बताया, अंग्रेजी में जिसे "स्टार्म इन टी कप" कहते हैं ऐसी ही यह एक घटना थी, पर उस काल में ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं को कितना महत्त्व था इसका इस घटना से पता लग जाता है। पंडित मोतीलालजी नेहरू सदा हमारे यहाँ ही ठहरते थे, उस पर सरकार ने कभी कोई आपत्ति न उठायी फिर सत्याग्रह-जाँच कमेटी के ठहरने पर क्यों आपत्ति की, यह समझ के बाहर की बात है। खैर।

सत्याग्रह जाँच कमेटी गोविन्द-भवन में ही ठहरी। गोविन्द-भवन में कमेटी की बड़ी खातिर-तसल्ली हुई और वहीं सब गवाहों की गवाही भी ली गयी।

इस अवसर पर जबलपुर में कई सार्वजनिक आयोजन भी बड़ी धूमधाम से हुए। इन आयोजनों में एक मजेदार घटना और घटी, यह उस समय जब जबलपुर म्यूनिसिपैल्टी ने हकीमजी को मानपत्र दिया। इस आयोजन पर टाउनहाल में कांग्रेस का तिरंगा झण्डा फहराया गया। भारतवर्ष में कदाचित जबलपुर पहला स्थान था जहाँ के एक सार्वजनिक भवन पर कांग्रेस का झण्डा लगा। इस बात की खबर सारे संसार में फैली और इसके फलस्वरूप इंगलैण्ड के हाउस ऑफ कामन्स में इस विषय में एक प्रश्न भी पूछा गया जिसके उत्तर में उस समय की इंगलिस्तान की सरकार ने यह कहा कि "जबलपुर में यह बहुत बड़ी गलती हुई है और आइन्दा इस प्रकार की गलती कभी न होगी।"

इसी के कुछ समय बाद झण्डा सत्याग्रह हुआ। और कहाँ है अब उस

दिन का इंगलिस्तान की सरकार का आश्वासन ? संसार सचमुच कितना परिवर्त्तनशील है।

सत्याग्रह-जाँच कमेटी की रिपोर्ट निकलने के पहले ही उसके काम को देखकर पता चलने लगा था कि उसमें दो मत स्पष्ट हैं एक सामूहिक सत्याग्रह की सम्भावना न रहने पर भी गान्धीजी द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक कार्यक्रम में कोई परिवर्त्तन न चाहनेवाला और दूसरा धारा सभाओं में जाकर उन्हें छिन्न-भिन्न करने में विश्वास रखनेवाला। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं में इस विषय में बड़ा भारी मतभेद दिखने लगा। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सर्बमत से यह स्वीकार किया कि देश में इस समय सामूहिक सत्याग्रह नहीं हो सकता। अतएव कमेटी ने यह सिफारिश की कि प्रान्तीय कमेटियों को अधिकार दिया जाय कि यदि महासमिति द्वारा निर्धारित शर्तें पूरी होती हों तो अपनी जिम्मेदारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक सत्याग्रह की मंजूरी दे सकें।

कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने कलकत्ते में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई जो लगातार पाँच दिन रही। इस कमेटी में सारा वायु-मण्डल अत्यन्त कटु होगया।

धारा सभाओं के प्रवेश की जो बात छिड़ गयी थी उस पर कमेटी के सदस्यों में मतभेद होगया। कमेटी के तीन सदस्य धारा सभा-प्रवेश के पक्ष में और तीन विपक्ष में थे। पाँच दिन की इस बैठक के उपरांत भी यह तय न हो पाया कि कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध में क्या किया जाय। अन्त में सारा विषय कांग्रेस के गया में होने वाले अधिवेशन पर छोड़ दिया गया। इस बैठक के पश्चात् सारे देश का वातावरण और बिगड़ा। कांग्रेसवादियों में तो ऐसी तू-तू मैं-मैं आरम्भ हुई जैसी इसके पहले कभी न देखी गयी थी। कहनेवाले यहाँ तक कहने लगे कि मोतीलालजी जवाहरलालजी को जेल से छुड़ाने के लिए तथा देशबन्धु मिनिस्टर बनने के लिए ही कौंसिलों में जाना चाहते हैं।

गया-कांग्रेस और झण्डा सत्याग्रह तथा उनमें मेरी स्थिति

सन् १६२२ के दिसम्बर मास की गया-कांग्रेस भी अपने ढंग की निराली थी। जेल से उसी समय छूटकर आनेवाले देशबन्धु ही उसके सभापति मनोनीत हुए थे। वे कौंसिल प्रवेश के पक्ष में थे और इस कारण जो बहुत दिनों से सत्याग्रह-जाँच कमेटी की रिपोर्ट से होहल्ला मचा हुआ था उसमें और प्रमुखता आ गयी थी।

गया-कांग्रेस में यद्यपि और भी नाना प्रकार के प्रस्ताव थे, पर कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी वाद-विवाद ने अन्य सब बातों को गौण कर दिया।

देशबन्धु का भाषण बड़े मार्के का तथा लम्बा था, उसमें उन्होंने कौंसिल प्रवेश के पक्ष में सारी दलीलें थीं। सभापति के ऐसे भाषण तथा पं० मोतीलाल और एस० श्रीनिवास आयंगर की प्रतिभा के बावजूद भी असहयोग की नौका लक्ष्य भ्रष्ट न की जा सकी। जहाँ परिवर्त्तनवादियों का कहना था कि जब सत्याग्रह सम्भव नहीं तब कौंसिल प्रवेश को क्यों रोका जाय, वहाँ इसके विपरीत दूसरा पक्ष कहता था कि कौंसिल प्रवेश की आज्ञा देने से असहयोग योजना का भंग होना अवश्यम्भावी है। इस प्रकार धारासभा प्रवेश के पक्ष में वोट देने का अर्थ अपरिवर्त्तनवादियों के मतानुसार गान्धीजी की गैरहाजिरी में उनके प्रति विश्वासघात था।

विषय निर्वाचनी समिति की बैठक में, साथ ही प्रतिनिधियों की जो अलग-अलग बैठकें होती थीं उनमें, इस विषय पर बहुत गरमागरम बहस हुई। जब विषय निर्वाचनी समिति ने कौंसिल-प्रवेश को बहुमत से नामंजूर कर दिया तो खुली कांग्रेस में यह प्रस्ताव रखा गया। वहाँ भी बड़ी गरम बहस हुई। समझौते के प्रयत्न में श्रीनिवास आयंगर ने प्रस्ताव पर जो एक संशोधन रखा था वह भी अस्वीकृत हो गया और पुनः बहुत बड़े बहुमत से कौंसिल प्रवेश

सम्बन्धी प्रस्ताव नामंजूर हुआ। आखिर गान्धीवाद के दौर-दौरे में किसी की भी न चल सकी।

अन्य जो प्रस्ताव थे उन पर भी राय जाहिर की गयी। सरकारी स्कूलों और अदालतों का बहिष्कार कायम रहा। स्वदेशी प्रचार तथा खादी के उपयोग पर जोर दिया गया। सरकार को चेतावनी दी गयी कि वह और अधिक ऋण न ले। यह अब तक की परिपाटी से हटकर उस समय की दृष्टि से बड़े साहस का काम कांग्रेस ने किया था। विदेश में कमालपाशा द्वारा तुर्किस्तान में सुव्यवस्थित शासन जमा लेने की बात पर उन्हें बधाई दी गयी। दक्षिण अफ्रीका और काबुल की कांग्रेस-संस्थाओं को कांग्रेस में शामिल किया गया और उनको क्रमशः १० और २ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। गत नवम्बर में महासमिति के सत्याग्रह वाले प्रस्ताव की पुष्टि की गयी और देश में कार्य करने के लिए २५ लाख रुपया तथा ५० लाख सदस्य बनाने की इच्छा व्यक्त की गयी।

इस प्रकार गया-कांग्रेस में कांग्रेसवादियों के बीच की खाई और गहरी हो गयी जिसके फलस्वरूप अधिवेशन के उपरांत सभापति देशबन्धु ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से स्तीफा दे दिया। इसके उपरांत जेल से उसी समय छूट कर आनेवाले मौलाना आजाद तथा पं० जवाहरलाल नेहरू आदि द्वारा समझौते के प्रयत्न की बात आती है, पर गया-कांग्रेस में परस्पर भावनाएँ इतनी कटु हो गयी थीं कि परिवर्त्तनवादी, बहुसंख्यक अपरिवर्त्तनवादी लोगों पर सभापति का ठीक तरह से स्वागत न करने तक का दोषारोपण करने लगे थे। इस सम्बन्ध में डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी जो सफाई दी थी वह विश्वसनीय है। उनका कहना था कि उनकी तरफ से ऐसा भेदभाव नहीं किया गया था तथा उनके अस्वस्थ होने पर भी सब की आवभगत में उन्होंने कोई कसर बाकी न रखी थी।

गया-कांग्रेस के बाद ही गया में ही धारा सभाओं में जाने के लिए स्वराज्य पार्टी का संगठन किया गया जिसके सभापति देशबन्धुदास, मंत्री मोतीलालजी नेहरू और कोषाध्यक्ष मैं चुना गया।

× × ×

इधर हमारे प्रान्त में एक ऐसी घटना हो गयी जो आरम्भ में यद्यपि छोटी थी, परन्तु उसने शीघ्र ही देशव्यापी आन्दोलन का स्वरूप धारण कर लिया। यह घटना यद्यपि नागपुर का झण्डा सत्याग्रह कहलाती है, परन्तु उसका आरम्भ जबलपुर में ही हुआ था।

बात यों हुई कि सन् २३ की ता० १३ अप्रैल को जबलपुर एवं नागपुर में राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय झण्डे के साथ जो जुलूस निकले उन्हें दफा १४४ के अनुसार सिविल लाइन में जाने से रोक दिया गया। स्वयं-सेवकों ने यह कहकर कि हमें अधिकार है, चाहे जहाँ झण्डा ले जायँ, हुक्म को मानने से इंकार किया। बस, गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गयीं तथा जबलपुर में पं० सुन्दरलालजी को कैद कर लिया गया। फलस्वरूप जनता में रोष उत्पन्न हुआ और कांग्रेसवादियों ने नागपुर में सत्याग्रह करने का निश्चय किया।

कांग्रेस के बड़े नेता इस सत्याग्रह के विरुद्ध थे, क्योंकि उन्हें शक था कि केवल कौंसिलों के कार्यक्रम को नीचा दिखाने के लिए यह अपरिवर्त्तनवादियों ने ढोंग रचा है। मैं कितना व्याकुल था इस सत्याग्रह में भाग लेने, परन्तु जिस स्वराज्य पार्टी में मैं भर्ती हो गया था, वह इस आन्दोलन के विरुद्ध थी। आख़िर जी मसोसकर रह जाना पड़ा।

अन्त में १ मई से सेठ जमनालाल बजाज के नेतृत्व में नागपुर में झण्डों का सत्याग्रह आरम्भ हुआ। सत्याग्रह का रूप यह था कि कुछ सत्याग्रही जुलूस में झण्डा लेकर सिविल लाइन की ओर जाते और उस वर्जित स्थान से आगे जाने का प्रयत्न करने में गिरफ्तार कर लिये जाते। इस प्रकार बहुत सी गिरफ्तारियाँ हुईं तथा इस सत्याग्रह की बात सारे देश में फैल गयी। झण्डे की आन को देशवासियों ने अपनी आन समझा और हर एक प्रान्त के कोने-कोने से सत्याग्रही नागपुर आने लगे। सरकार ने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा था कि यह साधारण घटना इतना व्यापक रूप धारण कर लेगी। पर अब पीछे हटना तो उसकी शान के खिलाफ था, अतएव जोर का दमन आरम्भ हुआ। सेठ जमनालालजी बजाज को पकड़कर सजा दी गयी साथ ही उन पर किया गया ३०००) का जुर्माना। यह जुर्माना वसूल करने के लिए उनकी

जो मोटर कुर्क की गयी थी, नीलाम के समय उस पर नागपुर में किसी ने भी बोली न बोली।

जमनालालजी की गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह का संचालन करने श्री वल्लभभाई पटेल आ गये। अभी उन्हें सरदार की पदवी नहीं मिली थी, परन्तु जिस योग्यता से उन्होंने सत्याग्रह का संचालन किया उससे उनके भी गिरफ्तार होने की आशंका हो गयी। जब आन पर बात आती है तो आपस के भेद-भाव भुला देना ही बुद्धिमत्ता होती है। श्री विट्ठलभाई यद्यपि स्वराज्य पार्टी में थे, तो भी वे वल्लभभाई की सहायता को नागपुर आ पहुँचे। डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि नेता बीच-बीच में आते-जाते रहते थे।

गिरफ्तार होनेवालों की संख्या हजारों पर पहुँची तथा परिस्थिति गंभीर होती गयी। जेल में स्वयंसेवकों की हालत शोचनीय थी, परन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का आशीर्वाद जिस आन्दोलन को प्राप्त था तथा जिसने इस सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए देश का आह्वान किया था, उसकी शीघ्र समाप्ति की क्या आशा थी। सरकार ने सोचा यह सत्याग्रह बढ़ने देना अच्छा नहीं। सरकार का कहना था कि जुलूसवालों को इजाजत माँगना चाहिए। श्री विट्ठलभाई से उसने कुछ बातें कीं। श्री वल्लभभाई ने जनता को समझाकर सिविल लाइन का ही एक मार्ग तय कर दिया और इस मार्ग पर जाने से पुलिस ने जुलूस को नहीं रोका। इस प्रकार सत्याग्रहियों की विजय हो गयी और सत्याग्रह समाप्त हो गया। लोगों में बड़ा उत्साह फैला, अन्तिम दिन का जुलूस बड़ी शान से निकला और सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये गये।

बाद में पत्रों में बड़ा होहल्ला मचा। एंग्लो इण्डियन अखबारवाले इसे सरकार की विजय बतलाते थे, परन्तु यथार्थ में विजय हुई थी कांग्रेस की।

इस सत्याग्रह ने हमारे प्रान्त का सिर बहुत ऊँचा किया था। इस सत्याग्रह के लिए सबसे अधिक स्वयंसेवक महाकोशल के बालाघाट जिले ने श्री करामत हुसैन सा० के नेतृत्व में दिये थे। गिरफ्तार होने वालों में मुख्य थे सर्व श्री जमनालाल बजाज, सुन्दरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, लक्ष्मणसिंह चौहान, सुभद्राकुमारी चौहान, दुर्गाशंकर मेहता, आदि। मेरी गति साँप-छछूंदर की

थी, क्योंकि यद्यपि मैं स्वराज्य पार्टी में इस शर्त पर आया था कि यदि कांग्रेस इजाजत देगी तो ही मैं कौंसिल में जाऊँगा, परन्तु इस आन्दोलन में भाग कैसे ले सकता था, जिससे स्वराज्य पार्टी ने कोई सम्बन्ध नहीं रखा था।

कांग्रेसियों में तू-तू मैं-मैं, इसका मुझ पर प्रभाव

सत्याग्रह-जाँच कमेटी और गया-कांग्रेस शीर्षकवाले अध्यायों में हमने देखा कि कांग्रेसियों में एक गहरी फूट हो गयी थी जिसके फलस्वरूप स्वराज्य पार्टी का जन्म हो गया था। कांग्रेस में उस समय वैसा अनुशासन नहीं था जैसा बाद में आया। अत: कांग्रेस के प्रस्तावों के विरुद्ध काम करनेवाला दल भी कांग्रेस के अन्दर रह सकता था। कैसी विचित्र बात थी यह, पर थी अवश्य, और इसका कारण कदाचित यह था कि देशबन्धुदास, पं० मोतीलाल, हकीम अजमल खाँ, श्री विट्ठलभाई पटेल आदि के सदृश कांग्रेस नेताओं को कांग्रेस से अलग करने का किसी को साहस नहीं था। आगे चलकर कांग्रेस में यह साहस भी आया और कांग्रेस ने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सदृश व्यक्ति पर भी अनुशासन की कारंवाई की। नवम्बर सन् १९२३ में कौंसिलों के चुनाव होनेवाले थे अतएव स्वराज्य पार्टीवालों की इच्छा थी कि कांग्रेस में अपना बहुमत बना उसी के नाम पर यह चुनाव लड़ा जाय।

इसके ठीक विपरीत अपरिवर्त्तनवादी न केवल कौंसिल बहिष्कार के पक्ष में थे अपितु कांग्रेस द्वारा चुनाव बहिष्कार का प्रचार भी करना चाहते थे। इन अपरिवर्त्तनवादियों में श्री राजगोपालाचारी प्रमुख थे। कई बार वर्किंग कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में उग्र और कटु बहसें हुईं, परन्तु समझौता नहीं हो पा रहा था। यथार्थ कठिनाई यह थी कि दोनों दलों के नेता और कार्यकर्त्ता एक दूसरे के प्रति असहिष्णु थे। जब अपरिवर्त्तनवादियों ने नागपुर में झण्डा सत्याग्रह आरम्भ किया तो परिवर्त्तनवादियों को उनकी नीयत पर सन्देह हुआ और जब अपरिवर्त्तनवादी अपने कार्यक्रम के अनुसार ५०,००० स्वयंसेवक एवं २५ लाख रुपया इकट्ठा न कर सके (करीब १३ लाख रुपया ही एकत्रित हो सका था) तो स्वराज्य पार्टी ने अपरिवर्त्तनवादियों को अपनी हार मानकर उनके कार्यक्रम को स्वीकृत करने को कहा।

देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी बढ़ रहे थे तथा खिलाफत का प्रश्न समाप्त हो गया था। ऊपर से कांग्रेस की इस आपसी तू-तू मैं-मैं से लोग खिन्न थे। दोनों दलों ने ३० अप्रैल तक कौंसिल के पक्ष-विपक्ष में कुछ भी प्रचार न करने का एक समझौता किया था, पर वह तारीख भी बीत रही थी। इस बीच मौलाना आजाद और पंडित जवाहरलाल नेहरू भी जेल से छूटे तथा ३० अप्रैल तक आपसी संघर्ष के सम्बन्ध में कुछ न करनेवाले दोनों दलों के इस समझौते पर अपनी प्रसन्नता जाहिर की। इन लोगों के अतिरिक्त अपरिवर्त्तनवादियों में डा० अंसारी और श्रीमती सरोजिनी नायडू समझौते के पक्ष में थीं। इस प्रकार समझौते का प्रयत्न किया जा रहा था। इन्होंने प्रस्ताव रखा कि देश में चूँकि ऐसे लोग भी हैं जो चाहते हैं कौंसिल में जाया जाय अतएव समझौते की दृष्टि से यह उचित है कि कांग्रेस ने गया के प्रस्ताव के अनुसार जो कौंसिल बहिष्कार के लिए प्रचार करने का निर्णय किया है वह छोड़ दिया जाय। राजा जी इस प्रस्ताव पर बहुत बिगड़े, क्योंकि उनके मत से ऐसा करना कांग्रेस के लिए आत्महत्या जैसा था। उनका आशय था कि या तो कौंसिल प्रवेश की आज्ञा देकर स्वतः चुनाव लड़े जायें या फिर गया-कांग्रेस के निश्चय के अनुसार चुनाव का बहिष्कार कर जनता में इसका पूर्ण प्रचार किया जाय। परन्तु अखिल भारतीय कमेटी ये दोनों बातें नहीं करना चाहती थी।

लोग इस आपसी बक-चख से ऊब गये थे तथा किसी भी तरह इस कौंसिल प्रवेश सम्बन्धी विवाद का अन्त चाहते थे। अधिकांश समाचारपत्र कौंसिल प्रवेश के ही पक्ष में थे। जब समझौता संशय के झूले पर झूल रहा था तब ३० अप्रैल बीतते ही एक पार्टी के कटु भाषणों और उसके विपरीत दूसरी पार्टी द्वारा आरोपों से यकायक सारे देश में वही अवांछित कटुतापूर्ण जोरदार वाद-विवाद नये सिरे से चल पड़ा। अन्त में तय किया गया कि दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुला अब इस शक्ति-ह्रास करनेवाले आपसी कलह को येन केन प्रकारेण समाप्त ही करना चाहिए। इस अधिवेशन के सभापति मौलाना अबुल कलाम आजाद मनोनीत हुए।

दिल्ली के इस अधिवेशन को बुलाने में प्रमुख हाथ था मौलाना मुहम्मद अली का, जो इस अधिवेशन के कुछ पहले जेल से छूट कर आ गये थे। वे

समझौते के पक्ष में थे तथा उनका यह कथन बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ कि उन्हें समझौते के पक्ष में जेल से "बेतार के तार" द्वारा देश के सबसे प्रधान नेता ने खबर भेजी है। इस बेतार के तार पर बड़ी अटकलबाजियाँ हुईं। यद्यपि इससे ध्वनि यही निकली थी कि महात्मा गान्धी का यह सन्देश है, पर जेल से किसी प्रकार का भी सन्देश भेजना गान्धीजी के सिद्धान्त के खिलाफ था। बाद में पता चला कि जब श्री देवदास गान्धी जेल में गान्धीजी से मिलने गये थे तब महात्माजी ने कहा था कि मौलाना मुहम्मद अली जो ठीक समझें वही करें, वे हमारे प्रेम और विश्वास से अप्रभावित बुद्धि द्वारा जो देश के हित में उचित होगा वही करेंगे। इसी बात को मौलाना साहब ने कई दिन तक प्रचलित रहनेवाले इस बेतार के तार का संवाद कहा था।

अपने आरम्भिक सार्वजनिक जीवन में इस तू-तू मैं-मैं का मेरे मन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।

पहाड़ी सैर और सोलन में मिश्रजी की बीमारी

परिवर्त्तन और अपरिवर्त्तनकारी कांग्रेसवादियों में इस प्रकार की तू-तू मैं-मैं का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा उसका उल्लेख पिछले अध्याय में है। उधर गरमी का मौसम आ गया। मैंने सोचा कि कांग्रेस की इस तू-तू मैं-मैं के वायुमण्डल तथा इस साल की गरमी दोनों से बचने के लिए किसी ठण्डी जगह चला जाय। शिमले का बहुत नाम सुन रखा था और उसी के निकट स्वास्थ्य की दृष्टि से सोलन का। मिश्रजी कमजोर रहा करते थे और प्रायः बीमार भी हो जाते थे। अतः सोलन की आबहवा उन्हें भी कुछ लाभ पहुँचायेगी इस दृष्टि से सोलन जाना तय हुआ। सोलन से बीच-बीच में शिमला घूम आना कठिन न होगा, यह भी सोलन के चुनाव का एक कारण था।

सोलन में वहाँ की सबसे ऊँची जगह पर बनी हुई "रानी साहिबा की कोठी" किराये पर ली गयी और सेक्रेटरी, रसोइया, खिदमतगार, चपरासी आदि कोई आधे दर्जन नौकरों के साथ मिश्रजी और मैं सोलन पहुँचे।

इसके पहले पचमढ़ी छोड़कर भारत के अन्य किसी पहाड़ पर मैं नहीं गया था। पर पचमढ़ी और सोलन में बहुत अन्तर था। पचमढ़ी की भूमि सम थी, सोलन ऊँची-नीची पहाड़ियों पर बसा हुआ था। फिर यद्यपि पचमढ़ी से सोलन केवल एक हजार फुट ही अधिक ऊँचा था तथापि पचमढ़ी की अपेक्षा बहुत अधिक ठण्डा था। पानी तो सोलन का बरफ के समान ठण्डा रहता था। इसका प्रधान कारण था सोलन का हिमालय की श्रेणियों में होना। परन्तु जहाँ एक ओर सोलन पचमढ़ी से ठण्डा था, वहाँ दूसरी ओर पचमढ़ी की सम भूमि के चारों ओर वहाँ की डेनवा नदी ने जो खड्डों के सुन्दर दृश्य और नहाने के निर्मल कुण्ड बना दिये हैं, वैसे कोई स्थल सोलन या उसके चारों ओर नहीं थे ; शिमले में भी नहीं। इसके बाद मैं भारतवर्ष के अन्य भी कई पहाड़ों को गया—मसूरी, महाबलेश्वर, शिलांग आदि पर पचमढ़ी के सदृश सुन्दर दृश्य मुझे कहीं दिखायी न दिये। काश्मीर के दृश्यों के सौन्दर्य की मैंने

बड़ी प्रशंसा पढ़ी और सुनी है, वहाँ जाने की वर्षों से इच्छा भी है, पर वहाँ मैं अब तक न जा सका। मैं समझता हूँ दृश्यों के सौन्दर्य की दृष्टि से काश्मीर को छोड़कर पचमढ़ी की बराबरी कदाचित भारतवर्ष का कोई पहाड़ नहीं करता और तन्दुरुस्ती की दृष्टि से भी चाहे पचमढ़ी बहुत ठण्डा न हो पर वहाँ की हवा के साथ ही वहाँ का त्रिफलामिश्रित पानी भी कदाचित भारत के अन्य पहाड़ी स्थलों से कहीं अच्छा है।

ठण्डेपन के सिवा सोलन और शिमले से पचमढ़ी को कहीं अच्छा लेखने पर भी पचमढ़ी की अपेक्षा आरम्भ में सोलन और शिमले की यह यात्रा मुझे कहीं अधिक सुखद जान पड़ी। इसके दो प्रधान कारण थे—सार्वजनिक जीवन की लगातार व्यस्तता के बाद यह यात्रा हुई थी और मिश्रजी के सदृश मित्र का इस यात्रा में संग था, जिससे पचमढ़ी की यात्रा वंचित थी।

मैदानों के जीवन को विस्मृत करने का प्रयत्न करते हुए बड़े उत्साह से हम लोगों ने अपना सोलन का कार्यक्रम आरम्भ किया। प्रातःकाल सूर्योदय के पहले उठ जाने की तो मेरी बचपन की आदत थी ही, यहाँ भी उषःकाल में ही उठने का कार्यक्रम रखा गया। उठकर शौचादि से निवृत्त हो हम दूध पीते। सुना था बकरी का दूध गाय के दूध से भी हलका होता है। मिश्रजी के स्वास्थ्य में सुधार इस यात्रा का एक उद्देश्य था। अतः हमने बकरी खरीदी। उस बकरी के दुहते समय उसका मेमना जिस तल्लीनता और उत्साह से अपनी माँ के थनों में मुँह मार-मार कर दूध पीता था वह दृश्य अभी भी मुझे कई बार स्मरण आ जाता है। दूध पीकर हम घूमने जाते। सोलन ऊँची-नीची पहाड़ियों पर बसा था अतः इस घुमाई में मिश्रजी प्रायः किसी बीहड़-सी पहाड़ी पर चढ़कर बैठ जाते और फिर मुझे उस पर चढ़ने को कहते। बाल्यावस्था से जिन्हें दरख्तों पर चढ़ने, इस प्रकार के बीहड़ रास्तों पर चलने आदि की आदत नहीं रहती, उन्हें अवस्था के बढ़ जाने पर इन बातों में कठिनाई होती है। फिर मेरी तो कुछ ऐसी आदतें थीं जिनके कारण इस प्रकार के कामों में मुझे सदा झिझक ही रहती थी। किसी बड़े शहर में किसी रास्ते को लाँघते समय मुझे सदा अपने अर्दली की जरूरत पड़ती थी। जब मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में एक बार लखनऊ गया था तब एक

दिन मेरा अर्दली मेरे साथ न था और जब अमीनाबाद पार्क में एक सड़क को लाँघते हुए मुझे बड़ी कठिनाई जान पड़ी थी तब मिश्रजी मेरा खूब मजाक उड़ाकर हँसे थे, जिसका नतीजा यह निकला था कि मैंने अपने साथ अर्दली रखना ही छोड़ दिया। मैं मोटर साइकिल की साइड कार पर और इक्के पर भी कभी न बैठता था। मुझे न जाने सदा यह लगता था कि इन दोनों सवारियों के उलटने का सबसे अधिक भय रहता है। मिश्रजी ने मुझे एक बार जबरदस्ती मोटर साइकिल की साइड कार में और एक बार इक्के पर बैठाया। मेरा इन दोनों सवारियों पर बैठने का पहला ही अवसर था, और संयोगवश ये दोनों सवारियाँ मेरे प्रथम अनुभव में ही उलट भी गयीं, पर मुझे कोई चोट न आयी और मेरा यह डर भी मिट गया।

हाँ तो मिश्रजी किसी बीहड़-सी पहाड़ी पर बैठ जाते और मुझसे उस पर चढ़ने को कहते। जब मैं न चढ़ता तब वे पैर लटका लेते और कहते कि यदि मैं न चढ़ूँगा तो वे कूद पड़ेंगे। अन्त में मुझे चढ़ना ही पड़ता। इस प्रकार कुछ दिनों में मुझे पहाड़ों पर चढ़ने का अभ्यास हो गया। मिश्रजी दरख्तों पर भी चढ़ते और मुझे दरख्तों पर भी चढ़ने को कहते, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं दरख्तों पर चढ़ना न सीख सका।

इस प्रकार अलस्सुबह घूमने के बाद हम लोग कोई ८ बजे कोठी लौटते और तेल की मालिश करा स्नान करते। स्नान कर मैं तो कुछ देर सन्ध्या पूजा करता और मिश्रजी पढ़ते। मेरे सन्ध्या पूजा करने के पश्चात् कोई दो घण्टे हमारा संयुक्त अध्ययन चलता। इसके बाद भोजन होने पर कुछ देर आराम कर हम लोग कोई २, ३ घण्टे अलग-अलग पढ़ते। सारा अध्ययन साहित्यिक अध्ययन होता। इसी अध्ययन के साथ मैंने यहाँ पलासी के युद्ध पर "विश्वासघात" नामक एक नाटक लिख डाला। यह मेरा दूसरा नाटक था। शाम को हम फिर घूमने जाते और लौटकर भोजन कर एक नया काम करते। यह नया काम था एक दूसरे को उसके दोषों से अवगत करा उन दोषों का किस प्रकार निवारण हो यह योजना बनाना। कुछ दिनों तक इस विषय पर बहस कर हमने एक प्रकार के चार्ट तैयार किये। इन चार्टों में एक ओर सारे दोष लिखे गये और ऊपर एक महीने की तारीखें। सोने के पहले नित्य हम यह

चार्ट देखते और किस दिन हम किस दोष के भागी हुए हैं, तथा किस दिन किस दोष से मुक्त रहे हैं, यह नित्य उस चार्ट में नोट करते । आत्म-निरीक्षण की यह विधि जो सोलन में हमने आरम्भ की वह फिर कई वर्षों तक चलती रही और इसने हमें अपने सुधार में बहुत सहायता भी पहुँचायी । चाँदनी रातों को छोड़ रात में हम जल्दी ही सो जाते ।

सोलन की पहाड़ी घुमाई, वहाँ के चीड़ के जंगल, चाँदनी रातों में टीलों पर बैठकर ग्रामोफोन के रिकार्डों को बजाना, क्योंकि उस समय रेडियो का प्रचार न हुआ था, कितनी बातें मुझे अब तक याद आ जाती हैं ।

शिमले भी हम कई बार गये । बड़ा हरा-भरा था शिमला । देवदार के वृक्ष चीड़ के वृक्षों से कहीं अधिक ऊँचे-मोटे और घनी हरियालीवाले थे । साथ ही मानवों की भी बड़ी चहल-पहल थी शिमले में । वहाँ का माल रोड और उस पर चलनेवाली जनता अधिकतर पैदल और कुछ रिक्शों पर दर्श-नीय थी; औरतें तो प्रायः सभी तितलियों के समान । पंजाब का गौर वर्ण, अच्छी तन्दुरुस्ती और फैशन सभी चित्ताकर्षक थीं । मैंने वहाँ की माल रोड पर हमारे कुटुम्ब का बनाया हुआ बैण्ड स्टैण्ड भी देखा । इस बैण्ड स्टैण्ड के निर्माण की एक दिलचस्प कहानी है । मेरे पितामह को ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने जो राजा की पदवी से विभूषित किया था वह पदवी पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए न होकर उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से मिली थी अतः उनकी राजा की पदवी के कारण जब पिताजी ने अपने को कुँअर लिखना शुरू किया तब मेरे पितामह की राजा की पदवी व्यक्तिगत होने के कारण प्रान्तीय सरकार ने मेरे पिता जी के कुँअर लिखने पर आपत्ति की । उन दिनों इस बात को एक बड़ी भारी समस्या समझा गया और इस पर अत्यन्त गहन विचार आरम्भ हुआ कि पिताजी अपने को कुँअर लिख सकें इसके लिए किया क्या जाय । बड़े-बड़े दिमाग लगे, न जाने कितने उपाय सोचे गये और अन्त में यह निर्णय हुआ कि प्रान्तीय सरकार की बिना जानकारी के यदि भारतवर्ष की दोनों राजधानियों कलकत्त अथवा शिमले में से किसी एक जगह कोई चीज बनवाकर, उस पर लिखवा कर कि "प्रेजेण्टेड बाई कुँअर जीवनदास", वाइसराय से उस चीज का उद्घा-टन करा दिया जाय तो यह समस्या सदा के लिए हल हो जायगी । इस

महान् बुद्धिशाली निर्णय के अनुसार हजारों रुपया लगाकर शिमले की माल रोड पर यह निरर्थक, किसी भी उपयोगी काम में न आने वाला बैण्ड स्टैण्ड बनवाया गया। इस पर वह पत्थर अभी भी लगा हुआ है जिस पर अंग्रेजी में खुदा है "प्रेजेण्टेड बाई कुँअर जीवनदास आफ जबलपुर"। इस बैण्ड स्टैण्ड का उद्घाटन योजना के अनुसार उस समय के वाइसराय ने ही किया था और उसके बाद मेरे पितामह के जीवित रहते तक पिताजी ही अपने को कुँअर नहीं लिखते थे, पर सरकार भी उन्हें कुँअर लिखती थी। वे कुँअर साहब कहलाने ही लगे थे। शिमले में हमने कई अंग्रेजी नाटक भी देखे जो मुझे तो बहुत ही पसन्द आये। कितनी स्वाभाविकता थी उन नाटकों में।

सोलन और शिमला का उस समय का हमारा सुख अपूर्व ही था, इसी लिए कदाचित देवताओं को भी वह सहन न हुआ और कुछ ही दिन बाद मिश्रजी बीमार हो गये।

मिश्रजी को बुखार आना शुरू हुआ। उस समय सोलन में एक वृजमोहन-लाल वर्मा नामक डाक्टर थे। बुखार के दूसरे ही दिन वे बुलाये गये और उन्होंने निदान किया कि बहुत अधिक चलने-फिरने के कारण थकावट से यह बुखार आया है और एक-दो दिनों में निश्चयपूर्वक उतर जायगा। जब चार दिनों के बाद भी वह बुखार न गया तब सोलन में जो थोड़ी-सी सेना रहती थी उस सेना के डाक्टर कर्नल ब्रूस को बुलाया गया। उसने मलेरिया का निदान कर तीस-तीस ग्रेन कुनीन देना आरम्भ किया। जब तीन दिन तक कुनीन देने पर बुखार उल्टा बढ़ा तब कर्नल ब्रूस को एकाएक शक हुआ कि मिश्रजी की गैल-पिंग थाइसेस याने घुड़दौड़ के सदृश दौड़नेवाला क्षय हो गया है। उसने उनके खखार को कसौली जाँच के लिए भेजा और वहाँ से रिपोर्ट भी आ गयी कि थूक में क्षय के कीड़े भरे हुए हैं। मिश्रजी कमजोर रहते ही थे, कई बार उन्हें बुखार भी आ जाता था अतः यह बीमारी असम्भव नहीं मानी गयी।

मिश्रजी की बीमारी आरम्भ होते ही मुझे चिन्ता तो हो ही गयी थी, पर इस निदान के बाद तो मैं पूरा होश में ही न रह सका। जहाँ तक मुझे याद है मैं जीवन में इससे अधिक चिन्तित और दुखी कभी भी न हुआ था। कर्नल ब्रूस ने कह दिया था कि रोगी इतना कमजोर है कि उसे उसकी बीमारी

कभी न बतायी जाय और उसके घर के लोगों को बुला लिया जाय।

मिश्रजी को बुखार आते आठ दिन बीत चुके थे। बुखार आने के बाद नार्मल न हुआ था और बढ़ता ही जाता था। प्रातःकाल १०३ और सन्ध्या को १०४ रहता। सिर में अत्यधिक पीड़ा, हड़फूटन, बेचैनी, पर इतने पर भी आश्चर्य की बात यह थी कि रात को उन्हें नींद आ जाती थी। वे कमजोर तो थे ही आठ दिनों में ही सूख कर काँटा हो गये। उठना-बैठना असम्भव हो गया।

मैं सुबह से शाम और शाम से सुबह तक उनकी तीमारदारी करता। रात को उनके सो जाने पर भी मुझे नींद न आती, चिन्ता तथा दुख के कारण। हाँ, कभी-कभी ऊँघ अवश्य लेता। यह मानव-स्वभाव कुछ ऐसा विचित्र है कि जिस पर इसका अत्यधिक प्रेम होता है, वह यदि बीमार हो जाय तो यह उसकी मंगल कामना नहीं कर सकता, यह उसके लिए बुरी-बुरी कल्पनाएँ ही करता है। कर्नल ब्रूस के इस निदान और कसौली की रिपोर्ट के बाद मुझे मिश्रजी के सम्बन्ध में बुरी-बुरी बातें ही सूझतीं। मुझे अब जीवन में अन्धकार ही अन्धकार दिखायी देता। मिश्रजी के बिना जीवन से लाभ ही क्या ? अनेक बार मिश्रजी से छिपकर मैं रो भी लेता।

जब मैंने मिश्रजी को उनके घर के लोगों के बुलाने के लिए कहा तब वे बिगड़ पड़े। वे बोले कि तुमसे अधिक मेरे लिए मेरा कौन घर का है और उन्होंने किसी को भी न बुलाने के लिए मुझे कसम दिला दी।

अब मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया। मेरी समझ में ही न आता कि मैं करूँ क्या ? पर उसी समय एक ऐसी बात हुई जिससे मैं हर्ष से उछल पड़ा। मिश्रजी के बुखार का दसवाँ दिन था। सवेरे जब मैं उनके कपड़े बदल रहा था तब मैंने देखा कि उनके गले से छाती तक मोतियों के सदृश सफेद फुंसियाँ निकली हुई हैं। मुझे मोतीझरा निकल चुका था अतः मुझे इसमें जरा भी सन्देह न रहा कि मिश्रजी को बड़ा मोतीझरा है। यद्यपि मोतीझरा भी कठिन रोगों में से एक रोग है, पर उसकी मियाद है और गैलपिंग थाइसेस के सदृश असाध्य नहीं। मैंने जबलपुर तार देकर, हमारे घर में जयपुर के रामप्रतापजी नामक एक वैद्य रहते थे, उन्हें बुलवाया। मेरा मोतीझरे का निदान वैद्यजी ने भी माना और २१वें दिन मिश्रजी का बुखार नार्मल हो गया।

इन २१ दिनों में मैंने मिश्रजी की जितनी तीमारदारी की उतनी जीवन में किसी की न की थी, पर मुझे इस तीमारदारी में जो सन्तोष मिल रहा था उसके कारण मुझे शारीरिक कष्ट का अनुभव तक न होता था। कर्नल ब्रूस के गैलपिंग थाइसेस के निदान तक मुझे चिन्ता तो अत्यधिक थी, पर उस चिन्ता में दुःख का मिश्रण न था। ब्रूस के गैलपिंग थाइसेस के निदान के बाद मोती-झरे की फुंसियाँ देखने तक तीन दिनों में मेरी जैसी मानसिक दशा रही थी उसका वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। मोतीझरा जानने के बाद दुःख का निवारण हो गया था और चिन्ता तथा परिश्रम ही रह गये थे।

बुखार नार्मल होने के बाद जब मैंने ब्रूस को फिर बुलाकर मिश्रजी को दिखाया तब वह स्तम्भित हो गया और उसे तथा मुझे दोनों को ही कसौली की रिपोर्ट पर बड़ा आश्चर्य हुआ। कई बार इन निदानों में कैसी भयानक भूलें होती हैं।

मिश्रजी के बुखार उतरने के बाद कोई तीन सप्ताह हम लोग सोलन में और रहे, पर अब यह समय मिश्रजी के बल प्राप्त करने तथा उनकी बीमारी की तीमारदारी में मुझे जो थकावट हुई थी उसके दूर करने में ही गया। मैदानों में लौटते समय दो दिनों को हम लोग फिर शिमला गये।

सन् १९२३ की इस पहाड़ी सैर के बाद सन् १९२९ तक, लगातार सात वर्षों तक, हम लोग हर गर्मी में पहाड़ पर जाते रहे। इसके बाद मेरी पत्नी भी हमारे साथ गयीं। पर इन छै वर्षों में हम लोग शिमला तथा सोलन केवल एक बार ही गर्मियों में और आये, क्योंकि इसके बाद ही मेरे केन्द्रीय असेम्बली और उसके पश्चात्, कौंसिल ऑफ स्टेट में चले जाने के कारण एवं सन् १९२६ में मिश्रजी के केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य हो जाने की वजह से शिमला तो हमें यों ही हर वर्ष जाना पड़ता था। उस समय इन धारा सभाओं का एक अधिवेशन शिमले में जो होता था। सात वर्षों तक गर्मियों में हम जिन पहाड़ों पर गये उनमें थे पचमढ़ी और महाबलेश्वर तथा एक बार सोलन भी।

राजनैतिक जीवन के साथ ही यह दूसरा जीवन भी कितना सुखमय था। हमें अब अपना जीवन पूर्ण जान पड़ता और मिश्रजी तथा मैं सदा कहा करते—"आवर लाइफ इज़ ए रेग्युलर फीस्ट।"

सन् १९२३ के चुनाव और हमारे प्रान्त में स्वराज्य पार्टी की जीत

दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर मास में मौलाना अबुल-कलाम आजाद की अध्यक्षता में हुआ। कांग्रेस के दोनों दलों के झगड़े से घबड़ाये हुए होने से समझौता अवश्यम्भावी था। श्री राजगोपालाचार्य ने वहाँ जाना ही उचित न समझा। स्वराज्य पार्टी वाले तो कोई न कोई सम्मानप्रद समझौता चाहते ही थे। अपरिवर्त्तनवादियों ने इस दृष्टि से समझौता करना चाहा कि इस झगड़े के कारण रचनात्मक काम में भी बाधा पड़ती है, क्योंकि परिवर्त्तन-वादी कौंसिल प्रवेश के साथ-साथ रचनात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से चाहे विरोध न करें, पर उपेक्षा तो करते ही हैं; इस समझौते से इतना तो हो ही जायगा कि कम से कम दोनों पक्ष अपने-अपने काम में लग जावेंगे और इस प्रकार अपरिवर्त्तनवादियों को अपना रचनात्मक कार्य करने का अवसर मिल जायगा। आखिर यह प्रस्ताव पास हो गया कि जिन कांग्रेसवादियों को कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध कोई आन्तरिक आपत्ति न हो उन्हें अगले निर्वाचनों में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की पूरी आजादी है, इसलिए कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार बन्द किया जाता है।

इस प्रस्ताव के द्वारा स्वराज्य पार्टी जो कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम में काफ़ी आगे बढ़ चुकी थी उसके अस्तित्व को सम्मान मान लेने से इस दीर्घकालीन झगड़े की समाप्ति हुई। अब कांग्रेस के मार्ग को निश्चित करने का कार्य समाप्त हो गया। यह बात स्पष्ट हो गयी कि सत्ताधारी कांग्रेसियों के दृष्टिकोण में परिवर्त्तन हो गया है। इस समझौता कराने में प्रधान हाथ मौलाना मुहम्मद अली का था। हम लोग सोलन और शिमला से शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से ताजे होकर लौटे थे। इस समझौते से मेरी ताजगी और बढ़ गयी, यह इसलिए कि एक तो मैं सदा ही समझौते की वृत्ति वाला रहा हूँ, दूसरे धारा सभा में जाने का मेरा मार्ग भी खुल गया, क्योंकि जैसा पहले

कहा जा चुका है कि स्वराज्य पार्टी में रहते हुए भी कांग्रेस की अनुमति के बिना मैं कौंसिल के लिए खड़ा न होऊँगा यह मेरा निश्चय था।

इस प्रमुख प्रस्ताव के अतिरिक्त कांग्रेस के इस विशेष अधिवेशन में रचनात्मक कार्यक्रम को दुगुनी शक्ति देने, हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों को निपटा कर हल निकालने, प्रवासी भारतीयों की दशा पर विचार करने के लिए कमेटियाँ स्थापित की गयीं।

× × ×

कांग्रेस ने सन् १९२० के चुनावों का बहिष्कार किया था। यद्यपि केन्द्रीय असेम्बली और प्रान्तीय असेम्बलियों की सीटें सब भर गयी थीं, परन्तु मतदान के लिए इतने कम मतदाता गये थे कि नैतिक दृष्टि से कांग्रेस के कौंसिल बायकाट का कार्यक्रम सफल माना जाता था।

जिन कौंसिलों का सन् २० में कांग्रेस ने बहिष्कार किया था, उन्हीं कौंसिलों में विधान में कोई परिवर्त्तन हुए बिना ही अब कांग्रेसवादी जा रहे थे। स्वराजिस्ट के नाम से कांग्रेसवादियों के इस दल का अखिल भारतीय नेतृत्व देशबन्धु चित्तरंजनदास और पं० मोतीलाल नेहरू कर रहे थे। जहाँ तक मध्य प्रान्त का सम्बन्ध था मध्य प्रान्त के बरार में श्री अरणे, नागपुर में श्री डा० मुंजे और हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में मैं स्वराज्य पार्टी के सभापति थे। श्री राघवेन्द्र राव इस समय हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त में स्वराज्य पार्टी के सेक्रेटरी के रूप से काम करते थे। विधान के बिना किसी परिवर्त्तन के जिन कौंसिलों का कांग्रेसवादियों ने बहिष्कार किया था उन्हीं में फिर से जाने के विषय में मोतीलालजी ने एक बात कही थी जिसकी प्रायः बड़ी चर्चा होती थी। उन्होंने कहा था—"कन्सिसटैन्सी इज़ दी वर्च्यू ऑफ एन आस।" देशबन्धु चित्तरंजन दास सन् १३ में हमारी कलकत्ते की दूकान के एक मुकदमे में खड़े हुए थे और मोतीलालजी हमारे वकील रहे थे तथा मेरे पिताजी के मित्रों में से थे। अतः ये दोनों ही हमारे कुटुम्ब को अच्छी तरह जानते थे। फिर गत तीन वर्षों में इन दोनों ने असहयोग आन्दोलन के अवसर पर मेरा काम भी देखा था। अतः मैं दोनों का ही विश्वासपात्र था।

असहयोग समाप्त हो चुका था। सत्याग्रह सम्भव न था। अतः स्वराज्य

पार्टी देश में एक नवीन जीवन लायी। देश में चुनाव के अनेक दृश्य इस जीवन के प्रमाण थे।

मध्य प्रान्त और बरार में सन् १९२३ के चुनाव अन्य प्रान्तों की अपेक्षा भी बड़ी सरलता से हो गये। इसका प्रधान कारण यह तो था ही कि सन् २० के असहयोग आन्दोलन के कारण अन्य प्रान्तों के सदृश हमारे प्रान्त में भी इस समय कांग्रेस की ही तूती बोलती थी, पर इसके सिवा इसका यह कारण भी था कि हमारे प्रान्त के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्त्ता आरम्भ से ही स्वराज्य पार्टी के साथ थे। यद्यपि झण्डा सत्याग्रह इस प्रान्त में ही हुआ था तथापि सेठ जमनालाल बजाज और उनके कुछ मुट्ठी भर साथियों को छोड़ हमारे प्रान्त के चोटी के राजनैतिक नेताओं ने इस सत्याग्रह में कोई भाग न लिया था। समूचे मध्य प्रान्त और बरार में हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त को इन चुनावों में सबसे अधिक सफलता मिली। इसका वही कारण था जिसका उल्लेख अन्य प्रसंगों में पहले हो चुका है। जहाँ मराठी मध्य प्रान्त और बरार में पुरानी राजनैतिक चेतना थी तथा दोनों जगह राजनीति में भाग लेने वाले कई दल थे वहाँ हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त की वर्त्तमान राजनैतिक चेतना १९२० के बाद ही आयी थी और यहाँ उस समय कांग्रेस को छोड़कर अन्य कोई राजनैतिक दल न था। कांग्रेसवादियों में अपरिवर्त्तनवादियों ने इस चुनाव में कोई दिलचस्पी नहीं ली। सारे चुनाव स्वराज्य पार्टी ने लड़े और स्वराजिस्ट ही उम्मीदवार भी खड़े हुए। श्री राघवेन्द्र राव, पं० रविशंकर शुक्ल, ठाकुर छेदीलाल, श्री दुर्गाशंकर मेहता, श्री घनश्याम सिंह गुप्त, श्री श्यामसुन्दर भार्गव आदि प्रान्त के सभी प्रमुख नेता प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़े हुए और अनेक निर्विरोध तथा अनेक प्रचण्ड बहुमत से चुन लिये गये। प्रान्त के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में केवल मैं उत्तरीय जिलों के मालगुजारों की ओर से केन्द्रीय असेम्बली के लिए खड़ा हुआ और निर्विरोध चुन लिया गया। मालगुजारों की ओर से किसी कांग्रेसवादी का निर्विरोध चुनाव एक आश्चर्यजनक बात मानी गयी थी। पर जैसा पहले कहा जा चुका है मेरे ताऊ श्री वल्लभदासजी के कारण हमारे प्रान्त के मालगुजार और सम्पत्तिशाली व्यक्ति भी कांग्रेस के ही साथ थे। उस समय के भारतीय विधान में सभी प्रान्तों में जमींदारों आदि के प्रतिनिधित्व के लिए

स्थान सुरक्षित थे। मुझे छोड़कर किसी भी प्रान्त का जमींदारों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस को न मिल सका था।

जहाँ-जहाँ चुनाव निर्विरोध नहीं हुआ वहाँ-वहाँ चुनाव में खूब चहल-पहल रही। उम्मीदवारों के भिन्न-भिन्न रंग, उन रंगों में उनकी चुनाव की सारी सामग्री, कांग्रेसवादियों के इन रंगों के साथ कांग्रेस के तिरंगे झण्डे, चुनाव के पहले के प्रचार और कनवैसिंग, चुनाव के दिन मोटरों एवं लारियों की दौड़, चुनाव-स्थल पर पृथक्-पृथक् उम्मीदवारों की अपने-अपने रंगों में अपने-अपने स्थलों की सजावट, बालिग मताधिकार न होने पर और मतदाताओं की संख्या सीमित रहने पर भी उनका आवागमन एवं शेष जनता की तमाशा देखने के लिए उपस्थिति और जयजयकार, सब मिलकर एक नया जीवन-सा आ गया और असहयोग के अन्तिम दिनों की मुर्दनी का अन्त-सा हो गया। तीन वर्ष पहले भी ये चुनाव हो चुके थे, परन्तु उस समय कांग्रेस ने इन चुनावों का बहिष्कार किया था अतः एक तो अधिकतर लोग बिना विरोध के ही चुन लिये गये थे और जहाँ कहीं चुनाव हुआ भी था, बहुत कम मतदाता मत देने आये थे। शेष जनता द्वारा तो उन चुनावों का पूर्ण बहिष्कार हुआ था।

जब सारे चुनाव हो चुके तब मालूम हुआ कि मध्य प्रदेश और बरार तथा बंगाल को छोड़ अन्य किसी प्रान्त में कांग्रेसवादियों का बहुमत न हो पाया था और केन्द्र में पं० मोतीलाल के नेतृत्व में कांग्रेस दल सबसे बड़ा दल था।

चुनाव के बाद समस्त देश में चुने हुए सदस्यों का बड़ा सम्मान किया गया, हमारे प्रान्त में सबसे अधिक।

जैसा अभी कहा गया है बंगाल और मध्य प्रान्त दो प्रदेशों में स्वराज्य दल का बहुमत हुआ था। नियमानुसार बंगाल और मध्य प्रान्त दोनों जगह के गवर्नरों ने स्वराज्य पार्टी के नेताओं को मन्त्रिमण्डल निर्माण करने के लिए निमंत्रित किया। बंगाल में स्वराज्य पार्टी के नेता देशबन्धुदास थे। उन्होंने मन्त्रिमण्डल बनाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। मध्य प्रान्त-बरार में स्वराज्य पार्टी के नेता यद्यपि डाक्टर मुंजे थे तथापि प्रदेश में तीन कांग्रेसी प्रान्त होने के कारण डा० मुंजे की अधीनता में हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त के स्वराजी सदस्यों के नेता श्री राघवेन्द्र राव और बरार के श्री तांबे थे। श्री

राघवेन्द्र राव ने प्रान्त का हित मन्त्रिमण्डल बनाने में है यह दलील दे स्वराज्य पार्टी के प्रतिज्ञा-पत्र के विरुद्ध मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न किया। डाक्टर मुंजे ने इस समय पूरी राजनैतिक ईमानदारी दिखायी, उन्होंने कहा कि यदि हमें स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम पर विश्वास नहीं है तो हमें असेम्बली से त्याग-पत्र देकर फिर से चुनाव लड़ना चाहिए, पर जब तक हम यह नहीं करते तब तक स्वराज्य पार्टी के जिस प्रतिज्ञा-पत्र पर हमने हस्ताक्षर किये हैं उसे हम नहीं तोड़ सकते। डाक्टर मुंजे के इस रुख के कारण श्री राघवेन्द्र राव को पार्टी में बहुमत न मिल सका और मध्य प्रान्त बरार में भी मन्त्रि-मण्डल न बन पाया।

कौंसिल प्रवेश ने जब असहयोग के एक बहिष्कार को समाप्त किया तब अदालतों और कालेजों का बहिष्कार भी न रह सकता था। उन वकीलों ने, जिन्होंने एक वर्ष के लिए ही वकालत छोड़ी थी, इसके बहुत पहले से वकालत शुरू कर दी थी, रहे हुए वकीलों ने अब शुरू कर दी। हमारे यहाँ जो तीन वर्षों से नालिशें न होती थीं, फिर से होने लगीं। पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने भी पुनः कालेज जाने की सोची। मैं इसके पक्ष में न था, परन्तु मिश्रजी ऐसे विद्या-प्रेमी थे कि उन्होंने मेरे सदृश मित्र का भी इस विषय में कहना न माना। जबलपुर के राबर्टसन् कालेज में बी० ए० में वे भर्ती हो गये। उनके कालेज जाने-आने के लिए हमारे यहाँ से एक घोड़े की बग्घी उनके लिए नियुक्त कर दी गयी।

केन्द्रीय असेम्बली का जीवन और कार्य

"कौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
लीडर को ग़म बहुत है मगर आराम के साथ॥"

यह शेर आधुनिक युग के उर्दू के महाकवि अकबर ने शायद कौंसिलोंके सदस्यों की दिनचर्या और काम देखकर लिखा था।

असहयोग आन्दोलन भारतवर्ष के इस काल का पहला सक्रिय आन्दोलन था और इसे गान्धीजी ने एक विशिष्ट नैतिकता की नींव पर चलाया था, जिससे काम करनेवालों के केवल सार्वजनिक जीवन से ही इस आन्दोलन का सम्बन्ध नहीं था, परन्तु उनके व्यक्तिगत जीवन से भी। असहयोग आन्दोलन में काम करनेवाले अपना व्यक्तिगत जीवन किस कठोर नियंत्रण में चलाते थे इस सम्बन्ध में अपने जीवन का ही मैं पिछले किसी अध्याय में उदाहरण दे चुका हूँ।

धारा सभाओं में प्रवेश करते ही जिन्होंने असहयोग में काम किया था उनकी भी सर्वप्रथम मानसिक दशा में परिवर्त्तन हुआ। फिर से मन कुछ आरामतलबी, कुछ शारीरिक सुख की ओर झुका। और मनोदशा में परिवर्त्तन होते ही दिनचर्या तथा काम की प्रणाली में अन्तर पड़ गया। इसीलिए कौंसिल के वायुमण्डल को गान्धीजी ने जहरीला वायुमण्डल कहा था। जो कुछ हो, परन्तु गान्धीजी का अनुसरण अधिकांश लोगों ने मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी धार्मिक क्षेत्र में थोड़े ही किया था। उनके अनुचर मित्रों में से अधिकतर लोग चाहते थे राजनैतिक स्वराज्य। राजनैतिक स्वराज्य के लिए गान्धीजी ने एक नवीन मार्ग बताया। उस मार्ग के नेता स्वयं गान्धीजी थे और गान्धीजी का चरित्र एक साधु का चरित्र था। अतः जिस ढंग से नेता अपना जीवन चला रहा था उसे अनुयायियों ने भी अपनाने का प्रयत्न किया, परन्तु गान्धीजी के जेल चले जाने के बाद तथा असहयोग आन्दोलन का वह रूप परिवर्तित होने के पश्चात् जब कांग्रेसवादियों ने धारा सभाओं में प्रवेश किया तब वहाँ

के वायुमण्डल के अनुसार अपने जीवन, अपनी दिनचर्या, अपनी वेषभूषा आदि में परिवर्तन कर एक नवीन ढंग से अपना काम शुरू किया। कांग्रेसवादियों की यह कार्य-प्रणाली महाकवि अकबर के उपर्युक्त शेर के सदृश थी और मैं इसे अस्वाभाविक न मान सर्वथा स्वाभाविक मानता हूँ।

मानव की वेषभूषा प्राय: उसकी आन्तरिक भावनाओं का बाह्य प्रदर्शन होती है। खादी तो हमारी नहीं छूटी, पर अब खादी सूती, ऊनी, रेशमी अच्छी से अच्छी मिलने लगी थी। हमारे नेता पं० मोतीलालजी असहयोग आन्दोलन के दिनों में मोटी खादी का कुरता और मोटी खादी की धोती पहनते थे। जब उन्होंने अच्छी से अच्छी खादी की शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहनना शुरू किया तब हम सबने भी उनका अनुसरण किया। वेषभूषा के साथ ही अन्य बातें भी बदलीं।

मेरा भी यही हाल हुआ। पतले दाँतों की कैंची से कटे हुए मेरे बाल फिर से बढ़ गये। वेशभूषा में खादी के कपड़े का उपयोग तो रहा, पर अच्छी से अच्छी खादी का और मैं भी शेरवानी तथा चूड़ीदार पाजामा पहनने लगा। खाने की चीजों की संख्या में जो कमी हुई थी, वह तो असहयोग आन्दोलन की बीमारी के बाद ठीक करदी गयी थी और घूम भटककर जो काम मैंने कांग्रेस में प्रविष्ट होते ही किया था उसमें भी उस बीमारी के बाद परिवर्तन हो गया था। अभी भी मेरा जनता के बीच काम न रह गया हो और घूमना-भटकना सर्वथा बन्द हो यह बात न थी, पर नया मुसलमान बहुत प्याज खाता है इस कहावत के अनुसार पहले वाली बात न रह गयी थी।

कौंसिल प्रवेश से जेल की बात दूर चली गयी यह मान तथा मेरी रहन-सहन में इस प्रकार का परिवर्तन देख मेरे घर के लोगों को तो बहुत सन्तोष हो गया। पिताजी तो इससे भी बहुत प्रसन्न थे कि मैं अब मोतीलालजी के नेतृत्व में काम कर रहा था। उनका और मोतीलालजी का घनिष्ट सम्बन्ध जो था।

इस समय केन्द्रीय धारा सभा में देश के अनेक महान व्यक्ति थे। विरोधी पक्ष के नेता मोतीलालजी नेहरू कोई बड़े अच्छे वक्ता न थे, परन्तु उनके शाही व्यक्तित्व का जितना प्रभाव पड़ता अन्य किसी का नहीं। पं० मदनमोहन

मालवीय का धारा प्रवाह जैसा भाषण चलता और घण्टों तक एकसा वैसा किसी का भाषण नहीं। श्री मोहम्मदअली जिन्ना के बोलने का अपना एक विशिष्ट ढंग था। पूर्व तैयारी कर शायद वे कभी न आते और जिस विषय पर भी उन्हें बोलना होता वे सदा अन्त में बोलने का प्रयत्न करते। कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा लेकर उनका एक अद्भुत भाषण हो जाता और उनके बोलने में जो एक विशेष प्रकार का उतार-चढ़ाव रहता उसके कारण उनके भाषण का प्रभाव भी खूब पड़ता। श्री बिट्ठलभाई पटेल एक वर्ष के बाद असेम्बली के अध्यक्ष हो गये। उन्होंने जिस प्रकार अध्यक्षता का कार्य चलाया वह भारत के स्वतन्त्र होने के बाद भी धारा सभाओं के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखेगा। श्री बिट्ठलभाई पटेल के सफेद दाढ़ी थी। सफेद 'विग' के बीच में उनकी सफेद दाढ़ी खूब खिलती। सर पुरुषोत्तमदास के आर्थिक समस्याओं पर बड़े मँजे हुए भाषण होते यद्यपि वे सभी पूँजीवादी सिद्धान्तों के समर्थन में रहते। कुछ समय बाद लाला लाजपतराय भी केन्द्रीय असेम्बली में आ गये। जब वे बोलते तब तो असेम्बली का भवन काँप उठता।

सरकारी पक्ष में कुछ प्रधान व्यक्ति अंग्रेज थे और कुछ भारतीय। सर मालकम हेली, सर अलैकजैण्डर मुडीमैन, सर चार्ल्स इनिस सर बैसल ब्लैकिट सर मुहम्मद शफी, सर बी० शर्मा प्रभावशाली व्यक्ति तथा अच्छे वक्ता थे परन्तु अंग्रेजों को छोड़ भारतीय जब उस समय की सरकार का समर्थन करते तब एक विडम्बना-सी जान पड़ती।

इन दिनों धारा सभाओं में चुने हुए सदस्यों के अतिरिक्त सरकार कुछ सदस्यों की नामजदगी भी करती, पर बहुमत चुने हुए सदस्यों का रहता। नामजद सदस्यों में कुछ सरकारी वैतनिक व्यक्ति और कुछ गैरसरकारी सदस्य भी रहते। इन नामजद सदस्यों में दो को छोड़ शेष सब सदस्य सदा सरकार के पक्ष में ही अपना मत देते। दो अपवाद थे एक मजदूर नेता श्री एम० एन० जोशी और दूसरे एक ईसाई डाक्टर दत्ता। ये दोनों सज्जन नामजद होने पर भी सदा सरकार के विरोध में ही बोलते तथा सरकार के विरुद्ध ही अपना मत देते। नामजद गैरसरकारी सदस्यों में एक कैप्टिन हीरासिंह जितने सरकार के हिमायती थे उतने शायद सरकार के अंग्रेज होम मेम्बर भी नहीं। गलत-

सलत कैसी भी अंग्रेजी में उनका सरपट भाषण चलता। कितनी हँसी होती उनके भाषण पर और वे तो यही मानते कि उन्होंने अपने भाषण से सारी असेम्बली को मुग्ध कर दिया है।

इस देश में रहनेवाले यूरोपियनों के लिए भी उस समय की केन्द्रीय असेम्बली में कुछ स्थान सुरक्षित थे। सारे यूरोपियन सदस्य मिलकर काम करते। इनका यूरोपियन ग्रूप के नाम से एक पृथक् संगठन था। इस ग्रूप के नेता उस यमय थें सर डारसी लिंडसे। बड़े मिलनसार और भले आदमी। इस ग्रूप के दो सदस्यों ने अपने भाषणों के कारण असेम्बली में अपनी बड़ी प्रतिष्ठा बना ली थी। इनके नाम थे कर्नल क्राफर्ड और मि० ग्रिफित्स। यूरोपियन ग्रूप हर विषय पर खूब अध्ययन करता और अलग-अलग विषय पर अलग-अलग व्यक्ति बोलते पर सब सदा सरकार का समर्थन करते और सरकार के पक्ष में ही अपना मत देते। यह यूरोपियन ग्रूप अपनी पार्टी के संगठन और अध्ययन पर सबसे छोटा होते हुए भी सबसे अधिक खर्च करता।

जहाँ तक कौंसिलों का काम था उसमें एक बड़ी भारी विशेषता थी। इतने आराम के साथ काम करने पर भी उस काम का जितना प्रचार होता था वह असहयोग के समय के अत्यधिक परिश्रम से किये हुए काम का भी नहीं। छोटा-सा प्रश्न, मामूली-सा प्रस्ताव, साधारण-सा भाषण सभी पत्रों में छपते थे और बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ। इसीलिए कितने आतुर रहते थे वहाँ के सदस्य कुछ न कुछ करने के लिए। इन प्रश्नों, प्रस्तावों, भाषणों आदि का कोई परिणाम न होता था, पर बिना कोई परिणाम निकले ही प्रश्नों को पूछ लेने, प्रस्तावों को रख देने और भाषणों को दे डालने से ही सदस्यों का कर्त्तव्य पूरा हो जाता था। गीता में कहे हुए "कर्मण्येवा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" वाक्य को कार्यरूप में परिणत करने का इससे बड़ा दृष्टान्त मिलना कठिन है।

असेम्बली के इन सदस्यों में से कई से मेरा गत तीन वर्षों के सार्वजनिक जीवन में सम्पर्क पड़ चुका था। बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओं तक में जब इनसे बड़ी आरजू मिन्नत की जाती तब कहीं इनका मुँह खुलता, पर असेम्बली में बोलने के लिए ये कितने उत्सुक रहते। बार-बार उचक-उचक कर खड़े

बड़ी आतुरता से अध्यक्ष की ओर देखते। अध्यक्ष महोदय जिसका नाम पुकारते कैसा हर्ष होता उसे मानों आठों सिद्धि और नवों निधि मिल गयी हों। जिनका नाम न पुकारा जाता वे इस प्रकार बैठ जाते अपनी सीट पर जैसे उन्हें नरक में ढकेल दिया गया हो। और जिनका भाषण हो जाता दूसरे दिन कितने चाव से अखबार देखते। अखबार के कालमों की पंक्तियाँ गिनते कि कितनी जगह दी गयी है, उनके भाषणों को। यदि किसी के भाषण के साथ उसकी तस्वीर छप जाती तब तो वह मानता कि वह अमर ही हो गया है।

रूस के एक प्रसिद्ध साहित्यकार तुर्गनेव ने लिखा है—"ऐसा कोई जीवित व्यक्ति नहीं हो सकता जिसकी आलोचना करने का हम सबको अधिकार न हो।" जब मैं धारा सभा के अपने साथियों के साथ अपने सम्बन्ध में भी उपर्युक्त बातें लिख रहा हूँ तब इसी अधिकार का उपयोग कर रहा हूँ।

अब हम थोड़ा कौंसिल में हुए काम पर विचार करेंगे।

हम लोग कांग्रेसवादी धारा सभाओं में कोई छोटे कार्य करने को नहीं गये थे, हम वहाँ गये थे स्वराज्य की स्थापना के लिए। परन्तु केन्द्रीय धारा सभा का उस समय जैसा संगठन था उसमें हम वहाँ बहुमत में न पहुँच सके थे। अतः सबसे पहले इस बात का प्रयत्न हुआ कि राष्ट्रीय विचारधारा रखने वालों का वहाँ बहुमत बनाया जाय। श्री जिन्ना भी केन्द्रीय धारा सभा में पहुँचे थे और यद्यपि चुनाव के समय उनका कोई दल नहीं था परन्तु चुनाव के बाद कुछ चुने हुए सदस्यों का इण्डिपैण्डैण्ट दल के नाम से एक दल बना। इसके नेता चुने गये श्री जिन्ना। अब प्रयत्न इस बात का आरम्भ हुआ कि स्वराज्य पार्टी और इण्डिपैण्डैण्ट पार्टी मिलकर एक दल बन जाय। उस समय श्री जिन्ना संप्रदायवादी न हुए थे अतः इस प्रयत्न में सफलता मिल गयी और स्वराज्य पार्टी तथा इण्डिपैण्डैण्ट पार्टी मिलकर नैशनलिस्ट पार्टी बन गयी। परन्तु इस प्रकार एक दल बन जाने के बाद भी उसका नेता कौन हो यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। जब मालूम हुआ कि इसका सुलझना आसान नहीं तब एक विचित्र बात तय हुई जो शायद दुनिया की किसी धारा सभा के किसी दल में न उसके पहले हुई थी और न उसके बाद ही अब तक हुई। यह बात थी

नैशनलिस्ट पार्टी को बिना नेता के रहने दिया जाय। जब पार्टी की बैठक होती मोतीलालजी सभापति का काम करते और जब असेम्बली में पार्टी की ओर से कोई आवश्यक वक्तव्य देना होता तब पहले मोतीलालजी कुछ कहते और उसके तुरन्त बाद जिन्ना साहब। आगे चलकर इसका नतीजा भी निकला बहुत दिन तक यह दल नहीं चल पाया। पर शुरू-शुरू में तो इस दल के कारण राष्ट्रीय विचारवालों का केन्द्रीय असेम्बली में बहुमत हो ही गया।

इस बहुमत के बनने के बाद स्वराज्य सम्बन्धी माँग रखने का प्रश्न आया। दीवान बहादुर टी० रंगाचारी का इस सम्बन्ध में ता० ४ फरवरी सन् २४ के लिए बैलट से एक प्रस्ताव निकल आया था। इस प्रस्ताव की शब्दावली निम्नलिखित थी—

> This Assembly recommends to the Governnor General in Council that he be pleased to take at a very early date the necessary steps (including if necessary pricuring the appointment of a Royal commission) for revising the Government of India Act so as to secure for India full self-governing Dominion status within the British Empire and provincial autonomy in the Provinces.

ता० ८ फरवरी को पं० मोतीलालजी ने इस प्रस्ताव के सुधार के रूप में नीचे लिखा प्रस्ताव रखा—

> This Assembly recommends to the Governor General in Council to take steps to have the Government of India Act revised with a view to establish full responsible Government in India and for the same purpose–(a) to summon at an early date a representative Round Table Conference to recommend with due regard to the protection of the rights and interests of important minorities the scheme of a constitution for India; and (b) after desolving the central legislature to place the said scheme for approval before a newly elected Indian Legislature for its approval and submit the same to the British Parliament to be embodied in a statute.

इस प्रस्ताव और इस सुधार पर बड़े ऊँचे स्तर पर बहस हुई। यह बहस कई दिन चली। अन्त में श्री रंगाचारी ने नेहरूजी का सुधार स्वीकार कर

लिया और ता० १८ फरवरी को यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। प्रस्ताव पक्ष में ७६ मत और विपक्ष में ४८ मत आये। उस समय की असेम्बली में इस प्रकार का प्रस्ताव इतने बड़े बहुमत से स्वीकृत होना एक विशेषता मानी गयी।

जब इस प्रस्ताव पर कोई सन्तोषजनक कार्रवाई न हुई तब बजट के अनुदानों के समय प्रथम दिन १० मार्च २४ को चार अनुदान अस्वीकृत कर दिये गये। इन पर जो बहस हुई वह भी राजनैतिक विषय को ही मद्देनजर रख कर। यह बहस भी बड़े ऊँचे स्तर की थी। अनुदानों की अस्वीकृति के पक्ष में ६३ और विपक्ष में ५६ मत आये।

मामला और आगे बढ़ा। १७ मार्च को राजनैतिक बिना पर ही फाईनेंस बिल अस्वीकृत कर दिया गया। इसे अस्वीकार करने के पक्ष में ६० और विपक्ष में ५७ मत थे।

ता० १८ फरवरी को जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके फलस्वरूप सरकार ने सर अलैकजैण्डर मुडीमन की अध्यक्षता में राजनैतिक सुधारों की जाँच के लिए एक कमेटी बनायी जिसकी रिपोर्ट स्वीकृत करने के लिए ७ सितम्बर को सरकार की ओर से प्रस्ताव रखा गया। इस पर भी पण्डित मोतीलालजी ने एक लम्बा सुधार रखा। सरकारी प्रस्ताव को केवल ४५ वोट और मोतीलालजी के सुधार को ७२ वोट मिले। मोतीलालजी के इस सुधार पर केन्द्रीय असेम्बली में मेरा पहला भाषण हुआ। उस समय नियम था कि जो सदस्य अंग्रेजी जानता हो उसे अंग्रेजी में ही बोलना होगा अतः मेरा यह भाषण अंग्रेजी में हुआ और इसके बाद जब तक इस नियम में ढीलापन नहीं आया तब तक जितने समय भी मैं केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में रहा मुझे अंग्रेजी में ही बोलना पड़ा।

केन्द्रीय धारा सभा की आरम्भिक इस सारी वैधानिक कार्रवाई का तार्किक परिणाम होना चाहिए था करबन्दी का आन्दोलन, पर देश इसके लिए उस समय तैयार न था। सरकार भी यह जानती थी। अतः इसके बाद सन् ३० के सत्याग्रह आरम्भ होने तक लगभग ६ वर्ष तक हम लोग धारा सभाओं में रहे और धारा सभाओं का काम भी चलता ही रहा, पर आरम्भ का जो जोश था वह धीरे-धीरे घटता गया। ज्वार की जगह भाटा आ रहा था।

सन् २४ और २५ की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

सन् १९२४ के आरम्भ में गान्धीजी की भयंकर बीमारी के समाचार से देश में भारी उदासी छा गयी। "अपेंडिसाइटिस" पीड़ित गान्धीजी का जब १२ जून को आपरेशन हुआ तब सारे देश में ऐसी चिन्ता के बादल छाये जैसे इसके पूर्व कभी न देखे गये थे। उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए समस्त देश में सभाओं के बीच और मन्दिरों, मस्जिदों में सामूहिक प्रार्थनाएँ की गयीं। उस समय अपेंडिसाइटिस का आपरेशन बड़ा भयानक माना जाता था, आज-कल के सदृश साधारण नहीं। भगवत्-कृपा से गान्धीजी मौत के मुँह से सकुशल लौट आये तथा ५ फरवरी को उनको कारावास की अवधि पूरी होने के पहले ही बिना शर्त छोड़ दिया गया।

विश्राम के लिए कुछ दिन महात्माजी जुहू में जाकर ठहर गये। यद्यपि स्वराज्य पार्टी वाले हम लोग कौंसिलों में पहुँच चुके थे तो भी अभी आपसी फूट बढ़ती जा रही थी। हमें आशा थी कि यदि गान्धीजी मुक्त होते तो यह पिछले वर्षों का कटु वातावरण उत्पन्न ही नहीं होता, क्योंकि गान्धीजी अपने अपरिवर्त्तन के हिमायती अनुयायियों जैसे हठी नहीं हैं। वहाँ गान्धीजी की रिहाई के उपरान्त अपरिवर्त्तनवादी यह आशा लगा बैठे कि अब असहयोग का कार्य-क्रम फिर से आरम्भ हो जायगा। मैं यद्यपि स्वराज्य पार्टी में अवश्य था और उसी के टिकट पर केन्द्रीय असेम्बली में चुना भी गया था, तब भी गान्धीजी के प्रति मेरी अटूट श्रद्धा थी। अब स्वराज्य पार्टी को यह चिन्ता हुई कि दिल्ली और कोकोनाडा में प्राप्त विजयों के उपरान्त अपने ऊपर का कलंक गान्धीजी की स्वीकृति और सहमति से धो लिया जाय।

देशबन्धु चित्तरंजनदास तथा पं० मोतीलाल नेहरू गान्धीजी से भेंट करने जुहू पहुँचे तथा वहाँ वे कुछ दिन ठहरे और समझौते की बातचीत चलती रही। पर गान्धीजी के असहयोग के पक्ष में होने के तथा उस पर अभी भी जोर देने के कारण स्वराज्य पार्टी के इन नेताओं से उनका मतैक्य हो न

सका। फिर भी यह बुद्धिमानों का मतभेद था अतएव बड़े शिष्टतापूर्वक एक दूसरे की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए समझौते की असफलता के विषय में दोनों पक्षों ने अपने-अपने वक्तव्य निकाले।

गान्धीजी के वक्तव्य का सारांश था कि वे अब भी बहिष्कारों के पक्ष में हैं तथा उनकी राय में कौंसिलों में जाना असहयोग की नीति के विरुद्ध है, पर अब जब देशबन्धु और नेहरूजी आदि कौंसिलों में पहुँच ही गये हैं, वे इस सम्बन्ध में वाद-विवाद से कोई लाभ नहीं देखते। उन्होंने अपरिवर्त्तनवादियों को रचनात्मक काम में लग जाने को कहा।

दोनों पक्षों ने अपने मत-वैभिन्य को किन शब्दों में व्यक्त किया था इसके लिए उनके वक्तव्यों के यहाँ कुछ उद्धरण दिये जाते हैं, क्योंकि अपने पक्ष का आग्रह पर साथ ही समझौते की भावना का दोनों ओर कैसा सम्मिश्रण था यह दृष्टव्य है।

गान्धीजी का वक्तव्य—

"यदि स्वराजियों को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा तो मेरे जैसे संशयशील व्यक्तियों को अपनी भूल अवश्य ज्ञात हो जायगी और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियों का मोह दूर हो गया तो मैं जानता हूँ कि वे देशभक्त हैं और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेंगे।"

स्वराजी वक्तव्य—

"हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारी राय में इस सिद्धान्त में उन सभी कामों को जिनके द्वारा राष्ट्रीय जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालनेवाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है। हम उन्हें (गान्धीजी को) आश्वासन देते हैं कि ज्यों ही हमें मालूम हो जायगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थपूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौंसिलों को छोड़कर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में, यदि वह स्वयं ही उस समय तक उसके लिए तैयार न कर दिया गया हो तो, उनकी सहायता करेंगे। तब हम बिना किसी हीले-हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस के संगठन के द्वारा उनके झण्डे के

नीचे काम करेंगे जिससे हम सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस प्रोग्राम कर सकें।"

इस प्रकार इतना मत-वैभिन्य होते हुए भी दोनों पक्षों ने शिष्टता नहीं छोड़ी। पर मैं यह अवश्य कहूँगा कि जैसी गान्धीजी के प्रति मेरी अटूट श्रद्धा थी वैसी कम स्वराजियों के मन में थी। इसी श्रद्धा के कारण मेरा पण्डित मोतीलालजी नेहरू से अचानक एक संघर्ष हो गया। बात इस प्रकार थी—

जुहू में समझौते के असफल हो जाने के कारण यद्यपि दोनों पक्षों ने अपने-अपने वक्तव्यों में शिष्टता ही दर्शायी थी, पर समझौता न होने से पण्डित मोतीलालजी क्रोध से तिलमिलाते हुए जुहू से सीधे शिमला पहुँचे। शिमला पण्डित जी के आने का कारण था केन्द्रीय असेम्बली का विशेष अधिवेशन, जो टाटा के लोहे के उद्योग को संरक्षण देने के लिए एक विशेष विधेयक पर विचार करने को बुलाया गया था। असेम्बली के अन्य सदस्यों के साथ मैं भी शिमला पहुँच गया था।

असेम्बली के इस अधिवेशन की कार्रवाई में टाटा के लोहे के उद्योग को संरक्षण देने के कानून को पास करने के सिवा और कोई काम न था और इस विधेयक को कानून में परिणत करने के काम में स्वराज्य पार्टी ने सरकार का समर्थन किया।

इसी अवसर पर डाक्टर मुंजे ने अखबारों में जुहू के समझौते की असफलता पर एक बयान दिया और इस वक्तव्य में कहा कि जहाँ तक मध्य प्रान्त का सम्बन्ध है वहाँ के लोग अब गान्धीजी का अनुसरण करने को तैयार नहीं।

मुझे डाक्टर मुंजे का यह वक्तव्य गलत जान पड़ा और डाक्टर मुंजे के वक्तव्य का खण्डन करते हुए मैंने अखबारों को एक बयान दिया जिसमें कहा कि डाक्टर मुंजे पूरे मध्य प्रान्त की ओर से बोलनेवाले कोई नहीं, वे चाहे मराठी भाषा-भाषी नागपुर कमिश्नरी के छोटे से मराठी मध्य प्रान्त का हाल जानते हों, पर जहाँ तक म य प्रान्त के हिन्दी भाषा-भाषी चौदह जिलों का सम्बन्ध है, वे चौदह जिले गान्धीजी पर ही श्रद्धा रखते हैं और उन्हीं का अनुसरण करेंगे।

डाक्टर मुंजे के बयान पर मेरा उत्तर उस दिन पत्रों में छपा जब केन्द्रीय असेम्बली का यह अधिवेशन समाप्त हो रहा था। उसी दिन दो-चार दिन

विश्राम करने के लिए मोतीलालजी सोलन आये। मैं भी सोलन गया और पण्डितजी से मिलने पहुँचा। जब मैं मोतीलालजी से मिलने गया उस समय वे कुछ लिख रहे थे और उनकी टेबिल पर कुछ अखबार पड़े हुए थे। मेरी तरफ एक बार आँख उठाकर देखने के सिवा उन्होंने मेरे अभिवादन का उत्तर भी न दिया और जो कुछ वे लिख रहे थे उसे समाप्त कर सामने रखे हुए अखबारों से एक अखबार उठा उसे मेरे सामने जोर से पटकते हुए बड़े क्रोध में उन्होंने कहा—"यह बयान आपने अखबारों को दिया है ?"

मैंने अखबार देखा। डाक्टर मुंजे के उत्तर में जो वक्तव्य मैंने दिया था वही उसमें छपा था।

पण्डितजी ने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही और जोर से कहा—"दो स्वराजिस्ट एक दूसरे के खिलाफ इस तरह अखबारों को बयान दें, यह मुझे जरा भी मंजूर नहीं। डाक्टर मुंजे ने जो कुछ कहा था बिल्कुल ठीक कहा था। आपके सूबे में ही नहीं इस वक्त तमाम हिन्दोस्तान में कोई गान्धीजी की बात मानने को तैयार नहीं।" जुहू में समझौता न हो सकने के कारण इस समय पण्डितजी गान्धीजी से नाराज थे, उसी क्रोध का कुछ अंश आज मुझ पर निकल रहा था।

मैं मोतीलालजी से बिल्कुल सहमत न था और मेरे प्रति वे इस समय जैसा व्यवहार कर रहे थे, उस प्रकार के व्यवहार का अभ्यस्त न रहने के कारण मुझे वहाँ ठहरने का एक-एक क्षण भारी हो रहा था, पर मैंने उनसे प्रत्यक्ष में कुछ न कहना ही उचित समझा और किसी तरह अपना पिंड छुड़ा जहाँ मैं ठहरा हुआ था वहाँ लौट आया।

मैं जल्दी ही जबलपुर आया। पण्डितजी के सोलन के व्यवहार ने मुझे इतना क्षुब्ध कर दिया था कि मैंने वाइसराय के नाम असेम्बली से अपना त्याग-पत्र लिख तथा स्वराज्य पार्टी के खजानची पद एवं उसकी सदस्यता से त्याग-पत्र लिख इन तीनों त्याग-पत्रों को रजिस्ट्री से पण्डितजी को इलाहाबाद भेज दिया। हाँ, कांग्रेस की सदस्यता से मैंने कोई त्याग-पत्र नहीं दिया।

कुछ ही दिन बाद एक दिन मुझे पण्डितजी का तार मिला कि वे दूसरे दिन प्रातःकाल जबलपुर पहुँच रहे हैं। पण्डितजी का इस प्रकार जबलपुर आना कोई

नयी बात न थी। जब कभी वे प्रयाग से नागपुर जाते, पहले जबलपुर आते, गोविन्द भवन में ठहर मुँह-हाथ धो, चाय ले मेरी मोटर पर नागपुर रवाना होते। नागपुर से वे मेरी मोटर पर ही जबलपुर लौटते और जबलपुर से रेल में प्रयाग चले जाते। मैंने समझा कि सदा के समान इस बार भी पण्डितजी नागपुर जा रहे होंगे अतः उनके नागपुर जाने के लिए मोटर तैयार कर उन्हें लेने मैं स्टेशन पर पहुँचा।

उस दिन फर्स्ट क्लास के डब्बे से उतरते हुए पण्डितजी ने जो कुछ कहा था उसका एक-एक शब्द मुझे अब तक जैसा का तैसा याद है। वे बोले, "कहो, मुझे देखने के बाद भी तुम्हारी ख़फ़गी दूर हुई या नहीं ?"

मेरी ख़फ़गी सचमुच दूर न हुई थी। जब मेरे पास उनका पहुँचने का तार पहुँचा था तब शिष्टाचार की दृष्टि से मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उन्हें लेने जाता और सदा के समान उनके नागपुर जाने की व्यवस्था कर देता। अतः मैंने बातचीत का सिलसिला दूसरी ओर करते हुए कहा—"पण्डितजी, अभी तो आप नागपुर जा रहे हैं। सारा प्रबन्ध ठीक है। वहाँ से लौटने पर बातें हो जायँगी।"

"नहीं, नहीं, मैं नागपुर जाने को नहीं आया हूँ। तुम्हारी ख़फ़गी के सबब तुम्हें मनाने आया हूँ।"

पण्डितजी की बात सुन मैं अवाक् रह गया। भावुकता का तो मैं जीवन भर शिकार ही रहा हूँ। मेरी आँखों में आँसू छलछला आये। पण्डितजी से मेरी भावुकता छिपी न रही। उन्होंने स्टेशन पर ही मेरे स्तीफों को फाड़कर फेंक दिया।

दिन भर मोतीलालजी गोविन्द भवन में रहे। पिताजी से मिलकर मेरी प्रेमभरी शिकायत की और रात की गाड़ी से प्रयाग लौट गये।

यदि मोतीलालजी को क्रोध आता था तो उसका बड़ा से बड़ा परिमार्जन करना भी। इस दृष्टि से मोतीलालजी में जो महानता थी जवाहरलालजी में वह नहीं। सार्वजनिक जीवन में चाहे जवाहरलालजी मोतीलालजी से कितने ही बड़े क्यों न हो गये हों, पर मोतीलालजी में जो व्यक्तिगत महानता थी उसके पासंग में भी जवाहरलालजी नहीं पहुँचे हैं।

इसके कुछ समय बाद ही मुझे एक पुत्र और प्राप्त हुआ। इसका नाम जगमोहनदास रखा गया।

× × ×

यहाँ जुहू की वार्त्तालाप भंग हो जाने के बाद की भी कुछ घटनाओं का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। गान्धीजी ने जुहू से दिये गये अपने एक वक्तव्य में यह कहा था कि कांग्रेस के संगठन के विषय में मेरे विचार कुछ कट्टर हैं अतएव उन्हें बाद में बतलाऊँगा। बाद में अपने कुछ सिद्धान्तों को मद्दे-नजर रखते हुए गान्धीजी ने कांग्रेस संगठन के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव प्रसारित किये उनके कारण कांग्रेस में, उन स्वराजियों का जो बहुमत में थे, रहना कठिन-सा प्रतीत होने लगा। पंच-बहिष्कारों (कौंसिल, अदालत, विद्यालय, शराब, विदेशी वस्त्र) के अतिरिक्त कांग्रेस सदस्यता के लिए २,००० गज सूत प्रति माह कात कर देना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य कर दिया गया। खासकर यह शर्त स्वराजियों को बड़ी कठिन जान पड़ी।

कांग्रेस की इस परिस्थिति के साथ ही देश की उस समय की बदलती हुई अवस्था पर ध्यान देना उचित होगा। उस समय सारे देश में यत्र-तत्र होनेवाले भयंकर दंगों में हिन्दू-मुस्लिम एकता को जड़ से ही हिला डाला था। कलकत्ता, जबलपुर, नागपुर, दिल्ली और कोहाट में बड़े भयंकर दंगे हुए। फिर कठिनाई यह थी कि जिस किसी सम्प्रदाय पर इसकी जिम्मेदारी डाली जाती वही मुकर कर दूसरे पर लांछन लगाता। उदाहरण के लिए एक ही घटना लीजिए। कोहाट में हिन्दुओं का कत्लेआम सा किया गया तथा स्पेशल ट्रेन में बिठाकर वह स्थान हिन्दुओं से खाली करा दिया गया। जब वहाँ की जाँच करने गान्धीजी के साथ मौलाना शौकत अली भी गये तो झगड़े की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में दोनों में मत-वैभिन्य था। एक बार गान्धीजी ने दंगों के लिए हिन्दू महासभा और आर्यसमाज पर जिम्मेदारी डाली तो वे भी उनके विरुद्ध हो गये। आखिर गान्धीजी ने इस अभीप्सित एकता के लिए प्राणों की बाजी लगा दी और कठिन बीमारी से हाल ही में मुक्त होने पर भी २१ दिन का अनशन ठान दिया। इससे वातावरण में कुछ सुधार सम्भव हुआ।

उधर स्वराज्य पार्टी ने बंगाल, मध्य प्रान्त और केन्द्र में सरकार को अपनी अड़ंगा नीति द्वारा परेशान कर डाला था। बस सरकार ने उन्हें दबाने के हेतु षड्यंत्रों का बहाना लेकर बंगाल क्रिमनल ला लागू कर दिया जिसके कारण श्री सुभाषचन्द्र बोस प्रभृति युवक गिरफ्तार कर लिये गये। अफवाह तो देशबन्धु तक की गिरफ्तारी की भी थी। देश में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों तथा कांग्रेस के भी दो दलों में पूर्ण मतैक्य न होने के कारण सरकार को अपना उल्लू सीधा करते रहने का मौका न मिले इस दृष्टि से गान्धीजी ने स्वयं सरकार की दमन-नीति की घोर निन्दा की और देश की परिस्थिति को देखते हुए सारी बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करने के लिए बेलगाँव के कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर लिया।

गान्धीजी ने यह सभापतित्व स्वीकार करने के पहले स्वराज्य पार्टी से समझौता भी कर लिया। उन्होंने देखा कि असहयोग के बहिष्कारों के कारण लोग कांग्रेस के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम नहीं कर सकते, अतः उन्होंने इन बहिष्कारों को कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया। अब तो स्वराजियों को कुछ भी माँगने भर की देर थी, वे जो भी माँगते उन्हें तत्काल मिल जाता। वैसे एक तो महात्माजी झुकते नहीं थे और यदि झुकते थे तो सोलहों आने। स्वराजियों के प्रति इस सीमा से बाहर की नम्रता को देखकर डा० राजेन्द्रप्रसाद ने जब गान्धीजी से पूछा कि क्या आपका स्वराजियों से कोई पैक्ट हुआ है? तो उत्तर में गान्धीजी बोले, "नहीं, हमारा सम्मान कहता है कि वे जो माँगें, उन्हें दे दो।"

बेलगाँव कांग्रेस के उपरान्त गान्धीजी ने देखा कि उनसे समझौते के बावजूद भी शर्तों को तोड़ा जा रहा है और उनकी नम्रता का बेजा फायदा उठाया जा रहा है। उनकी सूतवाली शर्त को जिसे वे कांग्रेस सदस्यता के लिए अनिवार्य मानते थे, स्वराज्यी नहीं चाहते थे इसी प्रकार दबी जबान से उनके प्रति मरमराहट भी होती रहती थी। उनके पास कांग्रेस में यद्यपि बहुमत था, परन्तु वह इतना संकीर्ण था कि देश की उस समय की परिस्थिति में गान्धीजी की राय से उससे काम नहीं चल सकता था। अतः अन्त में उन्होंने राजनीति से संन्यास लेना ही उचित समझा।

गान्धीजी की नम्रता पूर्ण दृढ़ता और न टलनेवाले हठ के साथ उनमें एक विशेषता यह थी कि यदि वे देखते कि अब उनके नेतृत्व को संशयालु दृष्टि से देखा जाने लगा है, तो नेतृत्व से ही हट जाया करते। इस बार भी उन्होंने यही किया। कुछ वर्षों के लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू के व्यक्तित्व ने गान्धीजी को पृष्ठभूमि में डाल दिया, पर समय की बलिहारी कुछ दिनों बाद वही नेहरू गान्धीजी के बिना काम चलता न देख कलकत्ते के अधिवेशन के लिए गान्धीजी को बुलाने साबरमती भागे आये।

एक बड़े पद के लिए सरकार का मुझे गुप्त निमन्त्रण

सन् १९२५ में हमारे प्रान्त के होम मेम्बर सर मोरोपन्त जोशी का कार्य-काल पूरा हो रहा था। इसके कुछ समय पूर्व ही हमारे प्रान्त के गवर्नर होकर सर मांटेगू बटलर आये थे। सर मांटेगू बटलर सर हारकोर्ट बटलर के भाई थे। बटलर कुटुम्ब ग्रेट ब्रिटेन का एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब माना जाता था और सर हारकोर्ट बटलर ने संयुक्त प्रान्त का शासन जिस राजनैतिक योग्यता से चलाया था, उसके कारण उस समय की राजनीति में इस कुटुम्ब का और ऊँचा स्थान हो गया था। अपने भाई के पद-चिह्नों पर चल सर मांटेगू बटलर भी मध्य प्रान्त में कुछ ऐसा काम करना चाहते थे जिससे उनकी भी कुछ विशेष ख्याति हो जाय।

गर्मी का मौसम था। अपनी पत्नी और मिश्रजी के साथ इस वर्ष मैं पचमढ़ी गया हुआ था। पचमढ़ी में पठन-पाठन के साथ-साथ हम लोगों के आमोद-प्रमोद भी चला करते थे, इनमें मुख्य होते थे पचमढ़ी के चारों ओर के खड्डों में घूमने को जाना, वहाँ के डेनवा नदी के कुण्डों में घण्टों तैरना और फिर चूरमा बाटी का खूब भरपेट भोजन कर दिन भर उन्हीं खड्डों के वृक्षों के नीचे विश्राम कर, ताश खेल, ग्रामोफोन बजा, सन्ध्या को अपने बंगले में लौट आना।

एक दिन हम लोग "वाटर्स मीट" नामक स्थल को गये हुए थे। स्नान, भोजन, दिन भर विश्राम, ताश और ग्रामोफोन के कार्यक्रम के पश्चात् संध्या को लौट ही रहे थे कि वहाँ सर मांटेगू बटलर, लेडी बटलर और उनके कुछ सेक्रेटरी मित्र आदि पहुँचे। असहयोग के कार्यक्रम में सरकारी अफसरों से न मिलने और उनकी पार्टियों आदि में न जाने का जो कार्यक्रम था वह अभी भी चल रहा था अतः मैं न सरकारी अफसरों से मिलता था और न उनकी किसी पार्टी आदि में ही जाता था। मेरी सर मांटेगू बटलर से कोई जान-पहचान न थी,

परन्तु उनके साथ उनके जो एक सेक्रेटरी थे वे मुझे जानते थे अतः उन्होंने मेरा सर मांटेगू आदि से परिचय कराया। प्रसंग ही ऐसा उपस्थित हो गया कि बिना इच्छा के ही हम लोगों की सर मांटेगू आदि से मुलाकात हो गयी।

जब लेडी बटलर मेरी पत्नी से मिलीं तब उन्होंने बच्चों के साथ मेरी पत्नी को चाय के लिए निमन्त्रित किया। मेरी पत्नी ने मेरी ओर देखा। लेडी बटलर बड़ी होशियार महिला थीं। हिन्दी भी थोड़ी-बहुत जानती थीं। मेरी पत्नी और मेरी ओर देखते-देखते उन्होंने मेरी पत्नी से जो कुछ कहा उसका भावार्थ यह था—

"उनकी तरफ आप क्या देखती हैं ? मैं जानती हूँ वे असहयोगी हैं और हमारा निमन्त्रण स्वीकार न करेंगे इसीलिए मैंने उन्हें निमन्त्रित नहीं किया। पर आप तो असहयोगी नहीं। कहाँ है खादी आपके शरीर पर ? आपको मेरा निमंत्रण मंजूर करने में क्या आपत्ति हो सकती है ?"

सचमुच मेरी पत्नी असहयोगी नहीं थीं। वे खादी भी न पहनती थीं। मैं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सदा से पक्षपाती था अतः मैंने अपनी पत्नी को असहयोग आन्दोलन में आने तथा खादी पहनने के लिए कहने के सिवा उन पर इस सम्बन्ध में कभी कोई जोर न डाला था। मेरे सारे कुटुम्ब की इस सम्बन्ध में जो भावनाएँ थीं उनका दिग्दर्शन पिछले कई अध्यायों में हो चुका है। मेरी पत्नी के शरीर पर खादी न देख लेडी बटलर ने जिस चतुराई से उनसे बात कर वे किसी तरह उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लें इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा था उस पर मैं हँस पड़ा और मैं बोला—

"आप बिल्कुल ठीक कह रही हैं, मिसेज गोविन्ददास असहयोग से सदा कोसों नहीं, योजनों दूर रही हैं। उन्होंने मेरे असहयोग में सम्मिलित होने का भी विरोध किया था। पर जिस प्रकार मुझे अपना पथ निश्चित करने की स्वतन्त्रता थी उसी प्रकार मैंने ये अपना जीवन जिस प्रकार चलाना चाहें, चलावें इसकी इन्हें भी सदा स्वतन्त्रता दी है। ये आपका निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए मुझसे इजाजत चाहती हैं, मैं इन्हें आज्ञा देने और न देने वाला कौन होता हूँ ? ये इस विषय में जो करना चाहें कर सकती हैं।"

मेरी पत्नी ने लेडी बटलर का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। निमन्त्रण के

दिन हमारी पुत्री रत्नकुमारी तो हमारे साथ पचमढ़ी में थी नहीं, हमारा छोटा पुत्र जगमोहनदास अभी बहुत छोटा था अतः हमारे बड़े पुत्र मनमोहनदास को वस्त्राभूषणों से सजा तथा स्वयं सजधज मेरी पत्नी लेडी बटलर के यहाँ पहुँचीं।

जब वे चाय के बाद लौटकर आयीं तब वहाँ जो कुछ हुआ था उसका सारा वृत्त मुझे मालूम हुआ। मेरी पत्नी कट्टर सनातन धर्मावलम्बी है, अतः फलों के अतिरिक्त उनका वहाँ कुछ खाना-पीना तो असम्भव था। मनमोहन के मिठाई आदि खाने तथा चाय पीने और मेरी पत्नी के फल खा लेने के बाद लेडी बटलर ने एक विशिष्ट बात मेरी पत्नी से कही थी जो कुछ इस प्रकार थी—

"इस प्रान्त में आपके कुटुम्ब की सी प्रतिष्ठा किस कुटुम्ब की है ? आप का कुटुम्ब सदा राजभक्त कुटुम्ब रहा है। आपकी वेषभूषा तथा आपके बच्चे की वेषभूषा आदि आपके कुटुम्ब के अनुरूप ही हैं। पर आपके पति ऐसे कैसे रहते हैं ? आप उनसे कभी कुछ कहती क्यों नहीं ? देश-सेवा बड़ी अच्छी चीज है, पर उसके कई रास्ते हैं। आपके पति ने जो रास्ता पकड़ा है वह न उनके कुटुम्ब की प्रतिष्ठा के अनुकूल है और न उनका कुटुम्ब अब तक जिस रास्ते पर चला उसके अनुसार। मेरे जेठ ने महाराजा साहब महमूदाबाद को होम मेम्बर बनाया है। सर मोरोपन्त जोशी का कार्यकाल पूरा होने को आ रहा है। सरकार के पास ऐसी कौनसी जगह है जो आपके पति की इच्छा होते ही उन्हें न मिल सके। आप उनसे इस सम्बन्ध में बात करें और यदि मुझे इशारे से भी कहलवादें तो मेरे पति उनसे मिलकर सारा मामला तय कर लेंगे।"

अपनी पत्नी की ये सारी बातें सुन मैं ठठाकर हँस पड़ा। यह 'राउरि माया' मुझ पर चलने वाली न थी।

स्वराज्य पार्टी में फूट

सन् १९२५ की बरसात में एकाएक देशबन्धुदास का देहान्त हो गया। देश पर वज्रपात-सा हुआ।

सर मांटेगू बटलर के जाल में जब मैं न फँसा तब उन्होंने स्वराज्य पार्टी के अन्य किसी सदस्य पर हाथ साफ करना चाहा।

जैसे पहले कहा जा चुका है मध्य प्रान्त और बरार की असेम्बली में समूची स्वराज्य पार्टी के यद्यपि एक ही नेता थे—डाक्टर मुंजे तथापि हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त के चौदह जिलों, मराठी मध्य प्रान्त के चार जिलों और बरार के चार जिलों इस प्रकार एक ही प्रान्त में कांग्रेस के प्रान्तीय विभाजन के अनुसार पूरी स्वराज्य पार्टी के अन्तर्गत तीन अलग-अलग समूह भी थे। हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त के समूह के श्री राघवेन्द्र राव, मराठी मध्य प्रान्त के समूह के श्री डाक्टर मुंजे और बरार के समूह के श्री ताँबे नेता थे। सर मांटेगू ने मेरे बाद मध्यप्रान्तीय असेम्बली के बरार समूह के नेता श्री ताँबे को फाँसने का प्रयत्न किया। ताँबे इस जाल में फँस गये और उन्होंने सर मोरोपन्त जोशी के स्थान पर मध्य प्रान्त का होम मेम्बर होना स्वीकार कर लिया।

श्री ताँबे के होम मेम्बर होने से स्वराज्य पार्टी में आग-सी लग गयी और यह आग भड़कायी पूना के श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने श्री ताँबे को बधाई का तार भेजकर। जिस स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम में मिनिस्टर तक होने का निषेध था उसी का एक प्रमुख सदस्य होम मेम्बर हो जाय और एक दूसरा प्रमुख सदस्य उसे बधाई का तार भेजे, इससे बड़ी आग लगने की और बात भी क्या हो सकती थी?

देशबन्धुदास इस समय थे नहीं। स्वराज्य पार्टी के सभापति थे पण्डित मोतीलाल नेहरू। जब पण्डितजी को श्री केलकर के इस तार का हाल मालूम हुआ तब वे आग-बबूला हो गये। उन्होंने श्री केलकर से उनकी कृति पर कैफियत माँगी। श्री केलकर ने इतनी ही कैफियत दी कि उन्होंने श्री ताँबे

को वह तार अपनी व्यक्तिगत हैसियत से दिया है, स्वराज्य पार्टी के सदस्य की हैसियत से नहीं। श्री ताँबे के घर में न तो किसी बच्चे का जन्म हुआ था और न विवाह आदि अन्य कोई सामाजिक कार्य, वे हुए थे मध्य प्रान्त-बरार के गृह सदस्य अतः उस बात पर कोई स्वराजी उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से भी बधाई कैसे दे सकता था यह मोतीलालजी की समझ में न आया और उन्होंने श्री ताँबे के साथ ही श्री केलकर पर भी अनुशासन की कार्रवाई करने का प्रश्न उठाया। इस पर श्री केलकर के अनेक महाराष्ट्र मित्र क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने नेहरूजी पर अनेक आरोप लगाना आरम्भ किया। श्री ताँबे का गृह सदस्य बनना, इस पर श्री केलकर की बधाई का तार और महाराष्ट्र के अनेक नेताओं का केलकर का समर्थन पण्डितजी की क्रोधानल में घी का काम कर गया और पण्डितजी ने अपने एक भाषण में कह डाला कि "महाराष्ट्र देश का राग-ग्रस्त अंग हो गया है, अतः उसे काटकर फेंक देना चाहिए।" "रोगग्रस्त अंग" के लिए उन्होंने अंग्रेजी शब्दों "डिसीज्ड लिंब" का उपयोग किया था और "काटकर फेंकने के लिए" "एम्प्यूटेड"। अब क्या पूछना था, पण्डितजी के इस भाषण ने सारे महाराष्ट्र में दावानल-सी लगा दी। महाराष्ट्र नेता पागल हो उठे और उन्होंने नेहरूजी पर घृणित गाली-गलौज की वर्षा आरम्भ की। जितनी अधिक पण्डितजी को गालियाँ मिलतीं उतनी ही अधिक सभाओं में पण्डितजी महाराष्ट्र को रोगग्रस्त अंग कहते और काटकर फेंक देने की बात। मोतीलालजी उस समय कितने क्रुद्ध थे और मैं उनका कितना विश्वासपात्र हो गया था यह उनके मुझे लिखे गये एक पत्र के निम्नलिखित अंश से ज्ञात हो जायगा—

> "Tambe must be severely dealt with and the office hunting personalities of the C.P. councillors must be effectively stopped. I hope the members of the three allied Provincial Committees are perfectly sound and there is no danger of their voting for acceptance of office whether that of Councillor or minister. Please whip up those whom you believe to be quite Pacca"

कुछ दिन पहले ही अपरिवर्त्तन और परिवर्त्तनवादी कांग्रेसवादियों में काफी तू-तू मैं-मैं हो चुकी थी। वही अब स्वराज्यवादियों के बीच में आरम्भ हुई और

चाहिए जैसा गान्धीजी ने कई प्रसंगों पर कहा है। पर प्रजातन्त्र में, और खास कर हमारे अर्द्धजागृत देश के प्रजातन्त्र में, जो छोटी से छोटी बात पर भी कटुता आ जाती है इसे न आने देने का प्रयत्न अवश्य होना चाहिए। यह कोई सरल बात नहीं है। प्रकृति ने मानव की जैसी रचना की है उसमें अच्छाइयों के साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता—अनेक बुराइयाँ भी तो भरी हैं। बड़े से बड़े मानव की भी इन बुराइयों से सर्वथा रहित कल्पना ही की जा सकती है। पर इन बुराइयों का शमन भी तो मानव ही कर सकता है, पशु नहीं। इसीलिए किसी विद्वान् ने कहा है कि यदि मानव अपनें ही पशु पर सवार हो सके तो क्या पूछना। सभी ऋषियों, मुनियों, ज्ञानियों, तत्त्ववेत्ताओं, दार्शनिकों, धर्माचार्यों ने हमें यही उपदेश दिया है। संसार के सर्वश्रेष्ठ तत्त्व ज्ञान के ग्रन्थ गीता ने एक नहीं अनेक प्रसंगों पर हमें कैसा होना चाहिए इसका वर्णन किया है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करनेवालों के लिए हमें सच्चा मानव तो बनना ही होगा। इसके लिए अनेक साधनाएँ हैं और हो सकती हैं। इस प्रसंग में मैं दो साधनाओं का उल्लेख कर दूँ—एक तो हम विरोध करते समय भी सिद्धान्तों की ही चर्चा करें, व्यक्तिगत बातों की नहीं। दूसरे हम किसी प्रान्त, जाति अथवा समुदाय पर कभी आक्षेप न करें, चाहे हमारा पक्ष कितना ही सत्य और न्यायपूर्ण क्यों न हो।

स्वराज्य पार्टी की इस बैठक के उपरान्त मुझ से सम्बन्ध रखनेवाली एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। श्री राघवेन्द्र राव ने पण्डित मोतीलालजी से जाकर कहा कि श्री ताँबे के होम मेम्बर होने से मध्य प्रान्त और देश में स्वराज्य पार्टी को जो धक्का लगा है उस धक्के का परिमार्जन करने तथा पार्टी की प्रतिष्ठा फिर से जमाने के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी योग्य उम्मीदवार को खड़ा कर बीस दिन बाद जो कौंसिल ऑफ स्टेट का चुनाव होनेवाला है उसे जीतें। यदि हम यह चुनाव जीत लेंगे तो मध्य प्रान्त तथा देश में लोगों का जो यह कहना है कि अब स्वराज्य पार्टी का सारा प्रभाव नष्ट हो गया, इसे हम झूठा सिद्ध कर देंगे। कौंसिल ऑफ स्टेट के मध्य प्रान्त का यह क्षेत्र बरार को छोड़ मध्य प्रान्त के १८ जिलों में फैला हुआ था और इसके मतदाता केवल वे लोग थे जो या तो तीन हजार के ऊपर सरकारी जमा देते थे, या

बीस हजार रुपये की आमदनी के ऊपर इनकम टैक्स या म्यूनिस्पैलिटियों अथवा डिस्ट्रिक्ट कौंसिलों के सभापति थे या इन संस्थाओं के कभी सभापति रह चुके थे। सन् १६२५ में ऐसे व्यक्तियों में से बहुत कम पर कांग्रेस का प्रभाव था अतः श्री राघवेन्द्र राव ने पण्डितजी को सुझाया कि गोविन्ददास को ही खड़ा कर यह चुनाव जीता जा सकता है, क्योंकि ऐसे मतदाताओं पर प्रान्त भर में राजा गोकुलदास के कुटुम्ब का ही सबसे अधिक प्रभाव है।

मोतीलालजी को राघवेन्द्र राव की बात जँच गयी और मैं बुलाया गया। जब पण्डितजी ने मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा तब मैं तो स्तब्ध-सा रह गया। अठारह जिलों का विस्तृत क्षेत्र, समाज के इतने ऊँचे तपके के मतदाता और केवल बीस दिन का समय ! नागपुर के सर मानिकजी दादा भाई और सर हरिसिंह गौर दो-दो उसी तपके के व्यक्ति इस क्षेत्र से खड़े हो रहे थे और इनका प्रयत्न कोई छै महीनों से चल रहा था। मैंने पण्डितजी से मेरे खड़े न करने के लिए लाख अनुनय-विनय की, यहाँ तक कहा कि मेरी हार निश्चित है, जिससे इस आरम्भिक अवस्था में ही मेरा सार्वजनिक जीवन भी समाप्त हो जायगा और पार्टी को भी कोई लाभ न होगा, परन्तु पण्डितजी जो बात ठान लें उसे बदलवाना कोई सहज बात न थी। मेरी एक न सुनी गयी। इस बातचीत के दूसरे ही दिन नामजदगी की आखिरी तारीख थी अतः मैं कौंसिल ऑफ स्टेट के लिए नामजद कर दिया गया।

नामजदगी के उन्नीसवें दिन वोट डलने थे। नागपुर में नामजदगी होते ही मैं फौरन जबलपुर लौटा और चुनाव का सारा संगठन किया गया। सभी कांग्रेसवादियों ने भरपूर मदद की, परन्तु उनकी मदद इस चुनाव में बहुत काम की न थी। उस चुनाव में तो मेरे कुटुम्ब के सम्बन्धी ही अधिकतर काम में आये। पण्डित मोतीलालजी स्वयं भी कुछ स्थानों को गये। उनका प्रभाव अवश्य पड़ा। वे जहाँ जाते एक ही बात कहते—"ताँबे के मुआफिक गोविन्ददास ताँबा नहीं है। यह कसौटी पर कसा हुआ सौ टंच का सोना है।" पण्डितजी के इस कथन की प्रान्त में कई वर्ष तक चर्चा रही।

डाक्टर मुंजे ने मुझे बधाई देते हुए जो तार भेजा उसमें किस उम्मीदवार को कितने मत मिले थे यह बड़े हर्ष के साथ लिखा था। मुझे २२४, श्री दादा

भाई को १३२ और डा० गौर को ४१ वोट मिले थे।

चुनाव का नतीजा मेरे पक्ष में निकला। सर हरिसिंह गौर की तो जमानत ही जब्त हो गयी थी। श्री राघवेन्द्र राव का सोचना ठीक था। इस चुनाव ने केवल हमारे प्रान्त में ही नहीं पर देश भर में स्वराज्य पार्टी की प्रतिष्ठा बढ़ायी। सन् १९२५ में किसी कांग्रेसवादी का इतने थोड़े दिनों के प्रयत्न में इस प्रकार के क्षेत्र से चुनाव में सफल होना छोटी बात न थी। पर मेरी वह जीत चाहे मैं कांग्रेस की जीत ही मानूँ, पर यथार्थ में वह कांग्रेस की जीत न होकर मेरे कुटुम्ब की जीत थी। समूचे देश के पत्रों ने इस चुनाव की चर्चा की और देश के कौने-कौने से मुझे बधाई के सन्देश मिले। सबसे पहला बधाई का तार मुझे मिला सर मानिकजी दादा भाई का। उन्होंने अपने तार में लिखा था—"Our hearty congratulations to you presonally but not to Swaraj party"। पण्डित मोतीलालजी को मेरी इस जीत से जो हर्ष हुआ उसका ठिकाना न था। वे श्री ताँबे के होम मेम्बर होने तथा श्री केलकर के ताँबे को बधाई का सन्देश भेजने के कारण बहुत क्षुब्ध हो गये थे। अत्यधिक क्षोभ के कारण ही ताँबे और केलकर की कृति पर उन्होंने समूचे महाराष्ट्र को रोग से ग्रस्त अवयव कह उसे काट डालने की बात कह डाली थी। मेरी चुनाव की इस सफलता ने उनके क्रोध को बहुत दूर तक ठण्डा कर दिया। उन्होंने भी मुझे 'Honourable' लिखकर तार द्वारा बधाई दी, पर इस बधाई के साथ ही उन्हें इस बात की भी चिन्ता थी कि मेरे स्थान पर केन्द्रीय असेम्बली में मध्य प्रान्त के जमींदारों की ओर से जो प्रतिनिधि जावे वह पक्का "स्वराजिस्ट" हो, क्योंकि केन्द्रीय धारा सभा की जमींदारों की ओर से कोई भी प्रतिनिधि कांग्रेसवादी नहीं था, जो पहले भी लिखा जा चुका है। मुझे बधाई में भेजा हुआ पण्डितजी का तार इस प्रकार था—

"Hearty congratulations hope your successor in Assembly will be pucca Swarajist.—Motilal Neheru".

कौंसिल ऑफ स्टेट में मेरा काम

कौंसिल ऑफ स्टेट में मैं सन् १९२५ के अन्त में चुना गया था। इस नयी कौंसिल का बजट अधिवेशन सन् १९२६ के फरवरी महीने में हुआ। कौंसिल ऑफ स्टेट में जाने के पहले मैं केन्द्रीय असेम्बली में दो वर्ष रह चुका था अतः इस कौंसिल का थोड़ा-बहुत हाल जानता था। यह कौंसिल "हाऊस ऑफ फासिल्स" कहा जाता था। इसके अधिकांश सदस्य सचमुच ही अपनी उम्र, अपनी वेशभूषा और अपनी पदवियों के कारण "फासिल्स" ही जान पड़ते थे। सदस्यों में केवल ९ कांग्रेसवादी थे और इन ९ में मध्य प्रान्त के श्री ताँबे के होम मेम्बर हो जाने तथा मेरा उसी प्रान्त से सर मानिकजी दादा भाई तथा सर हरिसिंह गौर के सदृश व्यक्तियों को हरा कर वहाँ पहुँचने के कारण मुझे बड़े गौर से देखा जाता था। फिर उस कौंसिल के समस्त सदस्यों में मेरी अवस्था सबसे कम थी अतः मैं वहाँ "इंडियाज़ यंगैस्ट एल्डर" कहा जाता था।

हम ९ कांग्रेसवादियों की एक पृथक् पार्टी बनी। उसके नेता मद्रास के श्री रामदास पन्तलू और मंत्री मैं चुने गये।

यद्यपि सर मानिकजी दादा भाई को मैं हरा चुका था, पर सरकार ने उन्हें कौंसिल में नामजद कर दिया और लोगों को आश्चर्य तब हुआ जब मुझसे हारे हुए सर मानिकजी को सरकार ने मेरे आगे की सीट दी और मुझे उनके पीछे।

कौंसिल ऑफ स्टेट में मैं सन् १९२९ के अन्त में कांग्रेसवादियों के धारा सभाओं से स्तीफा देने तक रहा। जिस प्रकार का इस कौंसिल का संगठन था उसमें यद्यपि इन चार वर्षों में कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण काम नहीं हुआ, पर व्यक्तिगत दृष्टि से मेरा यहाँ का कार्य अच्छी से अच्छी कोटि का कार्य माना गया। इसके कुछ कारण भी थे। पहला कारण तो यह था कि वहाँ वक्ता ही बहुत कम थे; दूसरे यहाँ के सदस्यों में इतने कम सदस्य प्रस्ताव, विधेयक आदि देते थे कि बैलट से उनका निकल कर कौंसिल में आना सर्वथा निश्चित रहता

था, यद्यपि इनमें से कोई भी प्रस्ताव या विधेयक बिना सरकारी समर्थन के स्वीकृत नहीं होता था; हाँ, बहस-मुबाहसा सब पर अवश्य हो जाता था। सर फीरोज सेठना के पश्चात् मैं वहाँ का सबसे अच्छा वक्ता माना जाता था। उस समय के देश के प्रधान सेनापति (कमाण्डर-इन-चीफ) भी इस कौंसिल के सदस्य होते थे। मेरे इस कौंसिल के जीवन-काल में भारत के जो प्रधान सेनापति थे वे तो जब कभी भी मेरा किसी से परिचय कराते तब मेरे नाम के साथ सदा एक वाक्य और कहा करते—"ही इज़ दि बैस्ट स्पीकर ऑफ आवर हाउस।" वक्ताओं की कमी के कारण मैं वहाँ बोलता भी बहुत था। यहीं से मैंने भारत की वैदेशिक नीति में भी अनुराग लेना आरम्भ किया और मैं वहाँ पहुँचते ही सन् २६ की १८ फरवरी को "इमीग्रेशन कमिटी" का सदस्य चुन लिया गया। इसके बाद जब तक मैं केन्द्रीय धारा सभाओं में रहा और यह कमिटी रही मैं सदा इस कमिटी का सदस्य चुना जाता रहा।

मैंने वहाँ जो काम किया उसमें से जिन कामों को अत्यधिक महत्त्व मिला उनका यहाँ उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा।

सन् २६ में नयी कौंसिल का संगठन होते ही १८ फरवरी को श्री फीरोज सेठना ने कौंसिल में निम्नलिखित प्रस्ताव रखा—

> This Council recommends to the Governor General in Council to urge upon His Majesty's Government the appointment forth with-of a Royal Commission to investigate and inquire into the working of the present Indian Constitution and to formulate a scheme for the establishment of responsible Government of India.

इसमें संदेह नहीं इस प्रस्ताव पर श्री फीरोज सेठना का बड़े मार्के का भाषण हुआ।

मैंने इस प्रस्ताव पर निम्नलिखित संशोधन उपस्थित किया—

> This Council recommends to the Governor General in Council to move His Majesty's Government to make a diclaration in the Parliament announcing its dicision to take immediate steps to enbody in the constitutional and administrative machinary of India the fundamental changes asked for in the resolutions passed by the Legislative

Assembly on 18th Feb. 1924 and 8th Sept. 1925 and to obtain the dicision of His Majesty's Government there on.

इस संशोधन पर मेरा भाषण भी कम मार्के का नहीं माना गया। उस दिन कौंसिल में असेम्बली के सदस्यों की गैलरी में लाला लाजपतरायजी भी आये थे। मेरे भाषण के बाद कौंसिल की लाबी में उन्होंने मुझे अनेक बधाइयाँ दीं।

इस प्रस्ताव और मेरे सुधार पर जो बहस हुई वह कौंसिल ऑफ स्टेट के जीवन में एक विशिष्ट घटना थी। इस समय सर डिनशा वाचा भी कौंसिल ऑफ स्टेट के एक सदस्य थे। इस उम्र में भी वे कौंसिल की बैठक आरम्भ होने के पहले आते, जब तक बैठक चलती एक क्षण के लिए लाबी तक में न जाते और जब कौंसिल उठती तभी वे कौंसिल भवन छोड़ते। यह देखकर सभी राष्ट्रीय विचार रखनेवालों को खेद हुआ कि कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति सर डिनशा वाचा के सदृश व्यक्ति ने मेरे सुधार का ही नहीं पर श्री फीरोज सेठना के प्रस्ताव का भी विरोध किया।

उस निगोड़ी कौंसिल ने मेरा सुधार स्वीकृत होने की तो बात ही क्या, श्री सेठना का प्रस्ताव भी ठुकरा दिया गया।

सन् २७ के मार्च में भारत के उस समय के वित्त मंत्री सर बैसिल ब्लैकिट करैंसी के सम्बन्ध में केन्द्रीय धारा सभा में दो विधेयक लाये थे। एक का सम्बन्ध था रुपये और पाउण्ड के रेशो से और दूसरे का सम्बन्ध था सोने के सिक्के से। उस समय रेशो का प्रश्न बड़ा विवाद का प्रश्न बन गया था। रुपये की कीमत १६ पेंस रखी जाय या १८ इस पर केन्द्रीय असेम्बली में भी बड़ा भारी विवाद उठा था। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने यह सिद्ध करने का यत्न किया था कि हमारे देश का हित रुपये की कीमत १६ पेंस रखने में है और सरकार कह रही थी १८ पेंस रखने में। विवाद इतना टैक्नीकल था कि यह मसला साधारण लोगों की ही नहीं पर बड़े-बड़े लोगों की भी समझ में न आता था और कांग्रेस जनों के समर्थन करने पर भी सर पुरुषोत्तमदास की ३ मतों से केन्द्रीय असेम्बली में पराजय हो गयी थी।

जब ये दोनों विधेयक कौंसिल ऑफ स्टेट में आये तब कांग्रेस दल ने इन्हें

मेरे सुपुर्द कर दिया। मैंने बड़े परिश्रम से इस विषय का अध्ययन किया और सर पुरुषोत्तमदास के मत के समर्थन में रेशो १६ पेंस का हो इसका विधेयक में सुधार पेश किया। मेरे इस भाषण को बहुत अधिक महत्त्व मिला और यह महत्त्व कुछ साहित्यिक भी बन गया। सर बैसिल ने अपने भाषण का अन्त कुछ कवित्वमय ढंग से किया था। उन्होंने कहा था—

"Does the House want to reduce by 11 per cent, the real wages of all wage earners, agriculture and industrial, of all clerks and shop hands in private employment, of postal employees, railway employees, reduce the value of every fixed income by 11 per cent? That is what the demand 1s. 4d. means; for the permanent benefit of noboby.

"Does the House want to upset the equilibrium of every Budget in India Central and Provincial, and to face the task of imposing additional taxation all round? That is what the demand for 1s. 4d. means; for the permanent benefit of nobody.

"Does the House want railway rates and fares to be raised all round at a moment when the railways have launched on a policy of reduction? That is what the demand for 1s. 4d. means; for the permanent benefit of nobody."

"Does the House want the complete remission of the provincial contributions to be postponed indefinitely? That is what the demand for 1s. 4d. means; for the permanent benefit of noboy.

"Does the House want to postpone indefinitely the reform of the Indian currency system? That is what the demand for 1s. 4d. means; for the permanent benefit of nobody."

मैंने उनके उस गद्य काव्य का उत्तर उसी प्रकार के गद्य काव्य में दिया—

"Does the House want to increase by 12½ per cent the burden on the agriculturists of this country in the matter of land revenue, which is already 36 crores per year? That is what is meant by 1s. 6d. ratio; for the permanent benefit of nobody. Does the House want to pay a bonus of 12½ per cent to the bloated salaries of the superior Services which are already getting the most extravagant salaries in the

whole world ? That is what is meant by 1s. 6d. ratio ; for the permanent benefit of nobody. Does the House wish to create a terrible struggle for the very existence of industries leading to strikes, lockouts, creating unemployment and sweating of labour on large scale ? That is what is meant by the 1s. 6d. ratio ; for the permanent benefit of nobody. Does the House wish to put an unearned increment of 12½ per cent into the pocket of every usurer, moneylender and rentor and lessor and similarly put the debtor, the tenant and the tiller of the soil to a loss of 12½ per cent ? That is what is meant by the 1s 6d. ratio ; for the permanent benefit of nobody. Does the House wish to create and unnecessarily heavy charge of 56 crores of rupees on the rupee debt of this country ? That is what is meant by the 1s. 6d ratio ; for the permanent benefit of nobody. And finally, does the House wish to allow this Government to temper with the currency of the country for budget purposes and allow them to use currency as a lever for increasing taxation ? That is what is meant by the 1s. 6d. ratio ; for the permanent benefit of nobody.

स्वर्ण-मुद्रा पर भी मेरा भाषण बहुत महत्त्व का माना गया। मेरे इन भाषणों पर मुझे बधाई देने के लिए सर पुरुषोत्तमदास ने मुझे एक बड़ी लम्बी चिट्ठी भेजी थी।

चार वर्षों के इस कौंसिल के अपने जीवन में मैंने कौंसिल के सामने निम्नलिखित विषयों पर प्रस्ताव उपस्थित किये—

१. रेल के तीसरे दर्जे का किराया एक तिहाई घटाया जाय। —९ फरवरी १९२७ को।

२. लिफाफे की कीमत फिर से २ पैसे और कार्ड की कीमत एक पैसा की जाय। —१४ फरवरी १९२७ को।

३. केन्द्रीय धारासभाओं के नियमों में इस प्रकार परिवर्त्तन किया जाय जिससे सदस्यों को हिन्दी या उर्दू में भाषण कर सकने का अधिकार रहे। —१६ मार्च १९२७ को।

४. देश में नवीन उद्योग-धन्धों के कारखानों को स्थापित करने के लिए

दस वर्ष तक हर वर्ष सरकार पचास लाख रुपया लगावे और ये कारखाने सरकारी देख-रेख में रहें।—५ सितम्बर १९२७ को।

५. दस वर्ष की उम्र के नीचे की दुधारू गायें, भैंसें और खेती के जानवरों का बध रोका जाय। —१४ सितम्बर १९२७ को।

६. थर्ड क्लास के यात्रियों को कम दर पर आठ महीने की रिटर्न टिकट दी जायें।—१८ फरवरी १९२९ को।

७. फौज को गोमांस देने के लिए जो गोवध होता है वह तत्काल बन्द किया जाय। —२५ फरवरी १९२९ को।

८. मध्य प्रदेश के उत्तरी जिलों में अकाल पीड़ितों को चरखे बाँट तथा उनसे सूत कताकर उन्हें सहायता दी जाय। —१८ मार्च १९२९ को।

इन प्रस्तावों में सबसे अधिक महत्त्व मिला गोवध रोकने सम्बन्धी दो प्रस्तावों को और हिन्दी तथा उर्दू में भाषण देने के लिए सदस्यों को अधिकार देने सम्बन्धी प्रस्ताव को। यद्यपि मैं सदा से गोवध कतई बन्द करने के पक्ष का था, पर उस समय जितना मैं कराना चाहता था उतना ही अत्यधिक महत्त्व रखता था।

हिन्दीवाला प्रस्ताव बहुत छोटी-सी चीज माँगता था, पर इस माँग के साथ भाषा विषयक सारी चर्चा ही हो गयी। इस प्रस्ताव पर का मेरा भाषण न जाने कहाँ-कहाँ पूरा का पूरा छपा। उस समय कौंसिल ऑफ स्टेट के सदृश स्थान में हिन्दी की चर्चा!

इस प्रस्ताव पर मत देते समय सबसे दयनीय स्थिति थी हिन्दी के अनन्य प्रेमी श्री श्यामबिहारी मिश्र की। नामजद आफीशल सदस्य होने के कारण इस प्रकार के प्रस्ताव के भी विरोध में उन्हें अपना मत देना पड़ा। इसका उन्हें घोर पश्चात्ताप हुआ, जो उन्होंने व्यक्तिगत बातचीत में न जाने कितनी बार मेरे सामने प्रकट किया।

गाय के सम्बन्ध में मैंने कौंसिल में दो विधेयक भी उपस्थित किये। एक था गायों के देश से निर्यात बन्द करने के सम्बन्ध में और दूसरा था गोमांस निर्यात बन्द करने के लिए। पहला २३ सितम्बर २९ को और दूसरा २५ सितम्बर २९ को रखे गये थे।

कौंसिल ऑफ स्टेट में सन् २६ से २९ तक कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय नहीं आया जिस पर मैंने कुछ न कुछ न कहा हो और मेरा ऐसा कोई भाषण न हुआ जो उस विषय पर महत्त्वपूर्ण न माना गया हो। जनरल बजट, रेलवे बजट, फाइनेंस बिल, अन्य विधेयक, प्रस्ताव आदि न जाने कितने विषयों पर मैं बोलता रहा। साइमन कमीशन से सहयोग करने का जो प्रस्ताव सर मुहम्मद हबीबुल्ला ने पेश किया था उस पर दिया गया मेरा भाषण साइमन कमीशन के बहिष्कार के देश में दिये गये अच्छे से अच्छे भाषणों में एक भाषण माना गया था।

मैंने इन चार वर्षों में जो प्रश्न पूछे उनकी संख्या भी सैकड़ों हो गयी थी, क्योंकि उस समय एक सदस्य एक दिन में पाँच या तीन प्रश्न ही पूछ सकता है, ऐसी कोई कैद नहीं थी।

कौंसिल ऑफ स्टेट में मेरे साथ सबसे अधिक स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा पंजाब के रायबहादुर लाला रामशरणदासजी का। मेरे कुटुम्ब से उनके कुटुम्ब का बहुत पुराना सम्बन्ध था। एक बार लाहौर में ब्रिटिश सरकार ने एक बहुत बड़ा दरबार किया था। वह दरबार यद्यपि पंजाब का था, पर मेरे पितामह राजा गोकुलदासजी का उस समय की सरकार से कुछ ऐसा सम्बन्ध था कि वे पंजाब के दरबार में भी विशेष रूप से आमन्त्रित किये गये थे। उस समय लाहौर में उनका धूमधाम से स्वागत तथा अपनी लाल कोठी नामक इमारत में ठहरने की व्यवस्था रामशरणदासजी के पिता ने की थी। रामशरणदासजी को वह प्रसंग याद था और वे अनेक बार उसकी चर्चा किया करते थे। आगे चलकर सन् २९ के अन्त में जब मैं उसी लाहौर में कांग्रेस के अधिवेशन में गया तब रामशरण-दासजी ने मुझे अपनी उसी लाल कोठी में ठहराया था। मेरे पितामह लाहौर गये थे सरकार के भक्त के रूप में और मैं गया था उसी सरकार के बागी के रूप में और दोनों रामशरणदासजी की लाल कोठी में ही ठहरे थे।

कौंसिल ऑफ स्टेट के जीवन की एक और घटना है जिसे मैं न भूल सकूँगा। सन् १९२७ के फाइनेंन्स बिल पर कौंसिल में मेरा एक अच्छा-सा भाषण हुआ; और भी कुछ लोगों के भाषण हुए। कौंसिल की कार्रवाई अंग्रेजी में होती ही थी अतः ये सारे भाषण अंग्रेजी में ही हुए। उस वर्ष

करने के कारण एक नयी प्रसिद्धि पाकर वापस आयी थीं। श्रीमती नायडू का भाषण छोटा-सा था, परन्तु कवित्वमय पुटों से युक्त तथा उनके सुरीले कण्ठ से निकला हुआ। वे अपने भाव व्यक्त करने में कितनी सिद्धहस्त थीं यह एक छोटे से वाक्य से ज्ञात हो जायगा। उन्होंने अपने भाषण में कहा था—"स्वतन्त्रता के युद्ध में भय ही एकमात्र अक्षम्य विश्वासघात है और निराशा एक मात्र अक्षम्य अपराध।"

गान्धीजी तो इस अधिवेशन में केवल ५ मिनट ही बोले, क्योंकि उस परिस्थिति में इससे अधिक बोलना वे आवश्यक नहीं समझते थे। उन्होंने कहा था—"अपने ५ वर्ष के काम का पर्यालोचन करने के बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नहीं पाता जिसे रद्द करूँ, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ जिसे वापस लूँ।"

और रचनात्मक कार्यक्रम करने के विषय में उन्होंने कहा था—"यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगों में जोश और उत्साह है, तो मैं सत्याग्रह आरम्भ कर दूँ। पर अफसोस! हालत ऐसी नहीं है।" कितनी निराशा फिर भी कितनी दृढ़ता भरी थी उस वाणी में। स्वराजियों में फूट पड़ ही गयी थी। डा० मुंजे, श्री जयकर, श्री केलकर, जो स्वराज्य पार्टी के टिकट पर कौंसिल में गये थे, उन्होंने स्तीफा दे दिया था। कांग्रेस के कानपुर के इस अधिवेशन ने सारी घटनाओं को मद्देनजर रखते हुए यह निश्चय किया कि आगामी सन् २६ के चुनाव स्वराज्य पार्टी अपने नाम से न लड़कर स्वतः कांग्रेस अपने नाम से लड़ेगी। यह एक महत्त्वपूर्ण बात उस अधिवेशन ने की।

एक अन्य विशेष बात इस अधिवेशन में और हुई। श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के प्रयत्न से कांग्रेस की कारवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनायी गयी।

× × ×

देश के दुर्भाग्य से जो हिन्दू-मुस्लिम समस्या इस देश में उत्पन्न हो गयी थी वह बढ़ती ही चली गयी। दोनों ओर के कट्टर सम्प्रदायवादी इस आग को बुझने न देकर सदा ही भड़काते रहते थे। सन् १९२६ में ऐसे भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए कि जिनको देखकर मानवता थर्रा उठी।

अप्रैल के प्रथम सप्ताह में कलकत्ते में भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हुआ और यह

लगभग छै सप्ताह तक चलता रहा। इस दंगे का कुछ अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि प्रथम दो हमलों में क्रमश: ४४ और ६६ व्यक्ति मारे गये तथा ११० और ३६१ घायल हुए। जो ११० जगह आग लगायी गयी थी, उसका तो पूछना ही क्या।

फिर ऐसी पाशविक घटनाएँ केवल कलकत्ता तक ही सीमित न रही थीं। वे दो दर्पणों के बिम्ब, प्रतिबिम्ब और अन्तर प्रतिबिम्ब के समान देश के अन्य नगरों में भी फैल गयी थीं। तभी अपने काल का मानवता का सबसे बड़ा पुजारी, जिसने मुसलमानों को कलह-प्रिय तथा हिन्दुओं को कायर कहकर पुकारा था, इन न टूटनेवाले ताँते से व्याकुल होकर चीख उठा था—

"मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग (हिन्दू-मुस्लिम दंगे) की दवा मेरे पास नहीं है। मैं यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते हैं तो एक न एक दिन हम हिन्दू-मुसलमानों को एक होना पड़ेगा और यदि हमारे भाग्य में यही बदा है कि एक होने के पहले हम एक दूसरे का खून बहाते रहें, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक दूसरे का सिर तोड़ने पर उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, और यदि हम एक दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करना चाहिए।"

ऐसे वातावरण में धारा सभाओं के चुनाव सिर पर आगये। कांग्रेस के लब्धप्रतिष्ठित नेता मालवीयजी एवं लाला लाजपतराय हिन्दू महासभा की ओर झुके हुए थे, वे आजकल हिन्दू हितों के विशेष हिमायती हो गये थे।

महात्मा गान्धी तो एक तरह से तटस्थ थे ही, इस समय जिन पर कांग्रेस का सभापतित्व था उन श्रीमती सरोजिनी नायडू ने भी चुनाव की ओर कुछ विशेष उत्साह नहीं दिखलाया। यद्यपि अब ये चुनाव स्वराज्य पार्टी के नाम से न लड़कर कांग्रेस के नाम से लड़े जा रहे थे, तो भी कांग्रेस वालों में भी फूट पड़ गयी थी। श्री केलकर, जयकर आदि ने एक अपना अलग दल बना लिया था। देशबन्धु की मृत्यु के उपरान्त केवल श्री मोतीलाल नेहरू ही ऐसे व्यक्ति थे जिनके ऊपर सारे चुनाव संचालन का उत्तरदायित्व आ पड़ा था।

देश के सन् १९२६ के इस साम्प्रदायिक और अन्य भी अनेक दृष्टियों से दूषित राजनैतिक वायुमण्डल का हमारे प्रान्त पर भी असर न पड़ा हो यह नहीं, पर यह असर मराठी मध्य प्रान्त और बरार पर अधिक पड़ा, हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त पर बहुत कम। इसका कारण वही था जिसका उल्लेख पहले हो चुका है अर्थात् मराठा मध्य प्रान्त और बरार पुराने राजनैतिक अखाड़े रह चुके थे जहाँ कई राजनैतिक दल थे और हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त की स्थिति इसके ठीक विपरीत थी।

सन् २६ की इण्डिपैण्डेंण्ट कांग्रेस पार्टी और रिस्पान्सिव कोआपरेशन पार्टी का जन्म यथार्थ में हमारे प्रान्त में ही हुआ। पहले दल को श्री राघवेन्द्रराव ने जन्म दिया और दूसरे को डाक्टर मुंजे तथा श्री अणे ने। आगे चलकर लाला लाजपतराय और पं० मदनमोहन मालवीय सदृश अखिल भारतीय नेताओं का भी इन दलों को समर्थन प्राप्त हो गया।

परन्तु कांग्रेस से अलग होने तथा इण्डिपैण्डेण्ट कांग्रेस पार्टी बनने के पूर्व एक बार श्री राघवेन्द्र राव ने पं० मोतीलालजी से सौदा पटाने का प्रयत्न अवश्य किया।

हमारे प्रान्त का कांग्रेस संगठन अत्यन्त शिथिल अवस्था में था। यद्यपि श्री राघवेन्द्रराव और हम सब अभी भी कांग्रेस संगठन में थे, परन्तु सन् २२ में छिंदवाड़े में सुन्दरलालजी के सभापति होने के बाद हम में से कोई भी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी में न थे। सुन्दरलालजी भी बहुत दिन तक सभापति न रह सके थे। उनके दल में भी आपस में काफी जूती चल चुकी थी। सबसे पहले उनके दल को श्री दुर्गाशंकरजी मेहता ने छोड़ा था और बाद में अन्यों ने भी। श्री सुन्दरलाल के बाद प्रान्तीय सभापति सिवनी के श्री जटार हुए थे और उनके बाद सागर के श्री केशवरामचन्द्र खाण्डेकर। पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी श्री राव के और मेरे हाथ में न रहने पर भी मध्य प्रान्त की राजनीति हमीं दोनों के हाथ में मानी जाती थी।

हमारे प्रान्त की इस समय की राजनीति से पं० मोतीलालजी प्रसन्न नहीं थे। सन् २४ में श्री राघवेन्द्र राव ने स्वराज्य पार्टी के प्रतिज्ञा-पत्र के विरुद्ध जो मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न किया था उसे वे जानते थे। फिर सन् २५

में तो श्री ताँबे के प्रान्त के गृह सदस्य होने पर बावेला मच ही चुका था। पर अभी भी श्री राघवेन्द्रराव स्वराज्य पार्टी में थे और पण्डितजी चाहते थे कि यदि वे पूर्ण रीति से कांग्रेस के साथ चलें तो हम दोनों समझौते के साथ ही किसी तरह काम चलावें।

मैं कौंसिल ऑफ स्टेट में चुना जा चुका था, मेरा चुनाव होना नहीं था अतः मैं भी प्रान्त में व्यर्थ का कोई झगड़ा नहीं चाहता था।

सन् २६ के अक्टूबर नवम्बर से चुनाव होने वाला था। सन् २६ की गर्मियों में मोतीलालजी मसूरी गये हुए थे। मैंने पं० रविशंकरजी शुक्ल से प्रस्ताव किया कि राघवेन्द्रराव और मैं दोनों मसूरी जाकर पण्डितजी से सब मामला तय करलें, परन्तु बिना पण्डितजी के बुलाये राव ने मसूरी जाना मंजूर नहीं किया। मैंने बिना राव के मसूरी जाना निरर्थक समझा।

इस विषय में शुक्लजी, राघवेन्द्र और मेरे बीच जो पत्र तथा तार गये आये वे नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

१२ जुलाई २६

प्रियवर शुक्लजी,

मिश्रजी अभी मुझसे मिले। मैं आरम्भ में ही स्पष्ट लिख देना चाहता हूँ कि यदि श्रीयुत राघवेन्द्रराव मसूरी नहीं जा रहे हैं तो मैं अकेला मसूरी जाने को बिल्कुल तैयार नहीं हूँ।

भवदीय
गोविन्ददास

प्रिय बाबू साहेब,

आप यहाँ से तो अकेले चलिये। मसूरी पहुँचते ही आप राव को तार पण्डितजी से दिलवा दीजिये। ज्योंही तार मिलेगा राव फौरन रवाना होकर वहाँ पहुँच जायँगे। अभी अगर आप दोनों साथ जायँगे तो मेरी समझ से ठीक न होगा। कल श्यामजी आपसे मिलेंगे। आप विश्वास रखिये।

आपका स्नेही
रविशंकर शुक्ल

पर यह झगड़ा मिट गया, क्योंकि मोतीलालजी ने मेरी प्रार्थना पर मुझे निम्नलिखित तार भेज दिया।

"Consider immediate consultation with you Raghavendrarao essential. Please come atonce. Inform Raghavendrarao also. Wire arrival."

इस पर श्री राव को मैंने तार दिया जिसका उन्होंने मुझे निम्नलिखित उत्तर भेजा—

"Leaving tomorrow meet Katni Calcutta mail"

हम दोनों किसी तरह मसूरी पहुँचे।

जैसा ऊपर कहा है सन् २३ के चुनाव के बाद स्वराज्य पार्टी का प्रतिज्ञा-पत्र भंग कर श्री राघवेन्द्रराव ने मन्त्रिमण्डल बनाने का जो प्रयत्न किया था वह पण्डितजी को भली भाँति मालूम था। कांग्रेस की पदग्रहण करने के सम्बन्ध में अभी भी वही नीति थी अतः पण्डितजी ने श्री राव से इस विषय में स्पष्ट आश्वासन चाहा। पण्डितजी चाहते थे कि स्पष्ट आश्वासन लेकर श्री राव को तो वे प्रान्तीय असेम्बली में भेज दें, परन्तु शेष ऐसे व्यक्तियों को भेजें जो कट्टर कांग्रेसवादी हों। श्री राघवेन्द्रराव ने पण्डितजी को यह आश्वासन तो दे दिया कि वे कांग्रेस के आदेशों का पालन करेंगे, परन्तु जब प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने की बात आयी तब वे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने को तब तक राजी न हुए जब तक कांग्रेस की ओर से खड़े होनेवालों की उनकी सूची पण्डितजी स्वीकार न कर लें। बस फिर क्या था कुछ ही क्षणों में कुछ गरमा-गरम कहा-सुनी हो पण्डितजी और राव साहब की बात टूट गयी। श्रीराव तत्काल मसूरी से लौट आये और चुनाव का सारा भार पण्डितजी ने मुझ पर रख दिया। इतने पर भी चलते-चलते नेहरूजी ने श्री राव से सब बातों पर फिर से विचार करने के लिए कह दिया।

मसूरी से जब मैं जबलपुर लौटा तब मुझे मालूम हुआ कि वर्तमान वायु-मण्डल के कारण तथा साधनों के सम्पूर्ण अभाव में हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी ने एक दिन पहले ही हमारे प्रान्त में कांग्रेस की ओर से चुनाव न लड़ने की घोषणा की है। मेरे पैरों के नीचे से जमीन ही खिसकी हुई जान पड़ी। ऊपर से मोतीलालजी चुनाव का भार मुझ पर रख रहे

हैं। नीचे से प्रान्तीय कार्यकारिणी चुनाव न लड़ने का निर्णय कर रही है। श्री राघवेन्द्रराव ऐसे समय कांग्रेस से अलग हो रहे हैं। एक विचित्र परिस्थिति ! कुछ समय तक तो समझ में ही न आया कि क्या करूँ। उस समय मेरे सच्चे सलाहकार और सच्चे साथी केवल एक व्यक्ति थे पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र ; परन्तु उस समय उनका प्रान्त की राजनीति में कोई स्थान न था।

अन्त में हम दोनों ने सलाह कर उस समय के प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी चौहान को पुनः कार्यकारिणी की बैठक बुलवा चुनाव न लड़ने के निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए राजी किया। कार्यकारिणी की बैठक हुई। मैं कार्यकारिणी का एक सदस्य बनाया गया, क्योंकि अब प्रान्तीय विधान के अनुसार सभापति ही अपनी कार्यकारिणी नियुक्त करता था और कार्यकारिणी का एक स्थान रिक्त था। कार्यकारिणी ने अपना पूर्व निश्चय बदल कर चुनाव लड़ने का निर्णय किया और चुनाव सम्बन्धी कुल काम मुझे सौंपा गया। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के कोष में उस समय केवल तीन पैसे थे।

उम्मीदवारों की सूची तैयार करते समय मैंने फिर एक बार श्री राघवेन्द्रराव से समझौते का प्रयत्न किया, पर अब राव साहब कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने को किसी प्रकार भी तैयार न हुए।

मैंने सारी परिस्थिति की सूचना मय उम्मीदवारों की सूची के मोतीलालजी को मसूरी भेज दी। उनका इस सम्बन्ध में जो पत्र आया वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

The Oaks.
Mussoorie, July 27, 1926

Dear Govind Das,

I have duly received your telegram of yesterday, intimating that candidates had been finally adopted and that the announcement was held over till the 20th instant to enable Mr. Ravishankar Shukla to come to some compromise with Raghavendra Rao. From this it appears that Raghavendra Rao has not been adopted as a candidate. This should only be due to his refusal to sign the Congress pledge. If this is so I am afraid no compro-

mise is possible which involves the least change in the pledge...........

It is time now that you began your election campaign. For the present it will be enough to take the resolutions of the Cawnpore Congress and those of the All India Committee passed at Delhi as the text of the election speeches and to demolish the arguments of the Responsivists. The communal question is a very delicate one and nothing must be said or done to annoy any community. Our attitude should be that of strict justice to all communities and favour to none.........

Please do not think that I have come up here in despair. I am full of hope and confidence and have sought a change simply to gain health and strength to pull me through the coming contest.

Yours sincerely,
Sd. Moti Lal Nehru

जैसा ऊपर कहा गया है मेरा तो चुनाव था नहीं, क्योंकि मैं तो एक वर्ष पूर्व कौंसिल ऑफ स्टेट में चुना जा चुका था, परन्तु केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बली के सारे चुनाव थे। अब चुनाव की सारी तैयारी शुरू हुई और इसमें पानी के सदृश मेरा निज का पैसा बहना। मेरे सामने एक बात तो यह थी कि जिस संस्था में मैं था उसकी प्रतिष्ठा। दूसरे मेरे नेतृत्व की भी परीक्षा होनी थी। पं० माखनलालजी चतुर्वेदी को सहायता करने की प्रार्थना की गयी जो उन्होंने स्वीकार कर ली। "देशबन्धु" नामक एक दैनिक पत्र निकाला गया। उम्मीदवारों में पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र केन्द्रीय असेम्बली और ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़े किये गये थे।

उधर कांग्रेस के विरोध में श्री राघवेन्द्रराव ने इण्डिपैण्डैण्ट कांग्रेस पार्टी का निर्माण किया। कई पुराने कांग्रेसवादी उनसे जा मिले, जिनमें मुख्य थे श्री श्यामसुन्दर भार्गव, पं० रविशंकरजी शुक्ल, ठाकुर छेदीलाल, श्री गोकुलचन्द सिंघई। श्री घनश्यामसिंहजी गुप्त और पं० चन्द्रगोपालजी मिश्र किसी तरह उस ओर जाते-जाते बचे। भारी संघर्ष हुआ। लाला लाजपतराय और पं० मदनमोहन मालवीय इण्डिपैण्डैण्ट कांग्रेस पार्टी का समर्थन करने हमारे प्रान्त में

पहुँचे और मोतीलालजी कांग्रेस का समर्थन करने ।

मराठी मध्य प्रान्त और बरार में तो कांग्रेस हार गयी, नागपुर से केन्द्रीय असेम्बली के लिए कांग्रेस उम्मीदवार श्री बैरिस्टर अभ्यंकर को भी डाक्टर मुंजे ने हरा दिया, पर हिन्दी मध्य प्रान्त में कांग्रेस का प्रचण्ड बहुमत चुना गया। कांग्रेस के विरोध में खड़े होने के कारण पं० रविशंकर शुक्ल के सदृश व्यक्ति भी सेठ शिवदास डागा से हारे। श्री राघवेन्द्रराव इसलिए जीते कि हमारे उम्मीदवार ठाकुर प्यारेलालसिंह की नामजदगी खारिज हो गयी। और सबसे बड़ी जीत हुई पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र की जिनका सबसे अधिक विरोध था, क्योंकि उन्हें हमारे प्रान्त का न मानकर बाहर से आनेवाला माना जाता था, साथ ही उस समय प्रान्त में उन्हें कोई जानता भी न था। मिश्रजी की यह जीत मेरी व्यक्तिगत जीत मानी गयी।

सारे चुनावों में केन्द्रीय फण्ड से हमें केवल बारह हजार रुपया मिला। चुनाव के लिए प्रान्त में भी चन्दा न हो सका और मुझ पर मेरा स्वयं का चुनाव न रहते हुए भी कोई एक लाख रुपये से अधिक का भार आ गया।

कितनी बधाइयाँ मिलीं मुझे मोतीलालजी से। मेरे नेतृत्व की परीक्षा हो गयी। सफलता भी मुझे मिली, पर यह चुनाव मेरे लिए आर्थिक दृष्टि से बड़ा मँहगा पड़ा। कर्ज के बोझ से तो हमारा घर दबा हुआ था ही, कर्ज और बढ़ गया। यहाँ एक प्रश्न उठता है। यदि मेरे नेतृत्व का प्रश्न न होता और केवल कांग्रेस की प्रतिष्ठा का सवाल होता तो क्या मैं इतना आर्थिक भार उठाने को तैयार होता ? मैंने निश्चय किया है कि इस पुस्तक में मैं सत्य का ही आश्रय लूँगा और सत्य के नाम पर मैं कह देना चाहता हूँ कि कांग्रेस में असीम निष्ठा रखते हुए भी यदि मेरे व्यक्तिगत नेतृत्व की बात भी न होती तो मैं इतना बड़ा भार न उठा सकता।

× × ×

सन् २६ के चुनावों के बाद किसी भी प्रान्त में कांग्रेस का बहुमत नहीं हो पाया। केन्द्र में प० मोतीलालजी करीब-करीब उतने ही सदस्यों को लेकर पहुँचे जितने सन् २३ के चुनाव में लेकर गये थे। इस बार मद्रास में एक नये व्यक्तित्व का उदय हुआ था। ये थे एस० श्रीनिवास आयंगर। कांग्रेस के

कानपुर के अधिवेशन के बाद गोहाटी के कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसके श्री आयंगर ही सभापति हुए थे। मद्रास से इस चुनाव में केन्द्रीय असेम्बली के लिए कांग्रेस की ओर से जो व्यक्ति खड़े किये गये थे उनमें अधिकतर सफल हुए थे। इसका श्रेय बहुत दूर तक श्री आयंगर को था।

इस चुनाव के बाद केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेस दल की जो पहली बैठक दल के पदाधिकारियों के चुनने के लिए हुई उसमें एक बड़ी दिलचस्प घटना घटी। चूँकि श्री श्रीनिवास आयंगर उस समय कांग्रेस के सभापति थे और दक्षिण भारत के सबसे प्रधान व्यक्ति इसलिए उनके मन में मोतीलालजी को नेतृत्व से हटा स्वयं कांग्रेस दल के नेता होने की महत्त्वाकांक्षा की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पक्ष में कुछ सदस्यों का एक गुट बनाया और इसके प्रमुख वक्ता चुने गये बिहार के एक मुस्लिम सदस्य श्री शफी दाउदी।

पदाधिकारियों के चुनाव के लिए कांग्रेस दल की इस बैठक में केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों के साथ कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्य भी दल के संविधान के अनुसार उपस्थित थे। मैं भी था। उस समय जो कुछ हुआ वह आज भी मुझे जैसा का तैसा याद है।

श्री शफी दाउदी साहब ने कुछ इस प्रकार कहा "कांग्रेस पार्टी का लीडर और दूसरे ओहदेदार भी ऐसे शख्स होने चाहिए जो गान्धीजी के तमाम उसूलों पर अमल करते हों, शराब न पीते हों, विलायती कपड़े का रोजगार ·····"

उन्हें बीच में रोककर मोतीलालजी ने कुछ इस तरह कहा "दाउदी साहब, आप घुमा-फिराकर बात क्यों करते हैं, साफ-साफ क्यों नहीं फरमाते कि मैं शराब पीता हूँ इसलिए मैं लीडर न चुना जाऊँ। सुन लीजिए आप और सब साहबान, मैं जरूर शराब पीता हूँ; लुका छिपाकर नहीं सबके जाहिरा में। मैंने १६२० में शराब पीना छोड़ दिया था, पर उससे मेरी सेहत इतनी बिगड़ी कि डाक्टरों की राय हुई कि अगर मैं दवा के बतौर शराब न पिऊँगा तो मर जाऊँगा। गान्धीजी को यह सब मालूम है। इस सारे वजूहात जानने के बाद आप लोगों को सात दफा गरज हो तो मुझे लीडर चुनिए नहीं तो हरगिज नहीं।"

पण्डितजी के इस भाषण से उस बैठक में जैसा सन्नाटा छाया था उसे मैं

अब तक भी नहीं भूल पाया हूँ। श्री आयंगर महोदय के सारे प्रयत्न के लिए इस भाषण ने वही काम किया जो एक देहाती कहावत कहती है—"सौ सुनार की और एक लुहार की"। मोतीलालजी के सिवा नेतृत्व के लिए कोई और नाम ही प्रस्तावित नहीं हुआ और वे सर्वमत से फिर कांग्रेस दल के नेता निर्वाचित हुए। श्रीनिवास आयंगर उपनेता चुन गये, श्री रंगास्वामी आयंगर मंत्री और मैं फिर से कोषाध्यक्ष।

उसी बीच एक और विनोदकारी घटना घटित हुई। पण्डित मोतीलालजी बड़ी-बड़ी मूँछें रखते थे। उनके गौर वर्ण, भरे हुए मुख और शरीर पर ये शुभ्र मूँछें खूब ही खिलतीं थीं, पर इस बीच उन्होंने इन मूँछों को मुड़ा डाला था। जब शिमले में केन्द्रीय असेम्बली की बैठक हुई उस समय वहाँ की कुछ महिलाओं का एक शिष्टमण्डल पण्डितजी से मिला और इस शिष्टमण्डल ने उन्हें अंग्रेजी में एक "मैमोरेण्डम" दिया जिसका शीर्षक था "प्लीज़ कोआपरेट विथ योर मुस्टेसेज।" इस शिष्टमण्डल को मोतीलालजी ने बड़ा विनोदपूर्ण उत्तर दिया। बहुत समय तक अखबारों में ये विनोदी समाचार छपते रहे, पर मोतीलालजी ने फिर अन्त समय तक अपनी मूँछों से सहयोग न किया।

एक दैवी प्रकोप

सन् २६ के चुनाव अक्टूबर-नवम्बर महीनों में हुए। चुनाव के ठीक एक महीने पहले जबलपुर और आस-पास के स्थानों में एक भीषण दैवी प्रकोप हुआ। सितम्बर के मध्य में एक दिन रातभर में १३ इंच और उसके दूसरे दिन दिन भर में ५ इंच इस प्रकार २४ घण्टों में १८ इंच पानी बरसा। ऐसी मूसलधार वृष्टि जबलपुर के लोगों ने न इसके पहले कभी देखी थी और न इसके बाद ही अब तक कभी देखी। इस वृष्टि को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार के समय जब उन्होंने इन्द्र की पूजा बन्द करा गोवर्द्धन की पूजा आरम्भ करायी थी उस समय इन्द्र के प्रकोप और व्रज पर सात दिनों तक लगातार जो वर्षा हुई थी उस वर्षा के श्रीमद्भागवत के वर्णन का स्मरण आ जाता था।

इत्थ मघवता ज्ञप्ता मेघा निर्मुक्त बन्धना :
नन्द गोकुल मासारेः पीडया मासु राजसा।
विधोतमाना विद्युभ्दिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः
तीव्रर्महद्वगणैर्नुन्ना व वृषर्जल शर्कराः
स्थूणा स्थूला वर्षधारा मुचत्स्व मेघ भीक्ष्णशः
जलौघैः प्लाव्य माना भू नद्रिश्यत नतोन्नतम्।

कैसी गरज, कैसी चमक, कैसी घनघोर वृष्टि थी वह! और फिर व्रज की उस आपत्ति से रक्षा करने के लिए स्वयं भगवान् मौजूद थे, इस वृष्टि से जबलपुर की रक्षा कौन करता? नर्मदा में बड़ी भारी बाढ़ आयी, छोटे-छोटे नालों ने भी पूरवाली नदियों का उग्र रूप धारण किया। कितने मकान गिरे! कितने जानवर मरे! कितनी हानि हुई गरीबों की! गनीमत यही हुई कि मनुष्यों के मरने की कोई सूचना नहीं मिली। अतिवृष्टि का तथा बाढ़ों का हाल तो पहले अनेक बार पढ़ने और सुनने का अवसर आया था, पर इस प्रकार की दैवी आपत्तियों का हाल पढ़ना और सुनना एक बात है और इन्हें

देखना दूसरी। जिनके मकान गिर गये या बह गये थे, जिनका सामान नष्ट हो गया था, उन लोगों की, विशेषकर स्त्रियों और बच्चों की, कैसी दर्दनाक अवस्था थी। अनेक की स्थिति देखकर तो आँखों के आँसू न रुकते थे।

पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का कार्य आरम्भ हुआ। मैंने तत्काल बाढ़ सहायक समिति के नाम से एक संगठन बनाने की घोषणा की। उधर श्री श्यामसुन्दर भार्गव ने एक अलग संगठन बनाया। लोगों को सहायता पहुँचाने की अपेक्षा ध्यान इस बात पर अधिक था कि कौन अधिक सहायता पहुँचाता है और इस सहायता के काम में अपने विपक्षी की कितनी अधिक बदनामी की जा सकती है। लगभग पाँच वर्ष पहले हम लोग इसी प्रकार एक सेवा-कार्य जबलपुर के प्लेग के प्रकोप के समय प्लेग रिलीफ कमेटी द्वारा कर चुके थे, परन्तु कितना अन्तर था उस समय के और इस समय के काम में। इस समय हम दोनों दो अलग-अलग दलों में काम कर रहे थे। ये दोनों राजनैतिक दल थे और ये दल एक दूसरे के विरोध में उम्मीदवार खड़े कर एक महीने के बाद ही धारा-सभाओं के चुनाव लड़ने वाले थे। बाढ़-पीड़ितों की विशुद्ध सेवा के काम का भी हम अब राजनैतिक उपयोग करना चाहते थे। इसीलिए न उस सेवा में सन् २१ की प्लेग के समय की सेवावाली शुद्ध भावना थी, न वह लगन, न वह अथक परिश्रम और न वह असीम साहस। जहाँ शुद्ध भावना न होकर सेवा का दिखावा हो, और उस दिखावे के भी अन्य उपयोग करने की कुत्सित इच्छा, वहाँ सेवा नहीं रहती; वह हो जाती है असेवा से भी बुरी वस्तु। इसीलिए पूर्ण मिथ्या से अर्द्ध मिथ्या को अधिक भयानक माना गया है। पूर्ण मिथ्या को पहचानने में कठिनाई नहीं होती, पर अर्द्ध मिथ्या में सत्यांश के सम्मिलित रहने के कारण अनेक बार उसके सच्चे रूप को नहीं पहचाना जा सकता और ऐसे अवसरों पर उससे कल्याण की अपेक्षा अकल्याण ही अधिक होता है। इस विचार को मैंने अपने उपन्यास "इन्दुमती" में जिस प्रकार प्रकट किया है उससे अच्छे ढंग से प्रकट करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस विश्लेषण को मैं एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विश्लेषण मानता हूँ। इस विचार का समाज में अधिक से अधिक प्रचार भी मैं आवश्यक समझता हूँ। समाज को पूर्ण मिथ्या और अर्द्ध मिथ्या के भेद को समझ ने

किस उद्देश्य से कौनसा कार्य करता है, यह समझना ही चाहिए, कम से कम सेवा करनेवालों की सच्ची वृत्ति जानना समाज के लिए परम आवश्यक है। इसलिए "इन्दुमती" में इस सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा है उसका तथा जहाँ कहीं भी इस विचार का दिग्दर्शन हुआ हो उसका मैं ज्यादा से ज्यादा प्रचार जरूरी समझता हूँ। "इन्दुमती" में मैंने इस विषय में जो कुछ कहा है उसे जैसा का तैसा यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"अर्द्ध मिथ्या पूर्ण मिथ्या से भी बुरी चीज है। पूर्ण मिथ्या अपने सच्चे रूप में प्रकट हुए बिना क्वचित् ही रहती है और जब वह प्रकट हो जाती है तब उससे होनेवाली हानि भी बहुत दूर तक रुक जाती है। लेकिन अर्द्ध मिथ्या में चूँकि सत्यांश मिला रहता है इसलिए एक तो उसका अपने सच्चे रूप में प्रकट होना ही कठिन होता है, दूसरे यदि वह प्रकट भी हो जाये तो पूर्णरूप से वह सिद्ध नहीं हो पाता कि वह मिथ्या है। एक दल उसे सत्य कहने लगता है तथा दूसरा मिथ्या ; और ऐसी कलहाग्नि उत्पन्न होती है कि दूर-दूर तक उसकी आँच पहुँचे बिना नहीं रह सकती।"

सन् २६ की बाढ़ के जबलपुर के सेवकों में किसी की मनोवृत्ति भी शुद्ध न थी, मेरी भी नहीं। इसीलिए उस समय के काम और सन् २१ के इसी प्रकार के काम में आकाश-पाताल का, बड़ा भारी, महान अन्तर रहा।

माहेश्वरी महासभा में फूट

मैं सन् १९२० में माहेश्वरी महासभा में आया था, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। वह समय ऐसा था जब देश में सर्वतोमुखी जागृति हो रही थी और माहेश्वरी जाति में भी वह युग अनेक सामाजिक सुधारों का युग रहा। माहेश्वरी महासभा का संगठन भी मजबूत हुआ तथा अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के साथ कई प्रान्तों में प्रान्तीय सभाएँ भी चलीं। परन्तु सुधारकों की यह सफलता जाति के पुराने पंचों की आँखों में सदा ही खलती रहीं और वे किसी न किसी ऐसे मौके की ताक में रहे कि हम सुधारकों के इस बलशाली संगठन को नष्ट-भ्रष्ट कर सकें। उन्हें इसका एक अवसर मिल गया।

कुचामन के एक श्री कोठारीजी ने, जो दिल्ली में रहते थे, अपने पुत्र का विवाह एक कोलवाल कन्या से कर दिया। कोलवाल अपने को कोलवाल माहेश्वरी कहते थे, पर उस समय के अन्य माहेश्वरी उन्हें माहेश्वरी नहीं मानते थे। इस प्रश्न को लेकर कुचामन में माहेश्वरियों की पंचायत बैठी। वहाँ कोठारीजी तब तक जाति से बहिष्कृत माने गये जब तक इसका निर्णय माहेश्वरी महासभा न कर दे कि कोलवाल माहेश्वरी हैं या नहीं।

इसी के बाद मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के खापरखेड़ा नामक स्थान पर श्रीकृष्णदासजी जाजू की अध्यक्षता में मध्य प्रान्त-बरार की प्रान्तीय माहेश्वरी सभा हुई। उस सभा के अवसर पर अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के कार्यकारी मण्डल की भी बैठक थी। इस बैठक में श्रीकृष्णदासजी जाजू, ब्रिजलालजी बीयाणी, रामकृष्णजी मोहता और मैं इस प्रकार चार व्यक्तियों का एक कमीशन इस बात की जाँच के लिए नियुक्त किया गया कि कोलवाल माहेश्वरी हैं या नहीं।

यह कमीशन उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में, जिसे पुराने समय कोल जिला कहते थे, घूमा। इसने गवाहियाँ लेकर तथा अन्य कई प्रकार की जाँच

करके माहेश्वरी महासभा को रिपोर्ट दी कि कोलवाल माहेश्वरी हैं। कोलवाल कमीशन की रिपोर्ट पर माहेश्वरियों के पुराने पंचों ने टीका-टिप्पणी शुरू की। जिस मौके की वे खोज में थे, उन्हें मिल गया।

इस रिपोर्ट पर बम्बई में होनेवाला माहेश्वरी महासभा का अधिवेशन विचार कर अपना निर्णय देनेवाला था। माहेश्वरी महासभा के इस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे श्री रामेश्वरदासजी बिड़ला। बिड़लाजी की पत्नी का हाल में ही स्वर्गवास हुआ था। उन्होंने माहेश्वरी महासभा के निर्णय के पहले ही एक कोलवाल कन्या से अपना दूसरा विवाह कर लिया।

बस अब तो क्या था। सारे माहेश्वरी समाज में कलहाग्नि प्रज्वलित हो गयी। इसने दावानल का-सा रूप धारण किया। सुधारकों पर अधर्मी होने, सारे समाज को रसातल में ले जाने और न जाने कितने गाली-गलौज भरे आक्षेप आरम्भ हुए। कितनी कटुता! कितना अनर्गल प्रलाप! क्या-क्या होना शुरू हुआ! जो कुछ हो, यह मानना होगा कि उस समय माहेश्वरी समाज का प्रचण्ड बहुमत हम सुधारकों के विरुद्ध हो गया। इसका तत्काल फल यह निकला कि स्वागत-समिति के अध्यक्ष पद से बिड़लाजी को स्तीफा देना पड़ा।

ऐसा तप्त था माहेश्वरी समाज का उस समय वायुमण्डल जब महासभा का अधिवेशन बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन का मैं सभापति चुना गया यद्यपि इसके पहले भी आकोले के अधिवेशन का मैं सभापति चुना जा चुका था, पर उस समय अचानक बीमारी के कारण मैं न जा सका था और मेरे बदले मेरे ताऊ दीवान बहादुर वल्लभदासजी ने उस अधिवेशन का सभापतित्व किया था।

बम्बई के अधिवेशन में बड़ी धूमधाम थी। कोई छः हजार प्रतिनिधि देश के कोने-कोने से आये थे। मैं यद्यपि सुधारकों में गिना जाता था, और जिस कमीशन ने कोलवालों को माहेश्वरी घोषित किया था उसका एक सदस्य था, तथापि अन्य सुधारकों की अपेक्षा मुझ पर सनातनियों का कुछ अधिक विश्वास था। इसके कई कारण थे। पहला कारण था हमारे कुटुम्ब का कट्टर सनातनधर्मी और वल्लभीय सम्प्रदाय का होना। दूसरा कारण था

मेरी स्वयं की रहन-सहन का ढंग— त्रिकाल सन्ध्या करता, पूजा-पाठ करता, मन्दिर जाता, जो आज भी करता हूँ। उस समय में पगड़ी बाँधता था और वल्लभकुली तिलक लगाता था, इसका भी उस फिरके पर कम असर न था। और तीसरा कारण यह था कि माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन के पहले बिड़लाजी के इस प्रकार विवाह करने को मैंने अनुचित बताया था, साथ ही यह कहा था कि माहेश्वरी महासभा का कोलवाल कमीशन के पक्ष या विपक्ष में जो भी निर्णय होगा उसे मैं मानूँगा। सनातनियों को पूरी आशा थी कि मेरे सभापतित्व में सभा की कार्रवाई सर्वथा निष्पक्षता से होगी।

वायुमण्डल अत्यन्त क्षुब्ध होने पर भी सभा की कार्यवाही निर्विघ्नता से आरम्भ हुई। बिड़लाजी के स्थान पर रामरिखजी मालाणी स्वागताध्यक्ष थे। उनका और मेरा भाषण भी लोगों ने बड़ी शान्ति एवं धैर्य से सुना। मेरा भाषण पसन्द भी बहुत किया गया। सामाजिक दृष्टि से वह अच्छा था, इसमें सन्देह नहीं।

इस रस्मी कार्रवाई के पश्चात् विषय निर्वाचनी समिति की बैठक हुई। कोलवालों का विरोधी पक्ष यह चाहता था कि कोलवाल कमीशन सम्बन्धी प्रस्ताव पहले ले लिया जाय, पर मैं उसे अन्त में लेने का निर्णय कर चुका था। कौन विषय पहले लिया जाय और कौन बाद में इसका अधिकार सभापति को था अतः इसके सम्बन्ध में मेरे निर्णय को कोई न बदल सका।

दो दिनों तक सभा की सारी कार्रवाई शान्ति से चलवा सकने में मैं सफल हो गया और जब अन्य समस्त प्रस्ताव पास हो चुके तब अन्त में मैंने कोलवाल कमीशन की रिपोर्टवाला प्रस्ताव लिया। नियमानुसार पहले प्रस्ताव विषय निर्वाचनी में आया। वहाँ का निर्णय बहुत थोड़े बहुमत से सुधारकों के पक्ष में गया। अब तो क्या पूछना था। आग में मानो घी की आहुतियाँ नहीं अखण्डधारा पड़ने लगी। पर अधिक घी पड़ने से ज्वाला बुझ जाती है वैसा नहीं हुआ। अग्नि इतनी भीषण थी कि यह अखण्डधारा भी उसे और प्रज्वलित करने में ही सहायक हुई।

जब खुले अधिवेशन में विषय निर्वाचनी का प्रस्ताव आया तब तो ऐसा होहल्ला मचा कि किसी की कोई बात ही सुनायी न देती थी। लाउडस्पीकर

उस समय थे नहीं। पूरे तीन घण्टे के एक पहर तक यह अव्यवस्था चली और यहाँ तक सुनने में आया कि एक समुदाय पण्डाल में आग लगाने की तैयारी कर रहा है।

मेरे सामने सभा को समाप्त करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। मैंने, तीन घण्टे तक शान्ति के सारे प्रयत्न करने के बाद जब किसी प्रयत्न में भी सफलता न मिली तो, उस अधिवेशन को समाप्त कर दिया।

दूसरे ही दिन बम्बई में माहेश्वरी महापंचायत की स्थापना हुई।

इसके बाद माहेश्वरियों का यह संघर्ष पाँच वर्ष तक चला। इन पाँच वर्षों में पंचायतवालों ने अपने अधिवेशनों, पत्रों तथा अन्य सभी प्रकार के प्रचार में हजारों नहीं लाखों रुपये खर्च किये। माहेश्वरियों में जो सज्जन पंचायत में सम्मिलित थे उनमें अनेक करोड़पति थे और उन्होंने जब यह प्रश्न अपनी आन-बान का सवाल बना लिया था तब पैसे की क्या कमी थी।

माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन फिर भी होते रहे, पर जहाँ माहेश्वरी महासभा का अधिवेशन होता वहीं महापंचायत का। महासभा के अधिवेशन में हम मुट्ठीभर सुधारक रहते और महापंचायत के अधिवेशन में हजारों लोग।

परन्तु समय पंचायत के साथ न था। धीरे-धीरे फिर से उनकी गति मन्द होने लगी और सुधारकों की तेज। अन्त में तो सुधारकों की गति ने इतनी तेजी पकड़ी कि जिन माहेश्वरियों में कोलवालों से विवाह सम्बन्ध होने पर इतना झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, उन्हीं में अग्रवालों से सम्बन्ध होने लगे, यहाँ तक कि हाल में तो बीयाणीजी ने अपने पुत्र का सम्बन्ध पंजाबी कन्या से किया है।

इसके बाद एक बार फिर माहेश्वरी महासभा के अजमेर अधिवेशन का मैं सभापति हुआ। अब कई वर्षों से न महासभा का अधिवेशन हुआ है और न प्रान्तीय सभाओं का। अन्य जातीय सभाओं की भी यही स्थिति है। शायद अब इनका कोई विशेष काम नहीं रह गया है। अपनी-अपनी जाति में सुधार का काम प्रायः समाप्त हो चुका है। अब तो स्वतन्त्र भारत के पूरे भारतीय समाज के सुधार की आवश्यकता है। फिर भी यदि इन जातीय सभाओं के अधिवेशन आदि हों तो मैं इनका विरोधी नहीं हूँ, क्योंकि इन सभाओं ने हिन्दू महासभा या मुस्लिम लीग के सदृश अराष्ट्रीय कार्य नहीं किये हैं; वरन् अपनी-अपनी जाति को राष्ट्रीय क्षेत्र में ही खींचा है।

साइमन कमीशन

सन् १९१९ की मांटेग्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के अनुसार भारत का शासन चलानेवाला कानून बना था। उस समय सरकार ने यह घोषणा की थी कि इस कानून के १० वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायगा जो यह देखेगा कि भारतवर्ष ने अपने उत्तरदायित्व को किस प्रकार निभाया है और वह स्वशासन में और कितनी अधिक जिम्मेदारी दिये जाने के योग्य है। परन्तु कौंसिलों में कांग्रेस पार्टी को अडंगा-नीति के कारण सरकार जान गयी थी कि वह कानून असली रूप में तो कार्य में परिणत किया ही नहीं गया। इसी से शायद सन् १९२९ में जिस कमीशन को नियुक्त करने की घोषणा हुई थी उसे समय के पहले ही नवम्बर १९२७ में नियुक्त कर दिया गया।

यह कमीशन सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में गठित हुआ था। अतएव इसका नाम साइमन कमीशन पड़ा। ज्योंही इस कमीशन के सदस्यों की नामावली घोषित की गयी, त्योंही उसमें एक भी भारतीय को न लेने से भारतवासियों के बदन में आग-सी लग गयी। इस प्रतिक्रिया का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नरम दल के नेताओं ने भी, जिनमें सर तेज-बहादुर सप्रू सबसे प्रमुख थे, साइमन कमीशन के बहिष्कार की आवाज उठायी। इस प्रकार देश की सारी संस्थाओं ने कमीशन के बायकाट की आवाज बुलन्द की। सरकार ने धमकी दी कि बहिष्कार के बावजूद कमीशन अपना काम करता रहेगा और पार्लियामैण्ट में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

कांग्रेस की दृष्टि से समस्त विषय पर विचार करने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई और कांग्रेस ने सारे देश से कमीशन के सर्व प्रकार से बहिष्कार की अपील की। बहिष्कार का मुख्य कार्यक्रम इस प्रकार रखा गया—जहाँ-जहाँ कमीशन जाए, वहाँ हड़ताल रखने के साथ ही काले झण्डे दिखाकर अहिंसात्मक प्रदर्शन करना, कमीशन के सामने किसी भी प्रकार की

गवाही देने न जाना और कमीशन के सम्मान में दी जानेवाली पार्टियों का भी बायकाट।

इस बहिष्कार के साथ ही साथ कांग्रेस ने जब देखा कि यह कमीशन प्रमुख रूप से संसार के सामने हम भारतवासियों को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन चलाने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध करके बदनाम करेगा तो उसने एक ऐसी कमेटी के संगठन का प्रस्ताव किया जो देश के समस्त दलों के प्रतिनिधियों से युक्त हो और उसका कार्य यह हो कि सबकी सहमति से भारतवर्ष के शासन के उपयुक्त संविधान बना कर संसार को यह दिखला दे कि भारतवासी भी कुछ दिमाग रखते हैं और आपस में मिलकर अपने लिए संविधान भी बना सकते हैं। इस कमेटी के अध्यक्ष श्रीमोतीलालजी नेहरू नियुक्त हुए। अतएव कमेटी का नाम नेहरू कमेटी पड़ा।

अब नेहरू कमेटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले साइमन कमीशन की भी कुछ खबर लेना अनुपयुक्त न होगा। कमीशन जब फरवरी में बम्बई में उतरा तो सारे देश में शान्तिपूर्ण हड़ताल रही। केवल मद्रास में पुलिस की जल्दबाजी से गोली चल गयी और कलकत्ते में विरोधियों और पुलिस में मुठभेड़ हो गयी। जब सरकार ने इस संगठनपूर्ण देशव्यापी हड़ताल को देखा तो उसने दमन से काम लेना आरम्भ किया। जहाँ-जहाँ कमीशन जाता था, वहीं-वहीं उसका पूर्ण बहिष्कार होता था। जनता काले झण्डे लिये "साइमन गो बैक" के गगनभेदी नारे लगाती हुई अपना उत्साह दर्शाती और पुलिस लाठी चार्ज द्वारा जनता पर क्रूरता करती। सरकार का दमन बढ़ रहा था और कमीशन पुलिस की लाठियों की छत्रछाया में भारत के भिन्न-भिन्न भागों की जातियों व सम्प्रदायों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित (जैसा कि श्री साइमन ने स्वतः लिखा है) करता फिर रहा था।

देश में एक अजीब उत्साह छाया हुआ था जो सन् १९२१ के असहयोग के दिनों की याद दिलाता था। छोटे-छोटे बच्चे तक जहाँ-तहाँ "साइमन गो बैक" "साइमन गो बैक" चिल्लाते फिरते थे। यद्यपि पूरे देश में दमन शुरू हुआ, पर लाहौर और लखनऊ ने तो गजब कर दिया। लाहौर में लाला लाजपतराय को लाठी चार्ज में इतनी गहरी चोटें आयीं कि उसी के फलस्वरूप बीमार होकर कुछ दिन उपरान्त उनका देहान्त हो गया। लखनऊ में पुलिस

ने घरों में घुसकर लोगों को मारा और घुड़सवार पुलिस तो लाठी चार्ज से घायल हुए लोगों पर घोड़े दौड़ाने में भी न हिचकी। और तो और, युवक सम्राट् पण्डित जवाहरलाल नेहरू को भी उन्होंने लाठियों का स्वाद चखा दिया।

बिहार के पटना शहर में सरकारी अधिकारियों की दयनीय दशा हुई। रात्रि के अन्तिम पहर में करीब ५० हजार व्यक्ति साइमन साहब के विरुद्ध नारे लगाने पहुँचे। सरकार देहातियों को मोटर में भर-भर कर स्टेशन लाती, पर वे लोग मोटरों से उतरकर बहिष्कारवालों में शामिल हो जाते। जब कमीशन आया तो एक ओर अटूट जन समुदाय के गगनभेदी नारे लग रहे थे और दूसरी ओर कुछ अफसरों के साथ उनके चपरासी कमीशन का स्वागत क्या खिल्लियाँ उड़ा रहे थे।

इस प्रकार कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया गया। देश की हवा किस ओर बह रही थी इस बात का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि जब कमीशन बम्बई में घूम रहा था तो सर पदवीधारी २२ नाइटों में से एक भी व्यक्ति कमीशन वालों से मिलने नहीं पहुँचा।

हमारे प्रान्त में नागपुर में भी कमीशन का सफल बहिष्कार हुआ। उस समय मराठी मध्य प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति श्री अभ्यंकर थे और यद्यपि केन्द्रीय असेम्बली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट का अधिवेशन चल रहा था तथापि पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र और मैं कमीशन के बहिष्कार के आयोजनों में भाग लेने नागपुर गये थे। इन आयोजनों में सबसे प्रधान जो बात हुई थी वह श्री साइमन साहब की एक मूर्ति (एफिजी) का जलाना था।

कमीशन वापस गया और इधर नेहरू कमेटी ने अपनी रिपोर्ट भी तैयार कर ली। उन्होंने 'औपनिवेशिक स्वराज्य' को लक्ष्य मानते हुए भारतवर्ष के लिए संघ सरकार की योजना प्रस्तुत की थी तथा हिन्दू-मुस्लिम प्रतिनिधित्व के बारे में भी कुछ शर्तें तय कर ली थीं।

× × ×

जब साइमन कमीशन की घोषणा हुई थी उस समय यद्यपि साइमन कमीशन के बायकाट के लिए सर्वप्रथम नरम दल के नेता सर तेजबहादुर सप्रू ने आवाज उठायी थी परन्तु इस आवाज के बावजूद इधर-उधर चर्चा सुनायी

पड़ने लगी थी कि देश के जमींदार इस कमीशन से सहयोग करें। इसके लिए महाराजा दरभंगा जमींदारों की एक परिषद् बुलानेवाले थे। इस देश में अंग्रेजी राज के जो स्तम्भ थे उनमें जमींदार ही प्रमुख थे।

यह पहले अध्यायों में कहा जा चुका है कि सन् १९२३ में केन्द्रीय धारा सभा के लिए मुझे कांग्रेसवादी होते हुए भी मध्य प्रदेश के जमींदारों ने निर्विरोध चुना था और उसके दो वर्ष के बाद ही मैं कौंसिल ऑफ स्टेट में मध्य प्रदेश की ओर से चुना गया था। कौंसिल ऑफ स्टेट के मतदाताओं में भी अधिकांश मतदाता जमींदार ही थे। यह भी पहले कहा जा चुका है कि केन्द्रीय धारा सभा में उस समय ऐसे हर प्रान्त से जमींदारों के लिए एक सीट सुरक्षित थी जहाँ जमींदारी प्रथा का बन्दोबस्त था और मुझे छोड़ किसी भी प्रान्त का जमींदारों का प्रतिनिधि कांग्रेसवादी नहीं था। कौंसिल ऑफ स्टेट में भी बहुत थोड़े सदस्य कांग्रेस टिकिट पर खड़े किये जा सके थे और जो खड़े किये गये थे उनमें से भी चुने जा सके थे वे देशभर में केवल नौ ही थे। मैं भी इन दोनों चुनावों में कांग्रेसवादी होने के कारण नहीं जीता था, वरन् मेरा कांग्रेसवादी होना तो मेरे विपक्ष में जाता था। मेरी जीत हुई थी मेरे राजा गोकुलदास के कुटुम्ब का होने के कारण।

महाराजा दरभंगा की इस कार्रवाई का हाल जब मुझे मालूम हुआ तब मैंने भी अपने जमींदार होने का तथा उनके एक राजनैतिक प्रतिनिधि होने की हैसियत का साइमन कमीशन के बहिष्कार करने में उपयोग करना चाहा और मैंने ऐसे जमींदारों को संगठित कर उनकी एक परिषद् करने की बात सोची जिन्हें मैं अंग्रेजों से दबनेवाला न समझता था और जिन्हें मैं देशभक्त मानता था। इसके लिए मैंने महाराजा सा० महमूदाबाद, राजा सर रामपालसिंह, सर अली इमाम और श्री हसन इमाम से लिखा-पढ़ी की। आगे चलकर इस सम्बन्ध में श्री सी० वाइ० चिन्तामणि जी से भी मेरी लिखा-पढ़ी हुई।

मेरे इस प्रस्ताव का यद्यपि उपर्युक्त सभी सज्जनों ने एक प्रकार से स्वागत किया, पर कुछ ने दायें-बायें झाँकते हुए तथा एक दूसरे पर जिम्मेदारी डालते हुए। इन सज्जनों में से कुछ के पत्रों के उद्धरण परिशिष्ट १ में इसलिए दिये गये हैं कि इनसे उस समय के जमींदारों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का कुछ पता लगता है।

एक अंग्रेजी फौजी अफसर की एक गाड़ीवान से माफी

सन् १६२८ के आरम्भ में एक दिन मैं जबलपुर में नर्मदा के ग्वारी घाट गया। मेरे साथ पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी भी थे, जो उन दिनों एक औषधि सेवन कर रहे थे और मेरे ही महमान थे। शहर से यह नर्मदा का घाट कोई पाँच मील दूर है। तीर्थ के सिवा इस स्थल के महत्त्व का उस समय एक कारण और था। उस समय जबलपुर से नागपुर जाने-आने के लिए नर्मदा के तिलवारे घाट का पक्का पुल न बना था। जबलपुर और नागपुर के बीच मोटरों, लारियों आदि का जो यातायात होता था वे सवारियाँ नर्मदा को इसी स्थान पर पार करती थीं। बरसात को छोड़ शेष आठ महीने इन सवारियों का आना-जाना एक कच्चे पुल पर से होता था जो हर साल बरसात के बाद बनाया जाता था। बरसात में बड़ी-बड़ी नावों पर ये सवारियाँ जाती-आती थीं।

जब मैं ग्वारी घाट पर खड़ा हुआ ऊपर शरद् के आकाश में रुई के पहल के सदृश दौड़ते हुए मेघ खंडों को और नीचे नर्मदा के बहते हुए निर्मल तथा शान्त सलिल को देख रहा था उसी समय नर्मदा के उस कच्चे पुल पर एक क्रूरता भरी घटना घटित हुई। पुल को पार करती हुई एक बैलगाड़ी आ रही थी। उसके पीछे एक मोटर आयी। पुल पर इतना स्थान न था कि बैलगाड़ी की बगल से मोटर निकल आवे अतः मोटर को रुकना पड़ा और मोटर में से एक अंग्रेज फौजी अफसर ने उतर कर उस बैलगाड़ी के गाड़ीवान को पीटना शुरू किया। एक निरपराध व्यक्ति की यह पिटाई मुझसे न देखी गयी और मैं उस ओर बढ़ा। जब तक मैं वहाँ पहुँचा तब तक वह गाड़ी और मोटर दोनों पुल को पार कर चुकी थीं और मोटर रवाना हो ही रही थी। जब मैंने उस अंग्रेज की मोटर रोक उससे उसके इस क्रूर कर्म का कारण पूछा तब मोटर से उतर कर उसने मुझ से कहा कि मैं बीच में बोलनेवाला कौन? मैंने उसे

उत्तर दिया कि वह गाड़ीवान मेरा देश-भाई है और इस नाते मुझे बीच में पड़ने का पूरा अधिकार है। उस अंग्रेज से मेरा यह सारा संभाषण अंग्रेजी में हुआ। और अधिक क्रुद्ध हो अंग्रेज ने एक चपत मुझे भी जड़दी और यह कहते हुए "डेम यू एण्ड योर कंट्री" फिर मोटर में बैठ मोटर बेतहाशा भगायी।

मैं उसकी मोटर का नम्बर और गाड़ीवान का नाम तथा पता ले अपनी मोटर में घर लौटा और गाड़ीवान से कह दिया कि वह मेरे घर आकर मुझसे मिले।

घर लौटकर मुझे पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह अंग्रेज फौज में कप्तान था और उसका नाम था---जे० एन० ए० हैरिस। वकीलों की राय ले मैंने कप्तान को मान-हानि की नालिश का नोटिस दिलाया।

इस नोटिस का जब कोई उत्तर न मिला तब मैंने उस गाड़ीवान को जिस का नाम गुट्टू था अपने साथ वादी बना कप्तान पर फौजदारी में मान-हानि की नालिश कर दी। सारी घटना के वृत्त के साथ नालिश का हाल पत्रों में छपा तब एक तहलका-सा मच गया। जबलपुर के अंग्रेजों के "नर्मदा क्लब" में तो यह उस समय की चर्चा का सबसे प्रधान विषय हो गया। आखिर कौंसिल ऑफ स्टेट के एक सदस्य तथा फौज के अफसर के बीच का झगड़ा था और फिर उस समय पराधीनता के कारण ऐसी घटनाओं को बहुत अधिक महत्त्व मिल जाता था।

आखिर पिताजी के द्वारा मुझ पर इस बात का जोर डाला जाने लगा कि कप्तान हैरिस मुझे माफी की एक चिट्ठी लिख देगा और मैं मुकदमा उठा लूँ। पहले तो यह सन्देशा आया कि पहले मैं मुकदमा उठा लूँ उसके बाद वह मुझे पत्र लिखेगा, पर बाद में इसमें संशोधन कर दिया गया कि दोनों बातें साथ-साथ हो जायँगी। मैं पहले तो मुकदमा उठाने को ही राजी न हुआ पर बहुत वाद-विवाद के बाद मैंने यह कहा कि पहले वह मुझसे और गाड़ीवान से दोनों से लिखित माफी माँगे, फिर मुकदमे की पहली पेशी पर अदालत में गाड़ीवान से हाथ मिलावे, तब मुकदमा उठेगा। और वाद-विवाद होने पर मुझसे तो वह मुकदमा उठाने के पहले लिखित माफी माँगने को भी तैयार हो गया, पर गाड़ीवान से नहीं। मुझे मेरे हितैषियों ने बहुत समझाया कि आखिर

मुकदमे में कुछ होना जाना नहीं है अतः मैं कप्तान हैरिस के प्रस्ताव पर राजी हो जाऊँ, पर मैं टस से मस न हुआ। समझौते के सारे प्रयत्न असफल हुए और बड़ी उत्सुकता से मुकदमे की पेशी की तारीख की प्रतीक्षा की जाने लगी।

परन्तु पेशी के एक दिन पहले कप्तान कुलैंप्स हो गया और उसने समझौते की मेरी शर्तों को स्वीकार कर लिया। जो चिट्ठी अंग्रेजी में उसने मुझे लिखी थी वह परिशिष्ट १ में दी गयी है।

दूसरे दिन मुकदमे की पेशी पर अदालत में इतनी भीड़ थी जितनी जबलपुर की अदालतों में बहुत कम अवसरों पर देखी गयी है। वहाँ जब कप्तान ने मेरे साथ ही गुट्टू गाड़ीवान से भी हाथ मिलाया तब मैंने मुकदमा उठा लिया।

इस घटना की केवल जबलपुर और मेरे प्रान्त में ही नहीं समस्त देश में बड़ी चर्चा हुई और मुझे अनेक क्षेत्रों से बधाई के सन्देश मिले।

सन् २८ की कांग्रेस में पिता-पुत्र संघर्ष

नेहरू रिपोर्ट निकलने के बाद लखनऊ में एक सर्वदल सम्मेलन हुआ, जिसने उस रिपोर्ट को मंजूर कर लिया। अब उस रिपोर्ट पर कांग्रेस के कलकत्ते के वार्षिक अधिवेशन में विचार किया जाना था। कांग्रेस के अधिवेशन के साथ ही कलकत्ते में इस रिपोर्ट पर विचार करने एक सर्वदल कन्वैन्शन भी बुलाया गया। कांग्रेस अधिवेशन के सभापति पण्डित मोतीलाल नेहरू मनोनीत हुए थे। उनकी नेहरू रिपोर्ट की दो बातों पर समझौता न हो सका था अतः कलकत्ते में फिर उन पर विवाद की सम्भावना थी। एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम दोनों के लिए जो संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रों की माँग थी उसका मुसलमानों के एक फिरके ने विरोध करना आरम्भ किया था। दूसरे नेहरू रिपोर्ट में कांग्रेस का जो अन्तिम लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य रखा गया था उस पर विवाद छिड़ गया था। लखनऊ के सर्व दल सम्मेलन में ही उसके सभापति डॉ० अंसारी को इस लक्ष्य के विरोधियों ने एक पत्र में लिख भेजा था कि हम कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं, बल्कि पूर्ण स्वतन्त्रता मानते हैं। इन विरोधियों के नेता श्री श्रीनिवास आयंगर, श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस थे। कलकत्ते में इस विरोध के सामना करने की सम्भावना पं० मोतीलाल नेहरू को कम व्याकुल नहीं कर रही थी। यही व्याकुलता नेहरूजी को फिर गान्धीजी के पास खींच ले गयी और बेलगाँव कांग्रेस के पश्चात् गान्धीजी ने जो एक प्रकार से अवकाश ग्रहण कर लिया था कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने पुनः उत्साह से प्रस्तावों की रूपरेखा बनायी।

वैसे तो कांग्रेस के इस अधिवेशन में अन्य बातें पिटी-पिटाई ही थीं, परन्तु उपर्युक्त दो विवादों के कारण इस अधिवेशन का महत्त्व बहुत बढ़ गया।

एक ओर मुसलमानों की तरफ से फिर कांग्रेस के अधिवेशन के साथ जो सर्वदल कन्वैन्शन था उसमें विलायत से ताजे लौटकर आनेवाले श्री जिन्ना ने, जो कि नेहरू रिपोर्ट को कोसा करते थे, मुसलमानों को केन्द्र में एक तिहाई

स्थान सुरक्षित करने जैसी बेढंगी माँगें उपस्थित कीं और दूसरी ओर हिन्दुओं की तरफ से हिन्दू महासभाई सदस्यों का पृष्ठ पोषण लेकर श्री जयकर ने श्री जिन्ना का खूब विरोध किया। संक्षेप में यह सर्वदल सम्मेलन जिसका कार्य हिन्दू-मुस्लिम एकता करना था, कलकत्ते में सर्वथा असफल हो गया। इसका परिणाम यह निकला कि अली बन्धु आदि प्रभावशाली मुसलमानों ने कांग्रेस को छोड़ दिया। इसके बाद अन्त में श्री जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमानों की माँगें बढ़कर पाकिस्तान तक पहुँचीं।

कांग्रेस के लक्ष्य के सम्बन्ध में वयोवृद्ध श्री श्रीनिवास आयंगर और पं० जवाहरलाल नेहरू एवं सुभाषचन्द्र इस पक्ष में थे कि कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता कर दिया जाय। यहाँ बाप-बेटे का आदर्श मतभेद देखने योग्य था। कोई भी अपनी बात से टलने को तैयार न था। अपनी उस समय की मानसिक स्थिति का हवाला पं० जवाहरलाल ने इस प्रकार दिया है—

"उन्हें (पिताजी को) मेरी असहमति ज्ञात थी तथा समझौता कठिन समझकर वह इस बात पर मुझ से क्रोधित भी थे। यद्यपि हम लोग कभी विवाद में नहीं पड़ते थे परन्तु एक मानसिक संघर्ष की भावना बड़ी स्पष्ट थी। ······हम दोनों ही इससे दुखी थे।"

जब गान्धीजी द्वारा समझाये जाने पर जवाहरलाल और सुभाष बाबू समझौते को तैयार होकर दूसरे दिन पुनः खुले अधिवेशन में विरोध करने उठ खड़े हुए तो गान्धीजी को बड़ा दुःख हुआ तथा उनके मन में जो क्रोधात्मक प्रतिक्रिया हुई उसको उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया—

"आप लोग चाहे स्वतन्त्रता का राग अलापा करें, जैसे कि मुसलमान अल्ला का राग अलापते हैं और हिन्दू राम का, लेकिन यदि इस अलाप के पीछे सचाई नहीं है तो आपका यह अलाप कोई मतलब नहीं रखता। आप यदि अपने शब्दों की कदर नहीं कर सकते (रात्रि को दिया हुआ वचन अब तोड़ रहे हो) तो फिर स्वतन्त्रता कहाँ की रही? आखिर स्वतन्त्रता तो ठोस चीज है। वह शब्दों के प्रपंच से थोड़े ही आ सकती है।"

आखिर गान्धीजी के यह कहने पर कि यदि सरकार साल भर के भीतर नेहरू रिपोर्ट को मानकर उसी के अनुसार हमारा संविधान नहीं बनाती तो

फिर अगले वर्ष हम अपना लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य से बदल कर पूर्ण स्वराज्य कर देंगे, कांग्रेस के खुले अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को स्वीकृत किया गया। इस विषय पर जब कांग्रेस में प्रतिनिधियों के मत लिये गये तब वह दृश्य दर्शनीय था। एक ओर जवाहरलालजी का पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्ष था और दूसरी ओर मोतीलालजी का औपनिवेशिक स्वराज्य का पक्ष। किस उत्साह से दोनों पक्ष अपनी-अपनी विजय के लिए प्रयत्न कर रहे थे। यदि गान्धीजी मोतीलालजी के साथ न होते तो नेहरू रिपोर्ट का स्वीकृत होना शायद ही सम्भव होता। प्रतिनिधियों की मत-गणना होते-होते रात भर बीत गयी थी और पौ फटने का समय हो गया था। हमारे प्रान्त का बहुमत पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में गया—जवाहरलालजी के साथ, मोतीलालजी के साथ नहीं, यद्यपि द्वारकाप्रसादजी मिश्र और मैं मोतीलालजी के साथ थे।

दुर्गावती आश्रम

सन् २६ की वर्षा और नदियों की बाढ़ का एक नतीजा यह निकला था कि जबलपुर सागर और दमोह की फसलें लगातार बिगड़ना आरम्भ हुआ था और १९२८ में इन तीनों जिलों में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ गया। इस क्षेत्र के दुर्भिक्ष पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की मैंने एक योजना बनायी। चुनाव निपट जाने के कारण इस समय इस काम में मुझसे स्पर्द्धा करने को भी कोई खड़ा न हुआ। सन् २१ में प्लेग के प्रकोप के समय जब मैंने काम किया था उस समय मेरी जैसी भावनाएँ थीं वैसी तो इस समय भी न थीं, पर सन् २६ की बाढ़ के समय की मेरी भावनाओं में और इस समय की भावनाओं में अन्तर था। सन् २१ का काम बहुत बड़ा काम था। उसे करनेवाले भी बहुत थे। उसमें जितने परिश्रम, जितनी निर्भीकता, जितने साहस की आवश्यकता थी, उतनी इस समय नहीं। हाँ, सन् २६ की भावनाओं में जितनी अशुद्धता थी उतनी इस समय नहीं।

दुर्भिक्ष पीड़ितों को यह सहायता कताई और बुनाई कराकर दी जाने की योजना बनायी गयी, जो उस समय सहायता देने की एक सर्वथा नयी पद्धति थी। सरकार की ओर से ऐसे अवसरों पर जो सहायता दी जाती थी वह गिट्टी फोड़ कर सड़क बनाने के तथा इसी प्रकार के अन्य काम कराकर। कताई-बुनाई के द्वारा जो सहायता देने की योजना बनी इसके लिए "दुर्गावती आश्रम" नामक एक संस्था बनायी गयी। लगभग दस हजार रुपया इकट्ठे कर मैंने इस आश्रम को दिये और इसका संचालन करने के लिए गान्धीजी को किसी अनुभवी व्यक्ति को भेजने के लिए लिखा। गान्धीजी ने समय-समय पर इस काम के लिए तीन सज्जनों को अपने आश्रम से भेजा—श्री प्रेमराज, श्री रमणीकलाल मोदी और श्री नर्मदाप्रसाद अवस्थी।

इन सज्जनों ने जबलपुर के श्री सूरजप्रसादजी शर्मा दमोह के श्री रणछोड़ शंकर धगट के साथ यह कार्य सुचारु रूप से आरम्भ किया।

जब तक दुर्भिक्ष चला, हमारा काम चलता रहा। इस काम से बहुत लोगों को सहायता पहुँची। यह किस प्रकार यह दुर्गावती आश्रम की दो रिपोर्टों से मालूम होता है, जिनके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

दुर्गावती आश्रम की प्रथम रिपोर्ट (१ जुलाई १९२९ से ३१ अगस्त १९२९ तक) से कुछ उद्धरण—

"जबलपुर जिले में ४०-४५ मील के घेरे में १० केन्द्र खोले गये और वहाँ नियमित रूप से चरखे तथा पौनी भेजने की व्यवस्था की गई। १ जुलाई २९ से व्यवस्थित रूपेण सूत कतकर आने लगा। पहले-पहल कताई का भाव १ रु० फी सेर (८० तोला) रखा गया था, क्योंकि लोगों को कातने का अभ्यास नहीं था।......

"चूँकि आश्रम से पौनी दी जाती हैं और वही कत जाने पर कताई देकर सूत ले लिया जाता है इसलिए हर एक केन्द्र में पुराने बेकार पड़े हुए चरखे भी फिर से चलने लगे हैं। विशेषकर मुसलमान, महार और कोरी स्त्रियाँ बहुतायत से चरखे कातने लगी हैं।......

"दिनों दिन सूत कातनेवालों की संख्या बढ़ रही है।......

"कताई के सम्बन्ध में कुछ केन्द्र अपनी खास विशेषताएँ रखते हैं। जैसे पनागर केन्द्र में कातनेवाले सब जाति के लोग हैं। शिक्षक लोग भी कातते हैं। दो सज्जन ऐसे मिले जो अपना सूत आप कातकर उसका कपड़ा भी स्वयं तैयार कर लेना चाहते हैं। उन लोगों ने अभी चरखे लिये हैं। वे १४-१६ अंक का सूत कात लेते हैं, यद्यपि उसमें फिलहाल समानता और मजबूती कम है। सिहोरा केन्द्र में भी सब जाति के लोग कातते हैं और वहाँ भी अपने ही कते हुए सूत का कपड़ा तैयार करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। तेवर में ६ आदमी ऐसे हैं जिन्होंने अपने कपड़ों के लिए स्वयं सूत काता है और उनमें से एक ने तो उस सूत को बुनवा कर खादी भी तैयार करा ली है। वह धुनता भी है और उसकी स्त्री घर में सूत कातती है।......

"सूत की कताई की दर अधिक देने की अपेक्षा गरीबों को सहायता देने की दृष्टि से अन्त में यह सोचा गया है कि जो लोग बहुत गरीब हैं उन्हें चरखे मुफ्त में दे दिये जायँ। इससे उन्हें धन्धे का एक साधन मिल जायगा।......

"सरकार जिन मार्गों द्वारा ऐसे अवसरों पर लोगों को सहायता देती है वे दो हैं—एक मुफ्त में सहायता बाँटना और दूसरे गिट्टी फुड़वा कर और मुरम खुदवाकर मजदूरी देना। इस मार्ग से भी लोगों को सहायता पहुँचती है, इससे हम इंकार नहीं करते, किन्तु यह सहायता अधिकतर मजदूर वर्ग को ही मिलती है। कृषक वर्ग यदि अपनी खेती का कार्य भी करना चाहे तो उसे या स्त्रियों को इस सहायता से विशेष लाभ नहीं पहुँचता। दूसरे कृषक वर्ग इस प्रकार के कार्य को अपमानजनक भी समझता है। स्त्रियों को तो ऐसे कार्यों के लिए जाने में बड़ा पशोपेश होता है। फिर इस कार्य के लिए उन्हें मीलों चलना पड़ता है, घर बैठे उन्हें सहायता नहीं मिल सकती। हमें इस बात का हर्ष है कि दुर्गावती आश्रम द्वारा इस प्रकार के लोगों को घर बैठे अपना कृषि सम्बन्धी कार्य करते हुए भी सहायता पहुँची है चाहे उनकी संख्या कितनी ही कम क्यों न हो। जितना रुपया आश्रम के पास है उतना यदि मुफ्त में बाँट दिया जाता तो यह सहायता नहीं के बराबर होती, क्योंकि रबी फसल के आने तक इस छोटी-सी रकम से उतने लोगों का भी पोषण न हो सकता जितना इस कार्य के द्वारा होगा।"

दुर्गावती आश्रम की दूसरी रिपोर्ट (१ सितम्बर १९२९ से ३० अप्रैल १९३१ तक) से कुछ उद्धरण —

"आश्रम की पिछली रिपोर्ट में इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि आश्रम का उद्देश खासकर उन जिलों में जहाँ गत कई वर्षों से अकाल पड़ रहा है, लगातार चर्खा और खादी द्वारा सहायता पहुँचाना है।

"प्रथम जबलपुर जिले में ११ केन्द्र खोलकर और दमोह जिले में श्री रणछोड़शंकरजी धगट को कार्य आरम्भ करने के लिए नियुक्त किया गया था। किन्तु थोड़े दिनों ही बाद जब जबलपुर जिले में खरीफ की फसल आ गयी थी अकाल पीड़ित लोगों में कुछ शान्ति-सी जान पड़ने लगी थी तब आश्रम के उद्देश पर ध्यान रखते हुए यह जरूरी हो गया था कि उन जिलों में जहाँ अभी भी खरीफ की फसल संतोषजनक न आने से जनता इसी प्रकार ग्रसित है जैसे कि पहले थी, सहायता पहुँचाना। अतः यह निश्चय किया गया कि दमोह और सागर जिले में शीघ्र से शीघ्र सहायता पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाय।

दमोह जिले में अगस्त १९२९ में ही कार्य आरम्भ हो चुका था, किन्तु उसे बढ़ाने और संगठित करने के लिये वह कार्य बन्द कर नये सिरे से सागर जिले में गढ़ाकोटा केन्द्र और दमोह जिले में पथरिया केन्द्र दिसम्बर १९२९ में खोला गया।

"मुख्य स्थान गढ़ाकोटा ही में रखा गया, क्योंकि यह स्थान दमोह और सागर जिले के मध्य में पड़ता है। पथरिया केन्द्र यहाँ से ११ मील की दूरी पर है। इस स्थान में पथरिया और आस-पास के ग्रामों में भली प्रकार सहायता पहुँचाई जा सकती है। उपर्युक्त कारणों से ही जबलपुर जिले के केन्द्रों को धीरे-धीरे बन्द करने का निश्चय हुआ और मई १९३० तक प्रायः सभी केन्द्र बन्द कर दिये गये।

"सूत के अंक सुधारने में कुछ भी प्रयत्न नहीं हो सका था, किन्तु गढ़ाकोटा और पथरिया केन्द्र में इसके ऊपर ध्यान दिया गया है। इन केन्द्रों में प्रायः ६ अंक से १२ अंक तक का सूत कता है। जिसमें ६ से ८ नम्बर का सूत अधिक कता है। कुछ वृद्धा स्त्रियों को अपवाद के रूप में ज्यादा मजूरी दी गई है।

"उपरोक्त कार्यों के अलावा आश्रम का ध्यान हमेशा इस बात पर रहा है कि जहाँ तक हो सके अकाल पीड़ित क्षेत्रों से ही ऐसे किसान नवयुवक लिये जायँ जो अपने ग्रामों के आस-पास चर्खा कातना, चर्खा सुधारना और पौनी पहुँचाना आदि कार्य करें। इसी कारण आश्रम का कार्य आरम्भ करने के समय ३२ नवयुवकों को जबलपुर में रखकर चर्खा कातना, चर्खा सुधारना, धुनना आदि कार्य सिखाया गया था और बाद को उन्हें उनके ग्रामों में कार्य करने को वापिस कर दिया गया था।

"सबसे प्रथम अड़चन तो आश्रम को अपने मोटे सूत बुनवाने और दूसरी उसकी खादी बेचने में उठानी पड़ी है, खादी की बिक्री ज्यों-ज्यों कम हुई है त्यों-त्यों उसे सुन्दर बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन महानुभावों ने आश्रम की खादी पहिनी है उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि इतनी अड़चनों के होते हुए भी आश्रम ने सुन्दर और मजबूत खादी बनाने में कितनी सफलता प्राप्त की है। जिसके फलस्वरूप गत मार्च १९३१ को भरे हुए स्वदेशी

बाजार सागर से प्रथम श्रेणी का प्रशंसा पत्र प्राप्त हुआ है। लगभग १७ माह के बीच में आश्रम ने १६६१३।)॥ की खादी तैयार की है और १७३४८ रु० ५ आने की खादी बेची है—भाव के बार-बार कमी होने के कारण उसे अपने स्टाक पर हमेशा घटी उठानी पड़ी है। सिवाय आश्रम ने तो उन बेचारे किसानों से ही सूत कतवाया था जिन्होंने अपने जीवन में पहले पहल ही गिट्टी फोड़ने के हथौड़े के बजाय ऐसे अकाल के समय में चर्खा धारण किया था।

"सारे कार्य में ध्यान देने योग्य एक बात और है कि जो बारह हजार रुपये के लगभग इस कार्य के लिए एकत्रित किया गया था उसे यदि अकाल पीड़ितों को ही बाँट दिया जाता तो उस रकम से इतने दीर्घकाल तक इतनी जनता को कभी सहायता नहीं पहुँच सकती थी। मध्य प्रान्त के इन भागों में गिट्टी फोड़ने और मिट्टी खोदने के अतिरिक्त अकाल पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का और साधन नहीं था। अतः दुर्गावती आश्रम ने उन्हें सहायता पहुँचाने का एक नवीन मार्ग निकाला है।"

इस कार्य की सारे देश में बड़ी चर्चा भी हुई और इस विषय में पत्रों में बहुत कुछ निकला।

गान्धीजी ने भी इस कार्य की प्रशंसा करते हुए मुझे जो कुछ लिखा था उसका केवल एक वाक्य यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"आप बड़ा काम कर रहे हैं।"

कुछ लोगों को उस समय इस विषय में कुछ गलतफहमी हुई। जब यह काम बन्द हुआ तब उन्होंने समझा कि दुर्गावती आश्रम का कार्य असफल हो गया। पर बात ऐसी न थी। यह काम स्थायी रूप का था ही नहीं। जिस प्रकार दुर्भिक्ष के अन्य काम दुर्भिक्ष पीड़ितों को सहायता पहुँचाने के लिए खोले जाते हैं, इन पीड़ितों से कुछ न कुछ काम लेकर उन्हें सहायता दी जाती है और दुर्भिक्ष समाप्त होने पर वे काम बन्द कर दिये जाते हैं, उसी प्रकार कताई और बुनाई करा दुर्भिक्ष पीड़ितों को दुर्गावती आश्रम से सहायता दी गयी और इस काम के लिए जितना धन एकत्रित हुआ था उसके खर्च हो जाने तथा दुर्भिक्ष समाप्त हो जाने पर यह काम भी समाप्त कर दिया गया। इस काम से इतना अवश्य सिद्ध हो गया कि कुछ विशिष्ट स्थानों पर अकाल पीड़ितों को कताई और बुनाई के कार्य द्वारा भी सहायता दी जा सकती है।

मैं प्रान्तीय कांग्रेस का सभापति

सन् १९१३ को लगभग १५ वर्ष बीत चुके थे। सन् १९१३ में जब हमारे घर पर पहला बड़ा आर्थिक संकट आया उस समय कर्ज को घटाकर सोलह लाख पर ले आया गया था। उस समय पूरा कर्ज न चुका देने का कारण था जायदाद की बिक्री कम दामों पर होना तथा यह आशा कि रहा हुआ कर्ज आमदनी से चुक जायगा। यदि मालिकों में घर को कोई देखनेवाला होता और खर्च पर नियंत्रण रख आमदनी बढ़ाने की कोशिश की जाती तो इन पन्द्रह वर्षों में कर्ज चुककर आर्थिक दृष्टि से घर का ठीक हो जाना असम्भव न था, परन्तु पूनमचन्दजी सुरजन को छोड़ घर को देखनेवाला कोई न था। पूनमचन्दजी की चलती न थी और खर्च आमदनी से अधिक हो कर्ज बढ़ता जा रहा था।

नित्य के शाही खर्चों को छोड़ इसी बीच दो बड़े खर्च पिताजी के हाथ से हुए थे। खंडवा में उन्होंने मेरी माताजी के नाम एक धर्मशाला बनवायी थी जिसमें कोई तीन लाख रुपया खर्च हुआ था और मेरी पुत्री रत्नकुमारी का विवाह किया था जिसमें करीब तीन लाख रुपया लगा था। यद्यपि यह विवाह सारे सुधारों के साथ किया गया था, गाने-बजाने के लिए वेश्याओं को न बुला बम्बई गन्धर्व महाविद्यालय के संचालक श्री विष्णु दिगम्बरजी को बुलाया गया था, तथा अन्य भी इसी प्रकार की बातें की गयी थीं, तो भी खर्च अंधाधुन्ध हुआ था।

मेरे सार्वजनिक जीवन का खर्च भी सन् १९२५ के मेरे कौंसिल ऑफ स्टेट के चुनाव के समय से बहुत बढ़ गया था। मेरे कौंसिल ऑफ स्टेट के चुनाव में कोई बीस हजार और सन् १९२६ में चुनावों में कोई एक लाख रुपया खर्च हुआ था। और भी बहुतेरे खर्च हो रहे थे।

सन् १९१३ के घर के आर्थिक संकट की कोई जिम्मेदारी मुझ पर न थी, पर अब जो फिर से घर पर आर्थिक संकट की घनघोर घटाएँ मँडराने लगी

थीं, इनकी जिम्मेदारी मुझ पर पिताजी से कम न थी। मेरा इस ओर ध्यान भी गया। मैंने देखा कर्ज बढ़कर अट्ठाइस लाख पर पहुँच गया है और इस अट्ठाइस लाख में करीब-करीब सारी जायदाद रहन हो चुकी है। मैंने सोचा कि सन् १९१३ के समान फिर से जायदाद बेचकर कर्ज उतारा जाय, परन्तु एक तो सन् १९२८ का जमाना ऐसी मद्दी का समय था कि एक एकड़ जमीन बिकना असम्भव था दूसरे रहन शुदा जायदाद कौन खरीदता है ? जायदाद न बिकती देख आमदनी बढ़ाने की योजनाओं पर विचार किया जाने लगा।

बीड़ी बनाने के काम में उस समय लोगों ने बहुत कमाया था अतः बीड़ी का काम शुरू किया गया। अकेले बीड़ी के काम पर निर्भर रहना ठीक न समझ लकड़ी चीर कर बेचने का काम आरम्भ किया गया। हमारे खुद के १८ जंगली गाँव थे और उनमें काफी सागौन था। लकड़ी चीरने के लिए एक बड़ा भारी-सा मिल खोला गया।

द्वारकाप्रसादजी मिश्र का और मेरा जैसा सम्बन्ध था उसमें उन्होंने भी मेरे घर को संकट से निकालने की योजनाओं में दिलचस्पी ली। सामिल का काम तो उन्हीं को सौंपा गया।

परन्तु घर की ओर इस प्रकार लक्ष देने पर भी मेरा ध्यान प्रधानतया सार्वजनिक जीवन की ओर ही था। मिश्रजी भी मेरे मुख्यतः सार्वजनिक जीवन के ही साथी थे।

देश की राजनैतिक घटनाएँ जिस शीघ्रता से घटित हो रही थीं और सन् १९२६ में श्री राघवेन्द्रराव के कांग्रेस छोड़ देने के बाद सारे हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त के राजनैतिक जीवन की जो समस्त जिम्मेदारी मुझ पर आगयी थी उसे देखते हुए सार्वजनिक जीवन हम लोगों का सारा समय चाहता था। हम लोग घर को ठीक करने के इच्छुक भी थे, कुछ काम भी उसे ठीक करने के लिए शुरू किये थे, पर हमारे पास यथार्थ में घर को ठीक करने और इन कामों को चलाने के लिए जिस समय की आवश्यकता थी वह समय नहीं था।

जब मेरे घर की ऐसी आर्थिक अवस्था थी उस समय हमने एक दैनिक पत्र प्रकाशित करने की बात सोची। इस समय राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर और उसके सारे विभाग समाप्त हो चुके थे। "कर्मवीर" पत्र भी बन्द हो चुका था।

पण्डित माधवरावजी सप्रे का देहान्त हो गया था। राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर या "कर्मवीर" रहता तो शायद इस दैनिक का प्रकाशन इन दोनों में से किसी एक स्थान से होता, परन्तु इन दोनों संस्थाओं के न रहने के कारण इस पत्र के लिए स्वतन्त्र योजना बनी। बाहर कहीं से रुपया मिलने की सम्भावना नहीं थी अतः इस पत्र में सामिल से रुपया लगाया गया। पत्र का नाम "लोकमत" रखा गया और इसके प्रधान सम्पादक पण्डित द्वारकाप्रसादजी मिश्र हुए। "लोक-मत" हमारे "गोपाल बाग" नामक मकान में एक प्रेस लगाकर निकालना आरम्भ हुआ और मिश्रजी भी वहीं रहने लगे।

"लोकमत" का सम्पादन मिश्रजी ने इतनी योग्यता से किया कि उस समय के हिन्दी संसार का वह सर्वोत्तम पत्र हो गया। उसकी ग्राहक संख्या हिन्दी के उस सुप्त काल में ग्यारह हजार तक पहुँची, जितनी ग्राहक संख्या हिन्दी के उस काल के किसी भी दैनिक पत्र की न थी। उसका मुकाबला अंग्रेजी पत्रों से किया जाता था।

× × ×

यह ऊपर कहा जा चुका है कि सन् २६ के चुनावों के पूर्व श्री राघवेन्द्र राव के कांग्रेस संगठन से निकलने के बाद महाकोशल प्रान्त का कांग्रेस संगठन पूर्ण रूप से मेरे हाथ में आ गया था। उस समय कांग्रेस संगठन जिनके हाथ में एक प्रकार से सारा सार्वजनिक जीवन भी उन्हीं के हाथ में। फिर महा-कोशल प्रान्त में तो आधुनिक काल के सार्वजनिक जीवन का संगठन और विकास कांग्रेस के नये संगठन और विकास के साथ हुआ था। अतः यद्यपि अब कांग्रेस संगठन पूर्णतः मेरे हाथ में था तथापि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सागर निवासी श्री केशवरामचन्द्र खांडेकर ही चले आते थे। हाँ, सन् २६ के चुनाव से मैं प्रान्तीय कार्यकारिणी का एक सदस्य हो गया था और प्रान्तीय कमेटी का सारा काम मेरी इच्छानुसार ही होता था।

सन् १९२८ में श्री खांडेकरजी के प्रस्ताव पर मैं सर्वमत से प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सभापति चुना गया। मैंने द्वारकाप्रसादजी मिश्र को मन्त्री बनाया और उन्हीं के साथ दूसरे मन्त्री श्री लक्ष्मणसिंहजी चौहान को।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की आर्थिक अवस्था बहुत समय से अच्छी न थी।

सन् २६ के चुनाव के खर्च का भार कितनी दूर तक मुझ पर पड़ा था इसका उल्लेख भी पहले हो चुका है। मेरी आर्थिक अवस्था भी दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। दैनिक पत्र "लोकमत" प्रकाशित कर मैंने अपने सिर पर एक बहुत बड़ा आर्थिक बोझ ले ही लिया था और अब प्रान्तीय सभापति होने के कारण, विशेषकर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की आर्थिक अवस्था खराब होने की वजह से, मुझ पर एक और बड़ा आर्थिक भार लद गया। इस समय मेरी स्थिति हो रही थी संस्कृत की "ऋणंकृत्वाघृतं पिवेत्" उक्ति के अनुसार और अंग्रेजी की "मोमबत्ती को दोनों सिरों पर जलाने" की कहावत को मैं चरितार्थ कर रहा था अपने आचरण में। जो कुछ हो, मैंने बड़े उत्साह से इस पद को स्वीकार किया और खूब सन्देही से प्रान्त के कांग्रेस संगठन को संगठित करने का कार्य आरम्भ किया।

सन् १९२० के ऊँचे तपके के अधिकांश कांग्रेसवादी कांग्रेस संगठन को छोड़ चुके थे जैसे श्री राघवेन्द्रराव, ठाकुर छेदीलाल, पण्डित रविशंकर शुक्ल, श्री श्यामसुन्दर भार्गव, श्री गोकुलचन्द सिंघई आदि। कुछ सन् २० के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं और कुछ नये आगन्तुकों की सहायता से इस नये सभापतित्व में प्रान्त में कांग्रेस संगठन पनपने लगा।

लाहौर-कांग्रेस

साइमन कमीशन के बहिष्कार स्वरूप जनता में जो जोश की भावना उठी थी, वह बारदोली सत्याग्रह की सफलता देखकर और भी बढ़ गयी। यह सत्याग्रह भी वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में जिस सफलता से हुआ था वह उस काल के भारतीय इतिहास की एक विशेष घटना है।

अब जनता कुछ न कुछ और करना चाहती थी। इस कुछ न कुछ करने को उतारू हमारे बहके हुए युवक हिंसात्मक कार्रवाई पर उतर आये थे। जहाँ-तहाँ गुप्त आन्दोलन हो रहे थे और यदा-कदा राजनैतिक हत्याएँ हो जाती थीं। पंजाब में लाला लाजपतराय पर घातक चोट करनेवाले अंग्रेज अफसर को दिन-दहाड़े गोली से उड़ा दिया गया। बंगाल में भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं। मेरठ-षड्यंत्र केस भी क्रान्तिकारियों के इतिहास में अपना अलग स्थान रखता है। सरदार भगतसिंह और श्री बी० के० दत्त ने केन्द्रीय असेम्बली में धमकाने को दो बम फेंककर असेम्बली के भीतर और बाहर तहलका मचा दिया था। लार्ड अर्विन की गाड़ी को बम से उड़ा देने का प्रयत्न यद्यपि असफल हुआ फिर भी ये सब घटनाएँ भारत की स्वतन्त्रता के लिए होनेवाली युवक हृदयों की छटपटाहट को व्यक्त करती हैं।

अब दूसरी विचारधारा पर आइए जो असहयोग आन्दोलन को छोड़कर कौंसिलों में अड़ंगा नीति को अपनाना अधिक उपयुक्त समझती थी। समय के साथ वह प्राथमिक आकर्षण गायब हो गया था तथा अपने अभीप्सित की पूर्ति न हो सकने के कारण उस विचारधारा के हिमायती पं० मोतीलालजी नेहरू तथा उनके हम सब अधिकांश अनुयायियों की आँखों के सामने से भ्रम का पर्दा हट गया था। अब हम प्रायः सभी कौंसिल छोड़कर अन्य कदम [illegible] थे; पर इस कदम का कार्यक्रम देता कौन? वे ही गान्धीजी [illegible] कुछ वर्ष पहले कौंसिल प्रेमियों ने ही दूध की मक्खी समझा था। महात्मा गान्धी अभी भी कांग्रेस से उदासीन थे, परन्तु कलकत्ता-कांग्रेस के

बाद देश की नाड़ी को परख रहे थे तथा माँगी हुई प्रत्येक सलाह पर उपयुक्त मत देते थे। उन्होंने कौंसिल प्रवेश के विपरीत जो अपने खादी आन्दोलन को प्रमुखता दी थी उसी के लिए महात्माजी "दरिद्रनारायण" की सेवा करते हुए देश भर के चक्कर लगा रहे थे। शायद ही भारतवर्ष में इतना अधिक दौरा किसी एक व्यक्ति ने किया हो। गान्धीजी के इस प्रकार के दौरे से जहाँ जनता के लक्ष-लक्ष व्यक्ति अपने उपास्य के दर्शन कर सके वहाँ महात्माजी को भी उनको पास से देखने का अवसर मिला। उनकी समस्याएँ उनकी प्रवृत्तियाँ जाँच कर वे उनका उपयोग आगे कर सके।

अब इन सब राष्ट्रीय हलचलों को गिद्ध-दृष्टि से देखनेवाली सरकार पर आइए। जनता के इस उमड़ते हुए जोश को बरगलाने लार्ड अर्विन ने, जो चार माह की छुट्टी के उपरान्त विलायत से लौट कर आये थे, यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों की माँग पर विचार करने के लिए एक गोल-मेज परिषद् का आयोजन कर रही है। कलकत्ता-कांग्रेस ने जो सरकार को एक वर्ष के भीतर औपनिवेशिक स्वराज्य देने को कहा था, उसके प्रत्युत्तर में ही यह शाब्दिक जाल रचा गया था।

इस घोषणा के उपरान्त इसी घोषणा पर विचार करने भद्दे तरीके तक पहुँचनेवाली शीघ्रता से सरकार ने दिल्ली में नेताओं का सम्मेलन बुलाया। नाना दल इसमें आये ; नरम दल से तेज बहादुर सप्रू जैसे व्यक्ति और कांग्रेस की ओर से महात्मा गान्धी, पं० मोतीलाल नेहरू और विट्ठलभाई पटेल आदि। कांग्रेस ने निम्नांकित शर्तों को लगाकर वाइसराय की घोषणा को मान लिया—

(१) उस गोलमेज परिषद् की सभी बातें औपनिवेशिक स्वराज्य के आधारभूत सिद्धान्त पर होंगी।

(२) उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधियों को बहुसंख्यक स्थान मिलेगा।

(३) सारे राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया जावेगा।

(४) जहाँ तक सम्भव होगा आज से आगे भारतीय शासन औपनिवेशिक सरकार के तरीके पर ही चलाया जायगा।

जहाँ नरम दलवाले इन शर्तों के मानने या न मानने पर सरकार को

अपना सहयोग देना निर्भर न रखना चाहते थे, वहाँ अपना सहयोग देने के लिए सरकार को कांग्रेसवालों ने इन शर्तों का मानना अनिवार्य बतलाया। और उनका यह मानना ठीक ही था, क्योंकि जो कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वराज्य को ही अपना लक्ष्य बनाने वाले थे उनके लिए इतना मानना ही कम अप्रतिष्ठा की बात नहीं थी।

सरकार ने जैसी सम्भावना थी, कांग्रेसवालों की इन शर्तों को नहीं माना तथा कांग्रेस आगामी सत्याग्रह के लिए अधिक शक्तिशाली और सुगठित हो गयी।

एक अन्तिम प्रयत्न दिल्ली में लाहौर-कांग्रेस के थोड़े पहले किया गया, जिसमें गान्धीजी, श्री जिन्ना, श्री पटेल, वाइसराय आदि सम्मिलित थे, पर उस मुलाकात का भी कुछ परिणाम नहीं निकला।

अब वह लाहौर-कांग्रेस पास आ गयी थी जहाँ स्वतन्त्रता को अन्तिम लक्ष्य मानकर उसकी पूर्त्ति के लिए कोई कार्यक्रम बनाकर देश के उमड़े हुए जोश का सदुपयोग करना था।

कांग्रेस के लाहौर के इस अधिवेशन का सभापति कौन हो, यह प्रश्न बड़े उग्र रूप में उठा। तीन महानुभाव इस पद के लिए प्रस्तावित हुए—गान्धीजी, सरदार पटेल और जवाहरलालजी नेहरू। बंगाल में उस समय श्री सुभाष बाबू और श्री सेन गुप्त साथ-साथ काम करते थे। ये चाहते थे कि किसी प्रकार जवाहरलालजी सभापति न हो पायँ, अतः उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों को तार भेजे कि गान्धीजी सभापति चुने जायँ। उस समय कांग्रेस का सभापति प्रान्तीय वोटों के आधार पर चुना जाता था। सुभाष बाबू और सेन गुप्त का तार मुझे भी मिला पर हम लोग तो नेहरू परिवार के साथ थे ही, हमारे प्रान्त ने जवाहरलालजी के पक्ष में मत दिया। गान्धीजी को दस प्रान्तों के, सरदार पटेल को पाँच प्रान्तों के और जवाहरलालजी को तीन प्रान्तों के वोट मिले। चूँकि गान्धीजी को सबसे अधिक मत मिले थे और उन्होंने कहा कि वे इस पद को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं इसलिए इस विषय का निर्णय करने के लिए प्रयाग में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कितनी अनुनय-विनय, आग्रह लोगों ने किया गान्धीजी से सभापति पद स्वीकार करने के लिए,

पर वे अपने निर्णय पर पर्बत के सदृश अडिग रहे। गान्धीजी की दूरदर्शिता और लोगों को साथ लेने की सूझ सदा अद्वितीय रहती थी। उन्होंने अपना नाम वापस ले जवाहरलालजी का समर्थन किया। ऐसी स्थिति में सरदार पटेल को भी अपना नाम वापस लेने में देर न लगी और उस समय जिन जवाहरलालजी को सबसे कम प्रान्तों के मत मिले थे, वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा सर्व-सम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गये।

वहाँ समझौता न होने से झल्लाई हुई सरकार पंजाब में दमन चला रही थी, शायद उसका ध्येय लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन में प्रबन्ध की गड़बड़ी उत्पन्न करना ही था। पर यहाँ कोई छुईमुई तो थे नहीं जो अँगुली दिखलाते ही कुम्हला जाते।

लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन बड़े धूमधाम से हुआ। कड़ाके की सर्दी को लोगों ने हृदय के जोश की गर्मी में सहा। सब ओर बड़ा ही उत्साह था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू का भाषण क्या था, उन्होंने अपना हृदय निकाल कर भारतवासियों के सामने रख दिया था।

आखिर ३१ दिसम्बर की १२ बजे रात को बिना किसी विरोध के "पूर्ण स्वतन्त्रता" का प्रस्ताव पास हो गया। लोगों के महान् उत्साह भरे नारों से कान के परदे फटे जाते थे। फिर भी प्रत्येक के हृदय में क्या भावनाएँ थीं उनका सच्चा चित्रण पण्डित नेहरू ने इस प्रकार किया है—

"समय चक्र चल रहा था, परन्तु हम इस बात के अँधेरे में ही थे कि क्या किया जाय, कैसे किया जाय और कहाँ से आरम्भ किया जाय ?··· हम भविष्य के बारे में अनिश्चित थे, परन्तु जोश भरे होने से कुछ ठोस काम अवश्य करना चाहते थे। हमारा (स्वतन्त्रता का) भविष्य तो धूमिल था, पर हाँ, यह भविष्य अवश्य स्पष्ट था कि (इस पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने के लिए) अपने और अपने प्यारों के लिए विग्रह और कष्ट अवश्य सहना होगा। इस विचार से हमारे जोश मन्द पड़ जाते थे और अपने उत्तरदायित्व की भावना बड़ी तीव्र हो जाती थी। हम जानते थे कि स्वतन्त्रता के पक्ष में दिया जानेवाला प्रत्येक वोट आराम, सुविधा, गृहस्थी के सुख तथा मैत्री के आमोद-प्रमोद से हमें दूर लिये जा रहा है।···"

जो कुछ हो, अपूर्व जोश से पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हो गया तथा भावी कार्यक्रम निश्चित करने का काम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ऊपर छोड़ा गया जिसका अर्थ था कि गान्धीजी जो निश्चय करेंगे वही होगा। इस प्रकार घोर अंधकार में आशा के ध्रुवतारे गान्धीजी ही थे। उनके नेतृत्व में अटल निष्ठा को डा० पट्टाभि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

"हमारी यात्रा कठिन, नाव कमजोर, समुद्र तूफानी, आकाश मेघाच्छादित, चारों ओर कुहरा और केवट नौसिखिए थे। केवल एक बात हमारे बचाव की थी और वह यह कि हमारा कप्तान निश्चित रूप से अपना मार्ग जानता है।"

लाहौर-कांग्रेस में ही यह भी तय हुआ कि अब कांग्रेसवादियों को धारा सभाओं से निकल आना चाहिए। इस निर्णय को इने-गिने सदस्यों को छोड़ सब ने कार्यरूप में परिणत किया। कांग्रेस में अनुशासन की अब पूर्ण भावना जो आ गयी थी।

मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली भी एक घटना इस सम्मेलन में हुई जिसका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। उस समय कांग्रेस के दो कोषाध्यक्ष होते थे जो उस हैसियत से कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य भी रहते थे। सेठ जमनालालजी बजाज तो सन् १९२० से ही कांग्रेस के कोषाध्यक्ष चले आ रहे थे। उनके साथी समय-समय पर बदले थे। इस समय उनके साथी थे बाबू शिवप्रसादजी गुप्त। गुप्तजी लाहौर-कांग्रेस के समय विलायत में थे। मोतीलालजी का मुझ पर जैसा स्नेह था, उसका उल्लेख पहले कई स्थानों पर आया है। मोतीलालजी ने लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन के पूर्व मुझे कहा कि इस बार तुम्हें कांग्रेस का ट्रेजरर होना है। पर लाहौर में शिवप्रसादजी का विलायत से तार आया कि वे आगे भी उस पद पर रहना चाहेंगे। मोतीलालजी बड़े असमंजस में पड़े। उन्होंने मुझे बुलाया और गुप्तजी का तार मेरे सामने रख दिया। मैंने तत्काल पण्डितजी को कहा कि गुप्तजी को ही आपको रखना चाहिए। मोतीलालजी बहुत भावना-प्रधान व्यक्ति न थे, परन्तु मेरे इस कथन पर वे गद्गद् से हो गये और उन्होंने कुछ इस तरह मुझे कहा, "जब रोज ही लोग कांग्रेस वर्किंग कमेटी में आने के लिए गान्धीजी के और मेरे पीछे पड़े रहते हैं तब तुम्हीं ऐसे मिले कि मेरे वादाखिलाफी करने पर भी तुम्हें कोई

नाराजी नहीं मालूम होती।"

लाहौर-कांग्रेस के बाद शीघ्र ही जनता की भावनाओं की परख के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी ने एक बात की ; वह यह थी २६ जनवरी को देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाने की घोषणा। निश्चित दिन बड़े उत्साह और शान्ति के साथ सारे देश में जुलूस निकले, सभाएँ हुईं और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सर्वस्व बलिदान करने की लोगों नें प्रतिज्ञा पढ़ी। हमारे प्रान्त और जबलपुर में भी ये आयोजन बड़ी सफलता से हुए। अपने प्रान्त की कांग्रेस के सभापति होने के कारण इन कार्यों के नेतृत्व का उत्तरदायित्व मुझ पर था।

सन् १९३० का सत्याग्रह

सन् १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन की पृष्ठभूमि यथार्थ में सन् १९२० का असहयोग आन्दोलन ही था। सत्याग्रह आन्दोलन वहाँ से आरम्भ हुआ जहाँ असहयोग आन्दोलन समाप्त हुआ था। जो लोग समझते हैं कि सन् २० का असहयोग आन्दोलन असफल हो गया उन्हें यहाँ मैं यूरोप के एक महाकवि की कविता की निम्नलिखित पंक्तियों का स्मरण दिलाता हूँ—

"Freedom's battle once begun
Bequeathed from bleeding sire to son
Though baffld often yet ever won.

अर्थात् "स्वतान्त्र्य युद्ध एक बार आरम्भ होने के पश्चात् रक्तरंजित पिता के बाद पुत्र द्वारा चलाया जाता है, और चाहे अनेक बार पिछड़ क्यों न जाय अन्त में विजय प्राप्त करके रहता है।" पश्चिम के एक प्रसिद्ध साहित्यिक आप्टन सिक्लेअर ने अपने साहित्य में एक वस्तु का वर्णन करते हुए लिखा है— "आत्मा मरी नहीं थी, वह केवल सो रही थी।" अहसयोग के बाद भी हमारे देश की आत्मा की यही अवस्था थी।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जो असहयोग आन्दोलन हुआ था वही सत्याग्रह आन्दोलन की सच्ची पृष्ठभूमि होते हुए भी अन्य जो बातें सत्याग्रह आन्दोलन को ला सकीं उन पर भी हमारा यहाँ विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

असहयोग आन्दोलन के समाप्त हो जाने और देश में हिन्दू-मुसलमानों के ऐतिहासिक विद्वेष के समय पर देश के विभिन्न ग्रामों तथा नगरों में दंगों के रूप में फूट पड़ने पर भी देश की राजनैतिक धारा शुष्क न हो गयी थी। कई कारण ऐसे थे जिनसे देश की जनता की दृष्टि राजनैतिक समस्याओं एवं प्रश्नों की ओर लगी रहती थी। जो लोग रचनात्मक कार्यक्रम के पक्षपाती थे वे देश के विभिन्न भागों में फैले हुए उसे चला रहे थे और उस दिन की प्रतीक्षा में थे जब उनके नायक महात्मा गान्धी राजनैतिक स्वतन्त्रता आन्दोलन

के लिए उनका फिर आह्वान करें। अतः यद्यपि वे किसी साक्षात् राजनैतिक कार्यक्रम का पालन या प्रसार नहीं कर रहे थे, किन्तु जनता के बीच में बराबर रहने और उसके सुख-दुःख में हाथ बटाने के कारण उनका जनता से घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ था। यह कहना अनुचित न होगा कि वे राजनैतिक संगठन की रीढ़ की हड्डी या लौह ढाँचा थे। जिन लोगों ने धारा सभाओं में जाने तथा वहाँ अन्दर से तोड़ो नीति अपनाने का निश्चय किया था उन लोगों ने भी देश में राजनैतिक चिनगारी को जागृत रखा था। चुनावों में जनता में पर्याप्त प्रचार होता था, धारा सभाओं में प्रश्नों, प्रस्तावों और भाषणों द्वारा सरकार की कमजोरियाँ तथा खराबियों को दिखाया जाता था और चाहे मत-दान द्वारा ही क्यों न सही सरकार एवं उसके हिमायतियों को हराने या हराने के प्रयास में भी काफी जोश खरोश पैदा होता था।

नगरों के पढ़े-लिखे युवकों में भी राजनैतिक लहर फैल रही थी, किन्तु उनमें अब पुनः यह विचार पैदा हो रहा था कि देश की स्वतन्त्रता के लिए हिंसात्मक संघर्ष की आवश्यकता हो सकती है। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन क्रान्तिकारी दल कुछ युवकों ने इस उद्देश्य से संगठित किया था कि शस्त्र एकत्रित किये जायें, युवकों को सैनिक शिक्षा दी जाय और समय आने पर अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया जाय। इन सब कार्यों के लिए आवश्यक धन एकत्रित करने के निमित्त सरकारी खजानों को लूटने का भी उनका कार्यक्रम था। यद्यपि इस दल में कुछ थोड़े ही लोग थे, किन्तु लगभग समस्त उत्तरी भारत उनका कार्य-क्षेत्र था। काकोरी डकैती तथा उसके पश्चात् उसके सम्बन्ध में पकड़े गये श्री रामप्रसाद बिस्मिल एवं उनके साथियों के मुकदमे से भी देश के लोगों में और विशेषतः यहाँ के युवकों में पर्याप्त जोश फैल रहा था। बिस्मिल की नज़्में युवक बड़े चाव से गाते और उनसे प्रेरणा पाते थे।

कुछ युवकों में रूसी साम्यवाद के विचार भी फैल रहे थे। १९१७ की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् रूस में जो कायापलट हो रही थी तथा नये समाज और नयी संस्कृति की रचना हो रही थी उसकी ओर संसार भर की आँखें खिचने लगी थीं। वहाँ मित्रराष्ट्रों के हस्तक्षेप एवं गृह-युद्ध और तत्पश्चात् अकाल के कारण आरम्भ में तो कोई महान् प्रगति न हुई थी किन्तु १९२४ के

लगभग वहाँ साम्यवादी दल का पूरा प्रभुत्व तथा दबदबा जम गया था और रूस साम्यवाद के पथ की ओर अग्रसर हो रहा था। सामन्तशाहियों एवं विदेशियों के विपक्ष तथा विरोध के बावजूद रूस ने जो सफलता प्राप्त की थी उसको देखकर यहाँ के लोगों में, विशेषत: युवकों में, यह विचार फैल रहा था कि सच्ची क्रान्ति के हेतु मार्क्स द्वारा प्रचारित साम्यवाद को अपनाना चाहिए। स्मरण रहे कि इन्हीं दिनों श्रमिकों और कृषकों में भी असंतोष की लहर फैलने लगी थी। श्रमिकों में कुछ साम्यवादी विचार के लोग प्रचार तथा संगठन करने लगे थे। देश में साम्यवादी दल का संगठन हुआ था और उसकी छिपी शाखाएँ स्थापित करने का प्रयास चलने लगा था। इन्हीं दिनों कुछ भारतीय रूस गये थे। इनमें श्री जवाहरलालजी और कवि-सम्राट् रविबाबू के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जवाहरलालजी ने अपने रूसी भ्रमण के बारे में एक पुस्तक लिखी थी, जिससे उनका युवकों में भारी आदर हो गया था।

साइमन कमीशन के सफल बहिष्कार ने जनता में जोश को और बढ़ा दिया था और लाहौर-कांग्रेस के पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव ने तो इस जोश को भी कई गुना कर दिया था। देश पुन: अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लेने के लिए तैयार था और इस बात की माँग कर रहा था कि देश के नेता उसे इस संघर्ष का पथ दिखायें। यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि राजनैतिक असंतोष को आर्थिक असंतोष से इसे पर्याप्त बल मिल रहा था। मंदी तो पहले से ही हो रही थी, किन्तु १९२९-३० में यह बहुत बढ़ गयी। व्यापारियों की यह आम शिकायत थी कि माल बिकता नहीं। किसान तथा मजदूर का जीवन कठोर से कठोरतर होता जा रहा था। भूमि की आय कम हो रही थी और जमींदारों एवं किसानों के लिए यह मुमकिन न था कि अपने ऋण का ब्याज भी चुका सकें। जो लोग मजदूरी करते थे उनमें से भी अनेक मंदी के कारण बेरोजगार हो रहे थे। शिक्षालयों से पढ़कर निकलनेवाले युवकों में से अनेक बेरोजगार रह जाते थे। इस प्रकार बढ़ती आर्थिक कठिनाई के कारण देश में उस व्यवस्था के विरुद्ध पर्याप्त असंतोष था जो उस समय वर्तमान थी। राज्य तथा समाज दोनों ज्वालामुखी के किनारे बैठे हुए थे, उन्हें बाहरी शान्ति ही दिखायी पड़ती थी पर उसके तल में धधकनेवाली अग्नि ज्वाला दिखायी न

देती थी, किन्तु यह क्रान्तिकारी परिस्थिति थी एवं यह स्वाभाविक ही था कि उन दिनों की परिस्थिति में वह अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में फूट निकले।

ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के स्वतन्त्रता आन्दोलन के संचालन का भार स्वभावतः महात्मा गान्धी के ऊपर पड़ा। जैसा पहले कहा जा चुका है वे १९२४ से देश की सक्रिय राजनीति के प्रति कुछ उदासीन-से रहे थे और उन्होंने स्वराज्य दल के लोगों को अपनी नीति पर चलने की खुली छुट्टी सी दे दी थी। यह भी पहले कहा जा चुका है जब कांग्रेस के युवक दल और प्रौढ़ दल में औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रश्न पर मतभेद हुआ तब पण्डित मोतीलालजी के आग्रह पर ही उन्होंने कांग्रेस में पुनः प्रमुख भाग लिया था। लाहौर-कांग्रेस के बाद जब कांग्रेसवादियों ने धारा सभाओं को छोड़ा तब फिर से देश के नेतृत्व की बागडोर पूर्णतः उनके हाथ में आयी। इसके अतिरिक्त उन्होंने ही तो अहिंसात्मक क्रान्ति का मंत्र देश को बताया था और उस मंत्र के उचित प्रयोग के बारे में वे ही जनता का दिग्दर्शन कर सकते थे। देश की साधारण जनता में तो अभी भी उनकी वैसी ही पूजा थी जैसी कि १९२० में थी। अतः यह प्रश्न ही न उठ सकता था कि देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन की बागडोर कोई और सँभाले।

महात्माजी ने सत्याग्रह का ऐसा कार्यक्रम बनाया जो देश के साधारण से साधारण तथा अपढ़ से अपढ़ व्यक्ति की समझ में भी सहसा आ जाये। भारत की साधारण जनता उन विचारों को हृदयंगम न कर सकती थी जो पढ़े-लिखों के हृदय को आन्दोलित कर रहे थे। राजनैतिक सिद्धान्तों एवं आदर्शों से देश की जनता का न तो परिचय था और न आसानी से कराया जा सकता था। किन्तु अपने घर की नौन तेल लकड़ी के बारे में वे जानते थे और उनके लिए लड़ने को प्रस्तुत हो सकते थे। महात्माजी ने गरीब के नमक का प्रश्न उठाया और कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपनी आवश्यकताओं के हेतु नमक स्वयं बना सके तथा उसे उसके लिए कोई कर या शुल्क न देना पड़े। सरकार नमक की पैदावार पर शुल्क संग्रह करती थी अतः शुल्क दिये बिना नमक वे ही बना सकते थे जिन्हें उसका लैसंस मिला हुआ था। महात्माजी ने सरकार की शक्ति से इसी मोर्चे पर लोहा लेना तय किया।

सरकार का यह मोर्चा बहुत ही कमजोर था, क्योंकि उसके लिए यह असम्भव था कि वह भारत की भूमि के कण-कण पर ऐसा जाल बिछा दे कि कहीं कोई व्यक्ति उसकी मिट्टी से नमक न बना सके। वह तो स्थान विशेष में ही जनता को ऐसा करने से रोक सकती थी। साथ ही नमक बनाने के लिए किसी बड़ी साज-सज्जा की आवश्यकता न थी और न किसी विशिष्ट पूँजी लगाने का ही प्रश्न था। थोड़े पैसे ही लगा कर यह काम किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त यह काम ग्रामीण प्रदेशों में ही सुविधापूर्वक हो सकता था, नगरों में नहीं। इस सम्बन्ध में यह भी कह देना अनुचित न होगा कि असहयोग कार्यक्रम द्वारा महात्माजी ने भारत के पेशेवर लोगों को चुनौती दी थी। इन पेशेवर लोगों में से ही कुछ राजनैतिक बातें किया करते थे और जनता के नाम का उपयोग किया करते थे। असहयोग आन्दोलन द्वारा महात्माजी ने इन लोगों को चुनौती दी थी कि वे या तो स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी आहुति देने को प्रस्तुत हों नहीं तो अपने नेतृत्व को तिलांजलि दें। फल यह हुआ था कि ये पेशेवर लोग कुछ संख्या में राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा में आ पड़े। सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन में महात्माजी ने नगरों को इतना महत्त्व न देकर ग्रामों को महत्त्व दिया और ऐसा कार्यक्रम बनाया जिसमें अधिकतर ग्रामीण एवं श्रमिक भाग लें। महात्माजी ने जो कार्यक्रम बतलाया पढ़े-लिखे नगरों में रहनेवालों को वह चौंका देनेवाला था। समय ने यह बात सिद्ध कर दी है कि गान्धीजी की सूझ-बूझ बेमिसाल थी तथा वे छोटे काम द्वारा ही बड़े परिणाम निकालते थे। गान्धीजी ने जब उत्सुक नेताओं के सामने यह कार्यक्रम रखा कि वे नमक कानून तोड़कर सत्याग्रह आरम्भ करना चाहते हैं तो उनकी बुद्धि ने काम न किया और वे गान्धीजी के विचारों के तारतम्य को न पा सके। नेहरूजी ने सोचा नमक जैसी साधारण वस्तु का राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के आन्दोलन से क्या सम्बन्ध ? बिना चूँ चपड़ किये गान्धीजी का कहना माननेवाले राजेन्द्र बाबू भी संशय में पड़ गये।

गान्धीजी ने वाइसराय को पत्र द्वारा नमक कानून तोड़ने की सूचना दी तथा साबरमती आश्रम से दाण्डी यात्रा के लिए, जहाँ सर्वप्रथम नमक कानून तोड़ा जानेवाला था, अपने ७०-८० स्वयंसेवकों के साथ पैदल निकल पड़े।

यह पैदल यात्रा जनता में जागृति उत्पन्न करने की एक दूसरी महान् सूझ थी। साबरमती से दाण्डी तक की यात्रा १२-१३ मील रोज चलने पर भी २४ दिन में समाप्त हुई। ज्यों-ज्यों गान्धीजी यात्रा पर बढ़ते जाते थे, देश में अपूर्व जागृति फैलती जाती थी। गान्धीजी ने कहा था कि जब तक वे आज्ञा न दें, तब तक कोई भी व्यक्ति देश में सत्याग्रह आरम्भ न करे। गान्धीजी की यात्रा आरम्भ होने पर अहमदाबाद में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसके बाद अहमदाबाद में ही अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक। आगामी परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए सारी योजनाएँ बना ली गयीं। योजना में मुख्य बात थी नेताओं के गिरफ्तार होने जाने पर उनकी जगहें भरते जाना और सत्याग्रह चालू रहना। स्थानापन्न नेताओं को इसके लिए जो डिक्टेटर जैसे अधिकार दिये गये थे वे सरकार और नरम दल के लिए कटु आलोचना का विषय हो गये थे।

गान्धीजी २४ दिन में अपनी यात्रा समाप्त कर ५ अप्रैल के प्रातःकाल दाण्डी पहुँचे। वहाँ पर समुद्र तट पर नमक बीन कर उन्होंने सबसे पहले नमक कानून तोड़ा और फिर सारे देश में नमक कानून तोड़ने की आज्ञा दे दी। वातावरण में बिजली की तेजी तो छाई हुई थी ही। क्षण मात्र में जहाँ-जहाँ भी नमक बनना सम्भव था लोग उसे बनाकर कानून तोड़ने लगे।

बारदोली सत्याग्रह में सरदार पटेल की संगठन शक्ति एवं कार्यपटुता सरकार देख चुकी थी अतः उसने पहले से ही उन्हें बन्द कर लिया था। लाहौर-कांग्रेस में कांग्रेस दल से अलग एक दल बनानेवाले सुभाष बाबू को भी सरकार ने पकड़ लिया था। १४ अप्रैल को हमारे प्रान्त में आते समय कांग्रेस सभापति पण्डित जवाहरलाल नेहरू को भी गिरफ्तार कर लिया गया। ये सब गिरफ्तारियाँ सत्याग्रह आन्दोलन की कमर तोड़ने की दृष्टि की गयी थीं, परन्तु सारे उत्पातों की जड़ महात्मा गान्धी को हाथ लगाने की हिम्मत सर्वशक्तिशाली सरकार की भी नहीं पड़ रही थी। यह आग देश भर में सुलगी परन्तु मूल स्थान दाण्डी में उसको बुझाने को सरकार ने घोर दमन चालू किया। अन्त में जब गान्धीजी ने सूरत जिले के धरसना और धरसाड़ा के नमक के कारखानों पर धावा करने का इरादा वाइसराय को जाहिर किया तब उसका उत्तर सरकार ने ५ ता०

की रात को १ बजे गान्धीजी को गिरफ्तार करके दिया। गान्धीजी की इस गिरफ्तारी से देश के इस छोर से उस छोर तक उत्साह की एक नयी लहर दौड़ गयी और देश भर में व्यापक हड़तालें आदि की गयीं।

सरकार ने अब मैदान अपने हाथ में समझ कर घोर पाशविकता का सहारा लिया और बम्बई प्रान्त में क्रूरता के लिए प्रसिद्ध पठानों को बुलाकर नमक कानून तोड़नेवालों को बुरी तरह मारना आरम्भ कर दिया। स्वयंसेवकों को मार-मार कर बेहोश कर दिया जाता, घायलों के ऊपर सरपट घोड़े दौड़ाये जाते, मतलब यह कि सरकार ने अपनी पाशविक शक्ति की पराकाष्ठा कर दी, परन्तु देश-भक्ति की आग जो प्रत्येक के हृदय में जल रही थी, इससे बुझने की अपेक्षा और अधिक भड़क उठी। ज्यों-ज्यों दमन बढ़ा, सत्याग्रही बढ़े। अब तो क्रोध से सरकार पागल हो उठी।

× × ×

नमक कानून तोड़ने से जो सत्याग्रह आरम्भ हुआ था वह बहुमुखी हो गया। नमक कानून हर स्थान पर तो तोड़ा नहीं जा सकता था दूसरे बरसात लग जाने से नमक बनाना भी कठिन हो गया था। अतः शनैः शनैः विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तथा मद्य-निषेध के सम्बन्ध में भी सत्याग्रह के कार्यक्रम बने। गान्धीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय से ही देश को स्वतन्त्र करने का भार हमारे देश के महिला वर्ग पर भी समान रूप से रखा था। सन् २० के असहयोग में हमारी माताओं और बहिनों ने जितना भाग लिया था सन् ३० में उससे कहीं अधिक। परदे के पीछे रहनेवाली अपढ़ स्त्रियों ने भी बड़े उत्साह से विलायती कपड़ों की दुकान पर पिकेटिंग करना आरम्भ किया। एक तो स्त्रियों की उपस्थिति के कारण कोई खरीददार उस तरफ जाने में लज्जित होता था, दूसरे दूकानदार भी उनका संकोच खाकर विलायती माल पर कांग्रेस की सील लगवा कर बन्द करने को तैयार हो जाता था और तीसरे सरकार की पुलिस के डण्डे या गिरफ्तारी का भी इन कोमलांगियों को उतना भय नहीं रहता था।

पिकेटिंग तब होता जब व्यापारी अपना कपड़ा बन्द कर सील न लगवाता। बिहार में इस विदेशी कपड़े के बहिष्कार का खूब जोर रहा। वहाँ नवम्बर २९ की अपेक्षा नवम्बर ३० विदेशी कपड़े का आयात ६५ प्रतिशत

गिर गया। इसके सिवा बिहार में चौकीदारी कर बन्दी का सत्याग्रह भी हुआ।

किसी-किसी प्रान्त में मद्य-निषेध ने जोर पकड़ा। वहाँ इस बात को लेकर सरकार ने लोगों को कैद करना और गोली से उड़ाना तक आरम्भ किया। सीमाप्रान्त के हिंसक पठानों ने गोलियों से मरना स्वीकार किया, परन्तु अहिंसा को हाथ से न जाने दिया। उनके इस आदर्शपूर्ण बलिदान से देश में पेशावर दिवस मनाया गया। यहाँ पर कुछ पलटन के जवानों ने निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलाने से इंकार कर दिया।

युक्त प्रान्त में कर-बन्दी को जोर दिया गया तथा मध्य प्रान्त वालों ने अपनी निराली सूझ का परिचय जंगल कानून तोड़कर दिया। लोग कुल्हाडियाँ लेकर जंगल के झाड़ काटने जाते। वह सरकारी रक्षित जायदाद होने से ये लोग रोके जाते और न मानने पर गिरफ्तार कर लिये जाते। जत्थे के जत्थे नित्य नये उत्साह से जा जाकर गिरफ्तार होने लगे। सरकार का लाठी चार्ज और गोलियाँ भी इस उत्साह को मन्द न कर सकीं।

मध्य प्रान्त के सत्याग्रह आन्दोलन का कुछ विस्तृत वर्णन आगे आयेगा, क्योंकि मेरा प्रधान सम्बन्ध उसी से था।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त सबसे अधिक कार्यक्रम सुझानेवाली तो सरकार स्वयं थी। जैसे ही सरकार कोई आर्डिनेंस निकालती वैसे ही कांग्रेसियों की ओर से तोड़ने के उपाय बतलाये जाते और जनता उसमें अधिक से अधिक सहयोग देती। सभाओं, जुलूसों और स्वयंसेवकों की भरती को गैर कानूनी करार देकर सरकार ने कानून तोड़ना बहुत सहल कर दिया था। परन्तु गिरफ्तारियों के न टूटनेवाले ताँते से उकताकर सरकार ने अन्य प्रकार के दमन पर जोर दिया। लाठी चार्ज और गोलीकाण्ड मामूली घटनाएँ हो गयीं। घायलों को घोड़ों की टापों से बचाने स्त्रियाँ सड़कों पर आकर खड़ी होने लगीं। उन्होंने घायलों को पानी देने का कार्य करना चाहा तो सिपाहियों ने उनके बर्तन फोड़ डाले, बलपूर्वक उनको तितर-बितर कर दिया और कहीं-कहीं तो उनके गिर जाने पर बूट चढ़े पैरों से उन्हें कुचलते हुए सिपाही आगे भी बढ़ गये। यह नृशंसता की चरम सीमा थी। नेता जेल में बन्द थे, परन्तु आन्दोलन बन्द नहीं होता था।

सन् २० के असहयोग आन्दोलन के समान सन् ३० के सत्याग्रह के समय भी देश के सदृश हमारे प्रान्त का वायुमण्डल भी नितान्त शुद्ध था। सन् २० के असहयोग के पश्चात् नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं के बीच अधिकारों के स्थानों को प्राप्त करने तथा उन्हें सुरक्षित रखने के लिए जिस होड़ और उस होड़-बाजी के कारण जिस ईर्ष्या और वैमनस्य की उत्पत्ति हुई थी, उसका सत्याग्रह के सदृश व्यापक आन्दोलन को सामने देख अपने आप शमन-सा होगया था। बात यह थी कि अधिकारों के स्थान चाहे वे नगरपालिकाओं में हों, अथवा लोकल बोर्डों एवं जिला कौंसिलों में, चाहे वे प्रान्तीय असेम्बलियों में हों या केन्द्रीय असेम्बली एवं कौंसिल ऑफ स्टेट में, परिमित रहते हैं, वहाँ सभी नहीं पहुँच सकते, अतः सब को सन्तुष्ट करना असम्भव होता है, परन्तु असहयोग अथवा सत्याग्रह के सदृश व्यापक क्रान्तिकारी आन्दोलनों में सभी के लिए स्थान रहता है। इसीलिए ऐसे अवसरों पर ईर्ष्या, वैमनस्य आदि भावनाएँ यदि समूल नष्ट न भी हों तो दब अवश्य जाती हैं।

हमारे प्रान्त में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ होने के पहले कुछ बातें और हुई थीं जिनका उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। प्रान्त का नाम हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त से बदलकर महाकोशल रख दिया गया था। पं० रविशंकर शुक्ल, जो सन् २६ के चुनाव में हारकर चुपचाप घर में बैठ गये थे, इस आन्दोलन में फिर से आगे आ गये थे।

जिस समय गान्धीजी का दाण्डी मार्च चल रहा था और अहमदाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई थी, हमारे प्रान्त का वायुमण्डल भी जोश की सीमा पर पहुँचा हुआ था। इस जोश को प्रान्त के उत्तरीय जिलों में हमारा दैनिक पत्र "लोकमत" और उभार रहा था। हमारे प्रान्त की राजनैतिक परिषद् इस वर्ष रायपुर में होनेवाली थी। इस परिषद् की स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे पं० रविशंकर शुक्ल तथा परिषद् के सभापति चुने गये थे पं० जवाहरलाल नेहरू।

अप्रैल का महीना था। गरमी खूब पड़ने लगी थी। लोगों के मनों के भीतर आन्दोलन की गरमी और बाहर मौसम की गरमी। ऐसी गरमी में रायपुर के सदृश गरम स्थान पर प्रान्तीय परिषद् का अधिवेशन। पं० माधवराव सप्रे

रायपुर के ही थे। उनका देहावसान हो चुका था। अतः परिषद् के कैम्प का नाम सप्रेजी के नाम पर "सप्रे नगर" रखा गया था। प्रान्त के सभी गण्यमान्य कांग्रेसवादी इस सप्रे नगर में एकत्रित हुए। कैसी चहल-पहल थी सप्रे नगर की, मानों कांग्रेस का ही अधिवेशन हो। परिषद् के साथ प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का भी अधिवेशन था जिसके सभापति थे पं० माखनलालजी चतुर्वेदी।

परिषद् के लिए जब जवाहरलालजी इलाहाबाद से रवाना हुए तब छिउकी स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये, जैसा पहले कहा भी जा चुका है। अब तो क्या पूछना था ? परिषद् का जोश सीमा उलाँघ गया। जवाहरलालजी की अनुपस्थिति में मैं परिषद् का अध्यक्ष चुना गया। परिषद् की कार्रवाई बन्दे मातरम् गीत से आरम्भ हुई। इसके बाद रायपुर के अनाथालय के बालकों ने दो गान गाये। ये गान लेजम बजाते हुए गाये गये थे और जैसे ये गाने थे तथा जिस जोश भरे स्वर में ये गाये गये थे उसे हमारा प्रान्त आज तक नहीं भूला है, वरन् मेरे सदृश जोशीले व्यक्तियों के तो कानों में अभी भी अनेक बार ये गूँज उठते हैं।

रायपुर की इस परिषद् के बाद सन् ४२ के स्वतन्त्रता के युद्ध तक बारह वर्षों के पूरे एक युग में हर आन्दोलन में महाकोशल इन गानों को गाता रहा है।

इन गानों के बाद शुक्लजी का स्वागत भाषण हुआ और फिर मेरा भाषण। मैंने अपना भाषण मौखिक ही दिया, क्योंकि भाषण छपाने का समय ही कहाँ था ? मेरे उस भाषण का सार और उस परिषद् में जो प्रस्ताव हुए उनका विवरण संक्षेप में श्री मित्रा के "इण्डियन एन्युअल रजिस्टर" की सन् ३० की जनवरी से जून तक की प्रथम जिल्द में सुन्दरता से दिया गया है।

इस परिषद् में उस समय के अनुकूल प्रस्ताव तो पास हुए ही, पर प्रस्तावों के अलावा हमारे प्रान्त में सत्याग्रह किस प्रकार चलेगा इसकी एक योजना बनायी गयी। इस योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग था जंगल सत्याग्रह। चूँकि हमारे प्रान्त में समुद्र नहीं था अतः हम बड़े परिमाण में नमक-सत्याग्रह न चला सकते थे इसीलिए हमने जंगल सत्याग्रह का निश्चय किया। बाद को वास्तव में देश भर में दो ही सत्याग्रह व्यापक रूप में चले एक नमक सत्याग्रह

और दूसरा जंगल सत्याग्रह। जंगल सत्याग्रह आरम्भ करने के पूर्व कांग्रेस अध्यक्ष की इजाजत आवश्यक थी। जवाहरलालजी की गिरफ्तारी के पश्चात् कांग्रेस अध्यक्ष पं० मोतीलालजी हो गये थे। रायपुर की इस परिषद् के बाद प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र मोतीलालजी से जंगल सत्याग्रह की आज्ञा ले आये।

बड़े जोश और खरोश में प्रान्तीय परिषद् का यह अधिवेशन समाप्त हुआ। सन् २१ के जबलपुर के प्रान्तीय परिषद् के अधिवेशन के पश्चात् परिषद् का कोई अधिवेशन इस प्रकार का न हुआ था।

परिषद् के अधिवेशन के पश्चात् मैंने जबलपुर लौट जबलपुर का काम हाथ में लिया। और शुक्लजी ने छत्तीसगढ़ का काम सँभाला।

जबलपुर लौटते ही मैंने सबसे पहले धन-संग्रह किया। इस काम के लिए मुझे गुप्त दान मिला, क्योंकि दाताओं का इतना साहस न था कि वे सत्याग्रह के लिए जाहरी सहायता देते। धन संग्रह के पश्चात् स्वयंसेवकों की राष्ट्रीय शपथ का आयोजन किया गया। इस आन्दोलन के लिए जबलपुर से १६ मील की दूरी पर स्थित वीरांगना महारानी दुर्गावती की समाधि को उपयुक्त स्थान समझ वहाँ स्वयंसेवकों का जुलूस ले जाना तय हुआ। दुर्गावती की समाधि पर यह जुलूस ले जाया जाय यह द्वारकाप्रसादजी मिश्र की सूझ थी। कैसा था उस जुलूस का दृश्य! इतने वर्षों के बाद भी वह भुलाये नहीं भूलता और इतने वर्षों के बाद क्या कदाचित् जीवन भर न भूल सकेगा। मीलों लम्बा! हजारों की जन-संख्या! जोश की पराकाष्ठा! जन्म-भूमि पर प्राणों को उत्सर्ग करने की शुद्धतम भावना! अभय! निस्पृहता! गगनभेदी नारे और "केसरिया बाना" वाला गीत! क्या-क्या कहा जाय! सोलह मील की पैदल चलाई सोलह फर्लांग की भी न जान पड़ी। दुर्गावती की समाधि पर पहुँच उस समाधि का स्पर्श कर हर स्वयंसेवक ने उच्च स्वर से शपथ ली कि वह देश की स्वाधीनता के लिए प्राणों को भी उत्सर्ग कर देगा, पर सत्याग्रह से मुख न मोड़ेगा।

इस शपथ का चाहे कोई वैधानिक रूप न हो और आज स्वतन्त्र भारत की धारा सभाओं में जो शपथ हर सदस्य लेता है उस शपथ का चाहे वैधा-

निक दृष्टि से कैसा ही स्थान क्यों न हो, पर विधान से कोई सम्बन्ध न रखनेवाली यह शपथ और इस वैधानिक शपथ का यदि मूल्य आँका जाय तो… तो……इस सम्बन्ध में कुछ न कहना ही शायद ठीक होगा।

इस आन्दोलन के पश्चात् जबलपुर में एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा में वैज्ञानिक ढंग से हमने अवैधानिक नमक बनाया।

रायपुर की प्रान्तीय परिषद्, उसके पश्चात् दुर्गावती की समाधि के आयोजन और फिर नमक बनानेवाले इस अवसर पर हर समय मुझे आशा थी कि हम लोग गिरफ्तार कर लिये जायँगे, पर न जाने क्यों हम गिरफ्तार ही न हो रहे थे। कितना छटपटा रहा था मैं गिरफ्तार होने के लिए। मैं आज जब अपनी उस समय की मनोवृत्ति पर दृष्टि डालता हूँ तब मुझे जान पड़ता है कि सन् २० और ३० दस वर्षों के बीच का लम्बा समय बीत जाने पर भी मुझ से कोई अन्तर न पड़ा था। जैसा मैं २० में था ठीक वैसा ३० में। और इन १० वर्षों में हमारे कितने साथियों का सारा जोश ठण्डा पड़ गया था। कितनों ने हमें छोड़ दिया था।

जब नमक बनाने के बाद भी हम गिरफ्तार न हुए तब मैं सोच में पड़ गया। अब क्या किया जाय यह हमारे सामने एक समस्या थी। जंगल सत्याग्रह इतनी जल्दी हो न सकता था, उसके लिए तैयारी की आवश्यकता थी और उस तैयारी तक हम अपनी गिरफ्तारी रुकी रहना ठीक न समझते थे, क्योंकि मेरा मत था कि हमारी गिरफ्तारी से जंगल सत्याग्रह तथा प्रान्त के समूचे सत्याग्रही वायुमण्डल को अत्यधिक प्रोत्साहन मिलेगा। गान्धीजी गिरफ्तार हो चुके थे, हर प्रान्त में गिरफ्तारियाँ हो रही थीं, इससे हर जगह जोश बढ़ रहा था। पर हमारे प्रान्त में अब तक कोई भी गिरफ्तार न हुआ था, जिससे जोश कुछ उतार की ओर जाता जान पड़ता था।

बहुत सोचने-विचारने के बाद हमने एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा कर जप्त साहित्य को पढ़ने का निश्चय किया। इसके लिए श्री सुन्दरलालजी द्वारा लिखित "भारत में अंग्रेजी राज्य" मँगाया गया और इस सभा के लिए प्रान्त भर के नेता तथा रायपुर की परिषद् में जिन लड़कों ने दो राष्ट्रीय गीत गाये थे उन्हें निमन्त्रित किया गया।

बड़ी सफल सभा हुई। जप्त साहित्य पढ़ने के अतिरिक्त मेरा उस दिन का भाषण शायद ऐसा था कि न उसके पहले न उसके बाद ही जीवन में मैं कभी वैसा भाषण दे सका। उस भाषण की सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी पूर्ण सत्यता की नींव पर मार्मिकता। मुझ से और मेरे कुटुम्ब से सम्बन्ध रखने-वाली कुछ मार्मिक बातें मैं कह गया। इन बातों को कहते-कहते अनेक बार मेरा कण्ठ रुँधा और मेरी इन बातों ने हजारों की संख्या में उपस्थित जनता में से न जाने कितनों को सजल नयन कर दिया। बहुत समय तक जबलपुर, महाकोशल प्रान्त और देश के अन्य स्थानों में इस भाषण में कही हुई कुछ बातों की चर्चा होती रही। लगभग २५ वर्ष बीत जाने पर आज भी अनेक व्यक्तियों को मेरी उस दिन कही हुई कुछ बातें याद आ जाती हैं और उन पर चर्चा तक चल पड़ती है। मुझे भी उनमें से कई बातों का अभी भी अनेक बार स्मरण हो आता है। उनमें से कुछ बातों को यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के समय विदेशी सरकार को सहायता देने के उपलक्ष में मेरे परदादा सेठ खुशालचन्दजी को उस समय की सरकार ने हीरे से जड़ा हुआ सोने का एक कमरपट्टा दिया था। इस कमरपट्टे का जिक्र इस पुस्तक के पूर्वज वाले अध्याय में आ चुका है। मैंने अपने भाषण में इस कमरपट्टे का हाल बताते हुए कहा—"मैं नहीं जानता कि मेरे परदादा का उस समय की सरकार को सहायता देने में क्या उद्देश्य था। सम्भव है उन्होंने यह मानकर यह सहायता दी हो कि यह सरकार इस देश के लिए लाभप्रद होगी, परन्तु बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि यह सरकार इस देश के सारे संकटों का कारण हुई। अतः मेरे परदादा की कृति एक पाप हुआ है। मैं उस पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूँ और उस कमरपट्टे के पुश्त पर खुदवाना चाहता हूँ कि जिस सरकार को स्थापित करने का परदादा ने प्रयत्न किया उसी को उखाड़कर फेंकने का उनके परपोते ने।" आगे चलकर मैंने कहा—"जय-सलमेर से मेरे पूर्वज सेठ सेवारामजी आपके इस नगर में लोटा डोर मात्र लेकर आये थे। उन्होंने और उनके बाद के मेरे पूर्वजों ने इस नगर और इस प्रान्त की जनता, आप सबके सहयोग, सौहार्द्रय और कृपा के कारण यहाँ हजारों नहीं,

लाखों नहीं, करोड़ों कमाये। मुझे इस बात पर हर्ष है कि मेरा कोई भी पूर्वज आपके इस उपकार को विस्मृत न कर सका और जो धन उन्हें आपसे प्राप्त हुआ था उसे शक्ति भर आपकी सेवा में लगाने का उन्होंने प्रयत्न किया। परन्तु इस देश का सबसे बड़ा अभिशाप तो इस देश की पराधीनता है। मुझे खेद है कि गुलामी की इन जंजीरों को तोड़ने के लिए मेरे पूर्व पुरुषों ने कोई प्रयत्न नहीं किया। मैं जानता हूँ इस प्रयत्न का पथ अत्यन्त भयावह है। मैं हूँ उसी पथ का पथिक और जो धन हमें इसी देश से मिला है वह सर्वस्व यदि इसी देश की स्वाधीनता के यज्ञ में स्वाहा होकर फिर से मेरे हाथ में लोटा-डोर ही रह जायगा तो मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मानूँगा।"

इस भाषण का अन्त किया मैंने निम्नलिखित दोहे से—

"कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाटी हाथ
जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ।"

यह भाषण देते-देते कितने बार मुझे चित्तौड़ का विजय स्तम्भ और उसके सामने की गयी मेरी प्रार्थना मुझे याद आयी। इस सभा के बाद गिरफ्तारी में भी बहुत समय न लगा।

हमारी गिरफ्तारी से सचमुच जोश बढ़ा। हमारे बाद प्रान्त के सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन सिवनी के श्री दुर्गाशंकरजी मेहता और दुर्ग के श्री घनश्यामसिंहजी गुप्त ने किया। जंगल सत्याग्रह सबसे पहले बैतूल जिले में सेठ दीपचन्दजी गोठी के नेतृत्व में हुआ। इसके बाद बरार में श्री अणे के नेतृत्व में। महाकोशल में सभी स्थानों पर सत्याग्रह का अत्यधिक जोर रहा। जिन स्थानों पर बहुत अधिक जोर रहा और जहाँ या तो भीषण लाठी चार्ज हुए या गोली चली वे हैं जबलपुर जिले की सिहोरा और कटनी तहसीलें सागर, सिवनी, बैतूल और रायपुर। समूचे प्रान्तों में कोई चार हजार व्यक्ति गिरफ्तार हुए। अनेक लाठी चार्ज हुए और अनेक स्थानों पर गोली चली।

मेरी गिरफ्तारी

सन् ३० के सत्याग्रह में मध्य प्रान्त में सर्वप्रथम गिरफ्तारियाँ जबलपुर में हुईं और हम पाँच व्यक्ति जबलपुर के तथा जबलपुर के बाहर के गिरफ्तार हुए। मेरे अतिरिक्त ये थे—पं० रविशंकरजी शुक्ल, पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र और श्री विष्णुदयाल भार्गव। हम लोगों में से रविशंकरजी शुक्ल, माखनलालजी चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसादजी मिश्र और मैं दो कानून तोड़ चुके थे—हमने नमक बनाया था और जप्त साहित्य पढ़ा था। तीसरा जंगल कानून तोड़ने की हम व्यवस्था कर रहे थे। श्री विष्णुदयाल भार्गव ने एक कानून तोड़ा था; उन्होंने जप्त साहित्य पढ़ा था। गिरफ्तारी के समय पं० रविशंकरजी शुक्ल को छोड़ शेष व्यक्ति जबलपुर नगर में ही थे और वहीं गिरफ्तार किये गये। शुक्लजी रायपुर से गिरफ्तार कर जबलपुर लाये गये थे। जबलपुर में हम सबकी गिरफ्तारी ३ बजे रात और ५ बजे प्रातःकाल के बीच हुई और शुक्लजी गिरफ्तार हो उसी दिन प्रातःकाल की ट्रेन से जबलपुर पहुँचे। हम चार को कानून की जिन धाराओं के अनुसार गिरफ्तार किया गया वे धाराएँ थीं—१२४ ए, १२० बी और १२४ ए १०६ के साथ। श्री विष्णुदयालजी भार्गव को जिस धारा के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था वह मुझे स्मरण नहीं है।

मेरी गिरफ्तारी करीब ३ बजे रात को हुई। मुझे गिरफ्तार करने के लिए न जाने क्यों बड़ी लम्बी-चौड़ी तैयारी की गयी थी। राजा गोकुलदास महल चारों ओर से पुलिस के सिपाहियों से घेरा गया था। जितनी सड़कें राजा गोकुलदास महल को आती थीं उनका यातायात बन्द कर दिया गया था। शहर कोतवाल दो सब इंस्पेक्टरों तथा तीन हैड कांस्टेबिलों के साथ पुलिस लारी लेकर मुझे गिरफ्तार करने पहुँचे थे और जब वे पहुँचे उस समय राजा गोकुलदास महल के फाटक पर हमारा जो सशस्त्र पहरेदार घूम रहा था उसे पहले गिरफ्तार कर फिर उन सबने महल में प्रवेश किया था।

महल के प्रवेश द्वार के बाद ही महल का जो पहला चौक पड़ता था, गरमी के मौसम के कारण पिताजी उसी में सो रहे थे। माताजी भी वहीं थीं। ज्यों ही पिताजी ने इतनी रात को इतने आदमियों की आहट सुनी, त्यों ही वे चकपकाकर उठे। माताजी भी तत्काल उठ गयीं। उन दिनों मेरी गिरफ्तारी की खबर रोज ही उड़ा करती थी अतः इस प्रकार पुलिस को देख उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। शहर कोतवाल ने बड़े आदर से पिताजी का अभिवादन कर जिस वारण्ट के अनुसार वे मुझे गिरफतार करने आये थे उसे पिताजी को दिखाया और मुझे बुलाने के लिए कहा। मैं महल के चौथे मंजिल के बादल महल नामक स्थान की छत पर सो रहा था। नौकर ने मुझे जगाया और मैं क्यों जगाया गया हूँ इसकी खबर दी। मेरी पत्नी मेरे ही पास थी। उनकी विह्वलता का और मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। मैं शौच से निपटा। जेल जानेवाला मेरा सामान कई दिनों से बँधा हुआ रखा था। उसे जेल भेजने के लिए मैंने अपनी पत्नी को कह और फिर २, ४ वाक्यों में उन्हें ढाढस बँधा मैं नीचे आया। मेरे जो माता-पिता मेरे जेल जाने के विचार मात्र से काँपा-सा करते थे उन्हें आज मैंने बड़े साहस से सारी परिस्थिति का सामना करते हुए पाया। जब मैं चौक में पहुँचा तब पिताजी और शहर कोतवाल कुर्सियों पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। कुछ दूर पर माता अपने पलँग पर ही बैठी हुई थीं और सब-इन्स्पेक्टर तथा हैड कान्स्टेबल एक ओर खड़े हुए थे। रात को चौक में जो धुँधली-सी बत्तियाँ जला करती थीं उनको बुझा उस समय वहाँ के बिजली के तेज बल्ब जला दिये गये थे। मुझे सदा एक भय और रहा करता था कि मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे माता-पिता कोई अशोभनीय दृश्य न दिखावें। चौक के इस समय के तेज प्रकाश में जो साहस और धैर्य मैंने उन दोनों के मुखों पर देखा उससे मुझे विस्मययुक्त सन्तोष हुआ।

मुझे देख पिताजी और कोतवाल उठकर खड़े हो गये। कोतवाल ने मुझ से हाथ मिलाया और बिना एक शब्द भी कहे मैंने पहले माताजी और फिर पिताजी के चरण छूए। माताजी कुछ नहीं बोलीं, उन्होंने मेरे सिर पर केवल हाथ रखा। पिताजी ने इतना ही कहा, "देखो, तबियत का खूब ख्याल रखना।"

उनका गला कुछ रुँध-सा गया था और जान पड़ता कि जो साहस और धैर्य मैंने नीचे आते ही उनके मुख पर देखा था वह उनका साथ छोड़ रहा है। मैंने जल्दी से कोतवाल के साथ महल के बाहर प्रस्थान किया।

मेरी बहन का देहान्त हो चुका था। मैं अपनी माता-पिता की इस समय एकमात्र सन्तान था। घर आर्थिक दृष्टि से फिर से नष्टप्राय स्थिति में आ गया था। राजा गोकुलदास कुटुम्ब की अब तक की सारी परम्पराओं और परिपाटियों को तोड़ माता-पिता की समस्त आकांक्षाओं के प्रतिकूल मैंने यह रास्ता पकड़ा था। जो कुटुम्ब हमारे प्रान्त के राजभक्त कुटुम्बों का सिरमौर समझा जाता था उस कुटुम्ब की भावी पीढ़ी का एकमात्र व्यक्ति आज जेल जा रहा था। बाद में जेल जाने को चाहे वह महत्त्व न रहा हो, पर जब मैं पहले-पहल गिरफ्तार हुआ, उस समय वह घटना एक अनोखी घटना थी, कम से कम हमारे प्रान्त और जबलपुर नगर के लिए।

मेरी गिरफ्तारी की खबर प्रातःकाल के पूर्व ही सारे शहर के मुहल्लों, गली-कूचों और घर-घर पहुँच गयी। कहा जाता है उस दिन शहर में जैसी हड़ताल हुई वैसी हड़ताल न उसके पहले कभी हुई थी और न उसके बाद। उस समय कांग्रेस द्वारा आयोजित किसी हड़ताल में मुसलमान अपनी दूकानें बन्द न करते थे, गान्धीजी की गिरफ्तारी के समय भी मुसलमानों ने अपनी दूकानें बन्द न की थीं, पर आज कीं। मेरे कुटुम्ब का जबलपुर के हिन्दू, मुसलमान आदि सब समुदायों से एक सा सम्बन्ध था अतः इस हड़ताल को जबलपुर के मुसलमानों ने कांग्रेस की हड़ताल न मान उस व्यक्ति की गिरफ्तारी की हड़ताल माना जिसके कुटुम्ब से उनका उतना ही सम्बन्ध था जितना जबलपुर के अन्य किसी समुदाय का।

हवालाती की हैसियत से जेल में

इस गिरफ्तारी के पहले मैंने कभी जेल न देखा था। जेल मेरे लिए ही नहीं माखनलालजी चतुर्वेदी को छोड़ मेरे शेष तीनों साथियों के लिए भी एक नयी दुनिया था।

जेल के जिस "चक्कर" में हम लोग रखे जाने वाले थे उसमें आते ही सबसे पहले जिस चीज ने मेरा ध्यान आकर्षित किया वह उस चक्कर की जिस बैरक में हम लोग रखे जानेवाले थे उस बैरक के सीमेण्ट के वे छै-छै फुट लम्बे और ढाई-ढाई फुट चौड़े चबूतरे थे जो कतार में बने हुए थे और कब्रों के सदृश दिखायी पड़ते थे। जेल के वार्डर से मैंने पूछा कि इस बैरक में एक-दम इतनी अधिक कब्रें कैसी? वार्डर हँस पड़ा और उसने कहा कि ये कब्रें नहीं, कैदियों के सोने के पलँग हैं। सीमेण्ट के बने हुए केवल ढाई फुट चौड़े ये पलँग! ओह!

शौच और मंजन से तो मैं घर पर ही निवृत्त होकर आया था। अब हजामत बना स्नान की तैयारी हुई। मेरे जेल के प्रवेश के थोड़ी देर बाद ही मेरा सामान आ गया था। जेल के दफ्तर में उसे खोलकर देख लेने के बाद वह हमारी बैरक में भेज दिया गया था। अतः हजामत तथा स्नान का सारा सामान और चक्कर में "चरी" के सदृश एक लम्बे हौज में पानी मौजूद था। गरमी के दिन थे अतः गरम पानी की जरूरत न थी। पहले मैंने हजामत बनायी और हजामत बना स्नान करने चला। पर स्नान करना मेरे लिए एक समस्या हो गया। मुझे यह देख कर स्वयं अपने ऊपर ही महान् आश्चर्य हुआ कि मैं स्नान करने में समर्थ न था। बात यह थी कि अब तक मुझे दो नौकर स्नान कराया करते थे—एक बदन मलता, साबुन आदि लगा देता और दूसरा पानी डालता, मैं अपने हाथों अब तक कभी नहाया ही न था। यद्यपि असहयोग आन्दोलन में आने के बाद मेरे जीवन में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए थे, पर मुझे जान पड़ा कि अभी कदाचित् अनेक परिवर्त्तन और आवश्यक हैं। आज के

पहले मेरे मन में यह बात कभी उठी ही न थी कि अपने हाथों स्नान करना भी एक आवश्यक बात है। किसी तरह मैं नहाया, पर नहाते-नहाते कई बार लोटा भटाभट मेरे सिर में लगा और नहाने के बाद देखा कि कानों में लगा हुआ साबुन पूरा धुला नहीं है तथा धोती भी कई जगह बिना भींगी हुई रह गयी है। मेरे इस विचित्र प्रकार के स्नान पर मेरे साथी ठठाकर हँस पड़े और मेरा खूब मजाक उड़ाया गया। मेरा मन ग्लानि से भर गया। श्रीमानों के लड़के किस प्रकार बड़े किये जाते हैं और वे कैसे निकम्मे रहते हैं इसका यह घटना एक उदाहरण है। मुझे उस समय अपने पर इतनी ग्लानि आयी कि मैंने तय किया कि सजा होने के बाद अपने से सम्बन्ध रखनेवाले सारे कार्य मैं स्वयं करूँगा, कपड़े धोना, बैरक झाड़ना, बर्तन माँजना, यहाँ तक कि पैखाना साफ करना भी। कोई ९ बजे कर्नल खान सुपरिंटैण्डैण्ट और मि० मराठे जेलर पहुँचे। साधारण बातें हुईं।

हम सबके लिए भोजन मेरे घर से बन कर आया अतः भोजन में कोई कष्ट न हुआ ; परन्तु गरमी के कारण उस बैरक में दिन को बड़ी तकलीफ हुई, न पंखा, न खस की टट्टी।

तीन बजे दिन से मुलाकातें शुरू हुईं। मुलाकातें उसी चक्कर की एक दूसरी बैरक में करायी गयीं। पहले मेरे माता-पिता और पत्नी मिलने आये। पिताजी को वहाँ की इस भीषण गरमी में बिना पंखे और खस की टट्टी के मेरा रहना बड़ी ही चिन्ता का विषय जान पड़ा। जबलपुर जेल में बिजली थी अतः उन्होंने सुपरिण्टैण्डैण्ट से बात कर टेबिल पंखों का प्रबन्ध तो तत्काल किया और दूसरे दिन से खस की टट्टियों के बनवाने की भी इजाजत ले ली। बैरक बहुत बड़ी थी, अतः उस पूरी बैरक की टट्टियों के बनने में कुछ समय लग गया और खर्च भी बहुत पड़ गया। मुझे गरम खाने की आदत थी अतः सजा होने तक पिताजी ने हमारे रसोइयों और नौकरों को भी वहाँ रखने की इजाजत ले ली। हम सब के लिए पलँग, बिस्तर तथा अन्य बिछावन आदि भी मेरे घर से आ गयीं।

घर के लोगों की मुलाकात के बाद बाहर के लोगों की मुलाकातें हुईं। ओह ! कितने लोग मिलने आये मुझ से ! और ताज्जुब की बात यह थी कि

सरकार ने इन मुलाकातों के लिए कोई आपत्ति न की। रात को पहले दिन हमें बैरक में ही सोना पड़ा। यद्यपि बिजली के पंखों का प्रबन्ध हो गया था पर बैरक में असहनीय गरमी थी। दूसरे दिन फोन से प्रान्तीय सरकार से परामर्श कर हमें बाहर सोने की इजाजत मिल गयी।

हम लोगों की गिरफ्तारी के तीसरे दिन से हम पर जेल में ही मुकदमा चलना शुरू हुआ। मुकदमा १० दिन चला। जितने दिन हम लोग हवालातियों की हैसियत से जेल में रहे, और हम लोगों पर मुकदमा चलता रहा, जेल में एक हजूम-सा मचा रहा मानों कोई बरात वहाँ ठहरी हो। बाहर का भी हमें सारा हाल मालूम होता रहा। कितना जोश था बाहर उस समय! हमारा "लोकमत" पत्र कितना बढ़ा रहा था इस जोश को!

मुझसे जेल में मुलाकात करने के लिए सभी समुदायों और वर्गों के लोग आये, अधिकांश तो ऐसे जिन्हें मैं पहचानता तक न था। इन मिलनेवालों में अधिकतर लोग आकर मेरे पैर छूते, मुझ से उम्र में बड़े-बड़े तक, और इससे मुझे कितना संकोच होता, मैं ज्यादातर लोगों के हाथ पैर छूने के पहले ही जबर्दस्ती पकड़ लेता, पर कई मुझ से हाथ छुड़ा बलपूर्वक मेरे पैर पकड़ लेते। अनेक के मुझसे मिलकर आँसू बहने लगते। इनमें अधिकतर स्त्रियाँ होतीं। कई मेरी बलैयाँ लेतीं, कई मेरी ठुड्डी पकड़ और अपने जिस हाथ से ठुड्डी पकड़तीं वह स्वयं चूम लेतीं। इन दिनों में मालूम हुआ मुझे मेरे प्रति जबलपुर के लोगों का प्रेम और अनुराग।

फिर जबलपुर के लोगों तक ही ये मुलाकातें सीमित नहीं रहीं, महाकोशल प्रान्त का कोई भाग बाकी न रहा जिससे लोग आ आकर हम लोगों से न मिले हों।

इन्हीं दिनों कहीं जाते हुए श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नरीमैन जबलपुर ठहरे और ये तीनों भी हम लोगों से मिलने जेल में आये।

घर पर आर्थिक संकट रहते हुए भी मेरे जेल में आराम से रहने के लिए और मेरे साथियों की खातिर तसल्ली में मेरे पिताजी ने मुक्त हस्त से खर्च किया। इस बार मुझे मालूम हुआ कि मुझ पर पिताजी का कितना अधिक स्नेह हो गया था।

हमारा पहला राजनैतिक मुकदमा

हमारे पहले राजनैतिक मुकदमे के लिए प्रान्तीय सरकार ने एक अलग ही न्यायाधीश नियुक्त किया। ये न्यायधीश अंग्रेज थे और उनका नाम था श्री लिली। अंग्रेजी भाषा में लिली एक फूल का नाम है। यह पुष्प कमल के सदृश पानी में रहता है और यों तो सभी कुसुम कोमल होते हैं पर इसकी मृदुता अन्य सुमनों से कुछ अधिक होती है। श्री लिली की आकृति, मुद्रा, व्यवहार आदि सभी में कुछ अधिक कोमलता थी। गौरवर्ण में गुलाबी झाँई, ठिगना-सा कुछ दुबलापन लिये हुए शरीर, सकुची-सकुची-सी मुद्रा और बड़ा ही शिष्ट व्यवहार। जब हम उनकी अदालत में लाये जाते लिली महोदय खड़े होकर हमारा स्वागत करते और उनके तख्त के नीचे हमारे लिए रखी हुई पाँचों कुर्सियों पर हमारे बैठने के बाद वे बैठते। जो क्रूर काम श्री लिली को सौंपा गया था उनका स्वरूप, मुद्रा और व्यवहार उस काम के ठीक विपरीत जान पड़ता था। इसीलिए पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने लिली साहब के लिए एक छोटी-सी कविता बना डाली। वह कविता तो अब न मिश्रजी को याद है, न हम में से किसी को, परन्तु उस कविता की कुछ तुकें अभी भी मुझे याद हैं। लिली शब्द उस कविता की पहली पंक्ति के अन्त में आता था जो पंक्ति हर तीन पंक्तियों के पश्चात् दुहराई जाती थी। "कली खिली", "कली मिली" "कली छिली" इत्यादि उस कविता की कुछ तुकें थीं।

हमारा मुकदमा जेल में ही चला और यद्यपि मुकदमे में आने के लिए सैकड़ों लोगों ने दरखास्तें दीं, परन्तु हमारे कुटुम्बियों को और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़ अन्य किसी को आने की इजाजत नहीं मिली। मेरे पिताजी, माताजी और मेरी पत्नी जब तक मुकदमा चला बराबर जेल में उपस्थित रहे। मुकदमे का इस्तगासा पेश किया उस समय के सरकारी वकील श्री एस० सी० मित्रा ने। मित्रा सा० से मेरे कुटुम्ब का दो पीढ़ियों का सम्बन्ध था। उनके पिता जबलपुर के लोक कर्म विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट इंजीनियर थे। पेन्शन लेने के

बाद कुछ दिन को जबलपुर नगरपालिका के सभापति भी हो गये थे। जबलपुर के बड़े प्रतिष्ठित नागरिक थे और मेरे पिताजी के परम मित्रों में से एक। अतः श्री एस० सी० मित्रा ने मुझ पर मुकदमा चलाने के लिए पहले दिन इस्तगासा पेश करने के पूर्व पिताजी और मेरे दोनों के सामने बड़ी हिचकिचाहट प्रदर्शित की। उस हिचकिचाहट में कितनी सचाई थी और कितना दिखावा यह तो वही जानें, परन्तु यदि मैं यह मान भी लूँ कि वह सारी हिचकिचाहट सच्ची भावोद्वेगता के कारण थी तो भी उस समय की सरकार से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखनेवाले लोग, चाहे वे सरकारी नौकर हों या गैर सरकारी व्यक्ति, अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध भी उस सरकार का समर्थन ही करते थे। अंग्रेजी राज्य जो इस देश में पौने दो सौ वर्ष तक चल सका वह मुख्यतः इस देशवासियों के समर्थन के कारण। इस समर्थन में भारतीय जघन्य से जघन्य कृत्यों को "ड्यूटी" कहकर किया करते थे। कितनी गोलियाँ चलायी थीं उन्होंने अपने देशवासियों पर! अपने कितने देशवासियों को इन्होंने फाँसी पर टाँगा था! कितने अपने देशवासियों के सिर फोड़े थे इन्होंने लाठी चार्जों से! अपने कितने देशवासियों पर उन्होंने मुकदमे चलाकर जेलों में ठूँसा और जेलों में बन्द रखा था! और यह "ड्यूटी" किसके प्रति थी, अपने, केवल अपने प्रति! वेतन और पेंशन में मिलनेवाली चाँदी के निर्जीव टुकड़ों के प्रति, मुकदमों की बड़ी-बड़ी फीसों में मिलनेवाले कागज के करेन्सी नोटों के चिथड़ों के प्रति!

जैसा पहले कहा गया है हमारा मुकदमा कोई दस दिन चला। यद्यपि सत्याग्रहियों के नियमानुसार हमने अपना कोई बचाव नहीं किया अतः इस मुकदमे में इतना अधिक समय न लगना चाहिए था, परन्तु एक तो हमारे प्रदेश में यह पहला राजनैतिक मुकदमा था, इसलिए इसकी कार्रवाई कुछ लम्बी हो गयी, दूसरे जहाँ तक मुझे याद है कोई कानूनी गलती हो गयी थी जिसके लिए श्री लिली को नागपुर के सरकारी एडवोकेट-जनरल से कुछ राय मँगानी पड़ी थी।

जिस तरह सरकार के वादी होनेवाले मुकदमे चलते हैं उसी प्रकार यह मुकदमा चला। पहले इस्तगासा, उस पर पुलिस ही गवाह। गुड़ के गनेशजी और गुड़ का ही नैवेद्य। हमने केवल एक वक्तव्य दिया जो पाँचों अभियुक्तों

की ओर से मैंने पढ़ा। यह वक्तव्य एक बड़े ऊँचे स्तर पर कही गयी सुन्दर साहित्यमयी राजनैतिक वस्तु थी। इस वक्तव्य की रचना में हम पाँचों ने ही अपना-अपना योग दिया था और यह हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा गया था। इसके लेखन के समय देश भक्ति की कैसी-कैसी उमंगों और देश के लिए सर्वस्व त्याग की कैसी-कैसी भावनाओं से भरे हुए थे हम सब के हृदय ! कितनी शुद्धता और पवित्रता थी उन भावनाओं में ! और जैसा यह वक्तव्य था वैसा ही साहित्यिक वह राजनैतिक फैसला भी हुआ। हम सब के भाषणों के कुछ प्रमुख अंशों को लिली साहब ने अपने फैसले में उद्धृत किया था। इसमें सन्देह नहीं कि इन उद्धरणों को बड़ा छाँटकर और बहुत सोच-विचार कर लिया गया था। मेरे भाषण के उस भाग को उद्धृत किया गया था जिसमें मैंने अपने प्रपितामह की सन् १८५७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दी गयी सहायता को पाप बताकर यह कहा था कि मैं उस पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। लिली महोदय ने उस भाषण के उस अंश को उद्धृत कर उस फैसले में यह लिखा था कि भारत की यह परम्परा रही है कि यहाँ के निवासी अपने पूर्वजों की कृतियों पर अभिमान कर उन्हें पूजनीय समझते हैं, पर यहाँ एक ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ जो अपने पूर्वजों की कृति को पाप बता लोगों को राज-द्रोह करने की प्रेरणा देता है अतः इसे लम्बी से लम्बी और सख्त से सख्त सजा दी जानी चाहिए जिससे अन्य लोग उस सजा से सबक लें।

पं० रविशंकरजी शुक्ल, पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र और मुझ को तीनों अपराधों के लिए हर अपराध पर दो-दो वर्ष की कड़ी कैद और श्री विष्णुदयाल भार्गव को एक साल की कड़ी सजा हुई।

फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्यिक अनातोले फ्रांस ने एक जगह लिखा है—"मानव मानव की परख करने में असमर्थ है। न्यायाधीश जब अपनी न्याय पीठ पर बैठता है तब वह मानवता को एक ओर रख देवत्व को ग्रहण करता है और उस समय वह हर्ष और दुःख का स्वाद नहीं ले सकता।"

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या संसार के सारे न्यायाधीशों को यह पद दिया जा सकता है ? जिन्होंने ईसा को सूली पर चढ़ाया, जिन्होंने लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धी को छः-छः वर्षों का कारावास दिया, क्या ऐसे न्याया-

धीशों को भी दैवी न्यायाधीश कहा जा सकता है ? मैं समझता हूँ कि संसार के जो मुकदमे भी राजनीति से प्रभावित रहे हैं उन मुकदमों के न्यायाधीशों को इस पद से उलटा पद देना चाहिए अर्थात् उन्हें दैवी न्यायाधीश न कहकर दानवी न्यायाधीश कहना चाहिए। जिस न्यायाधीश ने हमें इतनी लम्बी सजाएँ दीं उसे इसी पदवी से विभूषित करना होगा।

जिन न्यायाधीशों द्वारा इस प्रकार का न्याय होता है उन न्यायाधीशों के ऐसे न्याय के सम्बन्ध में भी अनातोले फ्रांस का ही एक कथन सुनिए—

"न्याय स्वीकृत अन्यायों पर मुहर लगाना है। क्या न्याय ने कभी भी विजेताओं और अपहरणकर्त्ताओं का विरोध किया है ? जब कोई भी गैर कानूनी शक्ति का उदय होता है तब न्याय को केवल उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है और न्याय की स्वीकृति पाते ही वह कानूनी हो जाती है। रूप ही सब कुछ है और जुर्म को निरपराध बनाने के लिए मुहर लगे हुए कागज की मुटाई ही आवश्यक होती है।"

मेरी इतनी लम्बी कड़ी सजा केवल मेरे कुटुम्बियों के लिए नहीं, पर सारे जबलपुर के लिए उस समय एक वज्रपात-सा था। मेरे माता-पिता और पत्नी ने जो धैर्य मेरी गिरफ्तारी से अब तक रखा था, मुलाकातों के समय जो मुस्कराहट जबरन वे अपने मुखों पर रखने का प्रयत्न करते थे, वह एकदम विलीन हो गयी। मुकदमे में अन्य लोगों की भी उपस्थिति के कारण यद्यपि उन्होंने कोई बुरा दृश्य उपस्थित न होने दिया, पर उनके चेहरों पर जो हवाइयाँ उड़ रही थीं, वे किसी से छिपी न रह सकीं। फिर उन्हीं को यह सजा अत्यधिक मालूम हुई हो यह नहीं, सभी उपस्थित समुदाय इस सजा की घोषणा सुन स्तब्ध-सा रह गया। पं० जवाहरलालजी को केवल छै महीने की सजा हुई थी, बाकी लोगों को और कम। देश भर में उस आन्दोलन में उस समय तक हमारी सजा ही सबसे लम्बी थी।

अपने कुटुम्बियों तथा अन्य लोगों को बिदा करते हुए मैंने इतना ही कहा—"आप लोग धैर्य धर कर जाइए, यह क्षणमात्र को भी न सोचिएगा कि हम लोग इतने समय तक जेल में रहनेवाले हैं। इसके कहीं पहले गान्धीजी स्वराज्य लेकर हमें छुड़ा लेंगे।"

अपने सम्बन्धियों को धैर्य के लिए मैंने यह कहा, पर उस लम्बी सजा कारण जैसे गर्व का मैं उस समय अनुभव कर रहा था वैसे गर्व का उसके पृ जीवन में मैंने कभी अनुभव न किया था।

अब तक हमारा मुकदमा चला जेल के बाहर जबलपुर नगर तथा जबलपु जिले की दूर-दूर से आयी हुई जनता हजारों की तादाद में इकट्ठी होती र और सजा के बाद लोगों ने हमारी गिरफ्तारी के दिन के ही सदृश फिर जबलपुर में पूरी हड़ताल की।

मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि इस मुकदमे और इस मुकदमे के बाद मेरे राजनैतिक मुकदमों की जाप्ते की कार्रवाई उस समय ले लेने पर भी व फाइल गुम हो गयी। अदालत में भी अब इन मुकदमों से सम्बन्ध रखनेवा कोई कागज नहीं है। कुछ वर्षों के बाद फौजदारी के मुकदमों के कागज ज दिये जाते हैं अतः ये भी हुताशन में स्वाहा हो गये। केवल जबलपुर जे में हम लोगों की सजाएँ भर लिखी हैं। अन्यथा मैं इस पुस्तक के परिशिष्ट इन मुकदमों की कुछ कार्रवाइयाँ अवश्य उद्धृत करता।

कैदियों की हैसियत से जबलपुर जेल में

अब हम लोग हवालाती न होकर कैदी हो गये। साधारण कैदियों और राजनैतिक कैदियों में नियमानुसार कोई अन्तर न था। हाँ, श्री यतीन्द्रनाथ-दास के बलिदान के पश्चात् कैदियों के तीन वर्ग अवश्य हो गये थे—ए, बी और सी। इस वर्गीकरण के पूर्व राजनैतिक कैदियों के साथ भी जो दुर्व्यवहार होता था उसकी अनेक कथाएँ इस देश में प्रसिद्ध हैं। जीवधारियों के लिए जो सबसे प्रिय प्राण हैं उन तक को उत्सर्ग कर श्री यतीन्द्र ने इस देश के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा था। जहर खा कर, गोली मार कर, पानी में डूब कर या अन्य इसी प्रकार की कोई कृति कर प्राण देना उतना कठिन और भीषण नहीं होता जितना भूखहड़ताल कर प्राण देना। यतीन्द्र-नाथ को भूख हड़ताल करने के बाद ६४ दिनों तक बलपूर्वक खिलाया भी गया, पर उसका कोई फल न निकला। धीरे-धीरे जिस प्रकार उनका एक-एक अंग निर्जीव हुआ, पैर, हाथ, आँखें, जीभ, उस वेदना का स्मरण मात्र कँपा देता है। उस वीर की इस आत्महत्या नहीं आत्म-बलिदान के सामने श्रद्धा और भक्ति से सिर झुक जाता है। हर जीवधारी को सबसे प्रिय अपने प्राण हैं, मानव की ज्ञान-शक्ति के कारण उसे तो अपने प्राण अन्य जीवधारियों से भी अधिक प्रिय हैं। ऐसे प्रिय प्राणों को यतीन्द्र ने कुछ सिद्धान्तों पर, कैदियों को भी मानव मान उनसे मानवोचित व्यवहार किया जाय इसके लिए बलिदान कर दिया था। और आज हम जो ए और बी वर्ग में रखे जाने के कारण जेल में भी सुखपूर्वक रह रहे थे वह हमारे किसी पुण्य के कारण नहीं, पर यतीन्द्रनाथ के शहीद होने के कारण। मन ही मन यतीन्द्र को नमस्कार कर मैंने अपना जेल जीवन आरम्भ किया।

लोग कहते हैं ए और बी वर्ग के कैदियों को क्या कष्ट, कष्ट होता है सी वर्ग के कैदियों को। कुछ दूर तक यह बात सत्य है, पर पूर्ण सत्य नहीं और यह इसलिए कि सी वर्ग के कैदियों के जेल के बाहर का जीवन तथा ए और बी

वर्ग के कैदियों के जेल के बाहर के जीवन में भी बहुत अन्तर होता है। यदि हम ए और बी वर्ग के जेल के बाहर और जेल के भीतर के जीवन का तथा सी वर्ग के जेल के बाहर और जेल के भीतर के जीवन का मिलान करेंगे तो हमें ठीक वस्तुस्थिति का पता लग जायगा।

हमारा कैदियों का जीवन आरम्भ होते ही जो इतने दिनों तक जेल में हजूम रहा था वह एकाएक खत्म हो गया। दूसरी बात जो हुई वह केवल कुछ अखबारों का ही मिलना, सबका नहीं और इनमें सरकार द्वारा स्वीकृत अखबार तथा हर कैदी को केवल एक। मैंने "टाइम्स ऑफ इण्डिया" लिया। जेल के बाहर और जेल के अन्दर के जीवन को जेल की जो ऊँची-ऊँची दीवालें विभक्त करती हैं उनका सच्चा रूप आज हमें जान पड़ा। कैसा सुनसान हो गया सारा वायुमण्डल, बाहर जो-जो हो रहा था वह सब अब तक हमें ब्यौरेवार मालूम होता रहता था, पर अब हमारी दुनिया बाहर की दुनिया से सर्वथा अलग हो गयी। बाहर क्या हो रहा है, यह जानने के लिए हर क्षण हमें कैसी छटपटाहट रहती थी। सबसे अधिक इस बात की चिन्ता रहती कि बाहर का आन्दोलन ठंडा न पड़ जाय। मैं समझता हूँ कि बाहर की चिन्ता जेल का सबसे बड़ा कष्ट है और राजनैतिक कैदियों को बाहर उनका राजनैतिक काम ठीक चलता रहे, यह चिन्ता सबसे अधिक कष्टदायिनी। गान्धीजी ने जो अनेक बार यह कहा है कि जेल जाते ही राजनैतिक कैदी को बाहर की सारी चिन्ता छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसकी जिम्मेदारी उसकी गिरफ्तारी के साथ ही समाप्त हो जाती है, यह सर्वथा सही बात है। पर सही होते हुए भी मन माने तब तो। यद्यपि हमारा खाना अभी भी मेरे घर से ही आता था, खस की टट्टियाँ, पंखे, पलँग, बिस्तर आदि जिन चीजों का प्रबन्ध हुआ था वे चीजें सबकी सब वैसी ही मौजूद थीं, सख्त सजा होने पर भी हम से कोई काम नहीं लिया जा रहा था और हमें कोई शारीरिक कष्ट न था, परन्तु मानसिक दृष्टि से हम अत्यधिक बेचैन थे। परतन्त्रता का एक नया जीवन, जिसका अभी तक कभी भी अनुभव न हुआ था, छोटी से छोटी बात के लिए भी जेल के अफसरों पर निर्भरता, उनका मुँह ताकते रहना, और इस सबके ऊपर बाहरी संवादों की अनभिज्ञता तथा बाहर का आन्दोलन ठीक तरह चलता

रहे इसकी महान चिन्ता हमें नितान्त बेचैन बनाये रहती थी।

इसके सिवा एक कारण हमारी उद्विग्नता का और था। हम जानते थे कि हम सब एक साथ जबलपुर जेल में न रखे जायँगे। हम कब और कहाँ भेजे जायँगे ? कौन-कौन साथ रहेंगे ? इसके कारण हम और उद्विग्न थे। यद्यपि मिश्रजी और मै ही साथ रहे थे, हम पाँचों कभी नहीं, पर इस समय हम पाँचों किसी तरह साथ रहें इसकी हमें बड़ी इच्छा थी। मिश्रजी और मैं साथ रह सकें, इसके लिए तो सरकार से माफी माँगने के सिवा हम दोनों सब कुछ करने को तैयार थे।

मुझे और कुछ चिन्ताओं ने भी घेर रखा था। माता और पिता यहाँ मुझे जितने याद आते थे उतने इसके पहले कभी याद न आये थे। पत्नी का मुख तो मेरे सामने घूमता ही रहता था। और इन सबके सिवा जब मैं घर की आर्थिक दशा याद करता तब तो मेरी उद्विग्नता का पारावार न रहता था। यदि दो वर्ष बाद मैं छूटा तो राजा गोकुलदास महल में रहूँगा या किसी झोंपड़े में, इसका भी ठिकाना न जान पड़ता था। ऐसे जेल-जीवन में दो वर्ष बिताना था, दो वर्ष ! कितना··· कितना लंबा समय था ! पर ऐसी मानसिक दशा में भी किसी प्रकार की कमजोरी दिखाने की बात तक मेरे मन में कभी भी क्षण मात्र को भी न उठी।

जेल में जिस दिन मैंने प्रवेश किया था और जिस दिन मुझसे नहाते भी न बना था उस दिन मैने निश्चय किया था कि मैं अपने सब काम अपने हाथ से करूँगा। मैं इसे तत्काल शुरू करना चाहता था, पर मैंने सोचा तबादले आदि का निश्चय होने के बाद इसे करना उपयुक्त होगा।

माखनलालजी को छोड़ हम लोगों में से किसी ने भी कभी जेल न देखा था, इसलिए एक दिन हमने कर्नल खान सुपरिण्टैण्डैण्ट से जेल और वहाँ का जीवन दिखाने के लिए कहा। खान को इसमें कोई आपत्ति न हुई और हम लोगों ने जेल खूब घूमा। राजनीति के जिस क्षेत्र में मैं आया था उसके कारण कभी न कभी जेल जाना होगा यह मैं जानता था अतः मैंने भारतीय जेलों तथा अन्य देशों के जेलों पर कुछ साहित्य पढ़ा था। भारतीय जेल का नमूना भी मैंने देख लिया और यहाँ के तथा बाहर के जेलों का मिलान कर मैं

सारी समस्या पर विचार करने लगा।

सजा होने के बाद जबलपुर जेल में हम लोग केवल आठ दिन रह सके। जो हमने सोचा था वही हुआ। हम पाँचों अलग-अलग कर दिये गये। माखनलालजी को जबलपुर जेल में रखा गया। विष्णुदयालजी भार्गव को खंडवा, रविशंकरजी शुक्ल को सिवनी, द्वारकाप्रसादजी मिश्र को अमरावती और मुझे बुलढाना भेजा गया। माखनलालजी और विष्णुदयालजी भार्गव तो बी श्रेणी में थे ही, मिश्रजी को भी ए के स्थान पर बी श्रेणी में कर दिया गया। ए श्रेणी में शुक्लजी और मैं दो ही रहे।

कैसी ठेस लगी मिश्रजी को और मुझे इस वियोग से !

बुलढाना जेल में एकान्तवास

जेल में मैंने दो बातों का जितना महत्त्व देखा उतना किसी अन्य बात का नहीं—एक हर बात को गुप्त रखने का प्रयत्न और दो—झूठ का प्रचार। जिन बातों के गोपनीय रखने की किसी दृष्टि से भी आवश्यकता नहीं वे बातें भी वहाँ छिपाकर रखी जाती हैं, इसी प्रकार झूठ का इतना प्रचार है कि यदि कोई जेल का अधिकारी पूर्व दिशा से आये और आप उससे पूछें कि वह कहाँ से आया है तो वह बिना सैकिण्ड भर भी विचार किये तत्काल उत्तर देगा पश्चिम से। कोई बात सच कहने से कोई हानि न होने पर भी जेल के अधिकारियों को झूठ बोलने की इतनी आदत हो जाती है कि उनके मुख से सच बात कभी निकल ही नहीं सकती। यदि कभी गलती से भूले-भटके उनके मुँह से किसी सत्य बात का बरबस उच्चारण भी हो जाय तो वे इस प्रकार बगलें झाँकने लगते हैं कि उनसे कोई घोर अनर्थ तो नहीं हो गया है।

हम लोगों का तबादला कब होनेवाला था इसे इतना गुप्त रखा गया कि हर व्यक्ति को उसकी ट्रेन की रवानगी के कोई घण्टे भर पहले सूचना मिली कि उसे जाना है। फिर कहाँ जाना है इस सम्बन्ध में हर व्यक्ति को ऐसे स्थान का नाम बताया गया जहाँ वह नहीं भेजा जा रहा था। अतः हममें से कौन कहाँ गया इसका पता ही हमें कुछ दिन बाद लगा इतना ही नहीं, हम स्वयं ही कहाँ जा रहे हैं इसका पता तक हमें ट्रेन के उस स्थान के समीप पहुँचने पर ही लग सका।

जबलपुर में किसी को भी हम लोगों के तबादले का पता न लगा। मुझे भुसावल के बाद मालूम हुआ कि मैं बुलढाना जेल भेजा जा रहा हूँ।

बुलढाना बरार में एक पहाड़ी जगह है। यद्यपि बरार के चार जिलों में बुलढाना एक जिले की राजधानी है, परन्तु बुलढाना की मनुष्य संख्या केवल तीन-चार हजार है। बुलढाना जिले में ही बुलढाने से बड़े कई स्थान हैं, जैसे खाम गाँव। बुलढाना आबहवा की दृष्टि से अच्छी जगह है, तापमान ६५

डिग्री से ऊपर नहीं जाता। गरम हवा नहीं चलती और पानी भी बुरा नहीं है। बुलढाना का रेलवे स्टेशन मलकापुर है और वहाँ से मोटर द्वारा पहाड़ चढ़कर बुलढाना पहुँचना होता है। मेरा तबादला जबलपुर से सुदूर स्थान बुलढाना करने के दो उद्देश्य थे एक तो यह कि मैं जबलपुर से अधिक से अधिक दूर रहूँ और दूसरे यह कि अच्छी जलवायु में रहूँ।

जबलपुर में यद्यपि मेरा वहाँ से ले जाना गुप्त रखने में सरकार सफल हो गयी थी, पर मैं बुलढाना ले जाया जा रहा हूँ, यह बात मलकापुर में गुप्त न रह सकी। मलकापुर में हमारा बहुत बड़ा जीन-प्रेस और तेल का कारखाना था। जब हमारी ट्रेन मलकापुर पहुँची तब मलकापुर स्टेशन के प्लेट फार्म पर और स्टेशन के बाहर भी बहुत दूर-दूर तक हजारों आदमियों की भीड़ हो गयी थी। "महात्मा गान्धी की जय" "बन्दे मातरम्" "इन्क्लाब जिन्दाबाद" आदि राष्ट्रीय नारों से वहाँ की जनता ने मेरा स्वागत किया। जब पुष्प-हार पहनाने के लिए वहाँ के लोगों को पुलिस ने मेरे निकट न आने दिया तब लोगों ने हारों को तोड़-तोड़ कर खूब फूलों की वर्षा की। कठिनाई मे वहाँ लाठी चार्ज बच सका और किसी प्रकार पुलिस के द्वारा घिरा हुआ मैं मोटर के पास पहुँचा। जल्दी से मुझे मोटर में बिठाया गया और मेरे बैठते ही तेज से तेज चाल से मोटर रवाना हुई। कई लोग दबते-दबते बचे और एक मोड़ पर मोटर उलटते-उलटते बची।

संध्या को मैंने बुलढाना जेल में प्रवेश किया। छोटा-सा जेल, साफ-सुथरा चक्कर, उसमें छोटी सी बरक। बुलढाना जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट बुलढाना के सिविल सर्जन थे मि० राय एक बंगाली। छोटे जेलों में पूरे समय का सुपरिण्टे-ण्डेण्ट न रहता था, जिले के सिविल सर्जन को ही कुछ एलाउन्स दे उनसे यह काम भी लिया जाता था। जेल के जेलर थे मि० हजारी। दोनों बड़े ही अच्छे आदमी थे। बुलढाना जेल में मेरे आने की पहले से खबर थी अतः मेरे वहाँ रहने की सारी व्यवस्था कर दी गयी थी।

बुलढाना जेल में मैं अकेला राजनैतिक कैदी था, कोई साथी नहीं। कुछ कैदी खाना बनाने और वहाँ का काम करने आते और चले जाते। सुपरिण्टेण्डेण्ट का एक चक्कर होता, डाक्टर का एक और जेलर के तीन-चार। अतः मेरे

लिए यह एक प्रकार का एकाकी कारावास (सालीटरी कन्फाइन्मेंट) ही था। एक सर्वथा नया और अद्भुत अनुभव ! यह बुरा था या अच्छा इस सम्बन्ध में कुछ विवेचन आवश्यक है। पहले-पहल बहुत बुरा लगा, रात को भयावह भी, पर इतने पर भी आगे चलकर जो कुछ हुआ उसके कारण मैं इस एकान्तवास को हर दृष्टि से अच्छा ही कहूँगा।

कभी मैंने पढ़ा था---"यह किसी छैल का कहना अकेले रहना सबसे भला है"। बुलढाना जेल के उस एकान्तवास का आरम्भ होते ही जब मुझे वह जीवन बहुत बुरा तथा कभी-कभी भयावह लगता तब मुझे कभी पढ़ी हुई उपर्युक्त पंक्ति एकाएक याद आ जाती।

सबसे पहले तो एकान्तवास में मैंने अपने जेल-प्रवेश के प्रथम दिन के निश्चय को, कि मैं अपना सारा कार्य अपने हाथ से करूँगा, कार्यरूप में परिणत करना आरम्भ किया। नहाने तो अब मैं लगा था। नहाने के बाद मैंने अपने कपड़े धोना शुरू किया। इसमें कठिनाई कम नहीं हुई। पहले तो कपड़ों में साबुन ही ठीक तरह न लगता। फिर उन्हें धोकर निचोड़ना बहुत कठिन होता। निचोड़ते-निचोड़ते बाहुएँ भर सी जातीं, दर्द भी करने लगतीं। धीरे-धीरे साबुन लगाने और निचोड़ने की कला आयी। साबुन बालटी के पानी में घोलकर कपड़े उसमें डाल देता, फिर उन्हें फींचता। निचोड़ने में बड़े कपड़ों को इकट्ठा न निचोड़ कर उनके थोड़े-थोड़े भागों को निचोड़ता। यह मुझे जेलर ने सिखाने की कृपा की। कपड़े धोने के अतिरिक्त वर्तन माँजना आरम्भ किया। इस काम में कपड़े धोने से भी अधिक कष्ट होता। मेरे हाथ निसर्ग ने ही कुछ ऐसे बनाये हैं कि मेरी पहली प्रेयसी और मेरी पत्नी दोनों ही मेरे हाथों की प्रायः हँसी उड़ाया करती थीं। मेरे हाथों का दोष कुछ उनका आवश्यकता से अधिक मुलायम होना है। बर्तन माँजने के बाद मेरी हथेलियाँ और उँगलियाँ घण्टों कल्लाकर जला करतीं और बर्तन भी अच्छी तरह साफ न होते। एक दिन मैंने एक कैदी को पत्तों की सहायता से बर्तन साफ करते देखा। तत्काल मैंने इस कला को सीख लिया। पत्तों की सहायता लेने पर हथेलियों तथा उँगलियों का कल्लाना एवं जलना भी बन्द हो गया और बर्तन भी साफ होने लगे। तीसरा काम मैंने अपनी बैरक में झाड़ू देना शुरू किया। इससे तो मुझे

आरम्भ में खाँसी हो गयी। सारी धूल मेरे मुँह तथा नाक में जाती। झाड़ू किस प्रकार देना यह भी मैंने एक कैदी से सीखा। वह अपना मुँह एवं नाक गमछे से लपेटकर झाड़ू देता, जिससे धूल का उसके मुँह तथा नाक में प्रवेश न होता। मैंने भी एक दुपट्टा अपने नाक-मुँह से बाँधकर झाड़ू देना आरम्भ किया। सबसे अधिक कष्ट मुझे पैखाना साफ करने में हुआ। यह कृति करते हुए मुझे इतनी ग्लानि आती कि कई बार उबाकी आने लगती और कै होते-होते बचती। जेल अफसरों ने मुझे इन सब कामों को करने से बहुत रोका, पर मैंने उनकी एक न मानी। पैखाना तो उन्होंने मुझे तब साफ करने दिया जब मैंने उन्हें लिख कर दे दिया कि यह काम मैं जेल अफसरों की इच्छा के विरुद्ध स्वयं अपनी इच्छा से कर रहा हूँ। जब इन सब कामों को करना मैं सीख गया तब कुछ दिन बाद मैंने भोजन बनाना भी सीखा। फुलके, पूरी आदि के बेलने के सिवा खिचड़ी, दाल-भात, शाक-भाजी आदि सब चीजें मैं बहुत जल्दी बनाने लगा और जेल के रसोइयों से अच्छी। कितना हर्ष हुआ मुझे इस आतम-निर्भरता पर। यदि मैं अकेला न रह कुछ साथियों के साथ रहता तो इन सब कामों में मैं इतने शीघ्र दक्ष न हो पाता।

अपने काम स्वयं करने के सिवा मैंने पढ़ना-लिखना भी आरम्भ किया। जेल जाने की सम्भावना के कारण मैंने अपने पढ़ने के लिए एक पुस्तकालय सा इकट्ठा कर लिया था। पुस्तकों की संख्या तीन अंकों तक न रहकर चार अंकों तक पहुँच गयी थी। फिर अनेक दार्शनिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक विद्वानों की राय से इन पुस्तकों को इकट्ठा किया गया था अतः ये छटी हुई पुस्तकें ही थीं। इन पुस्तकों को मैं जबलपुर से अपने साथ बुलढाना भी ले गया था। पुस्तकें अधिकतर धर्म, दर्शन और साहित्य तया साहित्य में अधिकतर उपन्यास और नाटक विषय से सम्बन्ध रखती थीं।

धर्म और दर्शन से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों में पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों प्रकार की पुस्तकें थीं। वेद पंचदशी, दसों उपनिषद, धम्मपद और जैन धर्म सूत्र कुछ ग्रन्थ थे। ये थे तो पूर्वीय, पर अधिकतर अंग्रेजी भाषा में। श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी राम-तीर्थ के भी कुछ ग्रन्थ थे और ये तो सभी अंग्रेजी में थे। बाइबिल और कुरान

भी अंग्रेजी में ही थे। कुछ पश्चिमी दूसरे प्रकार का दार्शनिक साहित्य था जैसे "ट्रायल एण्ड डैथ ऑफ साक्रेटीज," अफलातूं, अरस्तू, कान्ट, हीगल, निचे, मैक्यिावैली, डारविन, मार्क्स, एंजिल्स, फ्रायड और लेनिन की कुछ पुस्तकें। भारतीय साहित्य में रवीन्द्र बाबू के सब हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित ग्रन्थ, बंकिम बाबू और शरत बाबू के उपन्यासों के अनुवाद और माइकेल मधुसूदन दत्त के काव्यों के हिन्दी अनुवाद। पश्चिमी साहित्य में प्राचीन पश्चिमी साहित्य होमर का "ईलियड" "आडेसी", दान्ते की "डिवाइन कामेडी" के गद्य अनुवाद, एसचिलीज, सोफेक्लीज, यूरपडीज के नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद, डिकिन्स, थैकरे, जेन आस्टिन और चार्लोटी ब्रान्टी, एच. जी. वेल्स, सिंक्लेअर लूइस, आप्टिन सिंक्लेअर और पर्लबक के अंग्रेजी में मूल उपन्यास थे। फ्रांस के बैल-जेक, विक्टर ह्यूगो, अनातोले फ्रान्स, रोमारोलाँ, मोपासाँ और जोला, जर्मनी के टामस मैन, रूस के टालसटाय, तुर्गनेव और डास्टो वैस्की के उपन्यासों के अनुवाद थे। आधुनिक नाटकों में बर्नार्ड शा, गाल्स वर्दी, बैरी, समरसेट माघम, नील और सिंजे के अंग्रेजी में मूल नाटक थे। नारवे के इबसन और जार्नसन, स्वीडिन के स्ट्रिन्डबर्ग, जर्मनी के हाप्टमैन, बैल्जियम के मैटरालिंक, रूस के चैकब, फ्रान्स के ब्रूइक्स, इटली के पिरेन्डिलो के नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद थे।

हर जेल यात्रा के पहले मेरे साथ का यह साहित्य बढ़ता जाता था। पाँच बार की जेल यात्रा में आठ वर्ष जेलों में रहने पर भी इस पूरे साहित्य के अध्ययन में थोड़ी बहुत कसर ही रह गयी, पर इन आठ वर्षों में यह अध्ययन काफी और वैज्ञानिक ढंग से हुआ। आठ वर्ष जेल में न बीतते तो बाहर तो पचास वर्षों में भी इतना अध्ययन सम्भव न था। जो पुस्तकें मैं पढ़ने को ले गया था उनमें अनेक पुरानी से पुरानी पुस्तकें थीं। हैजलेट ने एक जगह ठीक लिखा है—"यदि मैंने किसी पुस्तक को नहीं पढ़ा है तो मेरे लिए वह समान महत्त्व की है चाहे वह आज छपी हो या तीन सौ वर्ष पूर्व।"

मैं चार घण्टे रोज पढ़ता, दो घण्टे धर्म एवं दर्शन तथा दो घण्टे साहित्य; और लिखता चार घण्टे नाटक। यदि मैं अकेला न रखा जाता और साथियों के साथ रहता तो सारा समय ठाठा ठीठी ठ्ठ में बीत जाता। टाइम टेबिल के अनुसार चलने की तो मुझे आदत थी ही। बुलढाना जेल में जो फिर से

व्यवस्थित ढंग से पढ़ना-लिखना शुरू हुआ वह फिर मित्रों के साथ रहने पर भी मेरी पाँचों जेल-यात्राओं में चलता रहा। यदि यह न होता तो जो १०४ नाटक, १ उपन्यास तथा अन्य साहित्य मैं संसार की भेंट कर सका वह कदाचित् कभी न कर पाता, क्योंकि इसमें से अधिकांश साहित्य आरम्भ में मैंने जेल में ही रचा था।

बुलढाना जेल में और फिर इस जेल के एकान्तवास में मुझे इस पढ़ने-लिखने ने एक अपूर्व आनन्द दिया। यहाँ के अध्ययन से मुझे पश्चिम के एक प्रसिद्ध विद्वान् बर्नार्ड पेरैस के निम्नलिखित कथन का रहस्य भी समझ में आया—"बिना समझे-बूझे केवल ज्ञान यथेष्ट नहीं और यह समझ-बूझ कठिनाई से हो पाती है।"

मेरा यथार्थ लेखन तो, जैसा ऊपर भी कहा गया है, इसी जेल जीवन से आरम्भ ही हुआ।

रूस के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक गोर्की ने एक स्थान पर कहा है— "अपने भावी सुख और शक्ति के मार्ग में मानव जाति ने जिन आश्चर्य-जनक वस्तुओं का निर्माण किया है उनमें कदाचित पुस्तक सबसे संश्लिष्ट और महान है।" यद्यपि पुस्तक की इस महानता को मैं सदा मानता रहा था, पर जेल में मैंने इसका जितना अनुभव किया उतना अनुभव इसके पहले कभी न किया था। इसका कारण लोकमान्य तिलक के शब्दों में सुनिए। वे एक जगह लिखते हैं—"मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि ये जहाँ होंगी वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।" इन पुस्तकों ने जेल सदृश नरक को भी मेरे लिए स्वर्ग बना दिया। फिर गेटे के शब्दों में मैंने एक और अनुभव किया—"तुम्हारे हाथ में यदि पुस्तक है तो उसके निकट अन्य कोई वस्तु फूल-फल नहीं सकती।"

लोग व्यसन को बुरी चीज मानते हैं। जिन्हें पढ़ने-लिखने का शौक होता है उनके लिए भी पढ़ना-लिखना एक व्यसन कहा जाता है। अतः हर प्रकार का व्यसन बुरा है यह कहना शायद उचित नहीं है। फिर गीता में जिस मनोदशा को स्थितिप्रज्ञ और गुणातीत की मनोदशा कहा गया है उस मनोदशा का प्रधान लक्षण सुख और दुःख में समान रहना है अर्थात् स्थिति-

प्रज्ञ और गुणातीत को न किसी बात से सुख होता है और न दुःख। यह मनोदशा अनुभव की वस्तु है, वर्णन की नहीं और ऐसी मनोदशा किसी विरल व्यक्ति की ही होती होगी। परन्तु जिन्हें भी सुख-दुःख का भान होता है उनमें मेरे मतानुसार पढ़ने-लिखने में, विशेषकर लिखने में, जो सुख मिलता है वह सुख कदाचित् सर्वोपरि सुख है। सुख अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें कुछ निम्न श्रेणी के और क्षणिक हैं। जैसे मदिरा पीनेवाले, पर-स्त्री अथवा वेश्या-गमन करनेवाले, बदहजमी होने पर भी जीभ को जो वश में नहीं रख सकते, ऐसे लोगों को सुख नहीं मिलता यह नहीं कहा जा सकता। पर इन सुखों के परिणाम क्या होते हैं ? दूर के परिणामों को यदि छोड़ भी दिया जाय तो तत्काल निकलनेवाले परिणाम भी कितने दुखद हैं। पर पढ़ने-लिखने में जो सुख मिलता है वह एक तो क्षणिक नहीं, दूसरे उसके परिणाम कभी दुखद हो ही नहीं सकते। जिन्हें यह सुख प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि कैसा स्थायी, कैसा सन्तोषप्रद और कैसा किसी प्रकार के भी दुःखद परिणाम से रहित है यह सुख। फिर इस सुख के सिवा कदाचित् और कोई ऐसा सुख नहीं जो मानव के अतिरिक्त सृष्टि के किसी भी अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं हो सकता, साथ ही यह सुख मानव को भी उसकी हर अवस्था में प्राप्त हो सकता है। इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर अन्य सुख नहीं भोगे जा सकते, पर पढ़ने-लिखने का सुख यदि कोई विक्षिप्त नहीं है तो उसे वृद्ध से वृद्ध होने पर भी मिलता रहता है। कहीं भी पढ़ी हुई कोई भी विशेष वस्तु किस तरह याद हो जाती है और उसकी स्मृति कैसे आनन्द को जागृत करती रहती है। जब कोई विशेष रचना हो जाती है तब तो जो सुख मिलता है वह कदाचित् वर्णनातीत है। जब इस पठन और लेखन में सच्चे रस की उत्पत्ति होती है तब तो पूछना ही क्या। इस रसास्वादन के सुख को हमारे यहाँ तो भरत मुनि ने ब्रह्मानन्द के समान सुख माना है। पढ़ने-लिखने का व्यसनी होने पर भी मुझे इस सुख का जो अनुभव बुलढाना जेल के एकान्तवास से प्रारम्भ होकर आज तक मिलता रहा है वह मेरे जेल जीवन की महान तथा अपूर्व निधि है। पढ़ने-लिखने के महत्त्व के सम्बन्ध में पूर्वीय तथा पश्चिमी विद्वानों में अनेक ने न जाने कितना लिखा है, परन्तु इनमें से जिन कथनों का मुझ पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, उनमें से कुछ

निम्नलिखित हैं —

"मन के लिए पढ़ना उतना ही आवश्यक है जितना व्यायाम शरीर के लिए। जिस प्रकार व्यायाम से शरीर की रक्षा होती है और शक्ति बढ़ती है उसी प्रकार पढ़ने से मन की।"—एडीसन

"किसी भी पीढ़ी के वे ही व्यक्ति बुद्धिमान हैं जिन्हें यह पता लग गया है कि बौद्धिक आनन्द ही सबसे अधिक सन्तोषप्रद तथा सबसे ज्यादा स्थायी आनन्द है।"—समरसैट माघम

पढ़ने-लिखने का यह सुख कलाजन्य सुख है। इस प्रकार के सुख के लिए एक भ्रम फैला हुआ है कि इस सुख को प्राप्त करनेवाले को किसी प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता नहीं, वह तो हर प्रकार के बन्धन से मुक्त स्वच्छन्दता में ही प्राप्त हो सकता है। हैवलाक एलिस ने इस विषय में लिखा है— "कलाकार के जीवन के लिए अनुशासन ही प्रधान बात है और कोई अनुशासन बिना कष्ट के सम्भव नहीं।"

मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि एलिस का कथन सर्वथा सत्य है। यह सुख भी अनुशासन के कष्ट बिना प्राप्त नहीं हो सकता। और इस विषय में एक भ्रम का और विवेचन दूँ। कुछ लोगों का मत है कि इस क्षेत्र में नैतिकता की ओर भी ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं है। चैस्टरटन ने एक जगह लिखा है जो सर्वथा सत्य है—"कोई भी महान कलाकृति केवल कला से उत्पन्न नहीं हुई जिस प्रकार कोई भी विवेकपूर्ण वस्तु केवल विवेक से नहीं। किसी भी सांस्कृतिक उत्पत्ति के लिए समृद्धिशाली नैतिक भूमि आवश्यक है।"

मैं ललित साहित्य के क्षेत्र का व्यक्ति हूँ, कोई शास्त्री अथवा विज्ञानी नहीं, अतः मेरा पठन इसी क्षेत्र के साहित्य का हुआ। इमरसन ने एक स्थान पर पुस्तकों के सम्बन्ध में लिखा है —"पुस्तकें केवल प्रेरणा दे सकती हैं।" ललित साहित्य के सम्बन्ध में तो इमरसन का कथन सर्वथा सत्य है। लेखन भी मेरा इसी क्षेत्र में हुआ।

कई बार लोग एक बात और पूछा करते हैं कि अमुक-अमुक पात्र सच्चा है या काल्पनिक और कई बार ऐसे लोग सच्चे पात्रों की खोज किया करते

हैं। फ्रान्स के महान साहित्यकार अनातोले फ्रांस ने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह पठनीय है। वे लिखते हैं—"वे सच्चे नहीं पर काल्पनिक चरित्र ही हैं जो हमारे मनों को प्रभावित करते हैं। संसार में हर समय और हर देश में ऐसे ही चरित्रों ने राष्ट्रों के मन प्रेम और घृणा, भय और आशा से प्रेरित किये हैं।"

एक बात पढ़ने के सम्बन्ध में यहाँ और कह दूँ। साहित्य बहुत अधिक और बहुत प्रकार का प्रकाशित हो चुका है। बेकन ने एक जगह लिखा है—"कुछ पुस्तकें केवल स्वाद लेने योग्य हैं, कुछ निगलने, और चबाकर हजम करने योग्य तो बहुत कम।" यदि बहुत ध्यान देकर और छाँट कर न पढ़ा जाय तो बहुत सा समय निरर्थक जाने का भय रहता है। शोपेनहार ने एक जगह कहा है—"यदि कोई अच्छी पुस्तकें पढ़ना चाहता है तो बुरी पुस्तकों से उसे बचना चाहिए, क्योंकि जीवन बहुत छोटा है और समय सीमित।" फिर इस छटे हुए साहित्य के भी बहुत से पृष्ठों को केवल उलट डालने का अभ्यास होना चाहिए। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध नाटककार एवं उपन्यासकार श्री समरसेट माघम एक स्थान पर लिखते हैं—"पृष्ठों को उलटते हुए पढ़ना ही लाभ और आनन्द देनेवाली पढ़ने की कला है।"

इसके सिवा जिसकी कोई कृति पढ़ी जाय उस व्यक्ति के जीवन से, उसके चरित्र से पाठक का कोई सम्बन्ध नहीं; पढ़नेवाले का सम्बन्ध है जो कुछ वह पढ़ता है उस वस्तु से।

फिर ललित साहित्य कला का सर्वोत्कृष्ट अंग है जिसके सम्बन्ध में एल्डस हक्सले ने लिखा है—"वह तुम्हें उन भावनाओं को देता है जो नितान्त शुद्ध हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से भी एकदम शुद्ध।"

और ऐसे साहित्य की रचना के सम्बन्ध में लेनिन के निम्नलिखित कथन से मैं सम्पूर्ण रीति से सहमत हूँ—"व्यक्तिगत प्रेरणा की विशाल व्यापकता, वैयक्तिक झुकाव, विचारों तथा कल्पनाओं की समृद्धि और रूप एवं विषय की व्यवस्था ललित साहित्य के लेखन-क्षेत्र में आवश्यक है।"

इस प्रकार के साहित्य का प्रादुर्भाव होता है यथार्थ में अनुभूतियों से, चाहे वे अनुभूतियाँ किसी भी मार्ग से क्यों न प्राप्त हों। चीनी विद्वान ल्यूसन

लिखते हैं "ललित साहित्य का निर्माण किसी सिद्धान्त से न होकर अनुभव से होता है।"

इस बार जेल में जो पठन-पाठन आरम्भ हुआ उसमें एक बात और हुई। जो पुस्तकें मैं पढ़ता उसके विशेष स्थलों पर पेंसिल से निशान लगाता जाता। कुछ दिन बाद इन निशान लगे स्थानों को फिर देखता और इन स्थलों में जो महत्त्वपूर्ण जान पड़ते उनमें दोहरे निशान कर देता। फिर कुछ दिन बाद उन्हें पुनः देखता और तीसरी आवृत्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण अंशों को अलग नोट बुक में लिख डालता। धीरे-धीरे यह सामग्री खूब बढ़ गयी। मैंने अपनी कृतियों में जो उद्धरण लिये हैं उनमें से अधिकांश इसी सामग्री से।

दो बातें बुलढाना जेल में और हुईं। बुलढाना जेल के एकान्तवास में एक तो मैंने ध्यान करना आरम्भ किया। जो कुछ धर्म और दर्शन में मैंने पढ़ा था उसके अनुसार धीरे-धीरे एक व्यवस्थित ध्यान बनाया। यह ध्यान परिशिष्ट २ में दिया गया है।

मैंने जब इस ध्यान को आरम्भ किया तब इसे करते हुए भी मन कई बार इधर-उधर विचलित हो जाता था, पर शनैः शनैः कुछ ऐसा हो गया है कि मैं यह ध्यान करते हुए अपने को कुछ देर तक विस्मृत कर सकता हूँ और यह पूरा ध्यान एक सिनेमा के फिल्म के सदृश मेरी मुँदी हुई आँखों के सामने से गुजर-सा जाता है। अभी भी मैं प्रायः नित्य ही यह ध्यान किया करता हूँ। पर जिस स्थिति पर मैं हूँ वर्षों से वहीं का वहीं हूँ। उसके आगे नहीं बढ़ पाया। अनेक सन्तों तथा साधु-महात्माओं से भी मैंने इस विषय में बातें कीं, पर अब तक कोई मुझे इससे आगे बढ़ने का रास्ता न बता सके। मैं यदि अकेला न रहता तो चित्त स्थिर करने के इस पथ पर भी न चल पाता।

दूसरे मैं बाल्यावस्था से ही नित्य श्रीमद्भगवद्गीता के एक अध्याय का पाठ करता था। गीता का मैंने अपने मतानुसार एक संक्षिप्त रूप बनाया। इस रूप में मैंने जो श्लोक रखे वे गीता में जिस सिलसिले से हैं उस सिलसिले से नहीं। उन्हें अपनी इच्छानुसार आगे-पीछे भी किया। साथ ही कोई-कोई श्लोक अधूरे भी रखे। और अपने गीता के इस संक्षिप्त रूप को मैंने कण्ठस्थ कर लिया। तभी से जब भी मुझे अवकाश मिलता है तब कभी चलते-चलते,

कभी बैठे-बैठे, कभी लेटे-लेटे मैं इसका पारायण कर लेता हूँ। यह बुलढाना जेल से शुरू हुआ था और अब भी चलता जाता है। कभी-कभी तो दिन में १०-१०, २०-२० बार यह पाठ हो जाता है।

तो जो एकान्तवास मुझे आरम्भ में अत्यधिक कष्टकारक और कई बार भयावह तक लगा था वह हर दृष्टि से मेरे लिए कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ। एक बात अवश्य होती रात को यह एकान्तवास मुझे अच्छा न लगता। कभी-कभी यदि नींद उचट जाती तो आती नहीं और उस समय बैरकों के कैदी नम्बरदार अपनी-अपनी बैरकों के कैदियों की एक, दो, तीन, चार आदि संख्याओं को जो जोर-जोर से गिनते उनके कारण नींद और कोसों दूर भाग जाती।

मेरी बुलढाना जेल की दिनचर्या इस प्रकार थी—

प्रातःकाल चार बजे उठना। शौचादि से निवृत्त हो पैखाना साफ कर और बैरक साफ कर पाँच बजे तैयार हो जाना। पाँच बजे से छः बजे तक पैदल घूमना। छः बजे से आठ बजे तक स्नान करना, कपड़े धोना, संध्या, पूजा-पाठ और ध्यान करना। आठ बजे से ग्यारह बजे तक लिखना। ग्यारह बजे से साढ़े बारह बजे तक भोजन बनाना और भोजन करना, बर्तन माँजना। साढ़े बारह बजे से डेढ़ बजे तक विश्राम। डेढ़ बजे से दो बजे तक चर्खा चलाना। दो बजे से छः बजे तक पढ़ना। अन्त में मैं अखबार पढ़ता क्योंकि वह शाम को ही आता। यहाँ भी मुझे कोई राष्ट्रीय पत्र न मिलता, "टाइम्स ऑफ इण्डिया" ही मिलता। छः बजे से आठ बजे तक शौचादि से निवृत्त हो, पैखाना साफ कर, स्नान कर, संध्या कर, भोजन बनाना और भोजन करना। आठ बजे से नौ बजे तक लिखना। नौ बजे सो जाना। जैसा पहले भी कहा गया है जल्दी सोना और जल्दी उठना मेरी बाल्यावस्था से ही आदत है। एक अंग्रेजी कहावत भी है—"जो जल्दी बिस्तर पर जाता नहीं वह जल्दी उसे छोड़ भी नहीं सकता।"

इस कार्यक्रम में जब पैखाना और बैरक साफ करना, कपड़े धोना, बर्तन माँजना आदि निकल गये तब पढ़ना-लिखना और बढ़ा। जेल जीवन में कभी-कभी तो लिखने में मन लगने के समय मेरा पढ़ना बन्द हो सोलह-सोलह घण्टे तक केवल लिखना जारी रहा है।

बुलढाना जेल के मेरे सारे संस्मरण सुखद ही हैं। वहाँ की घटनाओं में केवल एक ऐसी घटना हुई जिसका मुझे अब तक दुःख है। यह घटना थी मेरी माताजी, पिताजी और पत्नी से मुलाकात न लेना। भीषण गरमी में ये लोग बुलढाना सदृश सुदूर स्थान को अत्यधिक कष्ट सह और खर्च उठा केवल मुझसे मिलने के लिए आये। मुझे खाने-पीने का कोई कष्ट न हो इसलिए प्रान्तीय सरकार से मेरा एक रसोइया और नौकर मेरे पास रहे इसकी आज्ञा के साथ रसोइया और नौकर को लाये। मुझे मिश्रजी से अलग रखने के विरोध में मैंने उस समय कोई सुविधाएँ न लेकर मुलाकात बन्द कर रखी थीं अतः मैंने इन सबको बिना मिले वापस कर दिया और अपना रसोइया तथा नौकर भी अपने पास न रखा। मेरा जेल जाना, दो वर्ष की सजा, जबलपुर से इतने दूर तबादला ये सारी बातें क्या मेरे कुटुम्बियों के लिए कम कष्टप्रद थीं! उनमें इस घटना को जोड़ देना मेरी अमानुषिक कृति थी।

बुलढाना जेल की ही एक और मनोरंजक घटना को मैं न भूलूँगा। यह थी वहाँ के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर मि० कोमरी की भेंट। मेरे बुलढाना पहुँचने के दूसरे ही दिन कोमरी सा० मुझसे मिलने आये। उनके आने पर मैं खड़ा न हो बैठा ही रहा। कोमरी को यह अच्छा न लगा। मुझसे तो उसने कुछ न कहा, पर डाक्टर राय के मार्फत मुझसे कहलाया कि मैंने कैदी होने पर भी उसका अपमान किया है, वह कल फिर आयगा और जब वह आवे तब मुझे बाकायदा खड़े हो उसका स्वागत करना चाहिए। दूसरे दिन वह फिर पहुँचा। उसे देख खड़े होने की जगह मैं टाँग पसार कर अत्यधिक सुविधा से लेट गया। अब तो वह बहुत नाचा, कूदा, जेल के दफ्तर में जेल के पते से ही मेरी शिकायत प्रान्तीय सरकार को भेजी और उसमें मुझे दण्ड देने की बात भी लिखी। चूँकि कोमरी का पत्र जेल से गया था अतः जेल के पते पर ही उसका उत्तर आगया। मुझे उस उत्तर का पता लग गया। प्रान्तीय सरकार ने साहब बहादुर को लिखा था कि वे आगे से मेरे पास जाने का ही कष्ट न उठावें। फिर जब तक मैं बुलढाना रहा तब तक उस डिप्टी कमिश्नर ने मुझसे मिलने के लिए आने की कृपा न की।

जेल में मुझे एक बात का अनुभव और हुआ। जब तक आप जेल अफसरों

को दबाना नहीं सीखेंगे तब तक वे आपको ही दबायेंगे। जेल के अधिकारी कानून के अनुसार चलें और कानून में कैदियों के जो हक हैं उनके अनुसार ही उन्हें सुविधाएँ प्राप्त रहें, यह हो ही नहीं सकता, कम से कम उस समय जब हम लोग जेल गये थे तब तो भारतीय जेलों की ऐसी ही परिस्थिति थी। इसी लिए वहाँ दबने और दबाने का बड़ा महत्त्व था। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद इसमें कोई परिवर्त्तन हुआ है या नहीं इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

दमोह जेल को तबादला

कोई दो महीने बुलढाना जेल के एकान्तवास के पश्चात् मेरा तबादला दमोह जेल को हुआ। सुना यह कि यह तबादला मेरे पिताजी ने कराया। मुलाकात के लिए जबलपुर से बुलढाना बहुत दूर पड़ता था, इसलिए पिताजी ने इस तबादले का प्रयत्न किया था। अंग्रेज सरकार से उनका बहुत अच्छा सम्बन्ध था अतः इस प्रकार की बातों में उन्हें सदा सफलता मिल जाती थी। इन दो महीनों में जबलपुर के आस-पास का आन्दोलन भी समाप्तप्रायः हो गया था अतः अब जबलपुर के निकट मुझे रखने में सरकार को भी कोई खास आपत्ति न थी।

जब मेरा बुलढाना जेल से तबादला हुआ उस समय मेरा वजन कोई १६ पाउण्ड कम हो गया था। यद्यपि बुलढाने की आबहवा बहुत अच्छी थी और मुझे जेल में कोई कष्ट भी न था, क्योंकि मैं ए वर्ग का कैदी था और सख्त सजा रहते हुए भी मुझसे कोई काम न लिया जाता था, फिर भी न जाने वजन क्यों घटा था। सच बात यह है कि स्वस्थ आदमी होते हुए भी जेल में मेरा स्वास्थ्य कभी भी सन्तोषजनक नहीं रहा। लम्बे-लम्बे समय तक जेल में रहने पर भी, वहाँ कोई कष्ट न रहते हुए भी, सदा ए वर्ग में रखे जाने पर भी, वहाँ का जीवन मुझे कभी माफिक आया ही नहीं। मेरा वजन जेल में सदा ही घटा।

दमोह जेल को जब मेरा तबादला हुआ तब गरमी का मौसम समाप्त हो वर्षा का आरम्भ हो गया था। यद्यपि बुलढाना में कोई खास गरमी नहीं थी फिर भी परिवर्त्तन तो हुआ ही था। निर्मल आकाश में रंग-बिरंगी घटाएँ उठने लगी थीं। कभी-कभी बादल गरजते, बिजली चमकती, वायु का वेग भी बढ़ जाता और वर्षा भी होती। ऋतु परिवर्त्तन आरम्भ में सदा ही आकर्षण की वस्तु रहती है और फिर जेल-जीवन, जिसमें भी एकान्तवास, इस प्रकार के परिवर्त्तनों का सदा अत्यधिक उत्सुकता से स्वागत करता है। मैं अपने रोजमर्रा की दिन-चर्या और पढ़ने-लिखने से जब ऊबता तो इन उठती हुई घटाओं, इनमें बनने-

वाले भिन्न-भिन्न रूपों, कभी-कभी चमकनेवाली बिजली को बड़े चाव से देखने लगता। इन्हें देखते-देखते अनेक बार मेघदूत काव्य का स्मरण आ जाता, उसके मूल के श्लोक और उनसे भी अधिक श्री देवीप्रसादजी 'पूर्ण' द्वारा अनूदित "धारा घर धावन" की हिन्दी पंक्तियाँ याद आ जातीं।

ऐसी वर्षा में मैं बुलढाना से दमोह रवाना हुआ। दो महीने तक ऊँची-ऊँची दीवालों से घिरे हुए स्थान में बन्द रहने तथा एकान्तवास के पश्चात् बाहर निकलना कैसा भला जान पड़ा! बन्धन के पश्चात् मुक्ति चाहे वह कितनी ही क्षणिक क्यों न हो कितनी सुखद होती है! बुलढाने की पहाड़ियाँ हरी कच्छ हो गयी थीं। दूर-दूर तक हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती थी।

बुलढाना में बुलढाना जिले का अंग्रेज पुलिस कप्तान सूर्यास्त के समय मुझे अपनी मोटर पर लेकर चला। आज सन्ध्या फूली थी। बादल लाल और सुनहरी हो गये थे। वर्षा में जब सन्ध्या फूलती है तब दृश्य बड़ा ही लुभावना हो जाता है।

मलकापुर पहुँचने के पहले अँधेरा हो गया और पुलिस कप्तान ने अपने मोटर की बत्ती जलानी चाही, पर यह क्या? बत्ती न जली। उसने मोटर रोकी, बत्ती जलाने का कोई आधे घंटे तक प्रयत्न करता रहा, पर जब सारे प्रयत्न असफल हुए तब वह बिना बत्ती के ही गाड़ी ले चला। पहाड़ी रास्ता, बरसात का मौसम, अँधेरा और बिना बत्ती की मोटर! कोई भी दुर्घटना होना असम्भव न था। मैंने उससे पूछा—"कहिए किस कायदे के अनुसार आप बिना बत्ती के मोटर चलाये जा रहे हैं? यदि आज किसी साधारण नागरिक की मोटर इसी प्रकार चल रही होती, उसके कोई निकट से निकट नातेदार की सख्त बीमारी में भी वह जाता होता और आपको वह मोटर दिख पाती तो क्या आप उसे जाने देते, बिना चलान किये उसे छोड़ देते?" कप्तान साहब के पास मेरी बात का कोई उत्तर न था।

किसी प्रकार हम मलकापुर पहुँचे। वहाँ आज मेरे आने की खबर न लग पायी थी। मलकापुर में कोई विशिष्ट बात न हुई और रात की गाड़ी से मैं रवाना हो गया। दो महीने के बाद फिर मैं रेल में बैठा था। आज रेल की यात्रा भी बड़ी सुखद जान पड़ी। मेरे साथ के सब-इन्सपेक्टर, एक हेड

कान्स्टेबिल और दो कान्स्टेबिल थे।

दमोह मेरे आने की खबर लग गयी थी और जब हमारी गाड़ी दमोह स्टेशन पर पहुँची तब बुलढाने के सदृश वहाँ भी हजारों आदमियों की भीड़ जमा थी। यहाँ के सरकारी कर्मचारियों ने मुझे माला इत्यादि पहनाने में कोई आपत्ति न की। कितने जान-पहचान के लोग मिले और कितना हर्ष हुआ मुझे आज इन सबसे मिलकर।

दमोह जेल में मैंने कोई दस बजे दिन को प्रवेश किया। दमोह जेल के सामने कुछ पहाड़ियाँ हैं। इस समय ये खूब हरी-भरी थीं। बुलढाने के सदृश ही दमोह का जेल भी एक छोटा-सा जेल था। साफ-सुथरा चक्कर, जिसमें बगीचा लगा हुआ, और वर्षा के कारण बगीचा खूब हरा-भरा। यहाँ की बैरक उतनी अच्छी न थी जितनी बुलढाने की। दमोह जेल का सुपरिण्टैण्डैण्ट भी वहाँ का सिविल सर्जन था। इसका नाम था मि० नायडू। अपने को वह राघवेन्द्रराव का नातेदार बताता था। इसी कारण उसे अत्यधिक गर्व था। मध्य प्रान्त के गृह-सचिव होने पर भी शायद राघवेन्द्रराव को इतना घमण्ड न होगा जितना उनके इस नातेदार को था। जेलर वहाँ मि० व्यास था। बड़ा खुशामदी पर खुशामदी के साथ ही बड़ा षड़यन्त्री। यहाँ के जेल अफसरों के साथ मेरा सदा झगड़ा ही होता रहा।

× × ×

जब मेरा दमोह जेल को तबादला हुआ, उस समय वहाँ कोई राजनैतिक कैदी न था, अतः बुलढाने के सदृश ही वहाँ मैंने अपना एकान्तवासी जीवन आरम्भ किया, परन्तु वजन बहुत घट जाने से मुझे कुछ कमजोरी मालूम पड़ने लगी थी और अब अपने से सम्बन्ध रखनेवाले सब कामों में मैं पटु हो गया था, किसी काम के लिए भी मुझे नौकर की कोई आवश्यकता न थी, अतः दमोह जेल में मैंने बैरक और पैखाना साफ करने, अपने कपड़े धोने, भोजन बनाने और बर्तन माँजने के सब काम बन्द कर दिये, प्रातःकाल की घुमाई भी एक घण्टे से चालीस मिनिट पर ले आया। अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देते हुए तथा किसी प्रकार फिर वजन बढ़ाने की ओर लक्ष्य रखते हुए शारीरिक श्रम को घटा पढ़ने-लिखने की ओर मैंने अधिक ध्यान दिया। अब मैं चार घण्टे

पढ़ने तथा पाँच घण्टे लिखने लगा। "प्रकाश" नामक नाटक जो मैंने बुलढाने में लिखना आरम्भ किया था, और जिसका बहुत थोड़ा अंश बुलढाने में लिखा गया था, यहाँ जल्दी से जल्दी पूरा करने का मैंने निश्चय किया। लिखने की ओर अधिक ध्यान जाने का एक नतीजा यह हुआ कि मेरा मन पढ़ने से उचटने-सा लगा, जब मैं पढ़ने बैठता तब लिखने की इच्छा होने लगती। कुछ दिन बाद मुझे यह करना पड़ा कि जब मैं कोई चीज लिखने लगता तब पढ़ना बिल्कुल बन्द कर देता। लिखनेवाली चीज पूरी होने पर पढ़ता और जब फिर किसी चीज के लिखने की इच्छा होती तब पढ़ना बन्द कर फिर लिखने लगता। इस प्रकार पढाई और लिखाई बारी-बारी से चलती, एक साथ नहीं। हाँ, पढ़ाई के समय में एक ही विषय या एक ही पुस्तक को न पढ़ता, कुछ घण्टे एक विषय और उसकी कुछ पुस्तकें, तथा कुछ घण्टे दूसरे विषय तथा उसकी कुछ पुस्तकें पढ़ता। दमोह जेल के लगभग आठ महीनों में मैंने तीन पूरे नाटक लिखे और एक एकांकी। पूरे नाटक थे "प्रकाश" सामाजिक, "कर्त्तव्य" पौराणिक और "नवरस" दार्शनिक तथा "स्पर्द्धा" एकांकी।

"प्रकाश" में सन् १९२० के भारतीय समाज का अभिजात वर्ग चित्रित है। जमींदार, साहूकार, वकील, बैरिस्टर, कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और नरम दल के सभी लोग इस नाटक में आये हैं। यह नाटक कई जगह रंगमंच पर आ चुका है। मेरी पुत्री रत्नकुमारी ने पाँच वर्ष तक वर्ष भर के उत्तम नाटक पर २५० रु० का पुरस्कार देने के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन को रुपया दिया था। प्रथम वर्ष का पुत्री द्वारा दिया गया पुरस्कार पिता के "प्रकाश" नाटक पर सम्मेलन ने दिया और उस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक "प्रकाश" को घोषित किया। "कर्त्तव्य" में राम और कृष्ण का तुलनात्मक चरित्र चित्रण हुआ है। राम और कृष्ण दोनों हमारे यहाँ भगवान के अवतारों में श्रेष्ठ अवतार हैं, परन्तु राम अंशावतार हैं और कृष्ण पूर्णावतार। यद्यपि अन्य अवतारों से राम में अधिक कलाएँ मानी गयी हैं याने १४ कलाएँ, पर पूर्णावतार होने के लिए १६ कलाओं की आवश्यकता होती है और ऐसा अवतार केवल कृष्ण को ही माना जाता है। अंशावतार और पूर्णावतार में क्या अन्तर है यह इस नाटक का मुख्य विषय है और यह प्रकट होता है समान परिस्थिति

में दोनों के आचरण के समय दोनों की भावनाओं से। राम के हर आचरण में झिझक और संताप रहता है, कृष्ण का हर आचरण निशंक और किसी प्रकार के भी संताप से रहित होता है। जैसे राम बन जाते हुए दशरथ कौशल्या अवध की प्रजा के लिए दुखित रहते हैं, पर कृष्ण व्रज से मथुरा जाते हुए नन्द, यशोदा, गोप-गोपियों के लिए नहीं। राम वृक्ष की ओट से बालि-वध को युद्ध में अधर्म मानते हैं, पर कृष्ण जब जरासंध और कालयवन की सेना के सामने से भागते हैं तब इस पलायन को वे अधर्म नहीं मानते। राक्षस के घर में रही हुई सीता को ग्रहण करने में राम के मन में घोर संघर्ष उत्पन्न होता है और वे सीता की अग्नि परीक्षा लेते हैं, पर भौमासुर के गृह में रही हुई राजकुमारियों को ग्रहण करने में कृष्ण को कोई आपत्ति नहीं, उनकी अग्नि परीक्षा की कृष्ण को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। तपस्वी शंबूक का वध वशिष्ठ की आज्ञा से राम करते तो हैं पर झिझकते हुए। कृष्ण को भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि के वध के लिए जिन उपायों को करना पड़ता है उससे उनके मन में कोई झिझक नहीं होती। इस कर्त्तव्य नाटक के दो भाग हैं और यह बहुत बड़ा है। पूरा नाटक शायद कहीं खेला भी नहीं गया है, पर इसके कुछ अंश खेले गये हैं। यह नाटक वर्षों से कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० के पाठ्यक्रम में नियुक्त है। "नवरस" नाटक में साहित्य के नवों रसों को पात्रों के रूप में लाया गया है। "स्पर्द्धा" में यह दिखाया गया है कि यदि नर और नारी के कार्यक्षेत्र में स्पर्द्धा हुई तो परित्राण-शूरता (शिवलरी) के नाम पर पुरुष महिला के प्रति आचरण करनेवाला नहीं है। ये दोनों नाटक रंगमंच पर आ चुके हैं। इन नाटकों के अतिरिक्त नाटक विषय पर मैंने एक निबन्ध लिखा।

नाटक लिखने की टैक्नीक पर मैं वर्तमान पश्चिमी नाट्य-कला के प्रवर्तक नारवे के इबसन का स्वाभाविक वाद का अनुयायी था इसलिए मैंने अपने नाटकों में उस समय स्वगत-कथन, गायन, नृत्य आदि को स्थान नहीं दिया, पर धीरे-धीरे मुझे मालूम होने लगा कि स्वाभाविकता को आँच न आने देते हुए भी स्वगत-कथन और गायन, नृत्य आदि नाटकों में रखे जा सकते हैं। स्वगत-कथन तो मैंने अपने बहुत बाद के नाटकों में रखे, पर गायन-नृत्य आदि आरंभिक एक नाटक के पश्चात् ही। इसका एक कारण हुआ। उन्हीं दिनों इबसन के

ही बड़े भारी अनुयायी इंगलैंड के प्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा का मुझे एक कथन पढ़ने को मिला, उन्होंने कहा था—"विचारप्रधान नाटक के सिवा बिना संगीत के अन्य किसी नाटक को अब स्थान नहीं है।" मैंने अपने समस्त नाटकों में नृत्य और गायन को स्थान दिया हो यह नहीं, पर अधिकतर नाटकों में मैंने स्वाभाविक ढंग से नृत्य और गायन रखना आरम्भ किया। भारतीय रुचि की दृष्टि से मुझे यह और भी आवश्यक जान पड़ा।

इबसन के पहले आदर्शवाद से ऊबकर पश्चिम में जिस यथार्थवाद का बोलबाला हो गया था उसका तो मैं कभी भी अनुयायी न रहा था। इस सम्बन्ध में इंगलैण्ड के नाटककार आस्कर वाइल्ड से मैं सहमत था। उन्होंने एक जगह लिखा है—"लेखन पद्धति की दृष्टि से यथार्थवाद सर्वथा असफल हो गया है।" मैं यथार्थ में सदा आदर्शवादी ही रहा हूँ, पर आदर्शवाद में जो अस्वाभाविकता आ जाती है वह भी मुझे मान्य नहीं। इसीलिए इबसन का स्वाभाविक वाद मुझे सदा रुचिकर रहा, जिसके भीतर आदर्शवाद लहरें लिया करता है और जिसकी पोशाक रहती है यथार्थवादी।

दमोह जेल के लेखन के पूर्व मैंने दो नाटक लिखे थे, जिनमें एक सफलतापूर्वक खेला भी जा चुका था। परन्तु इतना सब होते हुए दमोह जेल में जब मैंने नाटक लिखना शुरू किया तब केवल समय काटने की इच्छा से। मेरे पहले लिखे हुए कुछ उपन्यास प्रकाशित हुए थे; पर दोनों नाटक नहीं। दमोह जेल में जब मैंने ये नाटक और निबन्ध लिखे तब मैंने इन्हें प्रकाशित कराने की बात भी न सोची थी। बाहर आने के बाद जब मैंने इन्हें कुछ मित्रों को पढ़ कर सुनाया और सभी ने इनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा कर इन्हें छपवाने की सलाह दी तब ये प्रकाशित हुए। इतने पर भी इनका प्रकाशन सन् ३५ के पूर्व न हो सका। इनके प्रकाशित होने पर इनका जो आदर हुआ तथा ये जो अनेक विश्वविद्यालयों में बी० ए० एवं एम० ए० में पढ़ाये जाने लगे इससे मेरी भी आँखें खुलीं। इन नाटकों की आलोचनाएँ तो हिन्दी के सभी पत्रों और विद्वानों ने कीं, पर कुछ महानुभावों ने मुझे इनके सम्बन्ध में कुछ व्यक्तिगत पत्र भी लिखे। अभी भी कुछ मित्र मेरी इन पुरानी कृतियों पर भी मुझे पत्र लिखने की कृपा कर देते हैं। दृष्टान्त के लिए सन् १९३४ में प्रकाशित "कर्त्तव्य" पर

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि "दिनकर" ने ता० २४-६-५४ को मुझे एक पत्र लिखा। वे लिखते हैं—"आपकी कृतियों में 'कर्त्तव्य' नाटक मुझे बहुत पसन्द है। इसकी एक विशेषता तो यह है कि दो महायुगों के दो महानायकों की कथा एक ही मंच से दिखायी जाती है। दूसरे राम और कृष्ण के जीवन की ऐसी घटनाओं की व्याख्या इसमें आदरणीय और विवेकपूर्ण ढंग से की गयी है जिसके विषय में आज का मनुष्य शंकित है।······मेरे जानते ये सूझें आपकी अपनी देन हैं।·····आपके भीतर विचारों का पारावार लहराता है। पौराणिक पात्रों के सम्बन्ध में भी आप नयी-नयी अनुभूतियाँ देते हैं। नये-नये क्षितिजों की ओर संकेत करते हैं इससे आपकी पौराणिक रचनाओं में भी जवानी आ जाती है।"

दमोह जेल के लेखन के पश्चात् अन्य जेल-यात्राओं तथा जेल के बाहर भी जो कुछ मैंने लिखा वह सब समय काटने के लिए लिखा यह मैं नहीं कह सकता। इन नाटकों के लिखने के पश्चात् जो कुछ मैंने लिखा वह योजना बना-बना कर लिखा है। पहली योजना बनाते समय मुझे अफलातूँ का काल्पनिक साहित्य के विषय में एक कथन पढ़ने को मिला—"हर काल्पनिक रचना में एक मौलिक सत्य रहता ही है।" मैंने अगणित बार अफलातूँ के इस कथन की सत्यता का अनुभव किया है—पढ़ने और लिखने दोनों में ही।

जब मैंने मार्क्स और फ्रायड को पढ़ा तब मेरे सदृश धार्मिक व्यक्ति पर भी, जिसके पीढ़ियों के धार्मिक संस्कार थे, मार्क्स तथा फ्रायड का असर पड़े बिना न रहा और इन लेखकों को पढ़ने से मेरा मन कुछ काल के लिए निरीश्वरवाद की ओर अवश्य झुका। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार रोजर मार्टीनडू गार्ड ने एक स्थान पर लिखा है—"किसी तरुण के जिज्ञासु और कर्मण्य मन पर वैज्ञानिक अध्ययन का पहला प्रभाव यह पड़ता है कि वह और अधिक अहमन्य हो जाता है तथा उसका विश्वास डगमगाने लगता है। थोड़ा ज्ञान उसे ईश्वर से विमुख करता है पर अधिक उसे फिर ईश्वर के सन्निकट ले जाता है।" मैंने अपने जीवन में इस कथन की सत्यता का अनुभव किया है। इसी लेखक ने आगे लिखा है—"चाहे कुछ भी करो, परन्तु अन्धकार-मय एकाकीपन में लिप्त न हो, सर्वशक्तिमान से सम्बन्ध रखो, उसे चाहे किसी नाम से भी क्यों न सम्बोधित करो······।" सचमुच इसके बिना जीवन

निरालंब हो जाता है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था—"पूर्ण त्याग और ईश्वर में पूर्ण विश्वास ही हर चमत्कार का रहस्य है।" इस कथन की सत्यता का मैंने जीवन में अनेक बार अनुभव किया है।

दमोह जेल में लिखने और पढ़ने की जो यह अलग-अलग व्यवस्था हुई वह फिर आगे के जेल जीवनों में भी चलती रही, मोटे तौर पर हिसाब लगाने पर पढ़ने का समय तीन-चौथाई और लिखने का एक-चौथाई ही रहा है तथा जेल जीवन में औसत से मैंने १० घंटे का समय नित्य पढ़ने-लिखने में बिताया है।

मेरे दमोह जेल में आने की खबर पाते ही माताजी, पिताजी और मेरी पत्नी मुझसे मिलने पहुँचे। बुलढाना जेल में न मिलने के पाप का मैंने तुरन्त प्रायश्चित किया। करीब तीन महीने के बाद का यह मिलन था, बड़ा कारुणिक और मुझे इतना दुबला देख इस करुणा में कुछ भय का भी समावेश हो गया था। इसके पश्चात् तो मेरे कुटम्बी ए वर्ग के कैदियों के मुलाकात के नियमानुसार हर सप्ताह मुझसे मिलने आये, पर नियमों के अनुसार एक बार में तीन ही व्यक्ति मिल सकते थे अत: माताजी, पिताजी और पत्नी के सिवा अन्य किसी की मुलाकात सम्भव न थी।

दमोह जेल में मेरा एकान्तवास भी बहुत दिन न चला। परन्तु साथियों के संग के पूर्व बुलढाना और दमोह में मेरा जीवन इतना व्यवस्थित हो गया था कि अकेले न रहने पर भी मेरे व्यायाम, पूजा-पाठ, ध्यान और पढ़ने-लिखने में कोई विशेष बाधा न पहुँची।

मेरे साथियों में सबसे पहले आये रायपुर के श्री वामनरावजी लाखे और सेठ शिवदासजी डागा। दोनों पुराने कांग्रेस के साथी थे। लाखे साहब ने तो मुझे कमजोर देख माता के सदृश मेरी हिफाजत करना शुरू किया। उन्होंने चौका सँभाला और उनके चौका सँभालते ही भोजन कहीं अच्छा बनने लगा। इसके बाद आये अकोला से श्री ब्रिजलालजी बीयाणी। सार्वजनिक क्षेत्र में बीयाणीजी मेरे बड़े पुराने साथी हैं। बीयाणीजी के स्वभाव में जो मृदुता और भावुकता है उसके कारण मेरा उनके प्रति सदा आकर्षण रहा है। बीयाणीजी के दमोह जेल में आने से मुझे बड़ा हर्ष हुआ। कुछ समय बाद मेरे

साथियों में एक परिवर्त्तन हुआ। सेठ शिवदासजी डागा का दमोह जेल से तबादला हो गया और उनकी जगह नागपुर के बैरिस्टर अभ्यंकर आये। अभ्यंकर साहब की मेरी कोई मित्रता थी ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु हमारी जान-पहचान बहुत पुरानी थी। सन् १९२३ से २६ तक हम लोग केन्द्रीय धारा सभाओं में भी साथ-साथ रह चुके थे। अभ्यंकर अपने नाम के अनुरूप ही भयहीन, बड़े तेजस्वी व्यक्ति थे। उनकी डाक्टर मुंजे की लडाई सारे प्रान्त में प्रसिद्ध थी। ब्रिटिश गवर्नमेंट को गाली देनेवालों में उनका स्थान केवल हमारे प्रान्त में ही नहीं पर समूचे देश में बहुत ऊँचा था। वे बड़े जोशीले वक्ता थे और सन् १९२६ के चुनाव में चाहे वे डाक्टर मुंजे से हार गये हों पर उनका अपने प्रान्त में बड़ा प्रभाव था। आजकल वे नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति थे। अभ्यंकर साहब के आते ही एक बार तो जेल काँप उठा। उनकी रुचि के अनुसार पलँग, टेबिल, कुर्सियाँ, खाने के चीनी के बर्तन सारी चीजें इकट्ठी होने और उनके मांसाहारी भोजन की उनकी रुचि के अनुरूप व्यवस्था होने में बड़ी कठिनाई हुई और काफी समय लगा। अभ्यंकर पूरे भौतिकवादी थे। उन्हें न पूजा-पाठ, संध्या, ध्यान से मतलब था और न पढ़ने-लिखने से। खूब खाना, वह भी मांसाहारी भोजन, और खूब सोना, जेल में उनके दो ही काम थे। मैं सदा ही कट्टर निरामिष भोजी रहा हूँ, विदेशों की यात्रा में भी मैंने इस सम्बन्ध में पूर्ण सतर्कता रखी है, अण्डा तक जीवन में मैंने कभी नहीं खाया। इसलिए विदेशों में मेरा भोजन चार ही वस्तुओं तक सीमित रहता है—मक्खन के साथ डबल रोटी, उबले हुए शाक, दूध और फल। मैं आइसक्रीम और केक तक नहीं खाता, क्योंकि उनमें प्रायः अण्डे रहते हैं। निरामिष भोजन में सिद्धान्त की दृष्टि से मेरा विश्वास है। निरामिष भोजियों की हमारे देश में जितनी संख्या है, संसार के अन्य किसी देश में नहीं। इस सम्बन्ध में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों ही दृष्टियों से भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं ने बहुत कुछ कहा है। परन्तु पश्चिम के भी कुछ विद्वानों ने निरामिष भोजन का अनेक सिद्धान्तों को दृष्टि में रख समर्थन किया है। इस विषय में टाल्सटाय के कथन को सुनिए—"इस विश्व में कोई वस्तु यथार्थ में निर्जीव नहीं है। अब तक जिन पदार्थों को निर्जीव कहा जाता था वे यथार्थ में इस

महान् जीवधारी रचना के भिन्न-भिन्न विभाग हैं, जिन्हें अभी नहीं समझा जा सका है। अतः मानव, जो इस जीवधारी रचना का एक भाग है, उसके जीवन की समस्या केवल अपने अस्तित्व की रक्षा करना नहीं है, पर कम से कम हर चेतन प्राणी की रक्षा करने का प्रयत्न करना भी है।" परन्तु अपने सिद्धान्तों पर स्थित रहने के साथ ही अन्यों पर अपने सिद्धान्तों को लादने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, इसलिए मेरे महाशाकाहारी और श्री अभ्यंकर के महा-मांसाहारी होने तथा महीनों तक चौबीसों घण्टे साथ-साथ रहने पर भी हम लोगों के आपसी सम्बन्धों में किसी प्रकार की भी गड़बड़ नहीं हुई। इसका मुझे ही श्रेय था यह नहीं, श्री अभ्यंकर को भी समान रूप से श्रेय था।

दमोह जेल की कुछ बातें और हैं जो मुझे कई बार स्मरण आती हैं। एक यह कि एक मुलाक़ात में मेरा छोटा लड़का जगमोहनदास एक इकन्नी खा गया और इस इकन्नी के भोज्य ने बहुत गड़बड़ मचायी। दूसरी यह कि एक दिन दमोह जेल के अफसरों को प्रान्तीय सरकार का एक तार मिला कि मेरे पिताजी को मुझसे तीन घण्टे की मुलाकात दी गयी है जिस मुलाकात में किसी जेल के अफसर को उपस्थित रहने की जरूरत नहीं है। इस तार का रहस्य आज तक भी मरी समझ में नहीं आया है। चूँकि श्री राघवेन्द्रराव उस समय मध्य प्रान्त के गृह-सचिव थे और मेरे सबसे बड़े राजनैतिक प्रतिद्वन्दी, इसलिए मैंने यह सोचा कि इस प्रकार की मुलाकात का राव सा० कोई नाजायज फायदा न उठावें, मैंने बिना जेल के अफसरों की मौजूदगी के ऐसी मुलाकात लेना अस्वीकार कर दिया। तीसरी एक कैदी को कोड़े लगाने की सजा। छोटा-सा जेल था अतः जिसे कोड़े लगाये जा रहे थे उसके रोने और चिल्लाने की आवाज मेरी बैरक तक आती थी। कितना विचलित हो गया था मैं इस पर और इस विषय पर जेल अधिकारियों से बातचीत करते-करते मैं उनसे लड़ तक पड़ा था। कई दिनों तक इस घटना ने मुझे जेल में व्यथित रखा। चौथी पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु। अखिल भारतीय नेताओं में मेरा मोतीलालजी से ही सबसे अधिक व्यक्तिगत सम्बन्ध था। मेरी इस बार की गिरफ्तारी के बाद वे एक दफा जबलपुर आये थे और जबलपुर की आम सभा में उन्होंने यहाँ तक कहा था कि मैं अपने दो लड़के मानता हूँ—"एक जवाहरलाल और दूसरा

गोविन्ददास ।" मोतीलालजी की मृत्यु से मुझे ऐसा जान पड़ा कि सार्वजनिक जीवन में मैं अनाथ होगया हूँ। न जाने कितने आँसू बहाये मैंने उनकी मृत्यु पर।

जेल से छूटने के पहले मुझे एक बात जानने पर कुछ आश्चर्य-सा हुआ। जेल के दुबारा कैदी डाकू, चोर, व्यभिचारी आदि अपने-अपने कृत्यों पर उसी जोश में बातें करते हैं, जैसे स्कूल और कालेज के विद्यार्थी परीक्षाओं में मिले हुए नम्बरों पर या साहूकार और व्यापारी अपने रोजगार-धन्धों के मुनाफों पर या कवि और लेखक अपनी रचनाओं पर या देश और समाज के सेवक अपने भाषणों पर या सैनिक अपनी बहादुरी पर। इसके कुछ समय बाद मैंने टालसटाय का उपन्यास "रीसरक्शन" पढ़ा। उसमें इसी विषय पर निम्नलिखित पंक्तियाँ थीं—"कोई भी मनुष्य संसार में तब तक कोई काम नहीं कर सकता, जब तक उसे इस बात का विश्वास न हो कि जो कुछ वह करता है उसका कुछ उपयोग अथवा महत्त्व है। अतः मनुष्य किसी भी स्थिति में क्यों न हो, जीवन के सम्बन्ध में उसकी यही दृष्टि रहेगी कि उसकी कृति अच्छी तथा महत्त्वपूर्ण जान पड़े। साधारणतया यह माना जाता है कि चोर, खूनी, जासूस, वेश्या आदि अपनी कृतियों के बुरे माने जाने के कारण लज्जा का अनुभव करते होंगे, पर यथार्थ में बात इससे उल्टी है। वे लोग जो भाग्य अथवा अपने ही किन्हीं पापों या गल्तियों के कारण यदि किसी ऐसी स्थिति में आजायँ जो चाहे कैसी ही बुरी क्यों न हो, जीवन के सम्बन्ध में ऐसी धारणा बना लेते हैं कि जिस स्थिति में भी वे हैं वह स्थिति उचित मान ली जानी चाहिए। इस विचार के कारण ऐसे लोग स्वभावतः उन्हीं लोगों से सम्पर्क रखते हैं जो जीवन में उन्हीं के तपके के हैं। जब कोई चोर अपने कृत्यों की सराहना करता है, जब कोई वेश्या अपनी बेशर्मी का बखान और जब कोई खूनी अपनी क्रूरता की प्रशंसा तब हमें आश्चर्य होता है पर यह इसलिए कि इनके क्षेत्र संकीर्ण हैं और विशेषकर इसलिए कि हम इनके क्षेत्रों के बाहर हैं। पर क्या यही वस्तुस्थिति तब भी नहीं रहती जब धनवान अपने धन पर घमंड करता है जो यथार्थ में उसके पास उसकी लूट से ही एकत्र हुआ है, जब सेनापति अपनी बहादुरी पर गर्व करता है जो यथार्थ में खूनी ही है, जब शासक अपने अधिकार की सराहना करता है जो यथार्थ में हिंसा है। हमें इन फिरकों के

कथनों पर इसलिए आश्चर्य नहीं होता कि अच्छे बुरे की परिभाषा ही विकृत कर दी गयी है। इन लोगों का दायरा बड़ा है और हम भी इसी दायरे के हैं।" इन पंक्तियों को पढ़ कर इस विषय में मेरा आश्चर्य दूर हुआ। साथ ही मुझे अपनी पहली जेल यात्रा में ही वी० अलफीरी के इस कथन की सत्यता में भी विश्वास हो गया कि—"यथार्थ में जुर्म तैयार करता है समाज, बेचारा गुनाहगार तो उस जुर्म को करने भर का दोषी है।"

जेल से रिहाई

गान्धी-अर्विन समझौते के फलस्वरूप राजनैतिक बन्दी छोड़े गये थे और हम लोग भी रिहा हुए। जबलपुर तथा सारे प्रान्त ने जो स्नेह और उत्साह मेरी गिरफ्तारी के समय दिखाया था वही मेरी रिहाई के समय प्रदर्शित किया। दमोह ने हम लोगों के स्वागत का बड़ा भारी आयोजन किया। वहाँ की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल ने हमें मानपत्र दिया। दमोह जबलपुर से ६६ मील है। जबलपुर से दमोह कितनी मोटरें, कितनी लारियाँ और कितनी जनता हमारे स्वागत को पहुँची। पिताजी, माताजी, मेरी पत्नी, मेरे सारे कुटुम्बी और नातेदार दमोह किस उत्साह से आये। उनके मुखों और उनकी मुद्राओं पर उत्साह का नृत्य-सा हो रहा था। दमोह से जब हम लोग रवाना हुए उस समय मोटरों और लारियों का एक जुलूस-सा बन गया। ६६ मील तक यह जुलूस और जयकार के नारे! मार्ग में जितने गाँव मिले सब खूब सजाये गये थे और उन गाँवों में आस-पास के कितने गाँवों की जनता हमारा स्वागत करने के लिए उपस्थित थी! जबलपुर हम लोग सूर्यास्त के समय पहुँच सके। जबलपुर में तो उत्साह का ज्वार आ गया था। दमोह से आनेवाली सड़क पर जहाँ से जबलपुर शहर आरम्भ होता है हजारों की संख्या में शहर की जनता एकत्रित थी और इस समुदाय में महिलाओं की कितनी बड़ी संख्या थी! जबलपुर की प्रधान सड़कों पर से होता हुआ हमारा जुलूस गोलबाजार नामक स्थान पर सभा में परिणत हो गया। जबलपुर के आधुनिक इतिहास में त्रिपुरी कांग्रेस के ५२ हाथियों के रथवाले जुलूस के सिवा न उसके पहले न उसके बाद का कोई भी जुलूस हमारी रिहाई के जुलूस की तुलना कर सकता है। यही हाल सार्वजनिक सभा का था। इस समय जबलपुर नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति श्री द्वारकादास भाटिया थे। उन्होंने जबलपुर की जनता की ओर से हमारा स्वागत किया और स्वागत के पश्चात् मेरा तथा श्री अभ्यंकर एवं लाखेजी का भाषण हुआ। सभा के पश्चात् मैं अपने घर आया। राजा

गोकुलदास महल का फाटक सुन्दरता से सजाया गया था और बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। द्वार पर माताजी ने जब मेरी आरती उतारी एवं पिताजी ने जब मुझे फूलों का हार पहनाया और जब मैंने उनके चरण स्पर्श किए तब इस हर्ष तथा उल्लास के अवसर पर भी करुण रस का एक स्रोत-सा बह पड़ा। सबसे मिल-जुलकर जब मैं अपनी पत्नी के शीशमहल में पहुँचा तब कितनी संकुचित देखा मैंने उन्हें। मेरे पैर छू आँसू बहाते हुए मेरे पद-चिह्नों पर न चल कारावास में न जा सकने के कारण उन्होंने मुझ से बार-बार क्षमा माँगी और उनके सास-ससुर तथा घर की परिस्थिति के कारण उनकी सच्ची विवशता को समझ उन्हें गाढ़ालिंगन में ले उनका मुख चूमते हुए मैंने उन्हें सच्चे हृदय से क्षमा भी कर दिया। जेल के इन साढ़े दस महीनों के जीवन में वे मुझ से मिलती तो बराबर ही थीं, परन्तु सदा माताजी और पिताजी के साथ। एकान्त में इन साढ़े दस महीने में हम एक क्षण को भी न मिल पाये थे। आज जान पड़ता था जैसे साढ़े दस महीने नहीं, साढ़े दस युगों के पश्चात् हमारी भेंट हुई है। कितनी बातें भरी हुई थीं हम दोनों के हृदय में। बातें होने लगीं, पर बातों का कोई सिलसिला ही न बैठ रहा था, क्रमबद्ध बातें होना ही असम्भव हो गया था। कठिनाई से कोई ३ बजे हमें नींद आयी और नित्य के अभ्यास के अनुसार ५ बजे हम फिर उठ गये।

कोई पन्द्रह दिन तक जबलपुर में स्वागत-समारोहों एवं मान-पत्रों की धूम मची रही। जिन संस्थाओं ने जेल से छूटे हुए हम सबका स्वागत किया उनमें मुख्य थीं जबलपुर नगरपालिका, अनाज के व्यापारियों की अन्नपूर्णा समिति, कपड़े के व्यापारियों का संघ, सोने-चाँदी के व्यापारियों की सराफा-कमेटी, महिला संघ, मजदूर संगठन इत्यादि इत्यादि।

जेल में चाहे मैं बहुत स्वस्थ न रहा होऊँ, पर अन्य दृष्टियों से मुझे कोई कष्ट न हुआ था। कड़ी सजा होते हुए भी मुझसे जेल में कोई काम न लिया गया था। मुझे हर प्रकार आराम से रखने का सरकार ने प्रयत्न किया था। अपने से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त कार्यों में पटु होने तथा इस प्रकार परावलम्बन से मुक्त हो स्वावलम्बी हो जाने के कारण मुझे मन ही मन सन्तोष था। और पढ़ने-लिखने का जो मुझे समय मिला था एवं इस समय का जो

मैंने पूर्ण सदुपयोग किया था उससे भी मुझे कम हर्ष न था। जेल में मैंने कोई बहुत समय भी न काटा था, मैं जेल में केवल साढ़े दस महीने रहा था और आरम्भ के तीन महीनों को छोड़ शेष साढ़े सात महीनों में हर सप्ताह अपने कुटुम्बियों से मिलता रहा था। जेल जाने के पहले मैं जेल जाने के लिए अत्यधिक उत्सुक था तथा जेल एक महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए जा रहा हूँ, इस भावना के कारण अत्यन्त उत्साहित भी। जेल जाने के पूर्व परतन्त्रता के कारण सारा देश एक बड़ा जेलखाना है यह मैं कहा करता था और ऐसे परतन्त्र देश में जेल के बाहर रहने की अपेक्षा देश की स्वतन्त्रता के लिए जेल में रहना कहीं श्रेयस्कर है, यह भी कहता था। जब मैं जेल के बन्धन से मुक्त होऊँगा तब मुझे कोई विशेष सुख मिलेगा, जेल में रहते हुए यह कल्पना भी मेरे मन में उठी थी।

परन्तु मैंने देखा कि जेल में कोई कष्ट न होते हुए भी, पढ़ने-लिखने के लिए इतना समय मिलते रहने पर भी, अभी भी परतन्त्रता के कारण देश के एक बड़े जेलखाने रहते हुए भी और जेल में रहते हुए बाहर आने पर मुझे कोई विशेष सुख मिलेगा यह न सोचते हुए भी इतने अल्पकाल के जेल जीवन के पश्चात् भी मुझे बन्दी जीवन से मुक्त होने के कारण एक विलक्षण प्रकार का आनन्द मिला। यह आनन्द मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार का था। दीवालें और सींखचे जेल में ही नहीं घर में भी थे, पर कितना अन्तर था, जेल की दीवालों एवं सींखचों और घर की दीवालों तथा सींखचों में। उन दीवालों और सींखचों ने तन के साथ मन को भी बन्दी बना लिया था, पर इन दीवालों और सींखचों के रहते हुए भी तन एवं मन दोनों ही स्वतन्त्र थे। फिर वहाँ छोटी से छोटी बात के लिए भी जो जेल के अधिकारियों का मुँह ताकते रहना पड़ता था उससे मन को मुक्ति मिल गयी थी। जेल में कोई शारीरिक कष्ट के न रहते हुए भी वहाँ के शारीरिक सुख और घर के शारीरिक सुख में भी बहुत अन्तर था। तो देश के परतन्त्र रहते हुए भी, देश के दुखी रहते हुए भी व्यक्तिगत सुख भी कोई चीज है, इसका जेल से निकलने पर मुझे जितना अनुभव हुआ उतना इसके पहले कभी न हुआ था। जेल-जीवन के बन्धन से मुक्त हो मुझे एक अपूर्व आनन्द मिला। यह आनन्द गान्धी-अर्विन पैक्ट के

कारण देश भर में जो एक नये उत्साह, एक नये उमंग, एक नये जोश की लहर उठी हुई थी, सारा देश जो एक विजयोल्लास की भावना से भरा हुआ था, उससे कई गुना बढ़ गया। देश की आजादी के समीप पहुँचाने के इस महान अनुष्ठान में मैं भी एक छोटा-सा साधक था और मेरी इस साधना का जनता ने अपने स्नेह एवं आदर द्वारा सराहना की थी, इस कारण मेरे इस आनन्द भवन पर एक कलश-सा चढ़ गया। कुटुम्बीजनों और मिश्रजी का फिर से संग इस सुख में रस लाया। कुछ काल तक मैं आनन्द-विभोर हो अन्य सब बातों को भूल-सा गया।

परन्तु इस जगत की रचना ही कुछ ऐसी है कि इसमें अनेक वास्तविकताएँ मानव को सदा सुख में रहने ही नहीं देतीं; किसी के सुख को कोई भंग कर देती है और किसी के सुख को कोई। इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध नाटककार समरसैट मोघम ने एक स्थान पर लिखा है—"धन ऐसी छठवीं ज्ञानेन्द्रिय है जिसके बिना मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व्यर्थ हैं।" इस विषय पर ग्लैस्टन लिखते हैं—"जीवन में केवल एक बात का महत्त्व है वह है स्वतन्त्रता। चूँकि धन इस स्वातन्त्र्य को देता है, इसीलिए उसकी कीमत है।" पर इसी के साथ विक ऑलीवर ने धन के लिए जो कुछ लिखा है उसे भी सुनिए—"यदि मनुष्य धन के पीछे दौड़ता है तो कहा जाता है कि वह पागल है, यदि वह उसे रखता है तो पूँजीपति कहलाता है, यदि वह खर्चीला होता है तो उसे खिलंदड़ा कहते हैं, यदि वह कमाने का यत्न नहीं करता तो कहा जाता है उसे कोई आकांक्षा ही नहीं, यदि प्रयत्न के बिना ही किसी के पास धन एकत्रित हो जाता है तो लोग उसे शोषक कहते हैं और यदि कोई जीवन भर परिश्रम कर धन एकत्रित करता है तो कहा जाता है कि वह ऐसा मूर्ख था जिसने जीवन में कुछ पाया ही नहीं।" जो कुछ हो सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों ही दृष्टियों से इस संसार में अर्थ को बहुत बड़ा महत्त्व है इसमें सन्देह नहीं।

आर्थिक दृष्टि से हमारा कुटुम्ब यद्यपि सन् १९१३ की स्थिति में नहीं था तथापि फिर से ऐसी स्थिति को अवश्य पहुँच गया था जिस स्थिति को ज्वालामुखी के शिखर पर बैठे रहने की स्थिति कहा जा सकता है। फसलों की निरन्तर बर्बादी के कारण आमदनी का पता न था। खर्च के लिए एक-एक

पैसे का टोटा था। कर्ज का ब्याज बढ़ता जा रहा था और जब ब्याज ही न चुकता था तब असल के चुकाने का प्रश्न ही कहाँ था। सारी जायदाद रहन थी और कई नालिशें हो गयी थीं जिनकी डिगरियाँ होना निश्चित था तथा डिगरियों के बाद कुड़कियाँ एवं नीलाम। आमदनी बढ़ाने के जो काम किये गये वे सब ठप हो गये थे। बीड़ी का काम हजारों का घाटा दे समाप्त हो गया था। दैनिक "लोकमत" सा मिल की सारी पूँजी चाट कर खुद लड़खड़ा रहा था और पूँजी समाप्त होने के कारण सा मिल खत्म हो गया था। अब आमदनी बढ़ाने के लिए किसी काम करने की कल्पना भी न की जा सकती थी। मंदी इतनी थी कि न जमीन के टुकड़े का कोई खरीददार था और न फैक्टरी मकान आदि का।

सारे कुटुम्ब के मन पर इस आर्थिक संकट ने जो उदासी छा रखी थी, मेरी रिहाई ने उसमें क्षणिक परिवर्तन किया, पर फिर से वही उदासी छा गयी। मैं भी तलमला उठा। कुछ समझ में न आता था कि किया क्या जाय। मैं सोचने लगा तो क्या आखिर वही होगा जो विचारा था—तीस रुपया महीने पर गुजारा करना होगा। पर फिर बच्चों का क्या होगा? जिनके पास कुछ नहीं होता उनकी दूसरी बात है, पर जिनके पास सब कुछ होकर चला जाता है उनकी स्थिति वही जानते हैं जिन्होंने कभी उसका सामना किया हो।

परन्तु बढ़ते हुए सार्वजनिक जीवन के कारण अब इन सब बातों को ठीक करने की योजना बनाने की अथवा इन पर विचार करने की फुरसत किसे थी? और इस सार्वजनिक जीवन के लिए भी इस अर्थ की कितनी आवश्यकता थी।

× × ×

सन् ३० में जेल से छूटने के बाद जबलपुर में एक महत्त्वपूर्ण बात और हुई। जबलपुर की नगरपालिका के चुनाव हुए। कांग्रेस ने इन चुनावों में भाग लिया और कांग्रेस का नगरपालिका में प्रचण्ड बहुमत हो गया। मुझ पर नगरपालिका के सभापति होने का बहुत जोर डाला गया, पर मैं उसके लिए किसी भी तरह तैयार न हुआ। जबलपुर के आरम्भिक सार्वजनिक जीवन को छोड़कर जबलपुर की स्थानीय राजनीति में मैंने कभी भाग न लिया था; मेरा कार्य प्रान्तीय और अखिल भारतीय क्षेत्र में ही हुआ था अतः मैंने प्रयत्न किया कि

पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र जबलपुर नगरपालिका के अध्यक्ष हों। मिश्रजी का अभी भी बड़ा विरोध था, परन्तु जबलपुरवाले मेरी इच्छा को न टाल सके और मिश्रजी नगरपालिका के सभापति हो गये। उनका इस नगरपालिका के अध्यक्ष पद का काल खूब सफल रहा। आगे चलकर नगरपालिका के सेक्रेटरी की नियुक्ति के समय तो उस समय की प्रान्तीय सरकार से मिश्रजी का ऐसा झगड़ा हुआ कि उस झगड़े को अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त हो गयी। इस ख्याति का मुख्य कारण यह हुआ कि प्रान्तीय सरकार ने मध्य प्रदेश के नगर-पालिका कानून की कुछ धाराओं में आर्डिनेन्स द्वारा परिवर्त्तन कर मिश्रजी को सभापतित्व से अलग किया। सेक्रेटरी की नियुक्ति का यह झगड़ा वर्मा-शर्मा झगड़े के नाम से प्रसिद्ध है और यह इतना विख्यात है कि इस सम्बन्ध में ब्यौरेवार यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

गान्धी-अर्विन समझौता

यद्यपि नगरों की हलचलों की ओर ही विदेशियों और पत्रकारों का ध्यान अधिक जाता था तथापि सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन की सच्ची शक्ति ग्रामों की ही हलचल में थी। सरकार यह समझती थी कि नगरों की हलचल को दबाया जा सकता है, किन्तु यदि कहीं सरकार के खिलाफ ग्रामीण जनता भी हो गयी तो उसे दबाना आसान न होगा। अतः इस सत्याग्रह आन्दोलन से सरकार विचलित हुई और उसने यह सोचा कि कैसे ही क्यों न हो इस आन्दोलन को थोड़ी ही देर को ही सही, रुकवाया जाय। साथ ही अंग्रेजी राजनीतिज्ञों पर यूरोप की शीघ्रता से बदलनेवाली परिस्थिति का भी प्रभाव पड़ रहा था। यूरोप में यह बात शनैः शनैः स्पष्ट होती जा रही थी कि वार्सेई में निश्चित किया गया शक्ति-संतुलन अब बना नहीं रह सकता। इसलिए उन्हें यह प्रतीत हो रहा था कि यदि सम्भव हो सके तो भारत की जनता को किसी हद तक प्रसन्न किया जाये। फिर इंगलैण्ड में मजदूर दल की सरकार थी। मजदूर दलवालों की यह नीति रही थी कि भारत को किसी सीमा तक स्वतन्त्रता दी जाय। अतः उन्होंने एक गोलमेज परिषद् इस दृष्टि से बुलायी थी कि भारत के भावी विधान का ढाँचा सब भारतीय राजनैतिक दलों की सम्मति से तय किया जाये। कांग्रेस का यह मत था कि सरकार पहले यह कह दे कि वह भारत को तत्काल स्वतन्त्रता देने को तैयार है, उसके पश्चात् कांग्रेस इस प्रकार की गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए तैयार हो जायगी। चूँकि सरकार ने ऐसी घोषणा नहीं की थी इस कारण कांग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। गोलमेज परिषद् से लौटनेवाले कुछ भारतीय नेताओं ने इस बात का प्रयास किया कि सरकार और कांग्रेस में किसी प्रकार समझौता हो जाय। यद्यपि सत्याग्रह आरम्भ होने के बाद एक बार श्री सप्रू और श्री जयकर ने समझौता कराने का प्रयत्न किया था, पर उस समय समझौता न हो सका था।

गोलमेज परिषद् की समाप्ति होते ही वाइसराय महोदय ने यह सूचना निकाली कि समझौता करने में सहूलियतें देने की दृष्टि से कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों को छोड़ दिया जायगा। इसके अनुसार २६ जनवरी सन् ३१ को गान्धीजी के साथ अन्य २५ कांग्रेस के नेता छोड़ दिये गये। पण्डित मोतीलालजी बीमार होने के कारण कुछ समय पहले छोड़ दिये गये थे। उनकी हालत चिन्ताजनक होने से गान्धीजी सीधे इलाहाबाद गये। वहाँ अन्य कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य भी पहुँचे। गोलमेज परिषद् से लौटनेवाले नरम दल के नेता श्री तेजबहादुर सप्रू, श्री श्रीनिवास शास्त्री भी वहीं पहुँच गये। वहाँ समस्या का कोई हल निकालने का प्रयत्न किया गया। इसी बीच पण्डित मोतीलालजी का स्वर्गवास हो गया। भारत की राजनीति में इस समय गान्धीजी के बाद मोतीलालजी का ही स्थान था। और ऐसे अवसर पर मोतीलालजी के सदृश महान व्यक्ति का उठ जाना देश के लिए एक बड़ा भारी धक्का था।

देश की राजनैतिक परिस्थिति अभी भी वास्तव में चिन्ताजनक थी। एक ओर तो इंगलैण्ड में ब्रिटिश सरकार भारत को स्वराज्य देने की बड़ी-बड़ी बातें कर रही थी और दूसरी ओर भारत में अधिकारियों के रुख में कोई परिवर्त्तन नहीं हो रहा था। गान्धीजी ने देश की परिस्थिति का निरीक्षण कर एक वक्तव्य में कहा—"निर्दोष व्यक्तियों पर अकारण मार-पीट अभी जारी है। इज्जतदार आदमियों की चल और अचल सम्पत्ति, बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के, सरसरी तौर पर नाममात्र की कानूनी कार्रवाई कर जप्त कर ली जाती है। स्त्रियों के जुलूस को भंग करने के लिए बल प्रयोग किया गया है। उन्हें जूतों की ठोकरें मारी गयी हैं और बाल पकड़कर घसीटा गया है। ऐसा दमन जारी रहा तो कांग्रेस के लिए सरकार से सहयोग करना सम्भव न होगा।"

आखिर अनेक लोगों के सुझाव पर गान्धीजी ने वाइसराय महोदय से भेंट करने को लिखा और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। गान्धीजी के स्वभाव की यह विचित्र बात दृष्टव्य है कि वे अपने विरोधी के विचारों को शान्तिपूर्वक सुनने और उन पर विचार करने को सदा तत्पर रहते थे। उनके व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव था कि कई बार उनके विरोधियों को उनके सामने आते

ही पानी-पानी होकर उनके प्रशंसक बन जाते देखा गया है। परन्तु वाइसराय से उनकी भेंट व्यक्तिगत भेंट न होकर गर्वोन्नत ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि से भेंट थी, इससे अधिक लाभ की आशा न होते हुए भी गान्धीजी दिल्ली रवाना हुए। वहीं उन्होंने कार्यकारिणी के सदस्यों को भी बुला लिया था।

पन्द्रह बीस दिन तक कभी नित्य प्रति दिन और रात एक करके या कभी कई दिनों के उपरान्त कुछ ही घण्टों की कई भेंटें गान्धीजी और वाइसराय महोदय की होती रहीं। दोनों अपनी बातों को लेकर खूब विवाद करते थे। अन्त में समझौता हो गया और गान्धीजी ने अर्विन साहब के धैर्य तथा स्वभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

यद्यपि समझौते के फलस्वरूप स्वराज्य नहीं मिला था और समझौते में अन्य कोई बड़ी बात भी न हुई थी, पर ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े भारतीय प्रतिनिधि और भारत के सबसे बड़े नेता का बराबरी में बैठ समझौता करना ही ऐतिहासिक घटना थी।

इस समझौते की ब्यौरेवार शर्तें यहाँ देना आवश्यक नहीं है, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसका पर्याप्त मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। यह पहला ही अवसर था जब कि अंग्रेजी सरकार को अपनी विरोधी भारतीय संस्था से समझौता करना पड़ा था। सन् १९२१ में भी लार्ड रीडिंग ने समझौते के हेतु गोलमेज परिषद् का प्रस्ताव किया था, किन्तु वह बात इसलिए खत्म हो गयी थी कि सरकार महात्माजी के इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुई थी कि गोलमेज परिषद् बैठने से पूर्व अली भाइयों को छोड़ दिया जाय। किन्तु इस बार सरकार ने यह मंजूर किया था कि सब राजनैतिक बन्दी छोड़ दिये जायँगे। साथ ही नमक सत्याग्रह के इस उद्देश्य को भी मंजूर किया था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के लिए नमक बनाने को स्वतन्त्र होगा और उसे नमक कर न देना पड़ेगा। जहाँ-जहाँ कर न देने का कार्यक्रम हुआ था वहाँ के लिए भी यह तय किया गया था कि जिन लोगों की भूमि इत्यादि बिक गयी थीं, किन्तु विक्रय न्यायालय से पुष्ट न हुआ था, या जिनकी भूमि इस खातिर कुर्क हो गई थी, वह उन्हें वापस मिल जायगी। जिन लोगों की निजी चीजों को जुर्माना न देने पर कुर्क कर लिया गया था, किन्तु बिक्री नहीं हुई थी,

उनको भी वापस दिये जाने की शर्त थी। पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्त यह थी कि प्रथम बार सरकार ने यह बात मान ली थी कि भारत में डोमीनियनों जैसी उत्तरदायी सरकार कायम की जायगी और उसके लिए संविधान भारतीयों की सलाह से बनाया जायगा। इस संविधान में अंग्रेजी व्यापारिक तथा अन्य हितों के बचाव के लिए वही संरक्षण होंगे जो कि भारत के हित में हों। इन एवं अन्य शर्तों से स्पष्ट था कि अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस के दृष्टिकोण को बहुत कुछ मान लिया। स्वभावतः जनता को यह प्रतीत हुआ कि सरकार पर उसकी विजय हुई है। जनता इस कारण और चमत्कृत हुई कि यह विजय हथियार उठाये बिना प्राप्त की गयी है अतः सारे देश में विजय की खुशियाँ मनायी गयीं।

किन्तु नौकरशाही को यह समझौता कड़वे घूँट के समान लगा। उसे दिखायी पड़ने लगा कि यदि इस समझौते के बारे में लोगों के मन में यह धारणा बैठ गयी कि यह सरकार को दबकर करना पड़ा है तो सरकार की बची-खुची धाक भी खत्म हो जायगी। फलतः उन्होंने लार्ड अर्विन पर इस बात का बड़ा जोर डाला कि लाहौर षड़यन्त्र केस के अभियुक्तों में से सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी जाय। लार्ड अर्विन ने यह मान लिया और इन तीनों वीरों को फाँसी दे दी गयी। जनता को यह बात अत्यधिक अखरी फिर भी उसका यह विश्वास खत्म न हुआ कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का सूर्य अब अस्ताचल की ओर जाने लगा है।

गान्धी-अर्विन समझौते पर स्याही सूखने भी न पायी थी कि नौकरशाही ने उसे तोड़ना आरम्भ कर दिया, परन्तु कुछ दिनों सरकार के बड़े अफसरों अर्थात् गवर्नर इत्यादि ने इस बात का प्रयास अवश्य किया कि यह भ्रम बना रहे कि सरकार सच्चे दिल से समझौते पर अमल करना चाहती है। असल बात यह थी कि यह समझौता सरकार की ओर से दो विचारों से किया गया था। एक विचार तो यह था कि येन केन प्रकारेण कांग्रेस नेताओं को गोलमेज परिषद् में भाग लेने को फुसलाया जा सके और संसार को यह दिखलाया जा सके कि यद्यपि स्वतन्त्रता-प्रेमी अंग्रेजी सरकार तो अपनी असीम राजनैतिक उदारता से अपनी सत्ता के अधीन वाले देश भारत को स्वतन्त्र करने के लिए

पूर्णतः तैयार है किन्तु भारतीयों में ही इतने गहरे मतभेद हैं कि वे सुलझाये नहीं जा सकते इसलिए यह भय है कि यदि इन भेदों के सुलझाने के पूर्व ही भारत से अंग्रेज अपना हाथ खींच लेंगे तो वहाँ की विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों एवं वर्गों में घोर गृह-युद्ध आरम्भ हो जायगा और गरीब जनसाधारण अकारण ही मारे जायेंगे। सरकार का दूसरा विचार सम्भवतः यह था कि गोलमेज परिषद् में कांग्रेस के प्रतिनिधियों में ही पारस्परिक मतभेद हो जायगा और स्वयं कांग्रेस में भी इस प्रश्न पर ऐसा मतभेद पैदा होगा कि कांग्रेस एकता से कार्य करने में असमर्थ हो जायगी। इतना ही नहीं, जन आन्दोलन कुछ दिनों तक रुक जाने से और लोगों में यह निश्चिन्तता फैल जाने से कि बाजी लगभग मार ली गयी है एवं अब कुछ ज्यादा करने को बाकी नहीं है, वह जोश शिथिल पड़ जायगा जिसके सहारे सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। साथ ही सरकार यह भी समझती थी कि समझौते की शर्तें पूरी कराने के हेतु कांग्रेस के कर्मचारियों को सरकारी कर्मचारियों का भी मुँह ताकना पड़ेगा, सरकारी संस्थाओं का ही सहारा लेना पड़ेगा और सरकारी न्याय-प्रणाली के द्वारा कार्य करना पड़ेगा। अतः जनता के लिए यह अच्छा प्रदर्शन हो जायगा कि कांग्रेस सरकार के समक्ष केवल याचक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में यह समझौता सरकार की एक चाल, एक राजनैतिक दाव था। अतः इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इसको अमल में लाने में तरह-तरह के रोड़े अटकाये जाने लगे तथा जनता से तरह-तरह की छेड़खानी की जाने लगी। सरकार की ओर से ऐसा प्रयास-सा होने लगा कि यत्र-तत्र जनता को भड़काया जाय, उकसाया जाय और फिर उसे पूरे बल से दबा दिया जाय। वह यह समझती थी कि राजनैतिक आन्दोलन की जिस प्रबल बाढ़ ने सारे देश को आप्लावित कर दिया था वह अब उतर चुकी है और यद्यपि देश में यत्र-तत्र कुछ उथला पानी छोड़ गयी है तथापि उसकी एकता जाती रही है, वह ताल-तलैयों में बट-सी गयी है और इसलिए अब उसे आसानी से काबू में लाया जा सकता है।

जैसा मैं कह चुका हूँ कांग्रेस की ओर से यह समझौता इस विचार से किया गया था कि यदि बातचीत से ही अंग्रेजों से फैसला हो जाय तो फिर

जन-धन और जन-समय को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष करने में व्यर्थ न लगाकर उसे रचनात्मक कार्यों में लगाया जाय। इसके साथ ही यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि यह बात नहीं थी कि कांग्रेस के नेता सरकार की कूट चाल को न समझते हों। किन्तु महात्माजी का यह पक्का विश्वास था कि यदि सरकार यह कूट चाल चल रही है तो उससे वह जनता का तो कुछ बिगाड़ न सकेगी स्वयं अपने जाल में फँस जायगी। उनकी यह मान्यता थी कि स्वराज्य का हासिल होना या न होना जनता की अपनी शक्ति पर निर्भर करता है। यदि किसी चाल से नेतागण अंग्रेजों से स्वराज्य प्राप्त कर भी लें तो भी जब तक जनता में उसके सँभालने की शक्ति न होगी वह स्वराज्य बना न रहेगा और देश फिर दास हो जायगा। अतः उन्हें सरकार की कूट चालों की विशिष्ट चिन्ता न थी। वे तो यही चाहते थे कि जनता में निरन्तर जागृति बढ़ती जाय और उसे यह पता चलता जाय कि उसकी अपनी भलाई इसी में है कि वह यहाँ से अंग्रेजी साम्राज्य को खत्म करने की शक्ति पैदा करे एवं उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अथक प्रयत्नशील रहे। अतएव उन्हें लेशमात्र भी यह भय न था कि समझौता करने में कहीं सरकार की कूट चाल तो नहीं है। अपनी ओर से वे यही कहते थे कि वे तो सरकार के सच्चाई और ईमानदारी के बारे में शंका नहीं करते, किन्तु यदि घटनाओं से यह सिद्ध भी हो गया कि सरकार का दिल इस बारे में साफ नहीं है तो भी कोई हानि न होगी वरन् जनता का उस पर रहा-सहा भरोसा भी उठ जायगा। स्मरण रहे कि हिंसात्मक क्रान्ति में जो तात्कालिक विजय या हार का महत्त्व होता है वह अहिंसात्मक क्रान्ति में नहीं होता। हिंसात्मक क्रान्ति में प्रत्येक हार में यह भय बना रहता है कि कहीं उससे सब कुछ न मिट जाय। अतः हिंसात्मक युद्ध में सेनानी को प्रतिक्षण चौकन्ना रहना पड़ता है कि कहीं वह शत्रु की किसी कूट चाल में न फँस जाय। किन्तु अहिंसात्मक संघर्ष में इस प्रकार का कोई भय नहीं होता क्योंकि ऐसे संघर्ष में क्षणिक पराजय से कुछ विशिष्ट हानि नहीं होती। सच तो यह है, जैसा पहले भी कहा गया है कि ऐसे संघर्ष में पराजय का प्रश्न ही नहीं पैदा होता, क्योंकि इसके सैनिक तो अपने तन, मन, धन की आहुति स्वयं देने को तत्पर होते हैं और शत्रु की हानि करने के लिए प्रयत्न-

शील नहीं होते। पराजय का तो यही अर्थ है न कि अपनी जान तथा अपनी सम्पत्ति शत्रु के हाथ में चली जाय, किन्तु सत्याग्रही तो अपनी जान एवं अपना सब कुछ शत्रु के समक्ष पहले ही अड़ा देता है और उसे प्रकट कर देता है कि इन दोनों की हानि के बावजूद भी वह यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि विपक्षी ठीक कार्य कर रहा है और वह उसके साथ किन्हीं हालतों में भी सहयोग करेगा। अतः सत्याग्रही आन्दोलन में उन अर्थों में पराजय का प्रश्न नहीं उठता जिनमें कि हिंसात्मक क्रान्ति में उठता है। हाँ, यह हो सकता है कि सत्याग्रहियों की पंक्ति में से कुछ अलग हो जायँ, अपना आग्रह छोड़ दें किन्तु जैसा बापू कहा करते थे यदि एक भी निष्ठावान् सत्याग्रही बचा रहा तो वह विपक्षी को हराने अर्थात् उसका मत परिवर्त्तन करने तथा सही रास्ते पर आने के लिए तैयार कर सकता है। सच तो यह है कि सत्याग्रही सब पार्थिव अस्त्रों को छोड़कर विपक्षी को भी निरस्त्र कर देता है। विपक्षी को भी फिर अस्त्रों को प्रयोग न करने का वह अवसर नहीं रहता और वह प्रवृत्ति नहीं रहती जो उसे सशस्त्र विरोधी के विरुद्ध होती है। अतः सत्याग्रही आन्दोलन में विपक्षी की सब की सब कूट चालें भी व्यर्थ हो जाती हैं और स्वयं उसी के सिर पर लौट पड़ती हैं। इस परम सत्य को बहुधा पाश्चात्य विचार-धारा से प्रभावित राजनीतिज्ञ भूल जाते थे, किन्तु महात्माजी इसी सत्य पर सर्वदा आचरण करते थे और कभी इसी बात से चिन्तित न होते थे कि विपक्षी के किसी प्रस्ताव में कोई कूट चाल तो नहीं है।

इस प्रकार सन् १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन गान्धी-अर्विन समझौते के फलस्वरूप समाप्त हो गया। इस सत्याग्रह का क्या परिणाम निकला ? जैसा मैं प्रारम्भ में संकेत कर चुका हूँ इस सत्याग्रह का पहला महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि देश में राजनैतिक आन्दोलन की धुरी नगर न रहकर शनैः शनैः ग्राम्य प्रदेश होने लगे। महात्माजी यह सदा कहा करते थे कि सच्चा भारत तो ग्रामों में बसता है। यह बात वे केवल इसी दृष्टि से न कहते थे कि भारत की अधिक जनता ग्रामों में बसती है। वे यह बात इस हेतु भी कहते थे कि जिन लोगों के परिश्रम पर ही अन्य सब लोगों का जीवन निर्भर करता है वे ग्रामों में ही रहते हैं। महात्माजी तो दरिद्रनारायण के पुजारी थे अर्थात्

वे यह मानते थे कि दरिद्र ही भगवान के अवतार हैं, भगवान के प्रतीक हैं, भगवान के पुत्र हैं। जो लोग इन दरिद्रों के परिश्रम से रईस बने बैठे हैं तब तक भगवान के पुत्र होने का हक नहीं रखते जब तक कि वे अपने धन को इन्हीं गरीबों की थाती नहीं मान लेते और उसका उन्हीं के हित के लिए प्रयोग नहीं करते। स्मरण रहे कि वे दरिद्रों के दरिद्रता के नाते पुजारी न थे, वे तो केवल उन लोगों के पक्षपाती थे जो ऐतिहासिक कारणों से युग विशेष में प्रकृतितः धन सम्पन्न होते हुए भी समाज की व्यवस्था के कारण दरिद्र पड़े हुए हैं। अतः इस समाज-व्यवस्था को बदलना वे अपना धर्म मानते थे। इसलिए, यह स्वाभाविक ही था कि वे शनैः शनैः इस शोषित वर्ग को राजनैतिक आन्दोलन की प्रभुत्व शक्ति तथा प्रमुख आधार बनायें एवं इन्हीं के हाथों में देश की राजनीति की बागडोर भी सँभलवा दें। १९३० का सत्याग्रह आन्दोलन इस ओर उनका पहला बड़ा कदम था। इससे पूर्व भी उन्होंने ग्राम्य प्रदेशों को महत्त्व प्रदान करने के छोटे-छोटे कदम उठाये थे। असहयोग आन्दोलन द्वारा वे भारत के ग्रामीण समुदाय को राजनैतिक आन्दोलन में किसी हद तक खींच लाये थे। किन्तु उनके उस आन्दोलन की चुनौती अधिकतर नगर में रहनेवाले और भारत का शोषण करने में अंग्रेजों की सहायता करनेवाले वकील, डाक्टरों, शिक्षकों, राजकर्मचारियों और व्यापारियों को थी। इसलिए साम्राज्य के छोटे भागीदारों के वर्ग ही के लोगों को उस आन्दोलन में प्रमुखता मिली। उन दिनों की राजनैतिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर महात्माजी के समक्ष अन्य कोई रास्ता था भी नहीं। जो लोग हिंसात्मक क्रान्ति के सम्बन्ध में मार्क्स तथा लेनिन जैसे महाक्रान्तिकारियों के विचारों से परिचित हैं वे यह जानते हैं कि वे लोग भी यह मानते थे कि इससे पूर्व कि श्रमिकों की क्रान्ति सफलतापूर्वक की जा सके यह अनिवार्य है कि देश या समुदाय विशेष का धनी वर्ग वहाँ की सामन्तशाही व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति करे।

अतः यह आश्चर्य की बात नहीं कि असहयोग आन्दोलन द्वारा महात्माजी ने यहाँ के धन्धा करनेवालों के वर्ग और अंग्रेजी सरकार के बीच में दरार डाली। जब यह बात सफलता से हो गयी तब उन्होंने अपने दूसरे कदम

द्वारा राजनैतिक आन्दोलन एवं हलचल को नगरों में केन्द्रित न रहने देकर ग्राम्य प्रदेशों में केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया। १६३० के सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा यह बात बहुत कुछ हो गयी। यद्यपि उस समय भी नगरों के ही पढ़े-लिखे राजनैतिक आन्दोलन के कर्णधार बने रहे तथापि इस बात की सम्भावना पैदा हो गयी कि कालान्तर में ग्राम्य प्रदेशों में पैदा हुए, पले तथा बड़े लोग शनैः शनैः इस क्रान्ति के कर्णधार बनने लगेंगे।

राजनैतिक आन्दोलन के ग्राम्य प्रदेश में केन्द्रित होने का परिणाम यह भी हुआ कि ग्राम्य प्रदेशों के रहनेवाले लोग अपनी शक्ति को कुछ-कुछ महसूस करने लगे। वे तब तक यही समझते थे कि वे स्वयं असहाय हैं, भाग्य के खिलौने हैं और यदि उन्हें कोई बात करानी है तो उसे वे खुशामद, प्रार्थना से ही करा सकते हैं तथा यह खुशामद एवं प्रार्थना भी सफलता से करने के लिए उन्हें पेशेवर वकीलों का ही सहारा है। यह ठीक है कि चम्पारन और खेड़ा सत्याग्रहों के कारण किन्हीं ग्राम्य प्रदेशों के लोगों में आत्मविश्वास की भावना जागृत हो गयी थी, किन्तु भारत का अधिकांश ग्राम्य प्रदेश उस आत्मनिर्भरता से सर्वथा विहीन था। जब ग्रामों में नमक और जंगल सत्याग्रह का आन्दोलन चला तब उन्हें यह विश्वास पैदा होने लगा कि यदि वे थोड़ा सा साहस करें तो वे स्वयं अपना भाग्य बदलने में सफल हो सकते हैं।

ग्राम्य प्रदेशों में राजनैतिक आन्दोलन के केन्द्रित होने का एक परिणाम यह भी हुआ कि ग्राम के लोगों को यह स्पष्ट दिखने लगा कि वे सर्वथा अनाथ नहीं हैं और भाग्य उन्हें बिलकुल भुला नहीं चुका है। इससे पूर्व नगरों और ग्रामों में अधिकतर व्यापारिक सम्बन्ध ही था इस प्रकार नगर ग्रामों का दोहन करनेवाले ही थे। वैयक्तिक झगड़ों को निपटाने के लिए भी ग्राम के लोगों को नगरों में स्थित न्यायालयों का सहारा लेना पड़ता था और नगरवासी वकीलों का मुँह ताकना पड़ता था, किन्तु नगरों और ग्रामों का अन्य प्रकार का सम्बन्ध लगभग टूट ही गया था। यदि किसी ग्राम में जमींदार या पुलिसवाले अत्याचार करते थे तो उसका प्रतिकार करने को नगरवाले ग्रामवालों की सहायता के लिए न जाते थे। सर्वप्रथम महात्माजी ने ही ग्रामों में जाकर अत्याचार के विरुद्ध वहाँ के वासियों की सहायता की थी। चम्पारन और खेड़ा

सत्याग्रह इसी हेतु किये गये थे। असहयोग आन्दोलन में भी ग्रामों के प्रति नगरवासियों का ध्यान कुछ-कुछ गया था, किन्तु नमक और जंगल सत्याग्रह के कारण तो नगरवासियों का ग्रामों से पर्याप्त घनिष्ठ सम्पर्क होने लगा और नगरवासी ग्रामों में अत्याचार रोकने में ग्रामीणों की सहायता करने लगे। इस प्रकार १९३० के सत्याग्रह ने नगर और ग्राम की टूटी हुई राजनैतिक शृंखला को पुनः स्थापित करना आरम्भ कर दिया। यहाँ यह बात भी कह देनी चाहिए कि गान्धी युग से पूर्व नगरों और ग्रामों का राजनैतिक बन्धन केवल नौकरशाही के जरिये ही था। कलैक्टर, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी और थानेदार इत्यादि इत्यादि के द्वारा ही ग्राम नगरों से बँधे हुए थे; नहीं तो ग्रामों में जीवन कैसा चल रहा है उससे नगरवालों का विशिष्ट वास्ता न था और नगरों में क्या दौर-दौरा है इससे ग्रामवासियों का कुछ वास्ता न था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि ग्राम्य प्रदेशों के जीवन की बागडोर या तो नौकरशाही के आवुर्दों के हाथ में रहे या फिर ग्रामों के जमींदारों के हाथ में रहे। इसी बात को ध्यान में रखकर मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों ने यह मत व्यक्त किया था कि ग्राम्य प्रदेशों के सहज और माने हुए नेता जमींदार समुदाय हैं (The natural & acknowledged in country areas are the landed aristocracy, p.94)। किन्तु सन् १९३० के सत्याग्रह ने ग्राम्य प्रदेशों के नेतृत्व में क्रान्ति पैदा कर दी। जमींदारों के स्थान में यह नेतृत्व किसान सभाओं, कांग्रेस कमेटियों के सदस्यों एवं नेताओं के हाथ में चला गया और अफसरों तथा जमींदारों के हाथ से नेतृत्व की बागडोर छूट गयी। ग्रामीण लोग अपनी कष्ट-कहानी अफसरों या जमींदारों को सुनाने के बजाय किसान सभाओं एवं कांग्रेस कमेटियों के कर्मचारियों को सुनाने लगे और उनकी सहायता से उन्हें दूर करने का प्रयास करने लगे। आगे चल कर तो गाँवों का महत्त्व और बढ़ा। गान्धीजी ने कांग्रेस के अधिवेशन तक ग्रामों में कराये।

इन सब दृष्टियों से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि १९३० का सत्याग्रह हमारे इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण करवट या मोड़ था। उसके पश्चात् इस देश में जन-क्रान्ति के लिए वे सब मानसिक तथा संगठनात्मक परिस्थितियाँ कायम हो गयी थीं जो किसी महाक्रान्ति के करने के लिए

आवश्यक हुआ करती हैं। महात्माजी की प्रतिज्ञा के अनुसार देश ने सन् १९२० में जो स्वतन्त्रता की यात्रा आरम्भ की थी सन् १९३० से इस यात्रा का दूसरा महत्त्वपूर्ण दौर आरम्भ हुआ।

कांग्रेस का कराँची अधिवेशन

लाहौर अधिवेशन में, अधिक ठण्ड पड़ने से, यह तय किया गया था कि अब कांग्रेस अधिवेशन बजाय दिसम्बर के मार्च के लगभग हुआ करेंगे। इस वर्ष गान्धी-अर्विन समझौता होते-होते कांग्रेस अधिवेशन की तयारियों को बहुत ही कम समय रह गया था, परन्तु कराँचीवालों ने खासकर वहाँ की म्युनिस्पैलिटी के सभापति श्री मेहता ने तैयारी का भार अपने ऊपर ले लिया। नयी व्यवस्था के अनुसार कांग्रेस का खुला अधिवेशन सन्ध्या को रखने का निश्चय हुआ था, जिससे पण्डाल न बनाना पड़े। पण्डाल न बनने से पैसे और समय दोनों की बचत होती थी और खुले में अधिक लोग बैठ भी सकते थे। इस प्रकार खुले आकाश के नीचे होनेवाला यह पहला ही अधिवेशन था।

कांग्रेस के सभापति चुने गये थे सरदार वल्लभभाई पटेल। अब अधिवेशन के पहले और उस समय के देश के क्षुब्ध वातावरण को भी देख लेना अनुपयुक्त न होगा। गान्धी-अर्विन समझौते को जनता अपनी विजय समझ फूली न समाती थी तथा उसके प्रदर्शन द्वारा वह ब्रिटिश सिविलियनों के गर्व को धक्का भी पहुँचाती थी। जनता की इस मानसिक अवस्था के कारण कांग्रेस के इस अधिवेशन में अभूतपूर्व उत्साह की आशा थी। परन्तु ता० २३ मार्च को सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर में फाँसी दे दी गयी। सारे देश में सनसनी फैल गयी तथा फाँसी के उपरान्त उन शहीदों की लाशों के प्रति किये गये दुर्व्यवहार की अफवाहों ने घोर क्षोभ उत्पन्न कर दिया। वही लोग जो अभी तक इन नौजवानों की प्राण-रक्षा के लिए किये जाने वाले गान्धीजी के प्रयत्नों की सराहना कर रहे थे, अब गान्धीजी से बहुत कुपित हो गये, मानों यह सब उन्हीं का अपराध हो। जब गान्धीजी श्री वल्लभभाई के साथ कराँची पहुँचे तो कई नवयुवक काले झण्डे और काले फूल लेकर गान्धीजी के प्रति विरोध प्रदर्शित करने आये। गान्धीजी न तो घबराए और न क्रोधित ही हुए। उन्होंने हँसकर विरोधियों के हाथ से काले

फूल ले लिये। फलस्वरूप जो विरोध प्रदर्शित करने आये थे वे उलटे पानी-पानी हो गये।

कांग्रेस ने कई प्रस्ताव पास किये जिनमें प्रमुख थे—

(१) गान्धी-अर्विन पैक्ट को स्वीकृत करने का प्रस्ताव। यह पण्डित नेहरू ने रखा, यद्यपि वे इस पैक्ट के सबसे अधिक खिलाफ थे। उस पर नेहरूजी का भाषण बड़ा मार्मिक रहा। खैर, कांग्रेस के अन्तिम लक्ष्य को स्वतन्त्रता ही बतलाते हुए यह प्रस्ताव पास हो गया।

(२) भगतसिंह आदि की मृत्यु पर गान्धीजी की इच्छानुसार "प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने को अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए" वाक्यांश के इस प्रस्ताव में जोड़ने या न जोड़ने पर बड़ी तनातनी हुई। काले फूल लेकर गान्धीजी का विरोध करनेवाले उन युवकों ने तो बड़ा होहल्ला तथा पण्डाल की सीमा के बाहर दंगा भी मचा दिया था। अन्त में इस वाक्यांश को जोड़कर ही यह प्रस्ताव पास हुआ।

(३) गोलमेज परिषद् में प्रतिनिधित्व करने के लिए कांग्रेस की ओर से अकेले गान्धीजी को ही चुना गया, क्योंकि उनका मत था कि वहाँ हाथ गिना कर तो कुछ होना ही नहीं है। यदि ब्रिटिश सरकार कुछ करना चाहती होगी तो एक ही व्यक्ति का कथन बहुत है और यदि वे लोग कुछ करना ही नहीं चाहते तो भारी भीड़ भी उन्हें मजबूर न कर सकेगी।

(४) सबसे अधिक नवीनता थी इस कांग्रेस में स्वतन्त्र भारत के समय भारतीयों के मौलिक एवं आर्थिक अधिकारों के विवेचन सम्बन्धी प्रस्ताव के पास करने में। यह प्रस्ताव नेहरूजी द्वारा बनाया गया था तथा इस प्रस्ताव से इसमें साम्यवाद की बू पाने वाले ब्रिटिश अधिकारी और पत्र बहुत व्याकुल हुए थे। कुछ मनचलों ने तो इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला था कि रूस ने कांग्रेस के अधिकारियों को रिश्वत देकर फोड़ लिया है।

करांची अधिवेशन की कुछ अप्रिय घटनाओं का उल्लेख भी कर देना अनुचित न होगा। कानपुर के साम्प्रदायिक दंगे में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के मारे जाने से वैसे ही उदासी के बादल छा गये जैसे सन् १९२६ की गौहाटी कांग्रेस के समय एक मुस्लिम द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के समाचार के

छाये थे। श्री गणेशशंकर ने हिन्दुओं के क्रोध से कई मुस्लिम परिवारों की रक्षा की थी, उन्हीं मुसलमानों ने उन्हें धोखा देकर मार डाला। स्मरण रहे कि कानपुर की जनता में एक बटा छः भाग मुसलमान हैं तथा उन्होंने दंगा आरम्भ किया था और उस दंगे में पुलिस ने भी कोई सहायता नहीं दी। इससे इसके पीछे कोई गुप्त हाथ दिखायी देता था। अस्तु गणेशशंकरजी की देश-भक्ति और कर्तव्य-भावना की प्रशंसा करते हुए उनके बलिदान पर शोक प्रस्ताव भी पास किया गया।

एक दूसरी खेदजनक घटना हुई, वर्किंग कमेटी के चुनाव पर। नियम तो यह था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इन सदस्यों को चुनती थी, परन्तु ऐसी परम्परा पड़ गयी थी कि उस वर्ष का सभापति ही अपनी वर्किंग कमेटी के सदस्य चुन लेता था तथा उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पास कर देती थी। इस वर्ष सरदार पटेल ने कार्यकारिणी के १५ सदस्य चुने। उन्होंने योग्य व्यक्ति ही चुने होंगे, पर इस छोटी-सी कमेटी में सब हितों को प्रतिनिधित्व देना कठिन था। बस इसी बात को लेकर कि हमारा कोई प्रतिनिधि नहीं लिया गया, कांग्रेस के अधिकांश मुसलमान, "अहरर पार्टी या मजलिसें - अहरर" की ओर क्रमशः झुक गये। आगे चलकर साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के परिचायक ये लोग जिस हद तक गये कम से कम करांची अधिवेशन के समय इस छोटी बात का इतना बड़ा परिणाम नहीं सोचा गया था। पर इतना सत्य था कि यह विरोधी दल केवल इसी बात पर अलग नहीं हुआ था, यह तो बहती हुई हवा का उपलक्षण मात्र था, तथा इसके पीछे कोई "गुप्त हाथ" था। कितने आश्चर्य की बात है कि ब्रिटिश अधिकारी पण्डित नेहरू के "मौलिक और आर्थिक अधिकार" के प्रस्ताव के पीछे "गुप्त हाथ" देखते थे। यह उनका भ्रम था तथा यह इस बात को सिद्ध करता है कि हम प्रत्येक को अपने दृष्टिकोण से ही जाँचते हैं।

करांची के कांग्रेस अधिवेशन के महाकोशल के प्रतिनिधि आदि बम्बई से जहाज में गये थे। मेरी वह पहली समुद्र-यात्रा थी और पहली यात्रा में ही मुझे ज्ञात हो गया कि सबसे सुखद यात्रा जहाज की यात्रा ही होती है।

जिस जहाज से महाकोशल के लोग यात्रा कर रहे थे उससे अन्य प्रान्तों

के भी अनेक प्रतिनिधि आदि । उस समय की राजनीति पर विचार करने के लिए इन प्रतिनिधियों की कई बैठकें हुईं । चूँकि मैं महाकोशल प्रदेश कांग्रेस का सभापति था और एक सरकार भक्त कुटुम्ब का होते हुए भी पहली बार जेल जाकर लौटा था इसलिए मैं ही इन बैठकों का सभापतित्व करने के लिए आमन्त्रित किया गया । मैंने यह भी देखा कि कराँची कांग्रेस में भी मैं अन्य कांग्रेस अधिवेशनों की अपेक्षा अधिक ध्यान आकृष्ट करता हूँ । इसका भी कदाचित उपर्युक्त कारण ही था ।

प्रान्तीय राजनैतिक परिषद्

रायपुर की प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के अधिवेशन में परिषद् के आगामी अधिवेशन का निमंत्रण सागर जिले वालों ने दिया था। गान्धी-अर्विन समझौते के परिणामस्वरूप सत्याग्रह समाप्त हुआ था अतः जैसा पहले कहा गया है, समस्त देश में कांग्रेसवादियों का उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था। सागर के कांग्रेस जन भी बड़े जोश में थे और उन्होंने कांग्रेस के करांची के अधिवेशन के बाद प्रान्तीय परिषद् की बड़ी धूमधाम से तैयारी की। परिषद् के साथ अन्य कई आयोजन भी हुए जिनमें मुख्य था प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन। इसी समय नयी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक भी नये पदाधिकारियों को चुनने के लिए बुलायी गयी।

परिषद् के सभापति पं० रविशंकरजी शुक्ल चुने गये, और प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र।

यद्यपि रायपुर की परिषद् को अभी लगभग एक वर्ष ही बीता था, परन्तु सारा वर्ष सत्याग्रह आन्दोलन में बीतने के कारण, तथा सभी कांग्रेस जनों के जेल में रहने की वजह से, ऐसा जान पड़ता था जैसे एक वर्ष ही न बीत बहुत लम्बा समय बीत गया है। यह एक मनोवैज्ञानिक वैचित्र्य है कि बीता हुआ समय चाहे उतना ही क्यों न हो, मन को उसकी दीर्घता और लघुता का अनुभव अलग-अलग परिस्थितियों के अनुरूप होता है। इसीलिए अनेक बार कहा जाता है कि एक-एक क्षण एक-एक वर्ष से जान पड़ते थे अथवा वर्षों क्षणों के सदृश बीत गये। समय के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें केवल कही नहीं जातीं, मन इस प्रकार का अनुभव ही करता है।

रायपुर के सदृश सागर की परिषद् का अधिवेशन भी गरमियों में ही था। गरमी में रायपुर में यदि मन युद्धकालीन गरमी से व्याप्त था तो सागर में समर की जीत की गरमी से। प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों से आनेवालों की अच्छी संख्या थी। मुझे सागर की ही सन् १९२० की ऐसी ही परिषद् और

ऐसे ही सम्मेलन का स्मरण आया। उस बात को दस वर्ष का समय बीत चुका था। इन दस वर्षों में मेरे, प्रान्त के और देश के जीवन में कितना अन्तर पड़ गया था। मेरा सार्वजनिक जीवन सागर में उसी परिषद् के अवसर पर होने वाले प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आरम्भ हुआ था। उस समय कितना मतभेद था मेरे सम्बन्ध में लोगों के विचारों में। कुछ लोग मेरे सार्वजनिक जीवन में आने से बड़े प्रसन्न थे, उन्हें मुझ से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं और कुछ लोग बड़े अप्रसन्न, वे समझते थे कि मैं प्रान्त पर कुछ मनचलों के द्वारा जबर्दस्ती लादा जा रहा हूँ। दोनों प्रकार के लोग ईमानदार थे। तो हम देखते हैं कि किसी भी नये आदमी के विषय में लोग ईमानदारी से भी किस प्रकार एक दूसरे के ठीक विरुद्ध विचारधाराओं में गोते लगाया करते हैं और जीवन के उत्कृष्ट क्षेत्रों तक में उनके आगमन का किस प्रकार विरोध हुआ करता है। अपने जीवन के बाद मेरा ध्यान प्रान्त के जीवन पर गया। दस वर्ष पहले ही यथार्थ में इस प्रान्त का आधुनिक काल का सार्वजनिक जीवन आरम्भ हुआ था। और इन दस वर्षों में कितना आगे बढ़ गया था यह प्रान्त। असहयोग और सत्याग्रह के द्वारा महात्मा गान्धी का सन्देश गाँव-गाँव तथा घर-घर पहुँच गया था और इस प्रान्त की जनता ने जितनी ईमानदारी के साथ गान्धीजी का अनुसरण किया था वैसा कम प्रान्तों में हुआ था। प्रान्त की बात सोचते-सोचते मेरा ध्यान समूचे देश पर गया। देश भी गान्धीजी के नेतृत्व ग्रहण करने के पहले कैसी सुप्त दशा में था। अंग्रेजी राज्य सर्वशक्तिमान माना जाता था। अंग्रेजी राज्य की बुरी कारंवाइयों पर डरते-डरते कोमल-कोमल शब्दों में कुछ कह दिया जाता था। निहत्थी और अशिक्षित जनता की कृति क्या हो, यह किसी की समझ में ही न आता था। गान्धीजी ने यद्यपि एक वर्ष में स्वराज्य मिलने की बात कही थी, और उनकी शर्तें पूरी हो जातीं तो एक वर्ष में स्वराज्य मिल भी जाता, पर स्वराज्य न मिलने पर भी देश कहाँ का कहाँ पहुँच गया था, केवल राजनैतिक क्षेत्र में नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में।

सागर की परिषद् और सम्मेलन दोनों के अधिवेशन बड़ी सफलतापूर्वक खूब उत्साह से हुए। एक युवक सम्मेलन भी हुआ, जिसके सभापति बम्बई के श्री युसुफ मेहर अली थे। एक प्रान्तीय महिला सम्मेलन भी हुआ, इसकी सभानेत्री थीं नागपुर के श्री सालवे साहब की पत्नी। मेरी पत्नी भी इस परिषद्

में मेरे साथ सागर गयी थीं। मुझे यह देखकर मन ही मन सन्तोष हो रहा था कि अब मेरे सार्वजनिक जीवन से उन्हें भी अनुराग हो चला था। सागर के इन आयोजनों में सबसे अच्छा भाषण था जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पद से द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने दिया था।

इन तमाम आयोजनों में जो उत्साह था उसके कारण प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में पूर्ण एकता की भावना जान पड़ती थी, पर यथार्थ बात ऐसी नहीं थी। प्रान्त में एक ऐसे दल का भी निर्माण हो रहा था जो हम लोगों का विरोधी था। इसका पता लगा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के समय जब नये पदाधिकारियों तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का चुनाव हुआ। यद्यपि मैं फिर से सर्वमत से प्रान्तीय अध्यक्ष चुन लिया गया तथापि इस बात का प्रयत्न हुआ कि कोई अन्य व्यक्ति सभापति चुना जाय; पर विरोधियों को कठिनाई तो यह हुई कि प्रान्त में उन्हें कोई योग्य व्यक्ति मेरे विरुद्ध खड़ा होने के लिए मिला ही नहीं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के चुनाव के समय इस बात का भी पता लग गया कि यह विरोध यथार्थ में मेरा न होकर द्वारकाप्रसादजी मिश्र का था, क्योंकि उनके अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने जाने पर भी उन्हें बहुत कम वोट मिले थे। उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का चुनाव साधारण बहुमत से होता था, सिंगिल ट्रान्सफरएबिल वोट से नहीं। विरोधियों ने यह कहा कि मेरे सभापतित्व का विरोध ही इसलिए हुआ कि लोगों को यह विश्वास था कि यदि मैं प्रान्तीय सभापति चुना गया तो मैं मिश्रजी को फिर मंत्री बनाऊँगा अतः मैं सभापति ही न चुना जाऊँ।

मिश्रजी हमारे प्रान्त की राजनीति में प्रत्यक्ष में सन् २६ के चुनावों में आये। उस समय उनका सबसे अधिक विरोध हुआ था। तभी से यह माना जाता था कि मैं उन्हें प्रान्त पर जबर्दस्ती लाद रहा हूँ। सार्वजनिक क्षेत्र में आने पर आरम्भ में मेरा भी थोड़ा-बहुत विरोध हुआ था, पर उसमें और मिश्रजी के विरोध में अन्तर था। मेरा विरोध शीघ्र ही समाप्त हो गया, पर मिश्रजी का विरोध न जा रहा था। कदाचित् इसके दो मुख्य कारण थे—एक तो मिश्रजी का प्रखर स्वभाव और दूसरा यह माना जाना कि वे दलबन्दी कर सदा किसी को उठाने और किसी को गिराने का यत्न किया करते हैं।

फिर से काले बादल

करांची अधिवेशनवाले परिच्छेद में कहा गया है कि गान्धी-अर्विन पैक्ट की प्रतिक्रिया स्वरूप जो जनता में उत्साह की भावना उमड़ी थी और उसका प्रदर्शन वह जिस प्रकार करती थी, वह सिविलियनों और पुलिस के लिए बर्दाश्त के बाहर था। लार्ड अर्विन के चले जाने पर लार्ड विलिंगडन आये। वे थे तो मिष्टभाषी, परन्तु सिविलियनों का साथ देकर, बाह्य रूप से समझौता न तोड़ते हुए भी, भीतर ही भीतर अपनी घात लगाये रहते थे।

बात यों थी कि पहले तो संघर्ष और सत्याग्रह के कारण और फिर गान्धी-अर्विन पैक्ट होने से वही कांग्रेस संगठन जिसकी हस्ती असहयोग आन्दोलन के पश्चात् बढ़ती ही जाती थी, देश भर का सबसे प्रधान संगठन हो गया था। कांग्रेसी तिरंगा झण्डा कांग्रेसी दफ्तरों और मकानों पर फिर से लहराने लगा था तथा कांग्रेसी पुलिस से छोटी से छोटी भी जो वस्तु भी उन्होंने जप्त कर ली थी, माँग रहे थे और यह माँग वे करते थे बड़ी शान के साथ। राष्ट्रीय ध्वज का छोटी से छोटी बात पर बड़े से बड़ा जुलूस निकलता। उस जुलूस में महान् उत्साह से राष्ट्रीय गान गाये जाते। इतना ही नहीं, जब कांग्रेसवादी जुलूस निकालते और जुलूस के बाद सभा करते तब अपनी वीरता तथा सफलता पर व सरकार की कायरता तथा असफलता पर न जाने क्या-क्या कहते और सरकार को चुनौतियाँ भी कम न देते। पुलिस को सभी सभाओं में कोसा जाता। जनता तालियाँ बजा-बजा कर इनकी बातों को दाद देती। जनता ने अपनी चाल-ढाल से यह व्यक्त कर दिया था कि अब उस पर सरकार का रोब या भय कुछ भी नहीं रह गया है।

कार्यकर्त्ताओं और जनता के इन आचरणों से सिविलियनों को तो ऐसा लगा कि उनके सिर से पगड़ी गिर गयी है और पुलिस तो तिलमिला ही उठी। कल तक जिस पुलिस ने इन कार्यकर्त्ताओं और जनता पर अमानुषिक अत्याचार किये थे वह इस समझौते के कारण लाठी चार्ज के लिए खुजलाते हाथों को

रोक कर कांग्रेसवादियों की ओर टुकुर-टुकुर देखती रहती। कितना अपमान का घूँट पीना पड़ता इन वेचारों को, जिन्होंने निर्जीव टुकड़ों के लिए अपनी अन्तरात्मा को भी विदेशियों के हाथ में बेच दिया था। नौकरशाही ने सोचा कि उनकी तो सारी साख ही उठ गयी है। यह हो क्या रहा है ? कहीं कांग्रेसी अपनी जप्त जायदादें वापस माँगते हैं, कहीं किसी स्वयंसेवक के छुड़वाने के लिए आकाश-पाताल एक करते हैं, कहीं किसी नौकरी से अलग किये गये सत्याग्रही को पुन: बहाल करने के लिए जोर डालते हैं।

ऊपरी स्तर पर भी इस पर सरकारी प्रतिक्रिया हुई। वाइसराय आते हैं और चले जाते हैं पर सेक्रेटरी वही रहता है। अतः लाख प्रयत्न करने पर भी अन्त में चलती सेक्रेटेरियट की ही है। फिर इस बार तो वाइसराय भी उसी मत के मिल गये थे। लार्ड विलिंगडन स्वयं भी लार्ड अर्विन के काम को धो डालना चाहते थे। उन्होंने इस समझौते के समय में जहाँ एक ओर दमन के लिए पूरी तैयारी कर ली वहाँ कैदियों के छोड़ने में कंजूसी भी कम न की तथा देश में यत्र-तत्र लाठी चार्ज तथा गोली काण्ड भी करवाते रहे। स्थानीय अफसर तथा पुलिस को ऐसे वाइसराय से सहायता मिली और वाइसराय को ऐसे अफसरों से तथा पुलिस से। पुलिस तो सबसे एक कदम आगे थी।

इसका पता एक घटना से लग जायगा। पूर्वी गोदावरी (आन्ध्र) के बादं पल्ली में पुलिस ने महज इसलिए गोली चलाकर चार व्यक्तियों को मार डाला कि एक व्यक्ति ने अपने मोटर से कांग्रेस झण्डा हटाना स्वीकार नहीं किया था। गान्धीजी ने इन बातों के कारण गोलमेज परिषद् में जाना स्थगित कर दिया। पर वाइसराय को लन्दन का यह आदेश भी था कि जिस तरह भी हो वे गान्धीजी को गोलमेज परिषद् में भेजें अतः एक ओर तो यह गड़बड़ी चलती रही और दूसरी ओर उन्होंने गान्धीजी से अनुनय-विनय भी जारी रखी।

यहाँ कांग्रेस कार्यकारिणी की भी यही राय रही कि गान्धीजी लन्दन अवश्य जायँ और वह भी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में। कार्य-कारिणी का यह निर्णय अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण था। इस निश्चय के कारण सरकार की यह आशा धूल में मिल गयी कि गोलमेज परिषद् में सम्मिलित

होनेवाले कांग्रेस प्रतिनिधियों में भी फूट डालकर कांग्रेस को कमजोर किया जा सकेगा। गान्धीजी के लन्दन रवाना होने के पूर्व देश में होनेवाले दमन के कारण अनेक विघ्न आये पर किसी तरह अन्त में गान्धीजी गोलमेज परिषद् में भाग लेने लन्दन रवाना हो ही गये। लन्दन में गोलमेज परिषद् चलती रही और यहाँ यत्र-तत्र दमन भी चलता रहा।

वहाँ गोलमेज परिषद् में गान्धीजी ने जाकर देखा कि इस परिषद् से कुछ भी होना जाना नहीं है। कांग्रेस की ओर से अकेले गान्धीजी थे। गोलमेज परिषद् के शेष प्रतिनिधि अधिकतर सम्प्रदायवादी दलों के नामजद किये गये थे। कांग्रेस की ओर से एक भी मुसलिम प्रतिनिधि को नहीं बुलाया गया, क्योंकि दूसरे मुसलमानों ने उसका विरोध किया था। ऐसा लगता था कि सब बातें पहले से ही सधी-बदी थीं, क्योंकि वहाँ किसी बात पर भी एकमत होना असम्भव था। एकता तो अलग रही, उल्टा अंग्रेजों, मुसलमानों और हरिजनों ने मिलकर अपना एक गुट बना लिया। प्रधान मंत्री मैकडानल्ड भी अपनी शीलता का बाना छोड़कर असली रूप में प्रकट हो गये। आपसी फूट का बहाना लेकर साम्प्रदायिक मसले के ऊपर गोलमेज परिषद् की नाव चकनाचूर हो गयी। फिर भी गान्धीजी के अकेले होते हुए भी उन्होंने गोलमेज परिषद् में जो भाषण दिये वे उस काल की भारतीय इतिहास की अद्वितीय साम्रगी हैं।

साम्प्रदायिक मसले पर मैकडानल्ड का जो फैसला हुआ उसमें मुसलमानों की प्रायः सब शर्तें पूरी कर दी गयीं और हरिजनों के लिए पृथक चुनाव की व्यवस्था होगी, यह संकेत किया गया। हिन्दू और सिख इस बात पर बहुत क्षुब्ध हुए तथा गान्धीजी ने हरिजनों के मामले पर अपने प्राणों की बाजी लगा देने की बात कही, परन्तु अंग्रेजों ने, जो शायद गान्धीजी के असली रूप से अभी भी अपरिचित थे, इसे गान्धीजी की बन्दरघुड़की समझकर नक्कारखाने में तूती की आवाज जैसा नगण्य माना। गोलमेज परिषद् में भारत से जानेवाले जो समझदार लोग थे वे सरकार की कुछ न कर आपस में फूट बढ़ानेवाली नीति को समझ गये तथा उन्होंने अन्तिम प्रयत्न स्वरूप सर आगा खाँ को अपना नेता बनाकर एक संयुक्त विधान तैयार पेश किया, पर बात तो दूसरी ही थी,

फिर इनकी भी कौन सुनता ? जब गोलमेज परिषद् का वह सत्र समाप्त हो गया तब खाली हाथ महात्माजी भारत वापस लौटे। खाली हाथ मैं इस दृष्टि से कहता हूँ कि वे अपने साथ ऐसा कोई समझौता न ला रहे थे जिसे कांग्रेस सरकार स्वीकार कर सके। किन्तु यहाँ यह कह देना उचित है कि चाहे अंग्रेजों से कोई समझौता न हुआ हो पर महात्माजी का गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होना निरर्थक न हुआ था। भारत और अंग्रेजों के बीच राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होने के दिन से लेकर अब तक के इतिहास में यह पहला ही अवसर था जब भारतीय राज्य-क्रान्ति का नेता तथा प्रतीक इंगलैण्ड की सरकार से बराबर के दर्जे में बैठकर बात कर रहा था। इससे स्पष्ट था कि चाहे अभी भारत में अंग्रेजी राजशक्ति के समतुल्य कोई अन्य राजशक्ति पैदा नहीं हुई थी, किन्तु तो भी यहाँ ऐसी प्रतिद्वन्दी शक्ति का जन्म हो रहा था, और वह भी ऐसी शक्ति का जिसे इच्छा या अनिच्छा से अंग्रेजों को मानना ही पड़ता था। अतः गोलमेज परिषद् में महात्माजी का भाग लेना तथा वहाँ समस्त इंगलैण्ड एवं पृथ्वीमण्डल के लोगों की आँखों के सामने आना इस बात की घोषणा थी कि भारत से अंग्रेजी साम्राज्य के उठने का दिन अब दूर नहीं है। अंग्रेजों ने महात्माजी का इतना आदर-सत्कार किया, उनकी इतनी प्रशसा की कि किसी अन्य साधारण राजनीतिज्ञ का दिमाग उससे फिर जाता और वह अंग्रेजों की चालों में फँस जाता, किन्तु महात्माजी के लिए तो भर्तृहरि का यह वचन था कि —

निन्दनु नीति निपुणाः यदिवा स्तवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वायथेष्टम्
अद्यैवमरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

अक्षरशः सत्य था। इसलिए अंग्रेजों की वह सब प्रशंसा उन्हें छू तक न सकी। वे अपनी मूलभूत माँगों पर अटल रहे और उन्हें विनम्र किन्तु दृढ़ शब्दों में रखते रहे। लन्दन में एकत्रित संसार भर के राजनैतिकों तथा पत्र-प्रतिनिधियों ने यह देख लिया कि भारतीय राज्य-क्रान्ति का यह प्रतीक एवं दूत कितना मधुर, कितना विचारवान्, कितना मानव-प्रेमी, कितना उदार है।

इससे उन्हें इस बात का भी आभास हो गया कि भारत की राज्य-क्रान्ति कितनी अनोखी, कितनी अतिमानवी है। यद्यपि इंग्लैण्ड के कट्टर साम्राज्यवादी चर्चिल को यह बहुत बुरा लगा कि भारत का यह "नंगा फकीर" इंग्लैण्ड के राजमन्दिर में गया, किन्तु संसार भर के स्वतन्त्रता-प्रेमियों को यह स्पष्ट हो गया कि नवीन मानवता का सच्चा प्रतीक यह नंगा फकीर ही है। भारत के अन्य दलों के दूसरे अनेक प्रतिनिधि गोलमेज परिषद् में बुलाये गये थे पर जैसे सूर्य के समक्ष सब तारागण तथा चन्द्र ज्योतिहीन हो जाते हैं वैसे ही भारतीय राज्य-क्रान्ति के इस सूर्य के सामने ये सब तथाकथित भारतीय नेता द्युतिहीन हो गये। इंग्लैण्ड तथा पृथ्वी के अन्य देशों के लोगों को यह भली भाँति स्पष्ट हो गया कि भारत में यदि शान्ति होनी है तो वह तभी हो पायेगी जब अंग्रेजी साम्राज्य की इस विरोधी शक्ति से संधि हो जाये। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि लन्दन में होनेवाली गोलमेज परिषद् ने भारतीय समस्या को अंग्रेजी जनता के समक्ष तो पूर्णरूपेण रख ही दिया साथ ही उसे संसार के राजनैतिक रंगमंच पर भी लाकर खड़ा कर दिया।

यहाँ भारत में दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ रही थी। सरकार कोई न कोई बहाना ढूँढकर गान्धी-अर्विन समझौता भंग कर कांग्रेस से बदला लेना चाहती थी। बंगाल में, जहाँ क्रान्तिकारियों का सदा जोर रहा है, हालत बहुत नाजुक हो गयी थी। संयुक्त प्रान्त में किसानों की हालत इतनी खराब थी कि वे कर देने में असमर्थ थे। सरकार संयुक्त प्रान्त के किसानों के लिए एक तो कोई रियायत करना ही नहीं चाहती थी और यदि करती भी तो नाम मात्र की। फिर वह कांग्रेस के कहने से कुछ करे यह तो कल्पना करने की भी बात न थी, क्योंकि इससे किसानों में कांग्रेस का रोब बढ़ जाता। सीमाप्रान्त की हालत भी ठीक न थी। हमारे महाकोशल प्रान्त में भी किसानों की परिस्थिति की जाँच के लिए प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यकारिणी ने एक कृषक जाँच कमेटी का निर्माण किया था। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सभापति होने के कारण मैं ही इस कमेटी का अध्यक्ष था। इस कमेटी ने महाकोशल के उत्तरीय जिलों का बड़ा व्यापक दौरा कर किसानों पर किये गये सरकारी अफसरों की ज्यादती की एक ब्यौरेवार रिपोर्ट तैयार की थी। फिर से काले बादल छा रहे थे।

महात्माजी के भारत लौटने से पहले ही लार्ड विलिंगडन ने यह योजना बना ली थी कि कांग्रेस की सब अखिल भारतीय, प्रादेशिक, नगर और ग्राम समितियों को अवैध घोषित कर दिया जाय और सारे कांग्रेस जनों को जेलों में ठूँस दिया जाय। उनका यह विचार था कि इन नेताओं को जेल में बन्द कर देने से जनता के लिए कोई मार्ग प्रदर्शक न रहेगा और नेता-विहीन जनता किसी प्रकार की राजनैतिक हलचल न कर सकेगी। सम्भवतः उनकी यह भी मान्यता थी कि देशभर में गड़बड़ करनेवाले ये सक्रिय कांग्रेसी ही हैं, अन्य लोग या तो सरकार की ओर हैं या फिर उदासीन। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी सोचा कि यद्यपि अहिंसात्मक आन्दोलन होने के कारण इसमें भाग लेनेवालों को प्राण-दण्ड देकर अन्यों को भयभीत नहीं किया जा सकता तो भी कड़ी सजाएँ और एक बड़ी रकम के जुर्माने लगाकर इनमें भाग लेनेवालों को आर्थिक तथा शारीरिक दृष्टि से बरबाद अवश्य किया जा सकता है। उन्होंने यह समझ लिया कि इन दो हथकण्डों से वे कांग्रेस को सर्वदा के लिए समाप्त कर देंगे। इंग्लैण्ड की सरकार को उन्होंने यह आश्वासन दे दिया कि वे कांग्रेस को दो सप्ताह में मिटा देंगे। उनकी यह आशा वृथा हुई। यद्यपि उस समय जनता की मानसिक दशा संघर्ष के लिए तैयार न थी, किन्तु क्षणभर में ही उसने उस विश्वासघाती हमले का करारा जवाब दिया।

सन् ३२ के सत्याग्रह का हमारे प्रान्त में अद्भुत आरम्भ

जैसा पिछले अध्याय में कहा गया है गान्धीजी के आने के पहले ही सरकार की ओर से आक्रमण आरम्भ हो गया था। बंगाल में दमन-चक्र चल रहा था। सीमाप्रान्त में ख़ान बन्धु तथा अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे एवं उन्हें नजरबन्द करके प्रान्त के बाहर भेज दिया गया था। युक्त प्रान्त में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा शेरवानी सा० तो गिरफ्तार हो ही चुके थे, गान्धीजी के विलायत से लौटने पर बम्बई में गान्धीजी से मिलने को जाते हुए पण्डित ज़वाहरलाल नेहरू को इलाहाबाद से आगे एक छोटे से स्टेशन पर डाक गाड़ी रुकवाकर गिरफ्तार कर लिया गया।

बम्बई में गान्धीजी का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उन्होंने लोगों से भारत के समाचार सुन कर समझ लिया कि सरकार इस बार खुल कर दमन करना चाहती है। गान्धीजी ने वाइसराय महोदय से भेंट करने के लिए अनुमति माँगी, परन्तु वाइसराय ने उनसे मिलना स्वीकार न किया। सामूहिक रूप से सत्याग्रह का अवसर तो था ही नहीं अतएव इस बार कोई अपील नहीं निकाली गयी। लार्ड विलिंगडन की गर्वोक्ति थी कि वे सारा आन्दोलन केवल दो हफ्तों में कुचल कर रख देंगे। इसके लिए उन्होंने भयंकर दमन की पूर्ण तैयारी कर ली थी, दूसरे जिन्हें वे सारे उत्पातों की जड़ समझते थे, उन नेताओं को भी बन्द कर दिया था। गान्धीजी को भी बम्बई में ही गिरफ्तार कर लिया गया। और इसके बाद तुरन्त ही डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद आदि भी गिरफ्तार कर लिये गये। अब सरकार खुलकर खेलने के लिए तत्पर हो गयी, परन्तु उसने आजादी के दीवानों के उत्साह को गलत आँका था। यह आन्दोलन दो वर्ष तक चलता रहा। नित्य नये नेता निकलते आते थे। कार्यक्रम तो सरकार ही देती थी। उसने आर्डिनेंसों की भरमार कर दी तथा कांग्रेस संस्था को गैर कानूनी करार देते हुए उसे सहायता देनेवालों को भी दण्ड का भागी बना

दिया । जुलूस, सभाओं आदि पर तो रोकथाम ही थी । यह सब होने पर भी जनता जुलूस निकालती, सभाएँ करती, तथा मार-पीट और गोलियों की बौछार को भी शान्तिपूर्ण ढंग से सहती । अब वह १९२१ की अनुशासन विहीन जनता न थी अब तो सत्याग्रह की सफलता के मूलमन्त्र अहिंसा और अनुशासन उसकी नस-नस में भर गये थे । सरकार ने जब यह देखा कि मध्यम श्रेणी के लोग आर्थिक भार नहीं सह सकते तो जेल की सजा के साथ ही बड़े-बड़े जुर्माने के दण्ड दिये जाने लगे । लोगों की छोटी-मोटी जायदादें जप्त और कुर्क की जाने लगीं । कांग्रेसी मकान, दफ्तर जप्त किये गये तथा कांग्रेस के हिसाब में जो बैंक में रुपया जमा थे, वे भी जप्त कर लिये गये । फिर भी अब जनता का उत्साह इतना था कि कहीं न कहीं गुप्त दानों से रुपया आता रहा । यह हमारे लिए सौभाग्य की बात थी कि पैसों के अभाव में कभी आन्दोलन धीमा नहीं पड़ा । दूसरी बात जो इस बार सरकार ने की थी वह थी जेलों में अत्यधिक कठोर व्यवहार । और सरकार के इस सारे दमन का प्रचार होकर आन्दोलन को किसी प्रचार की सहायता न मिले इसलिए समाचारपत्रों से जमानतें माँगी गयीं तथा कई की जमानतें जप्त की गयीं । कई समाचारपत्रों ने तो सरकारी भय से प्रकाशन ही बन्द कर दिया । पर हर बीमारी की कोई न कोई दवा तो निकल ही आती है । देश सत्याग्रह की प्रगति से अवगत रहे और जनता का आन्दोलन समाप्त हो जाय यह सम्भव न था । यद्यपि हमारा आन्दोलन सदा ही स्पष्ट और खुला रहता था, पर सरकार के कारण अब उसने गुप्त रूप भी धारण किया । इस गुप्त कार्य करने में स्वयंसेवकों ने खुफिया पुलिस को भी मात कर दिया । सत्याग्रह आन्दोलन के जनता को समाचार देने के लिए साइक्लोस्टाइल किये हुए बुलैटीन निकलने लगे । इनमें सत्याग्रह के समाचार और भावी कार्यों की सूचना रहती । इन्हें कौन तैयार करता है और ये कहाँ छपते हैं इसका पता सरकार की दक्ष खुफिया भी न लगा पाती । सरकार ने कांग्रेसियों को सहायता देना अपराध घोषित किया था, परन्तु जनता भूमिगत कार्यकर्त्ताओं की रक्षा, व्यवस्था आदि सब कर रही थी । सरकार की परेशानी और लोगों के उत्साह को दर्शाने के लिए सन् ३२ के कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन की घटना ही पर्याप्त है ।

सरकार चाहती थी कि कांग्रेस का यह अधिवेशन न हो, पर देशभक्त यह अपने लिए कलंक की बात समझते थे कि नेताओं की गैरहाजिरी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भी न हो। घोषित किया गया कि अप्रैल में दिल्ली के चाँदनी चौक में मालवीयजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन होगा। सरकार ने मालवीयजी को तो गिरफ्तार किया ही साथ ही दिल्ली की ओर आने वाले विभिन्न प्रतिनिधियों को भी ढूँढ-ढूँढ कर पकड़ना आरम्भ किया। कुछ ऐसी अफवाह उड़ा दी गयी कि अधिवेशन चाँदनी चौक में न होकर नयी दिल्ली में कहीं होगा, और जब पुलिस नयी दिल्ली में चक्कर काटती रही तब, आस-पास की गलियों में छिपे कांग्रेस के लगभग ५०० प्रतिनिधि चाँदनी चौक में घण्टाघर के पास आकर जमा हो गये। मालवीयजी की अनुपस्थिति में अहमदाबाद के सेठ रणछोड़दास को सभापति चुना गया तथा उनके संक्षिप्त भाषण से अधिवेशन आरम्भ हो गया। पुलिस खबर पाकर भागती हुई आयी तथा भीड़ को मार-पीट कर भगा दिया, परन्तु अधिवेशन तो हो ही चुका था। यह एक घटना लोगों की भावना का पता बताती है कि हवा किस ओर बह रही थी। लार्ड विलिंगडन की गर्वोक्ति धरी रह गयी, महीनों बीतते गये और सरकारी दमन-चक्र के बावजूद भी सत्याग्रह चलता रहा।

हमारे प्रान्त में इस आन्दोलन का आरम्भ एक बड़े अद्भुत ढंग से हुआ।

बम्बई में गान्धीजी की गिरफ्तारी के कारण सन् ३२ की ४ जनवरी को देश भर में हड़ताल रही। जबलपुर में भी हड़ताल थी। गान्धीजी को उनकी गिरफ्तारी पर बधाई देने हमने उसी दिन जबलपुर नगर में सार्वजनिक सभा बुलायी।

जबलपुर में सार्वजनिक सभा रात को ८ बजे होती है। जनवरी की कड़ाके की सरदी पड़ रही थी और तिलक भूमि के खुले मैदान में इस सभा का आयोजन था। सभा के आरम्भ होने के १५, २० मिनिट पूर्व हमें सूचना मिली कि सभास्थल पर आज पुलिस का बहुत बड़ा दल पहुँचा है और उसमें घुड़सवार पुलिस भी है। इस संवाद से हमें कुछ आश्चर्य हुआ। यद्यपि मैं सदा ठीक समय सभा में पहुँचा करता था, परन्तु यह संवाद सुनते ही आज पं० द्वारकाप्रसाद

जी मिश्र और मैं कोई दस मिनिट पहले तिलक भूमि पर पहुँच गये। वहाँ पहुँच हमने देखा कि सारी तिलक भूमि जनता से भरी हुई है, कहीं तिल भर जगह खाली नहीं, एक ओर पुलिस का एक बहुत बड़ा दल खड़ा हुआ है और उनमें घुड़सवार पुलिस भी काफी संख्या में है। पुलिस के साथ शहर कोतवाल और कई पुलिस इन्स्पैक्टर भी थे।

आजकल शहर कोतवाल थे श्री दिलावर हुसैन। बड़े ही सज्जन और मिलनसार व्यक्ति। मिश्रजी जबलपुर म्युनिसपैलिटी के सभापति थे, इस नाते कोतवाल साहब का मिश्रजी से बहुत काम पड़ता था और वे मिश्रजी के मित्र हो गये थे।

उन दिनों नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति श्री लक्ष्मणसिंहजी चौहान थे, परन्तु उन दिनों ऐसी प्रथा थी कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सभापति जब जबलपुर में उपस्थित रहता तब सार्वजनिक सभा का सभापतित्व वही करता था। चौहानजी को भी पुलिस के आगमन का हाल मालूम हो गया था और वे भी सभास्थल पर आ गये थे।

मिश्रजी, चौहानजी और मैं पुलिस की इस उपस्थिति पर कुछ क्षण विचार करते रहे और चूँकि सभा आरम्भ होने में अभी ७-८ मिनट की देरी थी, अतः शहर कोतवाल से पुलिस की इस उपस्थिति का रहस्य जानने हमने मिश्रजी को कोतवाल के पास भेजा।

कुछ ही देर में मिश्रजी ने लौटकर हमें बताया कि कोतवाल साहब को सरकार ने यह आज्ञा देकर भेजा है कि ज्यों ही सभा में कुछ भाषण हो जायँ त्योंही सभा गैर कानूनी घोषित कर नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जाय और सभा यदि भंग न हो तो उस पर लाठी चार्ज कर उसे तितर-बितर कर दिया जाय।

इस परिस्थिति में मिश्रजी ने एक विचित्र सलाह दी कि आज की सभा बिना भाषणों के मूक ही चलायी जाय और देखा जाय कि फिर पुलिस क्या करती है। मिश्रजी की सलाह चौहानजी को और मुझे बहुत पसन्द आयी।

जब तक यह सब हुआ तब तक ८ बज गये। उस समय मैंने ऐसा यत्न किया था कि जबलपुर में ठीक समय सारे कार्यक्रम आरम्भ हो जायँ अतः ठीक

८ बजे मैंने सभापति का आसन ग्रहण कर जबलपुर की प्रथा के अनुसार पहले झण्डे के गायन का आदेश दिया। ज्योंही झण्डे का गान समाप्त हुआ त्योंही मैंने कहा — "आज की सभा अभी बिना भाषणों के मूक चलेगी। आप सब भी बैठे रहें और मैं भी बैठा रहूँगा। हम कब तक मूक बैठे रहेंगे और कब भाषण होंगे इसका निर्णय मैं बाद में करूँगा।"

इस प्रकार विचित्र प्रकार की सभा चलने की मेरी इस घोषणा ने तहलका मचा दिया। पुलिस को आज्ञा थी कि कुछ भाषणों के बाद नेता गिरफ्तार किये जायँ और सभा भंग की जाय, परन्तु जैसी परिस्थिति हमने उत्पन्न कर दी उस परिस्थिति में क्या किया जाय यह पुलिस की समझ में न आया। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी।

जनवरी की रात ! हद दर्जे की ठण्ड ! खुला मैदान ! हजारों की संख्या में जमीन पर जनता और मंच पर मिश्रजी, चौहानजी एवं मैं ! सैकड़ों की संख्या में खड़ी हुई पुलिस और उसके घोड़े ! एक विचित्र दृश्य था !

सारी रात इसी प्रकार बीत गयी। न कोई वहाँ से हटा और न सोया। पर बिना किसी कार्यक्रम के इस प्रकार निरन्तर हजारों आदमी तथा औरतें कब तक बैठ सकते थे। अतः सोच विचार कर मैंने "अब झण्डे का पूजन होगा" यह ऐलान किया। इसका एक यह उद्देश्य भी था कि इस बहाने सत्याग्रह की तैयारी भी हो जायगी और कुछ रुपया भी इकट्ठा हो जायगा।

रात भर इस प्रकार बैठे रहने और अब झण्डे की पूजा के इस ऐलान ने सारे नगर में ही नहीं नगर के बाहर भी दूर-दूर तक एक तरह की बिजली दौड़ा दी।

एक रात तो बीत ही चुकी थी। तीन रात और, तथा चार दिन यह सभा इसी प्रकार चली। जबलपुर नगर एवं नगर के चारों ओर के गाँवों की कोई तीन लाख जनता ने इस काल में झण्डे की पूजा की। लोग झुण्डों में झण्डा का गान करते आते, झण्डा पूजते, भेंटें चढ़ाते और चले जाते। एक अजीब दृश्य था और जोश की तो पराकाष्ठा थी ! इस बीच इन भेंटों में कोई दस हजार रुपया आया। इस सारे समय में शौच को जाने के सिवा मैं कभी-भी उस स्थल से न हटा ; वहीं खाया, वहीं पिया, नींद की तो बात ही न थी,

हाँ, कभी-कभी ऊँघ अवश्य लेता जो हाथ की बात न थी। मैं समझता हूँ भारतवर्ष में कहीं भी ऐसी अद्भुत घटना घटित न हुई होगी।

इस बीच सरकारी दमन की भी कैसी-कैसी खबरें उड़ीं! लाठी चार्ज और गोली चलने की तो हर मिनट खबर उड़ती ही, पर मशीन गनों से पूरी की पूरी सभा उड़ायी जानेवाली है, एरोप्लेन ऊपर से बम बरसानेवाले हैं, ये खबरें तक आयीं। चूँकि पुलिस के जत्थे बदलते भर जा रहे थे और सरकार अन्य कोई कार्रवाई न कर रही थी इसलिए कोई बड़ा भारी दमन होने वाला है, इस पर लोगों का अधिकाधिक विश्वास होने लगा। मेरे जो कुटुम्बी मेरे जेल जाने से इतने भयभीत रहते थे वे ही अब यह चाहते थे कि किसी तरह मैं गिरफ्तार कर जेल भेज दिया जाऊँ। और मुझे अब फिर बार-बार स्मरण आ रहा था चित्तौड़ का विजय स्तम्भ।

मैं इस समय अपने को भूल-सा गया था। सच्चा वीरत्व चढ़ने पर मनुष्य को किस प्रकार की आत्म-विस्मृति होकर सबसे प्रिय जो अपना तन होता है उस तक की तनिक भी चिन्ता न रह केवल हाथ में लिये काम की ही सुधि रहती है, इसका मुझे उस समय अनुभव हुआ। समाधि और रण की मृत्यु को ही हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ मृत्यु क्यों माना गया है यह भी मैंने उस समय समझा। इस समय मुझे एक विद्वान् का यह कथन बार-बार याद आता "जो कुछ भी सामने आवे उसका साहसपूर्वक सामना करो। इससे बड़ी तैयारी दुनिया में शायद और कोई नहीं हो सकती।"

चौथे दिन जब जनता का जोश कुछ घटता हुआ जान पड़ा तब हमने ऐलान कराया कि आज संध्या को ५ बजे भाषण होंगे।

ठीक पाँच बजे मैं भाषण के लिए उठा। मैं इतना ही कह पाया—"सन् ३० के सत्याग्रह में मैंने जेल जाने का निर्णय किया था, इस बार प्राणों के उत्सर्ग का भी मेरा निर्णय है। सरकार जो चाहे मेरा कर सकती है। मैं रहूँ या न रहूँ, मेरे बाद कर-बन्दी का आन्दोलन चलाया जाय। मेरे किसान मेरे पिताजी को लगान न दें। यदि मैं मारा न जाकर जेल भेजा गया और कभी जेल से निकला तथा उस समय मैंने यदि सुना कि पिताजी ने सरकारी जमा अदा कर दी है तो फिर मैं राजा गोकुलदास महल में न रहूँगा।"

मेरे भाषण के बीच में ही सिटी मजिस्ट्रेट ने सभा को गैर कानूनी घोषित किया और पाँच मिनिट के भीतर जनता को वहाँ से हट जाने की आज्ञा दी।

जब पाँच मिनिट बीत चुके और कोई न हटा तब लाठी चार्ज की आज्ञा हुई। मैंने लाठी चार्ज का वृत्त पढ़ा और सुना था, पर लाठी चार्ज कभी देखा न था। निहत्थी जनता पर "मार सालों को!" नारों के साथ पुलिस का यह लाठी चार्ज खून को खौला देनेवाला दृश्य था। इसका शब्दों में वर्णन कठिन है। इस दृश्य को देखकर अहिंसक से अहिंसक व्यक्ति के मन में भी हिंसा के भाव उठे बिना शायद ही रह सकें, जब तक कि वह भगवद्गीता के कथनानुसार स्थित-प्रज्ञ या गुणातीत न हो। कितने लोग घायल हुए! शायद सबसे बुरी तरह पीटे गये जबलपुर के श्री सीताराम यादव। आखिर लोग भागे और जब तिलक भूमि का सारा स्थल जन-शून्य हो गया तब हम चार व्यक्ति गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये—पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र, ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी चौहान, बाबा हीरालाल और मैं।

सन् ३२ का जेल-जीवन और रिहाई

हम लोगों के इस बार के मुकदमे के फैसले में कोई बहुत बड़ा प्रपंच नहीं हुआ। श्री जोगलेकर नामक मजिस्ट्रेट ने २, ३ दिन में ही जेल के अन्दर हम लोगों का मुकदमा समाप्त कर मुझे और मिश्रजी को एक-एक वर्ष की कड़ी कैद तथा चौहानजी को ६ महीने की एवं बाबा हीरालालजी को ४ महीने की कड़ी कैद की सजा दे दी और मुझ पर दो हजार, मिश्रजी पर पन्द्रह सौ और चौहानजी पर ढाई सौ रुपया जुर्माना भी कर दिया। हम लोगों ने सत्याग्रही होने के कारण एक बयान देने के सिवा इस बार भी मुकदमे की और कोई पैरवी न की।

सजा होते ही हम सब को अलग-अलग कर दिया गया, क्योंकि मुझे ए श्रेणी में रखा गया था, मिश्रजी तथा चौहानजी को बी श्रेणी में और श्री हीरालाल को सी श्रेणी में।

जेल के नियमों के अनुसार ए श्रेणीवाले अपने निज के कपड़े पहन सकते थे, पर बी और सी श्रेणीवालों को जेल के कपड़े पहनने पड़ते थे अतः मैंने दूसरे दिन सुना कि चूँकि मिश्रजी एवं चौहान्जी को खादी पहनने की प्रतिज्ञा थी और जेल के वस्त्र खादी के न थे अतः उन्होंने जेल के कपड़े पहनने से इंकार कर दिया है। इसके बाद ही मैंने सुना कि जेलवालों ने मिश्रजी एवं चौहानजी को भी अलग-अलग कर दोनों के कपड़े जबर्दस्ती उतार लिये हैं और अब दोनों नंगे रह रहे हैं। जबलपुर की ठण्ड और किसी का उस कँपकँपाती हुई शीत में दिन और रात वस्त्रों से रहित नंगे रहना! मैं एकदम चिन्ताकुल हो उठा, पर कर ही क्या सकता था? मिश्रजी तथा चौहानजी का कपड़ों के सम्बन्ध में यह झगड़ा कई दिनों तक चला। जबलपुर जेल से उनका वस्त्र-रहित हालत में ही तबादला भी हुआ और बहुत दिनों बाद उन्हें उनके खादी के कपड़े पहनने की अनुमति मिली।

मेरा कुछ दिनों बाद ही जबलपुर जेल से नागपुर जेल को तबादला हो

गया। इस बार सरकार ने ए श्रेणी के राजनैतिक कैदियों के लिए नागपुर जेल में व्यवस्था की थी और तय किया था कि प्रान्त भर में ए श्रेणी में केवल तीन कैदी रखे जायँगे, महाकोशल से मैं, नागपुर से श्री अभ्यंकर और बरार से श्री अणे। यह बात हमें तब मालूम हुई कि जब पं० रविशंकर शुक्ल को भी बी श्रेणी दी गयी।

जब मैं नागपुर जेल में आया तब श्री अभ्यंकर गिरफ्तार हो चुके थे। उनके रहने और खाने-पीने की सारी व्यवस्था पूर्ववत् ही थी। वे मांसाहारी थे, मैं निरामिष भोजन करनेवाला अतः मेरे भोजन का अलग इन्तजाम किया गया। श्री अणे कुछ समय बाद आये और उसके कुछ समय बाद कुछ आन्दोलन होने के कारण शुक्लजी को भी बी श्रेणी से ए श्रेणी में कर उन्हें भी नागपुर भेज दिया गया।

प्रथम बार के जेल जीवन के समान ही इस बार का जेल जीवन भी चलने लगा। वैसी ही दिनचर्या, वैसा ही लिखना-पढ़ना, सब कुछ "यथापूर्वमकल्पयेत्"। कड़ी सजा होने पर भी काम इस समय भी हम लोगों से कोई न लिया जाता था। हम लोगों की जेल की टिकटों पर यह लिख दिया गया था कि हमारे लायक जेल में कोई काम नहीं है। हाँ, इस बार जेल जीवन की प्रथम बार वाली नवीनता न थी। पहली बार मैंने अपने से सम्बन्ध रखनेवाले जो सारे काम स्वयं किये थे, उसकी भी आवश्यकता न थी। बाहर की चिन्ताओं में इस बार मुझे आन्दोलन की उतनी चिन्ता न हो कर घर की आर्थिक चिन्ता अत्यधिक थी, और घर में किसी न किसी बड़े भारी आर्थिक विस्फोट का होना असम्भव नहीं, इस चिन्ता के कारण, मेरे मन में अशान्ति भी बहुत रहती थी।

पढ़ने के लिए मेरे पास पर्याप्त ग्रन्थ थे ही।

लेखन मैंने नाटकों का ही आरम्भ किया और बहुत जल्दी निम्नलिखित नाटक लिख डाले—ऐतिहासिक "हर्ष" और "कुलीनता" तथा सामाजिक "सेवा-पथ" और "बड़ा पापी कौन ?"

"हर्ष" नाटक में प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धन का चरित्र है। यह नाटक नागपुर विश्वविद्यालय के बी० ए० (आनर्स) में पढ़ाया जाता है।

"कुलीनता" नाटक हमारे प्रान्त के प्रसिद्ध कलचुरि वंश के पतन और राज-गोंड वंश के उत्थान काल का है । कलचुरि सम्राट् अजयसिंहदेव ने शाहबुद्दीन गौरी का क्षत्रप होना स्वीकार कर लिया था, पर उनके ब्राह्मण मंत्री सुरभी पाठक ने यदुराय नामक गोंड के द्वारा आदिवासियों को संगठित करा महा-कोशल को इस कलंक से मुक्त कराया । इसके फलस्वरूप अजयसिंह की राज-कुमारी से यदुराय का विवाह हो राजगोंड वंश की स्थापना हुई । इसी कुल में आगे चलकर दुर्गावती के सदृश वीरांगना क्षत्राणी का भी विवाह हुआ था । यह नाटक मध्य प्रदेश के मैट्रिक के पाठ्यक्रम में है । "सेवा-पथ" में तीन युवक आये हैं । इनमें एक राजनैतिक सत्ता द्वारा सेवा करता है, दूसरा धन द्वारा और तीसरा केवल शरीर द्वारा । पहले दो असफल होते हैं और तीसरा सफल । यह नाटक पंजाब विश्वविद्यालय के इण्टर में वर्षों तक पढ़ाया गया है । "बड़ा पापी कौन" में दो प्रकार के पापियों का चरित्र-चित्रण है ; एक व्यक्तिगत कृतियों में पापी है और दूसरा सामाजिक कृतियों में । यह कहना कठिन होता है कि दोनों में से बड़ा पापी कौन है ? ये चारों नाटक कई स्थानों पर खेले गये हैं ।

कुछ स्फुट कविताएँ भी इस बार मैंने लिखीं । एक बात मैंने इस बार और की । श्री अणे की सहायता से अपने छूटे हुए संस्कृत के अध्ययन को आगे बढ़ाया ।

घर की आर्थिक परिस्थिति के कारण मेरी इस समय जैसी चिन्ताकुल मानसिक स्थिति थी उसमें यह पढ़ना-लिखना ही मुझे समय निकालने में सबसे अधिक सहायता पहुँचा रहा था, यहाँ तक कि यदि कभी मेरी रात को नींद खुल जाती और उचट जाती तो मैं रात को ही लालटेन के मन्द प्रकाश में पढ़ने या लिखने बैठ जाता ।

जाड़े का मौसम बीतकर गरमी आरम्भ हुई । नागपुर बड़ी गरम जगह है अतः सरकार ने प्रस्ताव किया कि यदि हम चाहें तो सिवनी चले जायँ, जो ठण्डा रहता है, परन्तु श्री अभ्यंकर ने नागपुर छोड़ना पसन्द न किया । अभ्यंकर साहब का स्वास्थ्य भी अच्छा न था अतः उन्हें नागपुर में छोड़ हम लोगों ने भी सिवनी जाने में अपनी अनिच्छा प्रकट कर दी ।

नागपुर जेल की जिस बैरक में हमें रखा गया था उसके चक्कर का हाता बहुत छोटा था। बैरक पर दुहरे खपरे भी न थे और बैरक के चारों ओर दीवाल न होकर केवल सींखचे थे। नागपुर जेल में बिजली न थी अतः पंखे इत्यादि की भी कोई व्यवस्था न हो सकती थी। बैरक के ऊपर से गरमी आती, चारों ओर से गरम लू और धूल आती और रात को बैरक के बाहर सोने की इजाजत होने पर भी हाता कम होने के कारण हाते की दीवालों से भाफें निकलतीं। सारा का सारा स्थल दिन और रात भट्टी के सदृश तपता। बैरक के भीतर वहाँ की गरमी देखने के लिए दो दिनों तक हमने थरमामीटर लगाया। गरमी ११७° और ११६° आयी। दिन और रात पसीना चलता और सदा "सन-स्ट्रोक" का भय लगा रहता। इतनी गरमी मैंने जीवन में कभी न भोगी थी। खाने-पीने, नींद आदि सब में अत्यधिक कमी हो गयी। यह भीषण गरमी एक ही वस्तु से विस्मृत होती थी, वह था लिखना, पढ़ना नहीं।

परन्तु इसी बीच एक ऐसी घटना हुई जिसने मेरा लेखन-कार्य भी रोक दिया और अब तो जेल में एक-एक क्षण ऐसा भारी हुआ जैसा जीवन में कभी भी न हुआ था। यह घटना थी मेरी पत्नी की सख्त बीमारी।

जेल में सारे कष्टों से बड़ा कष्ट है जेल के भीतर स्वयं बीमार होना या जेल के बाहर अपने किसी स्वजन या प्रेमी का बीमार पड़ना।

जब मेरी पत्नी की बीमारी का संवाद मुझे मिला उस समय हम सबने मुलाकात बन्द कर रखी थी। इसका कारण था कैदी और मुलाकाती के बीच एक लोहे की जाली का रहना, जो इसी वर्ष सरकार ने ईजाद की थी और जो इसके बाद सदा चलती रही। परन्तु मेरी पत्नी की बीमारी का संवाद लेकर मेरी पुत्री रत्नकुमारी मुझसे मिलने आयी थीं और इस विशिष्ट परिस्थिति के कारण हमारी मुलाकात का प्रबन्ध जेल के सुपरिण्टैण्डैण्ट के कमरे में बिना उस लोहे की जाली के हुआ था। मैं रत्नकुमारी से मिला। उनसे उनकी माँ की बीमारी का ब्यौरेवार हाल मालूम हुआ। उनकी बीमारी जुलाब के बाद शुरू हुई थीं। कुछ भी हजम न होता था, वायु पेट से उठ-उठ कर गले में गड़ती सी थी। चक्कर आते थे, दिल धड़कता था, और दिल की धड़कन के

जब एक प्रकार के दौरे होते थे, उस समय नब्ज की गति २०० से २५० तक पहुँच जाती थी। सदा अत्यधिक घबड़ाहट रहती थी। सारे प्रयत्न होने पर भी बीमारी का निदान न हो पाया था और थोड़े ही दिन में ऐसी हालत हो गयी थी कि डाक्टर वैद्यों का कहना था कि किसी समय कुछ भी होना असम्भव न था। पहले बीमारी का संवाद, फिर यह विचित्र बीमारी जिस का कोई निदान नहीं और मेरी पराधीनता ! सबने मिलकर मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया। रत्नकुमारी ने मुझसे कहा कि इस भीषण बीमारी में मेरी पत्नी की सबसे बड़ी मानसिक चिन्ता मुझसे मिलने की है और यह कहते-कहते रत्नकुमारी रो पड़ीं। मेरी सन्तानों में रत्नकुमारी ही सबसे बड़ी हैं। मैंने उनकी शिक्षा की ओर बहुत अधिक ध्यान रखा था। उन्होंने केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में संस्कृत की उत्तमा परीक्षा पास की है और वे काव्यतीर्थ हैं। अंग्रेजी में भी उन्होंने इण्टर की परीक्षा पास कर बी० ए० तक पढ़ा है। कहने का मतलब यह कि वे उन महिलाओं में नहीं जो अशिक्षा के कारण परिस्थिति और वस्तुस्थिति को नहीं समझतीं, फिर उनके स्वभाव में धैर्य है, विवेक है। मैं किस स्थिति में हूँ और उनकी माता पर मेरा कितना प्रेम है इसे वे जानती थीं। जेल में रहते हुए मेरी मानसिक शान्ति का सारे कुटुम्ब को सदा ध्यान रहता था। मैं एक भावुक व्यक्ति हूँ और मानसिक चिन्ता जेल में मेरी दुर्दशा कर मेरे स्वास्थ्य को नष्ट कर देगी, यह भी मेरे कुटुम्बियों को ज्ञात था। जेल में मेरा स्वास्थ्य सदा ही गड़बड़ रहता है यह भी मेरे कुटुम्बी जानते थे और नागपुर की इस भीषण गरमी में जेल में मुझे जो कष्ट हो रहा था उससे भी वे अनभिज्ञ नहीं थे। रत्नकुमारी को इन सब बातों का सबसे अधिक ख्याल था। वही रत्नकुमारी आज अपनी माता की इस सख्त बीमारी और उनकी जो उत्कट इच्छा थी उसका सन्देश लेकर मेरे पास आयी थीं और अपने स्वभाव तथा अब तक के समस्त आचरण के ठीक विरुद्ध इस प्रकार विह्वल हो उठी थीं। मेरी पत्नी की बीमारी के वृत्त ने ही मेरा बुरा हाल कर दिया था, फिर उनकी इच्छा का वृत्तान्त तथा रत्नकुमारी की इस दशा ने तो मुझे आपे में न रहने दिया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल जटार थे। उनकी उपस्थिति का भी मुझे ध्यान न रहा और मेरी आँखों से भी चौधारे आँसू बह निकले।

कर्नल जटार ने मेरी और रत्नकुमारी की यह दशा देख स्वयं ही मेरे पैरौल पर जाने का प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि वे प्रान्तीय सरकार से बात कर पैरौल पर मेरी रिहाई की व्यवस्था कर देंगे। रत्नकुमारी मेरी ओर देखने लगीं। मैं विचार में पड़ गया। मुझे विचार में पड़ा देख जटार साहब ने कहा पैरौल पर बड़े-बड़े नेता रिहा हो चुके थे अतः पैरौल पर जाने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? ठीक भी था जब इतने बड़े-बड़े नेता पैरौल पर रिहा हो चुके थे तब सचमुच मुझे पैरौल पर जाने में कोई आपत्ति न हो सकती थी। मैंने परौल पर जाना स्वीकार कर लिया। रत्नकुमारी को दूसरे दिन आने के लिए कह श्री जटार ने उस कारुणिक दृश्य का अन्त किया।

जब मैं वापस अपनी बैरक में पहुँचा, कदाचित् मैं पूरे होश में न था। मैंने अपने साथियों को बहुत ही संक्षेप से अपनी पत्नी की बीमारी का सारा हाल बताया और यह सूचना भी दे दी कि मैंने पैरौल पर जाना स्वीकार कर लिया है। मेरे तीनों साथियों ने मेरे निर्णय का हार्दिक समर्थन किया।

परन्तु उसके बाद ही मेरे मन में घोर मानसिक संघर्ष आरम्भ हुआ। एक ओर मेरी पत्नी की महान् बीमारी जिसका परिणाम मृत्यु भी हो सकता था, उनकी मुझ से मिलने की उत्कट इच्छा, उनके और मेरे प्रेम पूर्ण जीवन के कोई २० वर्ष के न जाने कितने दृश्य और दूसरी ओर कुछ शर्तों को स्वीकार कर पैरौल पर रिहाई। सदा के लिए शर्तें मान जेल से रिहा होने तथा कुछ समय के लिए शर्तें मान जेल से रिहा होने में इतना ही अन्तर तो था न कि पहले प्रकार की रिहाई में सदा के लिए एक प्रकार की माफी होती थी और यह कुछ समय के लिए। पर पैरौल पर बड़े-बड़े नेता रिहा हुए थे। जो कुछ हो, *यदि बड़े से बड़े व्यक्ति ने भी कोई कमजोरी दिखायी थी तो क्या मुझे भी वह* दिखानी चाहिए ? शक्ति शक्ति है, कमजोरी कमजोरी। अनुसरण होना चाहिए अच्छी बातों का, महानता का, शक्ति का; बुरी बातों का, लघुता का, कमजोरी का नहीं। पर फिर वह व्यक्ति बीमार पड़ा हुआ था, मृत्यु के मुख में था जो इस सृष्टि में कदाचित् मुझे ही सबसे अधिक चाहता था। उसकी सबसे बड़ी इच्छा मुझ से मिलने की थी। यदि मेरे मिले बिना उसकी मृत्यु हो गयी तो कैसी भावनाएँ उठेंगी उसके मन में ऐसे अवसर पर। और फिर मेरी

भेंट शायद उसे आरोग्य ही कर दे। आज मुझे मालूम हुआ कि मैं अपनी पत्नी से अधिक कदाचित् किसी पर प्रेम नहीं करता।

रत्नकुमारी की और मेरी भेंट प्रातःकाल ६ बजे हुई थी। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजे मुझे उनसे फिर मिलना था। परन्तु रत्नकुमारी से मिलने के बाद अपनी बैरक में आ मेरी विचित्र दशा हो गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल के ६ कैसे बजेंगे ? मैं उस दिन न नहा सका और न खा। हर क्षण मेरे मुँह और नाक के नथनों से लम्बी-लम्बी साँसें निकलतीं और कितनी बार यह आँधी आँखों से पानी भी बरसा देती। मेरे एक साथी ने तो यहाँ तक कह डाला "भई पत्नियाँ तो सबके होती हैं, बीमारी भी आती है, पर ऐसी हालत तो मैंने किसी की नहीं देखी।" मुझे इस साथी का यह कहना केवल अप्रिय ही न लगा, पर इसने मुझे बड़ी ठेस पहुँचायी। मेरे अन्य साथियों को भी इन महाशय का यह कथन बड़ा अरुचिकर मालूम हुआ, पर मैंने भी चुप रहना ही उचित समझा और मेरे अन्य साथी भी चुप रहे।

कर्नल जटार उसी दिन सन्ध्या को हमारी बैरक में पहुँचे और उन्होंने मुझे सूचित किया कि प्रान्तीय सरकार को मेरे पैरौल पर जाने में कोई आपत्ति नहीं है और मैं चाहूँ तो वे मुझे तत्काल पैरौल पर रिहा कर सकते हैं, परन्तु न जाने कैसे हठात् मेरे मुँह से निकल गया कि इस सम्बन्ध में मुझे कुछ विचार करना है और मैं कल निश्चित उत्तर दूँगा। मेरे इस कथन से जटार साहब को ही आश्चर्य न हुआ, पर मेरे सभी साथियों को भी। उन्होंने मुझे जटार के सामने ही पैरौल पर जाने के लिए समझाना शुरू किया, पर ज्यों-ज्यों वे समझाते त्यों-त्यों मैं कल ही उत्तर देने पर और दृढ़ होता जाता।

वह रात मेरे लिए जैसी रात सिद्ध हुई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, इतना ही कहा जा सकता है कि रात भर एक क्षण को भी मुझे नींद न आयी।

दूसरे दिन के प्रातःकाल के ६ किस तरह बजे सो भी मेरा जी ही जानता है। जब मैं ६ बजे सुपरिण्टैण्डैण्ट के कमरे में बुलाया गया उस समय अपने सभी साथियों के हर प्रकार समझाने पर यह कह कर गया कि मैं पैरौल पर चला जाऊँगा।

सुपरिण्टैण्डैण्ट के कमरे में कर्नल जटार और मेरी पुत्री रत्नकुमारी मौजूद थीं। जटार की टेबिल पर मेरे पैरौल का कागज भी टाइप किया हुआ रखा था। मेरे वहाँ पहुँचते ही जटार ने यह कागज मुझे दिया। मैं करीब-करीब तय करके आया था कि मैं पैरौल पर रिहा हो जाऊँगा। मेरे साथियों ने मेरे इस निर्णय को करने में मेरी सहायता की थी। पर पैरौल का वह कागज हाथ में आने पर, उसे सरसरी तौर पर पढ़ने पर, न जाने किस शक्ति ने मेरे हाथों से उस कागज को फड़वाना आरम्भ किया। मेरे हाथ जल से रहे थे। जलते हुए हाथों से वह कागज फाड़ा जा रहा था। और मेरी आँखें मेरे उन जलते हुए हाथों पर पानी बरसा उन्हें ठण्डा करने का प्रयत्न कर रही थीं। मैं उस कागज को फेंक एकाएक उठा और यह कह कि "मैं पैरौल पर न जाऊँगा" बिना रत्नकुमारी की ओर देखे तत्काल अपनी बैरक में लौट आया। जब मेरे साथियों ने यह हाल सुना तब वे अवाक् से रह गये।

किसी निर्णय को कर किसी भी परिस्थिति में उस पर डटे रहना मेरा स्वभाव हो गया था अतः पैरौल पर रिहा न होने का जो निर्णय मैंने किया था उस पर अब मैं डट गया। मेरे साथियों ने, जेल के सुपरिण्टैण्डैण्ट, और जेलरों ने, उस समय जिन से भी काम पड़ता था, सब ने, एक नहीं कई दिनों तक हर तरह मुझे समझाया-बुझाया पर जो निश्चय मैं कर चुका था, बस कर चुका था।

परन्तु निर्णय कर उस निर्णय पर डटे रहना एक बात थी और उस निर्णय का मन पर कोई असर न पड़े यह सर्वथा दूसरी। अपने इस निर्णय का जो प्रभाव मेरे मन पर पड़ा उससे कुछ ही समय में मैं स्वयं महीनों का बीमार दिखायी देने लगा और मेरा बर्ताव होने लगा आधे पागलों का सा।

नागपुर की भीषण गरमी, जेल में उसका विशिष्ट प्रकोप और ऐसी मौसम तथा ऐसे स्थल पर मेरी यह मानसिक दशा! मुझे क्षण भर को भी चैन न मिलता। मैं न खा सकता था और न मुझे पल भर भी नींद आती। जेल में समय निकालने का जो मेरा सबसे बड़ा अवलम्ब पढ़ना-लिखना था, विशेष कर लिखना, इसने भी इस समय मेरा साथ छोड़ दिया। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि मैं किसी प्रकार पढ़-लिख सकूँ; परन्तु न मैं एक पृष्ठ पढ़ सकता और न

एक पंक्ति लिख सकता। यदि पढ़ने बैठता तो दो-चार पंक्ति पढ़ने के बाद ही क्या पढ़ा था इसे भूल जाता और लिखने में तो एक वाक्य का भी निर्माण न कर पाता।

दिन और रात मेरे सामने केवल एक छबि घूमती, एक व्यक्ति याद आता। और इस दृश्य तथा स्मरण में कितनी भयानकता रहती! अपनी पत्नी के सम्बन्ध में इस समय कोई भी कल्याणकारी बात मेरे मन में न उठती, सदा बुरी से बुरी बातों से मेरा मन ओतप्रोत भरा रहता।

उस समय की मेरी जैसी मानसिक दशा थी उसका वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

जबलपुर से मेरी पत्नी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में रोज फोन आता और सरकार ने उस फोन के समाचार मुझ तक नित्य पहुँचा देने का सुभीता कर दिया था। बुरे से बुरे संवाद के लिए मैं तैयार रहता, पर रोज यही खबर मिलती कि उनकी तबियत की वही स्थिति है। मेरे उस समय के साथियों से मुझे कोई शिकायत नहीं, पर उर्दू के कवि नासिख का निम्नलिखित शेर कितना सही है यह भी मुझे उस समय इंगत हो गया—

"बाँटले कोई किसी का दर्द यह मुमकिन नहीं।
बारे ग़म दुनिया में उठवाते नहीं मजबूर से।"

इसी हाल में एक महीने के लगभग बीत गया। एक दिन मैं बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। जिस दिन मैं छूटा उस दिन उस वर्ष की वर्षा का प्रथम दिन था। जेल का जो चक्कर इतने दिनों तक तन्दूर के सदृश तप गया था उसे उस दिन पहले-पहल वृष्टि ने ठण्डा किया था। गरम लू एकाएक शीतल पवन में परिवर्तित हो गयी थी। बादलों ने प्रखर सूर्य की धूप से पृथ्वी पर छाया करने को छाता-सा तान दिया था।

बिना किसी संभावना या आशा के मैं छूटा था और छूटते ही कितनी जल्दी पड़ी मुझे जबलपुर पहुँचने की। मैं उड़ कर जबलपुर पहुँचना चाहता था। मन के वेग की सी गति से मैं जबलपुर पहुँचना चाहता था। कहीं भी पहुँचने की इतनी जल्दी मुझे कभी न हुई थी।

एरोप्लेन तो उस समय चलते न थे अन्यथा मैं निश्चयपूर्वक स्पेशल प्लेन

किराये पर लेकर जाता। मोटर ही उस समय जबलपुर जाने के लिए सबसे कम समय लेनेवाली सवारी थी अतः मैंने जबलपुर जाने के लिए मोटर का प्रबन्ध किया। चूँकि जबलपुरवालों को भी मेरी रिहाई के कोई समाचार नहीं मालूम थे अतः वहाँ से मोटर आयी न थी और वहाँ से मोटर मँगा कर जाने में दूना समय लग जाता।

मोटर का प्रबन्ध तो हो गया, पर कितनी देर लग रही थी मोटर को तैयार हो कर जाने में। पैट्रोल लेने और मोबिल आयल भराने में उतनी देर का काम ही क्या था! कितने बदजात होते हैं ये ड्राइवर! सारा का सारा ड्राइवरों का समुदाय ही बदमाशों का समुदाय है! यार-दोस्तों से बात करता होगा, चाय पीता होगा, बीड़ी धोंकता होगा, उस मोटर का ड्राइवर, अन्यथा इतनी देर पैट्रोल और मोबिल आयल भरने में! यथार्थ में ड्राइवर को मोटर लाने में बहुत देर न लगी थी, पर उस समय की मेरी मानसिक दशा ही ऐसी थी जिसके कारण इस प्रकार की भावनाएँ उठ रही थीं।

राम राम करते मोटर रवाना हुई। दोपहर का समय होने पर भी कितनी भीड़ थी नागपुर के रास्तों में! आखिर इस समय इतनी सवारियाँ, इतने लोग फिजूल के लिए क्यों घूम रहे थे? इस देश में लोगों की इस तरह बेकार घूमने घामने और सड़कों की धूल खाने की आदत हो गयी है। तभी इतनी बीमारियाँ हैं यहाँ और इस कदर राजक्षमा बढ़ रहा है! कितनी धीरे-धीरे चल रही थी मोटरकार! इस चाल से तो दो दिन में भी जबलपुर पहुँचना सम्भव न होगा। यह मोटर ही रद्दी है या इस ड्राइवर को चलाना नहीं आता? जिन्दगी में कभी भी मैं इतनी धीमी चालवाली मोटर में नहीं बैठा। कहाँ रोल्स, डेमलर, मिनर्वा और कहाँ यह फोर्ड! मोटर नहीं छकड़ा है, छकड़े से भी गयी बीती! मोटर की चाल बहुत तेज तो नहीं थी, पर उतनी धीरी भी नहीं जितनी मुझे उस समय जान पड़ती थी। यों मैं बहुत तेज रफ्तार से मोटर कभी न चलवाता था। यदि ड्राइवर कभी तेज चलाता तो मैं उसे रोकता, पर आज ड्राइवर को बार-बार तेज चलाने को कह रहा था।

आधी दूर जाने पर एकाएक बन्दूक-सी चली और मोटर डगमगाती तथा सर्प के सदृश लहराती हुई चल एक दरख्त से टकराते-टकराते बच एवं एक

छोटे से पुल के नीचे गिरते-गिरते रुक कर, खड़ी हो गयी । एक टायर फटा था । अब तो में ड्राइवर पर बिगड़ पड़ा । कैसी मोटर है ? कैसे टायर ट्यूब ? कैसा ड्राइवर ? टायर बदलते-बदलते कोई आधा घण्टा लग गया, क्योंकि स्टैपनी तैयार नहीं था । मैंने डाँट-डाँट कर ड्राइवर से बार-बार इस बात की कैफियत माँगी कि उसने चलने के पहले स्टैपनी क्यों तैयार नहीं किया । में इस बात को उस समय बिलकुल भूल गया कि ड्राइवर ने चलने के पहले कहा था कि वह स्टैपनी तैयार कर ले, पर मैंने ही जल्दी के कारण उसे स्टैपनी तैयार न करने दिया था । ड्राइवर सीधा आदमी था अतः उसने मेरी इतनी डाँट-डपट का कोई उत्तर न दिया । टायर बदलने का यह समय किस कठिनाई, नाच-कूद और उछल-उछला कर मैंने काटा ।

नागपुर से जबलपुर १७५ मील है । मोटर को नागपुर से जबलपुर पहुँचने में कोई ६ घण्टे लगे । में नागपुर से कोई एक बजे दिन को निकला था और सूर्यास्त के समय जबलपुर पहुँचा । जबलपुर के निकट पहुँचते-पहुँचते एक महान् भयानक कल्पना मेरे मन में उठी—मेरा इस प्रकार बिना किसी शर्त के एकाएक छोड़े जाने का कारण मेरी पत्नी की मृत्यु तो नहीं है ? और यह विचार मेरे मन में आते ही मेरी आतुरता ने सीमा का उल्लंघन कर दिया । जबलपुर नगर में मोटर घुसते ही में एक-एक व्यक्ति के चेहरे की ओर घूर-घूर कर देखने लगा । लोग मुझे प्रणाम करते कोई कुछ कहता नहीं अतः मेरा यह महा भयानक सन्देह बढ़ता ही जाता ।

राजा गोकुलदास महल के दरवाजे पर जा ज्यों ही मोटर ठहरी में धड़-धड़ाता हुआ उतर कर इस वेग से भीतर घुसा जिसकी तुलना हवा के झोंके या बिजली की चमक से ही की जा सकती है । रवाना होने के समय अपनी रिहाई और रवानगी का तार मैंने जबलपुर दे दिया था अतः मेरे कुटुम्बी मेरे पहुँचने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे ।

पिताजी चौक में थे । मैंने उनके चरण स्पर्श किये । मुझे मालूम हुआ कि मेरी पत्नी मेरी माताजी के कमरे में हैं । मेरा वह भयानक सन्देह मिटा और मैं तत्काल माताजी के कमरे में पहुँचा । माताजी के पैर छू मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा । सूख कर काँटा-सी वे पड़ी हुई मेरी ओर देख

रही थीं। आँसुओं से उनकी आँखें भरी थीं और कैसी करुणा थी मुख पर !

मेरी माता ने इतना ही कह कि "दो दिनों से ही इनकी तबियत में सुधार शुरू हुआ है," उस कमरे को छोड़ दिया ।

माताजी के ये थोड़े से शब्द मुझे अमृत से सने जान पड़े !

कैसी मार्मिक भेंट थी वह हम दोनों की !

× × ×

उस समय जबलपुर से पूज्य पिताजी, मेरी पुत्री आदि के जो पत्र तार मुझे नागपुर जेल में आते थे तथा मैंने जो पत्र नागपुर से उन्हें लिखे उनसे वहाँ के लोगों तथा मेरी उस समय की मानसिक स्थिति का कुछ मनोवैज्ञानिक हाल पता लगता है, साथ ही मेरी पत्नी की बीमारी का भी कुछ हाल मालूम होता है। अतः उन पत्रों के कुछ अंश परिशिष्ट १ में उद्धृत हैं।

मेरे जेल में रहने के कारण मेरी पत्नी की इस बीमारी की उस समय देश में भी बड़ी चर्चा हुई। मेरे कई मित्रों ने हम लोगों के प्रति अत्यधिक सहानुभूति दिखायी। श्री शिवप्रसादजी गुप्त और राजा सा० कालाकाँकर ने पिताजी को तार तक भेजे। ये भी परिशिष्ट १ में दिये गये हैं।

पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र

सन् १९३२ में जिस दिन मैं गिरफ्तार हुआ उस दिन जोश में आकर मैं अपने भाषण में कह बैठा था कि मेरे किसान मेरे पिताजी को लगान न दें और यदि मेरे पिताजी ने सरकारी जमा पटा दी तो मैं राजा गोकुलदास महल में न रहूँगा।

जिस प्रकार अपने किसी निर्णय पर डटे रहने का मेरा अभ्यास-सा हो गया था, उसी प्रकार कही हुई बात के पालन करने का भी। ये दोनों बातें मेरी केवल सात्विक भावना के कारण थीं, यह नहीं। आज जब मैं अपना निरीक्षण करता हूँ तो मुझे इसमें सतोगुण की अपेक्षा रजोगुण अधिक परिमाण में दिखायी देता है। जिस प्रकार मेरे सार्वजनिक जीवन में पदार्पण करने की भावनाओं में देश-भक्ति की अपेक्षा लोकेषणा की अधिक मात्रा थी उसी प्रकार अपने निर्णयों पर डटे रहने तथा कही हुई बात को पूरा करने में कर्त्तव्य-पालन की अपेक्षा लोक-चर्चा की। भगवान राम के सदृश व्यक्ति को भी लोग क्या कहते हैं इस बात का सबसे अधिक ध्यान रहता था। इसी भावना के कारण उन्होंने सीता के सदृश पत्नी तक का त्याग कर दिया था। वे राजा थे और जब उन्होंने प्रजा-पालन के साथ ही प्रजा-रंजन का भी उत्तरदायित्व ले लिया था तब उनका लोक चर्चा पर ध्यान रहना उचित कहा जा सकता है, पर इतने पर भी यह मानव की सर्वोच्च भावना नहीं कही जा सकती। भगवान कृष्ण को लोग क्या कहते हैं इसकी कभी भी चिन्ता नहीं रही। मेरा तो मत है कि राम के अंशावतार और कृष्ण के पूर्णावतार माने जाने का यही मुख्य कारण है। मैं कहाँ का कहाँ जा रहा हूँ। कहाँ राम और कहाँ कृष्ण भगवतअवतार और कहाँ हम तुच्छ मानव ! खैर। कहने का अभिप्राय यह कि अपने निर्णय पर डटे रहने तथा कही हुई बात को पूरा करने में कर्त्तव्य-पालन की अपेक्षा लोग क्या कहेंगे यह भावना मुझे अधिक प्रेरणा देती थी।

जेल में ही मुझे मालूम हो गया था कि पिताजी ने किसानों से लगान

वसूल किया है और सरकारी जमा भी पटा दी है। मेरी गतिविधि से भली भाँति परिचित होने के कारण पहले तो पिताजी को मेरी इच्छा के विरुद्ध सरकारी जमा पटाने में बड़ा पशोपेश हुआ। उन्हें इस बात का भय था कि यदि उन्होंने यह किया तो जेल से बाहर आकर मैं न जाने क्या करूँगा, परन्तु अन्त में जब उनकी चाँदी की बग्घी और रोल्स रायस मोटर कुड़क हुई और उनके नीलाम का प्रसंग उपस्थित हुआ तब वे अपने को न रोक सके और उन्होंने सरकारी जमा अदा करदी।

जब मैं जेल से छूटा तब मुझे अपनी वह घोषणा याद थी जिसमें मैंने कहा था कि यदि पिताजी सरकारी जमा पटा देंगे तो मैं राजा गोकुलदास महल में न रहूँगा। जबलपुर पहुँच मैं अपनी रुग्ण पत्नी को देखने तो राजा गोकुलदास महल में गया, परन्तु मैंने तय किया कि मैं फिलहाल अपने कौटुम्बिक मन्दिर में ठहरूँगा, महल में नहीं; और अपने इस निर्णय के अनुसार मैं मन्दिर में ठहर गया।

पिताजी उग्र स्वभाव के थे यह पहले कहा जा चुका है। उन्होंने मेरी बर्दाश्त भी बहुत की थी इसमें भी सन्देह नहीं। इस समय वे अत्यधिक आर्थिक संकट में थे और जायदाद को कोर्ट ऑफ वार्डस् में देने का बहुत दिन से प्रयत्न कर रहे थे। अतः अब उन्हें मेरे इस आचरण ने एकदम क्षुब्ध कर दिया।

उन्होंने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा जो पत्र मेरे जीवन में एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस पत्र का मुख्य आशय था कि पैतृक सम्पत्ति में मिताक्षरा कानून से शासित होने के कारण उनका और मेरा दोनों का बराबर हिस्सा है अतः अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि मेरा और उनका बटवारा हो जाना ही उपयुक्त होगा।

पिताजी के इस पत्र को पाकर मैं भी कम विक्षुब्ध नहीं हुआ। वे जायदाद को कोर्ट ऑफ वार्डस् में देना चाहते हैं यह बात मुझे मालूम थी। सन् १९३० में गान्धी-अर्विन समझौते के बाद जब मैं जेल से बाहर निकला था उसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने घर को बचाने के लिए जायदाद को कोर्ट ऑफ वार्डस् में देने का अपना विचार भी मुझे बताया था, पर मैं सरकारी वार्ड न बनना चाहता था अतः मैंने उनके प्रस्ताव का घोर विरोध किया था। मेरे विरोध

करने पर भी उन्होंने अपना प्रयत्न छोड़ा नहीं था यह भी मुझे मालूम था। पिताजी के इस पत्र में यद्यपि कोर्ट ऑफ वार्डस् का कोई जिक्र न था तथापि मुझे उसमें उनके उस विचार की गन्ध आये बिना न रही। मैं सोचने लगा कि मेरे मन्दिर में ठहरने के कारण पिताजी का रोष और मेरे कारण अब तक घर को जो हानि हुई, यह सब इस पत्र के प्रेरक हैं अथवा मैं जायदाद को कोर्ट ऑफ वार्डस् में देने को तैयार नहीं अतः मुझसे बटवारा कर कम से कम आधी जायदाद कोर्ट ऑफ वार्डस् में दे उसे बचा लेने की भावना इस पत्र की प्ररक है। बहुत सोचने-विचारने के पश्चात् भी मैं इस विषय में किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सका। परन्तु पिताजी का पत्र भेजने में जो भी उद्देश्य हो, मेरा अब क्या कर्त्तव्य है इसका हल तो मेरे लिए अनिवार्य था। मेरा कौटुम्बिक जीवन सदा ही स्नेहमय रहा था, मेरे सार्वजनिक जीवन आरम्भ होने के पहले और उसके पश्चात् सार्वजनिक मामलों में पिताजी की और मेरी कभी भी पटरी न बैठी थी। कई बार संघर्ष भी हुआ था और ऐसे अवसरों पर मेरी मानसिक दशा अत्यधिक अशान्त भी रह चुकी थी। मैं घर का काम भी कभी भी न देख सका था और जो रोजगार-धन्धे मैंने करने का प्रयत्न किया था उस में मुझे असफलता ही मिली थी। दैनिक "लोकमत" भी बन्द हो चुका था। घर पर कर्ज का भारी बोझ हो गया था और उसे चुका सकने का मुझे कोई मार्ग दिखायी न पड़ता था। इस बार जेल में जाते समय जोश में आकर मैं एक ऐसी घोषणा कर बैठा था जिसके कारण अब मेरा राजा गोकुलदास महल में रहना तक असम्भव जान पड़ता था। और फिर पिताजी से जायदाद का बटवारा ! ऐसी कल्पना तक मुझे एक प्रकार का पाप दिखायी पड़ता था। इस पाप को भी कर यदि मैं जायदाद बटवा लूँ तो भी मुझे ऐसी जायदाद मिलेगी जो कर्ज से लदी होगी। मट्टी के इस समय उसका कोई अंश बिक न पायगा। अतः यह "गुनाह बेलज्जत" ही तो होगा। पर फिर मैं करूँ क्या ? तीन दिन और तीन रात इसी उधेड़बुन में लगे रहने के बाद मुझे निम्न-लिखित रास्तों के सिवा अन्य कोई मार्ग न सूझा—

१. राजा गोकुलदास महल में न रहने की अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर, सार्वजनिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर पिताजी को जायदाद कोर्ट ऑफ

वार्डस् में न देने के लिए राजी करना और सारी जायदाद का प्रबन्ध अपने हाथ में ले जिस प्रकार भी हो सके कर्ज चुकाना।

२. राजा गोकुलदास महल में न रहने की अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर, सार्वजनिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर सारी जायदाद को कोर्ट ऑफ वार्डस् में दे स्वयं भी सरकार का वार्ड बन जाना।

३. पिताजी से आधी जायदाद बटवाकर उनकी जायदाद का जो प्रबन्ध भी वे करना चाहें उन्हें करने देना और अपनी जायदाद का स्वयं प्रबन्ध कर कर्ज से मुक्त होना।

४. सारी पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र दे देना और पिताजी की जो इच्छा हो वह उन्हें करने देना।

पहले और दूसरे मार्गों में सार्वजनिक जीवन की इतिश्री होती थी। तीसरा मार्ग सफलता की दृष्टि से बहुत संदिग्ध था और तीसरे मार्ग पर चलते हुए एवं जायदाद सँभालते हुए सार्वजनिक जीवन के लिए कितना अवकाश मिलेगा, यह नहीं कहा जा सकता था। फिर तीसरे मार्ग के लिए पिताजी से जो बटवारा करना पड़ता था वह मुझे पाप, घोर पार जान पड़ता था। चौथा मार्ग सीधा था पर अत्यन्त भयानक। जब मेरा जन्म हुआ था उस समय धन की दृष्टि से हमारा घर धन-कुबेर का घर माना जाता था। मेरे पितामह मारवाड़ियों में सबसे बड़े धनवान तथा इस देश के सभी समुदायों के सबसे बड़े धनवानों में एक माने जाते थे। उनकी मृत्यु के पाँच वर्ष के पश्चात् सन् १९१३ में हमारे घर पर पहली आर्थिक आपत्ति आयी थी, पर उसके बाद भी बीस वर्ष बीत चुके थे और आर्थिक अड़चनों के आते-जाते रहने पर भी अभी हमारा घर शाही तरीके से ही चल रहा था। सन् १९१३ की प्रथम आर्थिक आपत्ति के पश्चात् भिन्न-भिन्न प्रकार के कामों में लाखों रुपया खर्च हुआ था, मेरे सार्वजनिक जीवन में भी लाखों ही। और इस समय भी चाहे कितना ही कर्ज क्यों न बढ़ गया हो, अभी भी जायदाद की कीमत कर्ज से कई गुनी अधिक थी तथा मद्दी मिटने एवं तेजी आने पर जायदाद का कुछ अंश बिककर कर्ज चुककर बहुत कुछ बचना असम्भव न था। सारी पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र देने का अर्थ दर-दर का भिखारी हो जाना था, जो मेरे अब तक के जीवन

की दिशा से एकदम विपरीत दिशा थी।

इन चारों मार्गों के अनुसंधान के पश्चात् पहले और दूसरे मार्ग पर तो मैं चल न सकता था इसका निर्णय करने में मुझे बहुत समय न लगा, परन्तु तीसरे और चौथे मार्गों में से मैं किस मार्ग पर चलूँ इसका निर्णय मैं शीघ्र न कर सका।

मेरी पत्नी का स्वास्थ्य सुधरता जाता था। उस ओर की अब मुझे कोई विशेष चिन्ता न रह गयी थी। मैं मन्दिर में रहता। मार्क्स और फ्रायड के अध्ययन ने मुझे संशयात्मक अवश्य बना दिया था, पर पुराने संस्कार अभी भी मौजूद थे। मन्दिर में रहते हुए भगवान के दर्शन करता। श्रावण का महीना था। भिन्न-भिन्न प्रकार के झूले बनते। उनमें भी योग देता। वहीं प्रसाद लेता। मिलने के लिए बहुत लोग आते। उनसे मिलता। मेरे मन्दिर में रहने की बात फैल गयी थी। अतः जनता भी बड़ी-बड़ी संख्या में मुझे देखने आती। मैं बाहर निकल उसे प्रणाम कर लेता और वह जय-जयकार के नारे बोलती हुई चली जाती। दिन में तीन बार मैं पत्नी को देखने राजा गोकुलदास महल में जाता और प्रातःकाल तथा सायंकाल पिताजी और माताजी को प्रणाम करने। पिताजी ने मुझे वह पत्र तो लिख दिया था, पर वे प्रत्यक्ष में मुझसे उस सम्बन्ध में कुछ न कहते। माताजी और मेरी पत्नी बार-बार मुझे घर में आकर रहने को कहतीं, पर मैं उस विषय को सदा मुस्कराकर टाल देता, कह देता सामने ही तो मन्दिर है, घर में और मन्दिर में फर्क ही क्या है।

इस प्रकार मिनट पर मिनट, घण्टों पर घण्टे, पहर पर पहर, दिन पर दिन और रात पर रात बीतते चले जा रहे थे। मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न था और मैं किसी भी निर्णय पर पहुँचने में अपने को असमर्थ पाता था।

इसी घोर उधेड़-बुन में मेरे दस दिन निकल गये, परन्तु चाहे कैसा ही कठिन निर्णय क्यों न हो, चाहे उस निर्णय को करने में कितनी ही कठिनाई क्यों न पड़े, अन्त में ऐसी बातें सदा लटकती नहीं रह सकतीं, कोई न कोई निर्णय तो करना ही पड़ता है। मेरा भी इस विषय का दस दिन बाद निर्णय हो गया, मैंने चौथे मार्ग के अवलंबन का निश्चय किया। उन दस दिनों में जब मैं इस उधेड़-बुन में रहा, जबलपुर में खूब वर्षा हुई। दस दिनों तक पानी की

झड़ी लगी रही। कभी मूसलधार मेह बरसता और कभी रिमझिम-रिमझिम। एक दिन भी सूर्य के दर्शन न हुए। जबलपुर में वर्षा ऋतु में अनेक बार ऐसा होता है। परन्तु पानी की इस लगातार झड़ी में भी न घटाओं की गरज थी और न बिजली की कड़क। हाँ, कभी-कभी चपला अवश्य चमक जाती थी। पत्थर भी नहीं पड़ रहे थे, बूँदें ही बरस रही थीं। मुझे इन दिनों अनेक बार याद आयी असहयोग की दीक्षा लेने के बाद व्यक्तिगत परिवर्त्तनों के समय की मौसम। मैं सोचने लगा उन परिवर्त्तनों के समय भी आकाश मेघाच्छन्न था, पर उस समय था तूफान। अभी भी आकाश मेघाच्छन्न है, पर अब हो रही है शान्त वर्षा। तो क्या इस सम्पत्ति त्याग के बाद मेरा जीवन मेघाच्छन्न रहते हुए भी तूफान से रहित हो जायगा? मैंने जिस दिन सम्पत्ति त्याग का निर्णय किया उस दिन पानी की वह झड़ी बन्द होकर आकाश भी निर्मल हो गया था। दस दिनों के बाद भगवान भास्कर के दर्शन कर सभी हर्षित थे।

मेरे सम्पत्ति त्याग के इस निर्णय को भी मैं सर्वथा निष्पाप और नितान्त शुद्ध भावनाओं से प्रेरित निर्णय नहीं मानता। सार्वजनिक जीवन का मोह, उस जीवन में जायदाद के प्रबन्ध की जिम्मेदारी कहाँ तक सध सकेगी यह भय, कोर्ट ऑफ वार्डस् में पिताजी ने जायदाद दे दी तो शायद बच्चों के लिए अधिकांश जायदाद बच जावे यह लोभ और पिताजी के रहने के कारण कोर्ट आफ वार्डस् में जायदाद देने की मेरी जिम्मेदारी भी नहीं समझी जायगी यह मत्सरता, ये सारी बातें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरे मन में नहीं थीं मैं यह नहीं कह सकता। फिर भी इस निर्णय को मैं अपने जीवन के महान से महान निर्णयों में एक निर्णय मानता हूँ। जो व्यक्ति सदा सम्पत्तिशाली रहा हो, जिसका जीवन हर परिस्थिति में वैभवपूर्ण जीवन ही रहा हो, उसके लिए यह निर्णय बड़ी से बड़ी जोखिम उठाने का निर्णय था। जायदाद कोर्ट ऑफ वार्डस् में जा रही है और वहाँ जाकर बच जायगी यह अध्रुव था, परन्तु इस निर्णय से मैं सम्पत्ति से सवथा वंचित हो जाऊँगा यह ध्रुव। संस्कृत में एक उक्ति है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवते।
ध्रुवाणि तस्यनश्यन्ति अध्रुवं नष्ट मेवच॥

इस उक्ति के अनुसार मैंने इस समय जीवन की सबसे बड़ी जोखिम उठायी

थी। और मैंने जब इस निर्णय को किया उसी समय एक निश्चय और भी कर लिया कि इस पैतृक सम्पत्ति को छोड़ने के पश्चात् इसमें से एक पाई भी मेरे लिए निर्माल्य होगी ; न मैं राजा गोकुलदास महल में रहूँगा और न इस सम्पत्ति में से फूटी कौड़ी ग्रहण करूँगा। फिर जिस समय मैंने यह निर्णय किया उस समय एक भावना और भी मेरे मन में थी—पिता से सम्पत्ति का बटवारा, यह पाप है, अवश्यमेव पाप !

इस निर्णय को किसी को न बता, इस विषय में वकीलों से सलाह लेने मैं प्रयाग गया। वहीं मेरे त्याग-पत्र का मसौदा बना। जबलपुर लौटकर मैंने चुपचाप उसकी रजिस्ट्री करायी और पिताजी के उस पत्र के उत्तर में मैंने वह त्याग-पत्र उन्हें भेज दिया।

पिताजी उस रजिस्ट्री शुदा त्याग-पत्र को देख दंग रह गये। मैं यह करूँगा इसकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। वे केवल यह चाहते थे कि मैं किसी तरह फिर से घर में आकर रहने लगूँ और इस उद्देश की पूर्ति के लिए बटवारे की उन्होंने धमकी भर दी थी। इसमें सन्देह नहीं कि जेल जाते समय जोश में आकर यदि मैंने वैसी घोषणा न की होती तो जिस प्रकार चल रहा था उसी प्रकार किसी तरह चलता रहता।

घर में एक महान कारुणिक दृश्य उपस्थित हुआ। सभी कुटुम्बी उसमें सम्मिलित थे। मुझ पर अधिक से अधिक जोर उस त्याग-पत्र को रद करने के लिए डाला गया, पर किये हुए निर्णय को बदलना मैं जानता न था अतः जो हो चुका था, वह हो चुका था।

मेरे मन्दिर में रहने की ही देश में बड़ी चर्चा हो गयी थी, इस त्याग-पत्र की और अधिक हुई। जब यरवदा जेल में गान्धीजी ने इसे पढ़ा तब उन्होंने मुझे वहाँ से साधुवाद भेजा। गान्धीजी के साथ उस समय जो लोग जेल में थे उनमें से एक अखिल भारतीय नेता ने जेल से निकल मेरे इस त्याग-पत्र का मजाक भी उड़ाया। एक सज्जन ने यहाँ तक कह डाला—"जबलपुर में एक हरिश्चन्द्र पैदा हुआ है।" मैं अपने को हरिश्चन्द्र के चरण की धूलि भी नहीं मानता, परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मैंने जीवन में जो बड़ी से बड़ी जोखिमें उठायीं उनमें से यह भी एक थी।

पैतृक सम्पत्ति से मेरा यह त्याग-पत्र जिसमें पिताजी का पत्र भी उद्धृत किया गया है परिशिष्ट २ में दिया गया है।

इस त्याग-पत्र ने मेरी पुत्री रत्नकुमारी के सहृदय को तो कविता करने की प्रेरणा दे दी। उन्होंने अपनी पहली कविता इसी त्याग-पत्र पर लिखी। उस समय यह कविता भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने छापी थी और हिन्दी जगत में इसका यथेष्ट आदर हुआ था तथा इस पर अनेक टिप्पणियाँ भी लिखी गयी थीं।

पत्नी को लेकर राजस्थान में

सारी पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र दे, घर से साम्पत्तिक सम्बन्ध विच्छेद कर और राजा गोकुलदास महल में न रहने के निर्णय पर कायम रह यदि एक ओर मुझे अपना भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय दृष्टिगोचर हुआ तो दूसरी तरफ मुझे एक प्रकार की शान्ति भी मिली। आर्थिक संकट बड़े से बड़े संकटों में से एक संकट है, परन्तु अर्थाभाव के आर्थिक संकट और ऋण-ग्रस्त आर्थिक संकट में अन्तर है। मुझे अर्थाभाववाला आर्थिक संकट कभी नहीं रहा। जिस काम के लिए कभी भी धन की आवश्यकता पड़ी उसकी कहीं न कहीं से पूर्ति हो गयी, परन्तु होश सँभालने के पश्चात् ऋण-ग्रस्त वाले आर्थिक संकट में मैं सदा फँसा रहा। इस अवस्था से छुटकारा पाने के लिए जिस ज्ञान और प्रयत्न की आवश्यकता थी, न उस ज्ञान में मैं दक्ष था और न उस प्रयत्न के लिए मेरे पास समय ही था। अतः दिनोंदिन स्थिति बिगड़ती ही जाती थी और उसे सँभालने या सुधारने की अपने में मुझे शक्ति न दिखायी देती थी। फिर जेल जाते हुए जोश में आकर मैंने एक ऐसी घोषणा कर दी थी जिसके कारण अब तो स्थिति मेरे काबू के बिलकुल ही बाहर चली गयी थी। ऐसी हालत में मेरे सम्पत्ति त्याग के इस कदम का मुझे शान्ति पहुँचाना स्वाभाविक था। परन्तु इस शान्ति के साथ ही अब ऋण-ग्रस्त आर्थिक संकट के स्थान पर अर्थाभाव के आर्थिक संकट का मुझे सामना करना होगा, यह भय भी मुझे था। एक प्रकार के आर्थिक संकट से छुटकारा पा दूसरे प्रकार का आर्थिक संकट स्पष्ट दिखायी दे रहा था। पैतृक सम्पत्ति को निर्माल्य मान उसमें से फूटी कौड़ी भी न लेने का अर्थ होता था जीविका चलाने की कोई योजना बनाना। परन्तु चूँकि अभी भी सत्याग्रह चल रहा था और पत्नी के पूर्णरूप से स्वस्थ होते ही मेरा पुनः सत्याग्रह करने का निश्चय था, अतः फिलहाल इस प्रश्न को मैंने स्थगित रखा।

मेरी पत्नी का स्वास्थ्य दिनोंदिन सुधर रहा था। उनकी बीमारी का

निदान यह हुआ था कि उनके खून में किसी जहर का प्रवेश हो गया था ; अंग्रेजी में इस बीमारी का नाम "ब्लड पाइज़निंग" है। वैद्यों और डाक्टरों की राय उनके वायु-परिवर्त्तन की हुई। चूँकि शिकायत पेट से शुरू हुई थी इसलिए ऐसे स्थान पर जाने की तजबीज की गयी जहाँ का पानी अच्छा हो और इस दृष्टि से राजस्थान में उनके मैके सीकर का निर्णय हुआ। वायु परिवर्त्तन का यह प्रस्ताव तथा सीकर जाने का निर्णय मुझे भी पसन्द आया और भादों में मैं अपनी पत्नी के और पुत्री रत्नकुमारी के साथ सीकर रवाना हुआ।

राजस्थान मरुस्थल है। मरुभूमि का एक अर्थ है पानी की कमी और दूसरा अर्थ है बालू की अधिकता। परन्तु यदि रेगिस्तान में यथेष्ट वर्षा हो जाय तो फिर बालू के रहते हुए भी वहाँ की भूमि मरुभूमि नहीं रह जाती और वह यथेष्ट उपज दे देती है। पानी का अभाव वहाँ के निवासियों को सदा पानी के लिए लालायित रखता है। जिस वर्ष काफी पानी बरस जाता है उस वर्ष लोग बड़े प्रफुल्लित रहते हैं। राजस्थान में वर्षा ऋतु बड़ा अच्छा मौसम माना जाता है और इस ऋतु में वहाँ कई मेले, गोटें (पिकनिक) आदि हुआ करती हैं। इन मेलों और गोटों में स्त्री-पुरुष सभी जाते हैं, पुरुष लहरिये की भिन्न-भिन्न रंगों की पगड़ियाँ बाँधते और स्त्रियाँ लहरिये के भिन्न-भिन्न रंगों के ओढ़न ओढ़ती हैं। खूब खाना-पीना और गाना-बजाना चलता है। राजस्थान निवासी व्यापार के लिए राजस्थान छोड़ बम्बई, कलकत्ता आदि दूर-दूर स्थानों में बस गये हैं। जब इन्हें राजस्थान जाने की इच्छा होती है तब ये प्रायः इसी ऋतु में राजस्थान जाते हैं। इनकी राजस्थान की ये यात्राएँ किसी कार्यवश न हो या तो स्वास्थ्य-सुधार के लिए होती हैं या आमोद-प्रमोद के लिए। चूँकि इन प्रवासी राजस्थानियों को राजस्थान में कोई काम नहीं रहता और इनमें से अधिकांश सम्पन्न रहते हैं, इसलिए वर्षा ऋतु के राजस्थान के इन मेलों और गोटों में और अधिक रौनक आ जाती है। ये मेले एवं गोटें राजस्थान के शहराती तथा देहाती जीवन के सुन्दर मिश्रण होते हैं।

सम्राट् बाबर को भारत पसन्द न आया था, उसने जो अपने संस्मरण लिखे उनमें हमारे देश और यहाँ के निवासियों की पेट भरकर निन्दा ही की है, प्रशंसा नहीं, परन्तु यहाँ की वर्षा ऋतु की उसने भी तारीफ़ की है। हमारे

देश और यहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में वह अपने संस्मरण में लिखता है—"हिन्दुस्तान के शहर और गाँव अत्यन्त कुरूप हैं। हिन्दुस्तान ऐसा देश है जिसमें बहुत कम आनन्ददायक वस्तुएँ हैं। .... यहाँ के लोग सुन्दर नहीं। मित्रमण्डली में जो आनन्द रहता है उसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं .... न उनमें कोई विशिष्ट बुद्धि है .... न व्यवहार में मृदुता, न आपसी सम्बन्धों में दया .... और न कला का कोई बोध।......हिन्दुस्तान की विशेषता उसका एक महान् देश होना है ; साथ ही सोना-चाँदी वहाँ बहुत है।" यहाँ की वर्षा ऋतु के सम्बन्ध में बाबर लिखता है—"वर्षा ऋतु में हिन्दुस्तान की आबहवा बहुत अच्छी रहती है। किसी-किसी दिन एक ही दिन में दस, पन्द्रह और बीस बार पानी बरस जाता है।..... जब जमीन पर पानी बरसता है तब हवा अत्यन्त आनन्ददायक हो जाती है। तापमान इतना कोमलता लिये रुचिकर हो जाता है कि उसका किसी वस्तु से मिलान ही नहीं किया जा सकता।"

सम्राट् बाबर का वर्षा का यह वर्णन कदाचित् राजस्थान को ध्यान में रखकर लिखा गया था।

हम लोग भी राजस्थान की इसी सुहावनी ऋतु में सीकर पहुँचे। इस वर्ष काफी वर्षा हो चुकी थी। तालाबों में यथेष्ट पानी आगया था। राजस्थान के कुओं में पानी बहुत अधिक गहराई पर रहता है परन्तु इस वर्ष की वर्षा के कारण कुओं की झिरों ने भी कुछ अधिक नीर दे कुओं के पानी की तह को उतना गहरा न रहने दिया था। तालाबों तथा कुओं के चारों ओर हरियाली भी दृष्टिगोचर होती थी। यह हरियाली या तो बोये हुए बाजरे की थी या साग-भाजी की। ठठेरों और बबूल के वृक्षों में भी हरी-हरी पत्तियाँ दृष्टिगोचर होती थीं। बालू में कीचड़ तो होता नहीं, पर बालू उतनी सूखी न रह गयी थी और हवा के कारण रेत के टीलों (छोटे-छोटे पहाड़) का स्थान जो नित्य-प्रति इधर से उधर और उधर से इधर होकर बदला करता था वह भी रेत के भींग जाने के कारण इस समय न हो रहा था। पर्वतों के पंख थे और वे इधर से उधर उड़ा करते थे, यह वर्णन हमारे पुराने साहित्यिक स्थलों पर आया है। मेरा खयाल है कि रेगिस्तान के रेत के टीलों के इधर-उधर उड़ते रहने के कारण ही यह वर्णन लिखा गया होगा। राजस्थान में मोरों की बहुतायत है। वर्षा

ऋतु में ये सुन्दर मोर और भी सुन्दर लगते थे। अपनी रंगीली पूँछों को उठा-उठा कर कैसे नाचते थे ये मोर ! पर मोरों की बोली मधुर नहीं होती। इनका तो रंग और नाच ही मनोहर होता है। जहाँ तक बोली का सम्बन्ध है, पपीहों की भी वहाँ कमी न थी। इधर-उधर से उनकी "पीहू पीहू" भी सुनायी पड़ती थी। कभी-कभी घटाएँ भी उठतीं, मेघों का गर्जन भी होता, दामिनी भी दमकती, इन्द्र-धनुष भी निकलता !

सीकर मेरी ससुराल है और यद्यपि मैं सीकर पहले भी कई बार आया था, परन्तु एक तो मेरा यहाँ आना बहुत कम हुआ था, दूसरे दो-दो, चार-चार दिन के लिए ही। मेरे विवाह को पच्चीस वर्ष बीत गये थे, परन्तु इन पच्चीस वर्षों में अब तक सब मिलाकर भी मैं पच्चीस दिन भी सीकर न रहा था। सन् २१ के बाद तो मैं यहाँ आया ही न था और सन् २१ में भी आया था बहुत थोड़े दिनों को तथा सार्वजनिक कार्य के लिए। इस बार मैं यहाँ काफी दिनों को आया था और कोई काम न होने के कारण सर्वथा निठल्ला था। निठल्ले-पन का समय मुझे जीवन में बहुत कम मिला है। पहाड़ों पर मैं अवश्य गया हूँ, पर पहाड़ों के निठल्लेपन तथा इस बार सीकर के निठल्लेपन में अन्तर था। पहाड़ों पर प्रायः मैं पढ़ने-लिखने की योजनाएँ बनाकर जाता, पढ़ने-लिखने में काफी समय लगाता, पर सीकर आया था मैं कुछ भी न करने का संकल्प कर। मैं यहाँ अपना पूरा समय अपनी पत्नी को देना चाहता था। उनका मन बहला, उन्हें प्रसन्न रख, उन्हें पूर्ण रूप से स्वस्थ करना चाहता था। गान्धीजी ने मुझे अपने इस संकल्प पर दृढ़ रहने का परोक्ष रूप से और अधिक बल दे दिया था। यरवदा जेल में जब उन्हें पत्रों से मालूम हुआ कि मैं अपनी पत्नी के स्वास्थ के लिए सीकर आया हूँ तब उन्होंने स्वतः मुझे पत्र लिखा, जिसमें यह आदेश दिया कि मैं लौटने की जल्दी न करूँ और अपना पूरा समय अपनी पत्नी के स्वास्थ्य के लिए दूँ।

सीकर में हम लोग "राधा दामोदरजी की छतरी" नामक एक बड़े रमणीय तथा हरे-भरे स्थल पर ठहराये गये। सीकर के रावराजाजी के बाद वहाँ के पोद्दार मेरे ससुरालवाले बीयाणियों की ही वहाँ प्रतिष्ठा थी। बीयाणियों का बड़ा भारी कुटुम्ब है और इनके अनेक घरों में बट जाने के

कारण इनकी कई विशाल हवेलियाँ, मन्दिर तथा बाग-बगीचे हैं। राधा दामोदरजी की छतरी इन्हीं में से एक घर का मन्दिर और बगीचा है। अब बीयाणियों के पास बहुत धन तो नहीं रह गया था, पर प्रतिष्ठा में कोई कमी न हुई थी। मेरे ससुर लक्ष्मीनारायणजी बीयाणी का देहान्त हो चुका था। मेरी सास थीं। मेरे ससुर के कोई पुत्र न होने के कारण उन्होंने अपने एक भतीजे आनन्दीलालजी को गोद लिया था। ये ही इस समय इनके घर के मालिक थे। आनन्दीलालजी के बाबूलाल नामक एक पुत्र भी थे। मेरी पत्नी मेरी सास की एकमात्र सन्तान थीं अतः उनका मेरी पत्नी पर अत्यधिक स्नेह होना स्वाभाविक था। इसी कारण मुझ पर भी उनका बड़ा स्नेह था। कितनी प्रेमपूर्ण खातिरदारी हुई हम लोगों की सीकर में। सीकर के इस समय के जमींदार रावराजा कल्याणसिंहजी ने भी मेरी इस आवभगत में हिस्सा बटाया। मेरे घूमने के लिए सीकर राज्य की ओर से दो घोड़े की एक बग्घी तैनात कर दी गयी।

मैं अपनी पत्नी के साथ नित्य प्रातःकाल पैदल घूमने जाता। लौटकर मालिश होती। फिर स्नान, पूजन, भोजन और आराम। तीसरे पहर कितने मर्द-औरतें मिलने आते, अधिकांश बीयाणियों के घर के। शाम को हम बग्घी पर घूमने जाते। खूब घूमते। रात को लौटकर ब्यालू कर सो जाते। दिनचर्या पहाड़ों पर की दिनचर्या के समान ही थी, अन्तर इतना ही था कि पहाड़ों पर पढ़ने-लिखने का भी जो कार्यक्रम था वह यहाँ न था; उसके स्थान पर थी बातचीत। कितनी बातें होतीं यहाँ। हर दूसरे चौथे या तो हम किसी गोट में जाते या मेले में। गोटों में प्रायः मेरी प्रिय रसोई चूरमा-बाटी बनती। राजस्थान का चूरमा-बाटी का क्या पूछना? चार प्रकार का चूरमा—गेहूँ का, बेसन का, बाजरे का और खोवे का तथा चार प्रकार की बाटी—गेहूँ की, बेसन की, बाजरे की और मूँग की दाल भरी हुई। पंचमेला दाल अर्थात् अरहर, चना, मूँग, मोठ और उड़द की इकट्ठी। आलू का भरता, दो, तीन शाक चटनी और नींबू। इस भोजन में सबसे अधिक आवश्यकता शुद्ध घी की रहती है और राजस्थान में अच्छे से अच्छे घी का अभाव नहीं। इन मेलों और गोटों में खूब गीत होते। मारवाड़ी बोली पूरी न समझने के

कारण पहले तो ये गीत मेरी समझ में न आते, पर धीरे-धीरे मैं इन्हें समझने लगा। कई गीत तो मुझे इतने पसन्द आये कि मैं इन्हें गानेवालों से बार-बार गवाता। ये गीत बहुधा स्त्रियाँ गातीं, पर पुरुषों को भी वहाँ गाना आता है। बिना किसी साज के ये गीत गाये जाते और साज न रहने पर भी बड़े मधुर जान पड़ते। स्त्रियाँ कई इकट्ठी होकर गातीं, पर पुरुष अकेले। स्त्रियाँ तो कई रागों में गातीं, पर पुरुष प्रायः माँड।

कोई तीन महीने मैं सीकर रहा। कितने त्यौहार आये वहाँ—दशहरा, दीवाली, अन्नकूट, भाई दूज आदि। बड़ी अच्छी तरह हम लोगों ने इन त्यौहारों को मनाया। मेरी पत्नी ने भाई दूज को अपने भाइयों को निमंत्रित किया। सगा भाई न रहते हुए भी बीयाणियों के कितने बेटे रिश्ते में मेरी पत्नी के भाई होते थे। बीयाणियों का कितना बड़ा कुटुम्ब है इसका पूरा पता मुझे उस दिन लगा।

सजा पूरी होने पर जब पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र छूटे तब वे भी मेरी पत्नी का स्वास्थ्य पूछने सीकर आये। जब मिश्रजी सीकर आये तब मेरी पत्नी प्रायः पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी थीं। दो बार की जेल-यात्राओं में मेरा जो स्वास्थ्य गिर गया था वह भी बिलकुल ठीक हो गया था।

मेरी इच्छा अब जबलपुर लौटने की थी। मैं अभी भी अपनी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सभापति था और मिश्रजी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री थे। सत्याग्रह अभी चल रहा था, पर नाम मात्र का। मैं चाहता था कि प्रान्त में लौट मैं फिर से कांग्रेस के अपने पद का भार सँभाल नये ढंग से सत्याग्रह का संगठन करूँ। जबलपुर लौटकर मैं कहाँ रहूँगा इसकी व्यवस्था मैंने कर ली थी। सदा मन्दिर में रहना तो हो न सकता था अतः मैंने मन्दिर में ट्रस्ट का ही गोपाल बाग में जो एक बंगला था उसे किराये पर ले लिया था। जीविका प्रबन्ध सत्याग्रह आन्दोलन के समाप्त होने पर करने का विचार कर, फिलहाल अपना गुजर-बसर कर्ज पर चलाने का निश्चय कर, मैं इसी बंगले में रहना चाहता था। मेरा इरादा अपनी पत्नी को भी साथ ले जाने का था, पर मेरी सास के अत्यधिक आग्रह के कारण रत्नकुमारी के साथ दो महीने और उन्हें वहीं छोड़ मिश्रजी के संग नवम्बर मास में मैं जबलपुर लौटा। सीकर

छोड़ने की वेला बड़ी कारुणिक थी। मृत्यु के मुख में गयी हुई मेरी पत्नी मुझे फिर मिल गयी थीं। वे अब स्वस्थ थीं, परन्तु मैं अब राजा गोकुलदास महल में रहनेवाला नहीं तथा फिर से शीघ्र ही जेल जानेवाला हूँ यह जानने के कारण वे मेरे रवाना होते समय बहुत व्यथित हुईं। उनकी इच्छा मेरे साथ ही लौटने की थी या फिर यह थी कि मैं वहाँ और रहूँ, मगर उनकी दोनों इच्छाएँ पूर्ण न हो सकीं।

राजस्थान का यह समय मेरे आमोद-प्रमोद के जीवन में एक विशिष्ट स्थान रखता है और वहाँ के बीते हुए दिन तथा वहाँ के अनेक दृश्य एवं घटनाएँ मुझे कई बार याद आ जाती हैं।

राजस्थान के इस दौरे में मेरी पत्नी और मेरी दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बात और हुई। मेरी पत्नी की अस्वस्थता, उसके कारण मेरे जेल से छूटने और उन्हें लेकर राजस्थान जाने का वृत्त गान्धीजी ने साबरमती जेल में पत्रों में पढ़ा। बापू के अपने निकटवर्तियों से व्यक्तिगत सम्पर्क का हाल तो सर्व-विदित है ही। उन्होंने मेरी पत्नी के स्वास्थ्य की जानकारी के लिए मुझे जबलपुर पत्र लिखा जो जबलपुरवालों ने सीकर भेज दिया। इसके बाद उनका, मेरी पत्नी और मेरा पत्र-व्यवहार चलता रहा। उस पत्र-व्यवहार में बापू ने मेरी पत्नी को अपनी धर्म-पुत्री बना लिया और तब से बापू की मृत्यु-पर्यन्त हम लोगों का बापू से उसी प्रकार का सम्बन्ध चलता रहा। मुझे बड़ा खेद है कि गान्धीजी के वे पत्र मेरी पत्नी और मेरे पास से खो गये, पर इस पत्र-व्यवहार के दो पत्रों को श्री महादेवभाई देसाई ने अपनी डायरी में उद्धृत किया है। उनको यहाँ भी लाना अनुपयुक्त न होगा।

श्री महादेवभाई ता० ५-११-३२ की अपनी डायरी के (दूसरे भाग) के पृष्ठ १७४ पर लिखते हैं—

"गोविन्ददास की पत्नी लिखती हैं—'आपने मुझे तो लड़की मान लिया, मगर इन्हें लड़का नहीं माना। इस पर इन्हें दुःख हुआ है। मैंने कहा लड़का और दामाद तो एक ही बात है। उसे (मेरी पत्नी को) लिखा (गान्धीजी ने) हिन्दी में—'तुम्हारा पत्र पाकर बहुत आनन्द हुआ। तुम्हारे विनोद से ही मैं देख सकता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य अब ठीक हो रहा है। ईश्वर तुमको

पूर्ण आरोग्य देवे। यदि वहीं शरीर अच्छा होवे तो जबलपुर जाने की शीघ्रता करने का कोई कारण न माना जाय। पुरुष लोगों को पुत्र बनाने में बड़ी आपत्ति रहती है। वे लोग बहुत घमण्डी रहते है और पिता की मिलकियत में हिस्सा माँगते हैं। गोविन्ददास ने छोड़ दिया सो तो अलग बात हुई। (उसी के कुछ दिन पहले मैंने पैतृक सम्पत्ति से जो त्याग-पत्र दिया था उसका वृत्तान्त बापू को मालूम हो गया था और इस सम्बन्ध में भी मुझे बधाई देते हुए उन्होंने साबरमती जेल से ही एक लम्बा पत्र भेजा था। खेद है वह पत्र भी मेरे पास से गुम हो गया।) पुत्री बेचारी तो हिस्सा माँग नही सकती। और मेरे जैसे जो पिता बन बैठे हैं वह तो पुत्रियों से सेवा ही लेते हैं। देने की बात कहाँ से? मेरी पुत्री बनने में क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं वह तुमको बता दिया।' इस तरह इस विश्व कुटुम्ब में नयी वृद्धि हुई।"

सन् ३३ के आरम्भ में फिर जेल और सन् ३३ का जेल-जीवन

जबलपुर लौटकर मैं गोपाल बाग में रहने लगा। एक रसोइया और एक नौकर का मैंने प्रबन्ध कर लिया। जेल में मैं रसोई के इन्तजाम तथा अपने सब कामों में दक्ष हो गया था, इसलिए इस विषय में मुझे कोई कष्ट न हुआ। सवारी की कमी को छोड़ और कोई तकलीफ वहाँ न थी, पर प्रातःकाल श्री गोपाललालजी के दर्शन तथा माता-पिता के चरण-स्पर्श के सिवा मैं बाहर बहुत कम जाता था। चूँकि नित्य मुझे देखने के लिए पिताजी व्यग्र रहते थे इसलिए प्रातःकाल उनकी सवारी मुझे लेने के लिए गोपाल बाग आती थी। कभी-कभी मैं पैदल भी चला जाता था। जबलपुर की सड़कों पर मैं कभी पैदल न चला था। मेरे इस प्रकार एक किराये के मकान में रहने तथा कभी-कभी पैदल ही बाहर निकल जाने के कारण नगर-निवासियों में अनेक को व्यक्तिगत दुख-सा अनुभव होता था। मेरे प्रति लोगों का स्नेह ही इसका कारण था। जब कभी मैं पैदल निकलता, तब कई जगह तो भीड़ें इकट्ठी हो जातीं। कई लोगों के आँसू छलछला आते। मेरे गोपाल बाग में रहने के उस आरम्भिक काल में कितने लोग कहते, कोई जोर देता, कोई अनुनय-विनय करता कि महल में लौट जाऊँ, मेरी माताजी तो यह कहे बिना एक दिन भी न रह पातीं, पिताजी अनेक बार कहते, कभी-कभी बहुत घुमा-फिरा कर, पर इस विषय में किसी को कभी कोई उत्तर ही न देता, बहस-मुबाहसा तो दूर की बात है। जब भी कोई यह बात निकालता मैं चुपचाप केवल मुस्करा देता और उस बात को टाल देता।

प्रान्त में लौटकर मैंने पुनः कांग्रेस को संगठित करने का प्रयत्न किया। मिश्रजी ने भी मेरी सहायता की। परन्तु मिश्रजी अभी भी जबलपुर म्युनिस्पैल्टी के सभापति थे अतः उन्होंने वहाँ का काम भी सँभाल रखा था इसलिए उनका ध्यान दो कामों के बीच में बटा रहने के कारण उनके प्रान्तीय

कांग्रेस कमेटी का मंत्री होते हुए भी उनसे मुझे विशेष सहायता न मिल सकी। मैंने देखा कि सीकर में जो यह आशा लेकर मैं जबलपुर आया था कि सत्याग्रह को एक नये ढंग से संगठित करूँगा, उस आशा का पूरा होना सरल नहीं है। सन् ३२ में जो लोग गिरफ्तार हुए थे उनमें से अधिकांश छूट गये थे। मैंने उनसे सम्पर्क स्थापित करने के अनेक प्रयत्न किये। उन्हें पत्र भेजे, जब पत्र के उत्तर न आये, तब आदमी भेजे, पर इक्के-दुक्के व्यक्तियों को छोड़ बाकी ने उस समय मुझसे किसी प्रकार का सरोकार ही न रखना चाहा। मैं यदि दौरे पर निकलता, तो निकलते ही गिरफ्तार हो जाता, इसलिए मैंने जबलपुर ही लोगों को बुला आगे का कार्यक्रम बनाना चाहा, पर एकाध महाशय को छोड़ कोई आया तक नहीं। कांग्रेस जनों की यह हालत देख मुझे अत्यधिक दुःख हुआ, कुछ क्रोध भी आया, पर मैं करता क्या? इस समय जो लोग मुझसे कोई सरोकार न रखना चाहते थे उनमें से अधिकांश ऐसे थे जो देश की आजादी के लिए यदि फाँसी पर चढ़ना पड़े, गोली से उड़ना पड़े, लाठियाँ खाना पड़े, जन्म भर जेल में रहना पड़े, कुछ भी करना पड़े सबके लिए प्रतिज्ञाएँ कर चुके थे। उन्हीं का आज यह हाल था! जब सब तरफ से मैं निराश हो गया और मैंने देखा कि इस समय कांग्रेस में नया जीवन लाकर सत्याग्रह के कार्यक्रम बनाने में मुझे किसी की सहायता मिलना सम्भव नहीं तब मैंने ही २६ जनवरी की स्वतन्त्रता दिवस की एक बृहत योजना बनायी और उसे हर जिले तथा तहसील के कार्यकर्त्ताओं को भेज जबलपुर नगर में उसे कार्यरूप में परिणत करने का स्वयं निश्चय किया। इस प्रकार यह तय-सा हो गया सन् ३३ की २६ जनवरी को मैं पुनः जेल जा रहा हूँ।

मेरी पत्नी मेरी रवानगी के बाद दो महीने और सीकर में रहनेवाली थीं, पर मेरा यह कार्यक्रम सुन वे रत्नकुमारी के साथ एक महीने में ही जबलपुर लौट आयीं। वे मेरे पास गोपाल बाग में ठहरीं। जब मैंने उनसे पूछा कि मेरे जेल जाने के बाद वे कहाँ रहेंगी तब उन्होंने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया—"मैंने अपना घर थोड़े ही छोड़ा है। जब आप रहेंगे तब आपके साथ यहाँ रहूँगी या जहाँ कहेंगे वहाँ रहूँगी, और जब आप ही मुझे छोड़कर जेल या दौरे पर चले जायँगे तब अपने घर रहूँगी।" इस दृढ़ता में करुणा का कम मिश्रण

न था। मैं इसके उत्तर में हँस दिया। एकाएक मेरे मन में उठा इस कांग्रेस ने जिस प्रकार मेरा कौटुम्बिक जीवन तितर-बितर कर तीन तेरह कर दिया है वैसा क्या और किसी का भी किया है?

२६ जनवरी दौड़ी हुई आ रही थी। उसके एक निश्चित कार्यक्रम के कारण मेरा, मेरी पत्नी का या किसी भी कुटुम्बी का अन्य किसी बात में मन ही न लगता था। यद्यपि जेल जाना अब कोई नयी बात न रह गयी थी और अब मैं तीसरी बार जेल जा रहा था, पर २६ जनवरी को जेल जाने के अतिरिक्त अन्य कोई भीषण घटना भी घटित हो सकती है इसकी सभी को शंका थी।

सारा प्रयत्न करने पर भी २६ जनवरी को प्रान्त में कहीं कुछ न हुआ। जबलपुर में मैंने सत्याग्रह करने का निश्चय ही कर लिया था अतः कांग्रेस के गैर कानूनी संस्था रहते हुए एवं जुलूस और सार्वजनिक सभा की मुमानिअत होते हुए भी ऐलान हुआ कि २६ जनवरी को स्वतंत्रता दिवस कांग्रेस की ओर से मनाया जायगा और मैं जुलूस का नेतृत्व कर आम सभा में शाम को ५ बजे भाषण दूँगा। लोगों को तरह-तरह की शंकाएँ थीं पर कोई दुर्घटना नहीं हुई बल्कि मेरे जुलूस को भी नहीं रोका गया। एक बार जबलपुर ने फिर से सन् ३० और ३२ का जोश तथा हुजूम देखा। हजारों आदमी जुलूस में शामिल हुए और बुलन्द से बुलन्द आवाज में कांग्रेस के नारे लगाये गये। उस समय तो जान पड़ा कि फिर से जनता में नया जोश आ रहा है। जब जुलूस आम सभा में परिणत हुआ और मैं भाषण देने खड़ा हुआ उस समय मुझे और श्री देवीप्रसाद जी शुक्ल "नीम पत्ती" को गिरफ्तार कर लिया गया। निगोड़ी म्यूनिस्पैल्टी के कारण द्वारकाप्रसादजी मिश्र भी इस बार मेरे साथ सत्याग्रह नहीं कर सके।

मेरी गिरफ्तारी के बाद फिर से सब जैसा का तैसा हो गया। जो जोश दिखायी दिया था वह सोडावाटर की बोतल का उफान मात्र था।

जेल में ही मेरा मुकदमा हुआ। मजिस्ट्रेट वही श्री जोगलेकर थे। देवीप्रसादजी शुक्ल ने और मैंने सत्याग्रही होने के कारण एक वक्तव्य देने के सिवा मुकदमे की कोई पैरवी नहीं की। दो दिन में हमारा मुकदमा समाप्त हो गया। मुझे एक वर्ष की कड़ी सजा और देवीप्रसादजी को ६ महीने की कड़ी सजा दी गयी। मुझ पर पन्द्रह सौ रुपया जुर्माना भी हुआ। इस बार के मुकदमे में मेरे

पिता, माता और पत्नी तथा देवीप्रसादजी की पत्नी के अतिरिक्त कोई न आया। कहाँतक लोग साथ देते जब मेरा रोज जेल जाना धन्धा ही हो गया था। हाँ, मेरी गिरफ्तारी के उपलक्ष में लोगों ने एक दिन की हड़ताल अवश्य मना ली थी।

सजा होने के दूसरे ही दिन मेरा तबादला नागपुर जेल को कर दिया गया।

नागपुर जेल में प्रवेश करते ही मुझे वे सारी घटनाएँ याद आयीं जो सन् ३२ में घटित हुई थीं। वही चक्कर, वही बैरक सब कुछ वैसा का वैसा था। हाँ, सन् ३२ वाले सारे साथी नहीं थे। बीमारी के कारण श्री अभ्यंकर रिहा हो गये थे। श्री अणे को केवल ६ मास की सजा हुई थी अतः सजा पूरी होने पर वह भी छोड़ दिये गये थे। केवल रविशंकरजी शुक्ल रह गये थे। शुक्लजी ने मेरा हार्दिक स्वागत किया और मेरी पत्नी का स्वास्थ्य पूछा।

एक ही दिन में अपनी सारी व्यवस्था जमा मैंने सदा के सदृश अपनी दिन-चर्या आरम्भ कर दी। इस बार मैंने हमेशा से अधिक पढ़ना-लिखना शुरू किया। कई बार तो मेरी यह पढ़ाई-लिखाई शुक्लजी को अखर जाती। हम दो ही इस समय जेल में थे अतः अन्य कोई साथी के न रहने से मेरा इस प्रकार पढ़ने-लिखने में लगे रहना शुक्लजी को अखरने की बात भी थी।

गर्मियों के शुरू होते ही सरकार ने हमें सिवनी जेल भेज दिया। जबलपुर से नागपुर दूर था अतः नागपुर जेल में मेरे कुटुम्बी पन्द्रह दिन में मिलने आते, परन्तु सिवनी जबलपुर के निकट होने के कारण फिर हर सप्ताह मुलाकातें शुरू हो गयीं।

बरसात होने के पश्चात् हम लोग फिर नागपुर ले आये गये और इसके कुछ ही दिन बाद शुक्लजी की सजा पूरी होने पर वे छोड़ दिये गये। अब बुलढाने के सदृश मैं फिर से जेल में अकेला हो गया। अकेले होने के कारण पढ़ना-लिखना और बढ़ गया। इस बार लिखने की अपेक्षा मैंने पढ़ा बहुत।

लेखन मेरा नाटकों तक ही सीमित रहा। दो नाटक मैंने लिखे—"विकास" और "पवित्र नारी"। "पवित्र नारी" आगे चलकर "दलित कुसुम" के नाम से प्रकाशित हुआ और इसी नाम से इसका फिल्म भी बना।

"विकास" नाटक एक स्वप्न नाटक है। इस एक ही नाटक में गौतम

बुद्ध, अशोक, ईसा, कान्स्टैण्टाइन और गान्धी आते हैं ; साथ ही बौद्ध मत और ईसाई धर्म के उत्थान और पतन के दृश्य। पहले एक आधुनिक शयनागार में एक पुरुष और स्त्री सोते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह दृश्य बदल कर क्षितिज दिखने लगता है जहाँ आकाश नर रूप में और पृथ्वी नारी रूप में यह विवाद करते हैं कि यह सृष्टि विकास-पथ से उन्नति की ओर जा रही है या चक्रवत घूम रही है। आकाश उन्नत होने के कारण उन्नति के पक्ष का है और पृथ्वी स्वयं घूमने के कारण चक्रवत घूमने के पक्ष की। आकाश अपने मत के प्रमाण-स्वरूप बुद्ध, अशोक, ईसा और कान्स्टैण्टाइन के समय के दृश्य दिखाता है और पृथ्वी बौद्ध मत तथा ईसाई धर्म के पतन के दृश्य। अन्त में आकाश गान्धीजी को लाता है तब पृथ्वी कहती है जो बौद्धमत और ईसाई धर्म का हुआ वही गान्धीवाद का न होगा इसे कौन कह सकता है। अन्त में फिर से वही शयनागार दिखता है। पुरुष आँखें मलता हुआ उठता है और अपनी पत्नी को जगाकर कहता है कि मैंने अद्भुत स्वप्न देखा है। उसकी पत्नी कहती है—"आधी रात तक तो यह विवाद करते रहे कि सृष्टि विकास-पथ से उन्नति की ओर जा रही है, या चक्रवत घूम रही है और इस विवाद का कोई निष्कर्ष भी न निकल सका। अब भी सोने न दोगे ?" इस नाटक में एक सर्वथा नयी टैकनीक का उपयोग हुआ है और यद्यपि मैंने इसका नाम केवल "नाटकीय संवाद" रखा था, क्योंकि मैं समझता था कि यह खेला न जा सकेगा पर सन् १९५१ में अहमदाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के समय दरियापुर राष्ट्रभाषा प्रचार वर्ग द्वारा यह बड़ी सफलतापूर्वक खेला गया। इस नाटक का अनुवाद कई भारतीय भाषाओं में हुआ है। यह नाटक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में है। "दलित कुसुम" में कुछ विशिष्ट परिस्थिति में आत्महत्या को हत्या न मानकर बलिदान माना जाना चाहिए यह दिखाया गया है।

इस बार मेरी जेल से रिहाई सजा पूरी होने पर ही हुई। २६ जनवरी को मेरे सत्याग्रह करने से पहले एक प्रकार से सन् ३२ का सत्याग्रह समाप्त हो चुका था, पर जब तक कांग्रेस ने सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा न की थी तब तक गान्धीजी के मतानुसार किसी कांग्रेसवादी को जेल के बाहर रहने का

अधिकार न था। इसी दृष्टि से मैं सन् ३३ में फिर जेल गया था, यद्यपि बहुत प्रयत्न करने पर भी इस बार अपने साथ जानेवालों को इकट्ठा न कर पाया था। सजा पूरी होकर छूटने के बाद मेरा फिर से सत्याग्रह करने का विचार था, परन्तु मेरे जेल में रहते तथा जेल से बाहर आने पर जो घटनाएँ घटित हुईं उनके कारण मेरे फिर से सत्याग्रह करने का प्रसंग उपस्थित न हुआ।

सन् ३२ के सत्याग्रह की समाप्ति और उसके परिणाम

सन् ३२ के सत्याग्रह को चलते हुए लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गये थे। हाँ, सरकार की नीति का एक परिणाम अवश्य हुआ था, वह यह था कि साधारण जन को भारी पैमाने पर गुप्त संगठन और गुप्त कार्रवाई करने का अभ्यास हो गया था। स्मरण रहे कि महात्माजी ने अपने राजनैतिक आन्दोलन का यह आधारभूत सिद्धान्त रखा था कि सब काम खुले मैदान में किया जाये। वे यह मानते थे कि जब सत्याग्रही का आशय विपक्षी को हानि पहुँचाना न होकर उसे सद्मार्ग पर लाना है और ऐसा करने को स्वयं हर प्रकार की हानि सहने के लिए तैयार रहना है तब इस बात की आवश्यकता ही नहीं है कि किसी प्रकार का लुकाव-छिपाव किया जाय। जो कुछ करना है डंके की चोट करो। नैतिक दृष्टि से तो यह बात उचित थी ही राजनैतिक दृष्टि से भी इसमें यह गुण था कि लोगों के मन से सरकार का अकारण भय दूर हो जाता था। इसके अतिरिक्त जनता के अन्य लोगों को भी यह स्पष्ट हो जाता था कि सत्याग्रही अपने किसी स्वार्थ के लिए कोई काम न करके केवल धर्म तथा सत्य के लिए ही अपनी सम्पत्ति, अपनी स्वतंत्रता और अपने जीवन को संकट में डाल रहा है। अतः प्रत्येक सत्याग्रही ऐसा ज्योतिर्मय केन्द्र हो जाता था जिससे ज्योति और स्फूर्ति निकल कर अन्य लोगों के हृदयों को भी ज्योतिर्मय और स्फूर्तिमय करती थी। उन दिनों जब चारों ओर जनता में आतंक छाया हुआ था इस रीति से काम करने से ही सफलता मिल सकती थी। असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह आन्दोलन में महात्माजी ने यही नीति बरती थी और सारे भारत को उत्साह तथा स्फूर्ति से भर दिया था। अतः अब प्रचार की दृष्टि से डंके की चोट कार्य करने का वह महत्त्व नहीं रहा था जो पहले था। अब तो इसका नैतिक महत्त्व ही अधिक था। मैं यह नहीं कहता कि अहिंसात्मक राज्य-क्रान्ति और नव-समाज की रचना की दृष्टि से इसके महत्त्व में

कमी आ गयी थी, किन्तु यह बात तो कही जा सकती है कि कोरी राजनैतिक क्रान्ति की दृष्टि से और विशेषतः अंग्रेजों पर उसके प्रभाव की दृष्टि से यह बात भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी कि चाहे जैसे भी हो राजनैतिक विरोध प्रदर्शन चलता रहे और जनता उसके चलाने में दक्ष हो जाय, भले ही वह उसे गोपनीय रीति से ही क्यों न चलाये। गोपनीय राजनैतिक विरोध होने से अंग्रेजों को यह ठीक पता न चलता था कि विरोधियों की शक्ति कितनी है और वे किस समय तथा कहाँ अंग्रेजी शक्ति पर आक्रमण कर बैठेंगे। अतः चाहे विरोधियों की शक्ति थोड़ी ही क्यों न हो सरकार को हर प्रकार की स्थिति का मुकाबला करने के लिए अपनी पूरी शक्ति हर समय तैयार रखनी पड़ती थी। इससे सरकार हर क्षण ऐसे तनाव की स्थिति में बनी रहती थी जो न तो वैयक्तिक शरीर के लिए और न सरकारी विराट शरीर के लिए कभी स्वास्थ्यकर होती है। अतः इन दो वर्षों में सरकार को पर्याप्त आशंका बनी रही और गुप्त रीति से राज्य-क्रान्ति करने की प्रशिक्षा जनता को मिलती गयी। पर इस गुप्त कार्य के बावजूद भी १९३२ के सत्याग्रह के आन्दोलन का यह परिणाम भी निकला कि जनता को यह विश्वास हो गया कि भले ही ख्यातिनाम नेता उसके बीच में न रहें उसे नेताओं की तथा दिग्दर्शकों की कभी कमी न रहेगी। यह ऐतिहासिक सत्य उसके मन में घर करने लगा कि समय अपने लिए उचित नेताओं को स्वयं जन्म दे देता है। बहुधा अपने अज्ञान में व्यक्ति एवं समूह दोनों ही सोचा करते हैं कि उनका भाग्य किसी व्यक्ति विशेष पर आश्रित करता है, किन्तु यह उनका भारी भ्रम होता है जो जीवन के सच्चे स्वरूप न जानने की भयंकर भूल के कारण पैदा होता है। जीवन तो उसी निरन्तर चेतना धारा का दूसरा नाम है जो अपनी ही आन्तरिक प्रवाह-शक्ति से अपने लिए सब बाधाओं के दुर्गम पहाड़ों में से पग बना लेती है। जैसे गंगा का प्रवाह कभी रुकता नहीं, कभी रुक सकता नहीं, वैसे ही राष्ट्रीय जीवन की पुनीत किन्तु प्रबल गंगा भी कभी रुकती नहीं। वह अपनी अविरल गति से सर्वदा भविष्य सागर की ओर बहती रहती है। व्यक्ति आते हैं और जाते हैं। कोई-कोई व्यक्ति बड़े जोर-शोर से अपना अस्तित्व प्रकट करता है, किन्तु सब उसी जीवनधारा में एक दिन लीन होकर भविष्य सागर की ओर बह जाते हैं और

उनका केवल नाम, केवल छाया ही बाकी रह जाती है। अतः इतिहास में कभी ऐसा अवसर नहीं आया जब व्यक्ति विशेष के लोप हो जाने से राष्ट्रीय जीवन की धारा सूख गयी हो। इसके विपरीत राष्ट्रीय जीवनधारा की आवश्यकताओं के अनुरूप ही उसमें व्यक्ति रूपी बूँद और लहरें पैदा होती रहती हैं। जब वह किसी बाधा से टकराती है तो उसमें शूरवीर रूपी तूफानी लहरें उठने लगती हैं तथा देखते-देखते उस बाधा को ढा देती हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यह बताया है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

यह बात १९३२ के सत्याग्रह आन्दोलन में भली भाँति व्यक्त हो गयी थी। जो लोग पहले अपने को सर्वथा दूसरों का ही अनुचर समझते थे, या जिन लोगों को यह भास भी न था कि उनके हृदय में किसी प्रकार की राजनैतिक तरंगें उठ रही हैं, वे भी सहसा ही यह अनुभूति करने लगे कि उनका धर्म है कि वे राजनैतिक आन्दोलन की बागडोर सँभाल लें। और उनमें से अनेकों को यह पता चला कि उनमें छिपी अपार शक्ति है। अधिकतर नर-नारियों के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है कि महावीर हनुमान की तरह उन्हें अपनी शक्ति का भास नहीं होता। उन्हें तो परिस्थितियाँ टकराकर जगा देती हैं तब उन को पता चलता है कि वे भी कुछ कर सकते हैं। यही बात सन् १९३२ के आन्दोलन ने भारत के अनेक युवक-युवतियों के लिए की। उन्हें अपनी शक्ति का आभास कराकर उन्हें राजनैतिक प्रांगण के रंगमंच पर लाकर खड़ा कर दिया।

परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक कार्य के लिए एक नया चतुर नायक वर्ग तैयार हो गया; इतना ही नहीं, राजनैतिक आन्दोलन का नेतृत्व भी उसने किसी हद तक अपेक्षाकृत युवक नेताओं के हाथ में देना आरम्भ कर दिया। स्मरण रहे कि सन् १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस में युवक वर्ग ने वयोवृद्ध नेताओं का प्रथम बार डटकर विरोध किया था, किन्तु वह विरोध कांग्रेस के कुछ प्रतिनिधियों तक ही सीमित था जिनमें अधिकतर मिल मजदूरों में काम

करनेवाले एवं कुछ नगर के पाश्चात्य क्रान्ति और विशेषतः रूसी राज्य-क्रान्ति से प्रभावित युवक ही थे। जहाँ तक ग्राम्य प्रदेशों का प्रश्न था वहाँ तो पुरानी राजनीति के विरुद्ध कोई आग्रह न था। किन्तु जब १९३२ के सत्याग्रह में ग्राम्य तथा नगर दोनों क्षेत्रों में ही परिचित नेता जेल चले गये तब नये युवक नेताओं के हाथ में राजनीति की बागडोर किसी हद तक गयी, नये युवक नेताओं का भारत की राजनीति में अपना स्थान हो गया। इस तरह एक प्रकार से भारतीय नेतृत्व में किसी सीमा तक परिवर्त्तन होने लगा और शनैः शनैः नयी विचारधारा के राजनीतिज्ञों का कांग्रेस में महत्त्व बढ़ने लगा।

जब यह सत्याग्रह चल रहा था उसी समय रैम्ज़े मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक बाँट के सम्बन्ध में फैसले के खिलाफ महात्माजी का सरकार से पत्र-व्यवहार चल रहा था। जैसा पहले कहा जा चुका है महात्माजी ने गोलमेज परिषद् में यह साग्रह कहा था कि वे हिन्दुओं में इस प्रकार जातीय दरार डालने का अपने प्राण की बाजी लगाकर भी विरोध करेंगे। अपनी इस बात की याद दिलाकर उन्होंने सरकार से माँग की कि इस फैसले में परिवर्त्तन किया जाय। जब सरकार ने उनकी न सुनी तब उन्होंने आमरण अनशन की घोषणा कर दी।

गान्धीजी ने भारत सरकार को सूचित किया कि वे मैकडानल्ड साहब के साम्प्रदायिक फैसले के विरुद्ध आमरण अनशन २० सितम्बर सन् ३२ को आरम्भ करेंगे। देश में इस समाचार से हलचल मच गयी। गान्धीजी को अपने प्रण से हटाने के सभी प्रयत्न असफल रहे। सरकार ने गान्धीजी के पत्र का बड़ा गोलमाल उत्तर देकर गान्धीजी के शत्रुओं को गान्धीजी के उपहास करने का मौका देने में अचूक सहायता की। यहाँ उनके मित्र उनके प्राण बचाने को चिंतित थे। मैकडानल्ड साहब के इस फैसले में एक शर्त थी कि उनके सामने हरिजनों के विषय में कोई सम्मिलित योजना आयेगी तो वे उस पर विचार करने को तैयार होंगे। सदा समयानुकूल चलनेवाले मालवीयजी ने नेताओं का सम्मेलन करने का प्रयत्न किया। हरिजन भी जो गान्धीजी के प्रति कृतज्ञ थे उनके प्राण लेने का कलंक अपने ऊपर नहीं आने देना चाहते थे। पहले सम्मेलन बम्बई तथा बाद में पूना में हुआ। अछूतों के प्रतिनिधि

डॉ० अम्बेदकर के साथ ही सर्वश्री मदनमोहन मालवीय, राजगोपालाचार्य, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, हृदयनाथ कुंजरू, आदि नेताओं ने सम्मेलन में भाग लिया। आखिर पाँच दिन की सलाह-मशविरे के बाद समझौता हो गया जिसमें अलग चुनाव क्षेत्र को छोड़ अछूतों के लिए जगहें सुरक्षित कर दी गयीं तथा यह समझौता दस वर्ष तक लागू रखने का निर्णय किया गया। प्रधान मंत्री मैकडानल्ड को यह योजना भेज दी गयी तथा २४ घण्टे में ही उनकी स्वीकृति की खबर आ गयी। गान्धीजी के लिए अब अनशन का कोई कारण नहीं रह गया और उन्होंने उपवास भंग कर दिया। कुछ दिनों बाद जेल में गान्धीजी को हरिजनों के सम्बन्ध में जो लिखने की सुविधा मिली थी जब वह बन्द की गयी तो उन्होंने फिर अनशन आरम्भ कर दिया। सरकार को विवश होकर गान्धीजी पर लगायी हुई न केवल वह रोक हटानी पड़ी अपितु नित्य प्रति की इन झंझटों से ऊबकर उसे उन्हें जेल से भी मुक्त कर देना पड़ा। गान्धीजी ने मुक्त होने के उपरान्त हरिजन आन्दोलन पर जोर देने तथा आत्मशुद्धि के लिए फिर २१ दिन का उपवास कर उसे सफलतापूर्वक समाप्त किया।

अब गान्धीजी ने अस्पृश्यता निवारण के आन्दोलन पर जोर देना आरम्भ किया। जो लोग केवल राजनीति में अनुराग रखते थे वे गान्धीजी को सत्याग्रह के विपरीत इस सामाजिक कुरीति पर जोर देने के लिए कोसने लगे।

इन लोगों ने इस पर यह आपत्ति की कि इस प्रकार देश का ध्यान सामाजिक समस्या की तरफ लगाकर महात्माजी ने राजनैतिक क्रान्ति की ओर से लोगों का मुख मोड़ दिया। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात न भूलनी चाहिए कि हमारी सामाजिक दुर्बलताओं तथा हमारे साम्प्रदायिक एवं जातीय विभाजन के फलस्वरूप ही तो अंग्रेज हम पर राज्य करने में समर्थ थे अतः ये सामाजिक दोष सामाजिक दृष्टि से तो हमारे लिए कोढ़ थे ही, किन्तु इनका राजनीति से भी पूर्ण सम्बन्ध था। हमारे इन्हीं विभाजनों से लाभ उठाकर अंग्रेज हम पर राज करते रहे थे। अतः इन सामाजिक विभाजनों को दूर करने के प्रयास का न केवल सामाजिक महत्त्व ही था वरन् उसका राजनैतिक महत्त्व भी था। इसलिए अस्पृश्यता के विरुद्ध जेल से अपनी आवाज उठाकर महात्माजी ने

हमारे सामाजिक दोष को ही मिटाना चाहा था, किन्तु इसका राजनैतिक पहलू भी तो था ही। इतने पर भी यह कथन भी ठीक ही है कि १९३२ का आन्दोलन इस अस्पृश्यता निवारण के आन्दोलन में लीन हो गया। और इस प्रकार इसका निश्चित रूपेण निर्णय न हो सका कि इस जन आन्दोलन को सरकार पूर्णतः मिटाने में सफल हुई या नहीं। अब गान्धीजी ने अस्पृश्यता निवारणार्थ एक अखिल भारतीय दौरा आरम्भ किया।

सारी राजनैतिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए पहले पूना में सारे देश के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक हुई और फिर जबलपुर में कांग्रेस की कार्यकारिणी की। जबलपुर की कांग्रेस कार्यकारिणी की इस बैठक में गान्धीजी भी जबलपुर आये। जब जबलपुर में कांग्रेस कार्यकारिणी की यह बैठक हुई उस समय मैं जेल में था, परन्तु पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र जेल के बाहर थे। यह पहले लिखा जा चुका है कि सन् २९ में जब जबलपुर से हम लोगों ने "लोकमत" नामक दैनिक पत्र निकाला था तब से मिश्रजी जिस जगह से वह पत्र निकलता था उस गोपाल बाग नामक स्थान में रहने लगे थे और कौटुम्बिक सम्पत्ति से त्याग-पत्र देने के बाद मैं भी मिश्रजी के निकट ही हमारे कौटुम्बिक मंदिर के एक बंगले में रहने लगा था। कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों के ठहरने का प्रबन्ध मिश्रजी ने गोपाल बाग में किया, परन्तु गान्धीजी व्योहार राजेन्द्रसिंहजी के यहाँ ठहरे।

गान्धीजी की बड़ी इच्छा थी कि वे मेरी पत्नी के साथ ठहरें, क्योंकि वे उन्हें अपनी धर्मपुत्री बना चुके थे जिसका उल्लेख पिछले एक अध्याय में आ चुका है। यह भी पहले लिखा जा चुका है कि जब मैं जबलपुर रहता तब मेरी पत्नी मेरे साथ गोपाल बाग में रहतीं और जब मैं जबलपुर के बाहर रहता तब वे राजा गोकुलदास महल में। इस समय मैं जेल में था अतः मेरी पत्नी राजा गोकुलदास महल में रहती थीं और चूँकि मेरे पिताजी इस समय अपनी सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्ड्स के प्रबन्ध में दे चुके थे इसलिए गान्धीजी राजा गोकुलदास महल में न ठहर सकते थे।

बापू व्यक्तिगत सम्पर्कों का कितनी दूर तक ध्यान रखते थे यह उस समय के मेरी पत्नी और उनके एक संभाषण से भी ज्ञात होता है जो सोमवार के

मौन के कारण बापू ने मेरी पत्नी से लिखकर किया था और जिस संभाषण के बापू द्वारा लिखे हुए कागज मेरी पत्नी अपने पास बड़ी हिफाजत से रखे हुए हैं।

गान्धीजी ने जबलपुर पहुँचते ही मेरी पत्नी को एक पत्र भेजा—

चि० गोदावरी,

जब से आया हूँ तब से तुमको मिलने के लिए तरस रहा हूँ। प्रातःकाल मुझे राजेन्द्रसिंह ने पूछा और मैंने आठ बजे आने को कहला भेजा लेकिन दिल चाहे तब आने का तुमको पूरा अधिकार है।

बापू के
आशीर्वाद

४-१२-३३

जब मेरी पत्नी बापू से मिलने गयीं तब उन्होंने लिखा—

"आज किसी और को मत आने दो। मौन तो रात्रि को ९ बजे खुलेगा। मौन में दूसरों से मिलना अच्छा नहीं है। तुमको तो मिलने के लिए मैं अधीर था। ....मैं तो तुम्हारे साथ ही ठहरना चाहता था। एक हफ्ता पहले पूछा था लेकिन मुझे कहा गया तुम्हारे यहाँ ठहरना नहीं होगा। मुझे यह भी पता नहीं था कि तुम यहाँ हो। कल पूछने से पता चला। अब तो हुआ सो हुआ। बताओ तुम्हारी प्रकृति बिल्कुल अच्छी हो गई ? अब कुछ दर्द का निशान रहा है ?"

मेरी पत्नी ने उन्हें मौखिक उत्तर दिया था और उसमें उन्होंने गान्धीजी को अपने पास न ठहराने का कुछ बहाना बताया था। इस पर गान्धीजी ने फिर लिखकर कहा—

"यह सब ढोंग है। तुम्हें मुझको तुम्हारे साथ ठहराना ही नहीं था।"

जब मैं जेल से निकला और मुझे यह सब हाल मालूम हुआ तब मुझे अत्यधिक दुःख हुआ। यदि मैं उस समय जेल के बाहर होता और मेरी पत्नी मेरे साथ गोपाल बाग में रहती होतीं तो काहे को ऐसा प्रसंग आता।

जबलपुर की कांग्रेस कार्यकारिणी की इस बैठक में निर्णय हुआ व्यक्तिगत सत्याग्रह किया जाय, सामूहिक नहीं। व्यक्तिगत सत्याग्रह ने यद्यपि आरम्भ में जोर मारा, परन्तु वह भी धीरे-धीरे शिथिल हो गया।

इधर गोलमेज परिषद् के उपरान्त एक श्वेत पत्र प्रकाशित हुआ जिसके आधार पर भारतीय शासन-सुधार का नया कानून पास होने वाला था। कांग्रेस के कुछ नेता सोचने लगे कि इसके पास होने पर चुनाव होंगे ही अतः कांग्रेसवादियों को पुनः उनमें भाग लेना चाहिए। सन् २० से यह लगातार होता रहा था कि या तो असहयोग और सत्याग्रह हो या फिर धारासभाओं में जाया जाय। सन् २० में असहयोग हुआ। उसके बाद सन् २३ में कांग्रेसवादी कौंसिलों में पहुँचे। सन् ३० में सत्याग्रह हुआ और उसके बाद फिर वही प्रश्न उठा।

इस प्रकार एक ओर नेता लोग फिर से चुनाव की बात करने लगे थे और दूसरी ओर जेलों से लौटे सत्याग्रहियों का उत्साह भंग हो रहा था। जो फिर से व्यक्तिगत सत्याग्रह करना चाहते थे उन्हें यों तो सरकार पकड़ती नहीं थी, या फिर जो सत्याग्रही पकड़े जाते उन्हें मारपीट कर छोड़ देती अथवा उनके साथ जेल में बड़ा बुरा व्यवहार किया जाता और इस प्रकार के बुरे व्यवहार के पश्चात् कुछ दिनों बाद उन्हें छोड़ दिया जाता। सरकार की यह कार्रवाई सत्याग्रहियों को थका देनेवाली थी। डॉ० सीतारमैया ने इसे बिल्ली चूहे का रूपक बाँधते हुए यों व्यक्त किया है—"ऐसा हो रहा था मानो बिल्ली चूहे को मुँह में पकड़कर झकझोरकर छोड़ दे और फिर पकड़ ले। इस प्रकार न तो वह उस चूहे को मारती ही थी और न छोड़ती ही।"

इसी बीच बिहार में भयंकर भूकम्प हुआ। गान्धीजी ने कार्यकर्त्ताओं को भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए आमन्त्रित किया। और जब यह कार्य चल रहा था तब एक दिन इस व्यक्तिगत सत्याग्रह को भी उन्होंने स्थगित करने का प्रस्ताव रखा। निर्णय करने के लिए पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलायी गयी। इस बैठक में सत्याग्रह को स्थगित कर चुनाव की ओर संकेत किया गया। बड़े वाद-विवाद के उपरान्त सत्याग्रह स्थगित हो गया। केवल गान्धीजी को सत्याग्रह करने की आजादी दी गयी।

कांग्रेस कार्यकारिणी की वर्धा की बैठक में तय हुआ कि अक्तूबर (३४) में कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में किया जाय।

बिहार का भूकंप

तीसरी बार पूरी सजा काटकर ही मैं दिसम्बर सन् ३३ की किसी तारीख को जेल से छूटा था और छूटने के बाद जब दिसम्बर की ही किसी तारीख को मैं अपनी डाक देख रहा था उस समय पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र भी मेरे निकट बैठे हुए थे। चिट्ठियों के साथ कुछ गश्ती चिट्ठियाँ, अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र और पुस्तिकाएँ भी आती थीं तथा अभी आती हैं। मैं हाथ से लिखी अथवा टाइप की हुई चिट्ठियों के अतिरिक्त शेष सामग्री को प्राय: उलट-पुलट कर फेंक दिया करता था। अभी भी वही करता हूँ। परन्तु आज की इस सामग्री में एक छपा हुआ पत्र था, जिसे मिश्रजी कुछ ध्यान से पढ़ने लगे। छपे हुए एक रद्दी से पत्र पर मिश्रजी का इस प्रकार का एकाग्र ध्यान देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैं उनकी ओर देखने लगा। जब मिश्रजी उस पत्र को पढ़ चुके तब उन्होंने उसे मुझे दिया। पत्र किसी ज्योतिषी का था और उसमें लिखा हुआ था कि जनवरी में भारतवर्ष के पूर्वी प्रदेश में भीषण भूकंप होगा। पत्र पढ़ कर मैं ठठा कर हँस पड़ा और मैंने कहा—"मैं ज्योतिष की ऐसी भविष्यवाणियों पर विश्वास नहीं करता।" परन्तु मिश्रजी की मुद्रा कुछ गम्भीर ही रही और उन्होंने वह पत्र मुझ से लेकर जेब में रखते हुए इतना ही कहा—"देखेंगे।" मिश्रजी को और मुझे दोनों को खेद है कि वह छपा हुआ पत्र गुम हो गया और वह जिस ज्योतिषी का था उसका नाम भी हम लोग भूल गये।

जनवरी की १५ तारीख को मिश्रजी और मैं किसी सार्वजनिक कार्य के लिए जबलपुर जिले के सिहोरा नामक स्थान को गये हुए थे। तीसरे पहर जब हम लोग अपनी मोटर में बैठकर वापस जबलपुर रवाना हो रहे थे तब सिहोरा के मकान एकदम हिलने लगे। मिश्रजी का ध्यान तत्काल उस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने जल्दी से मुझे कहा "देखिए, देखिए, बाबू साहब, भूकंप हो रहा है।" मेरा भी ध्यान तत्काल उस ओर गया। इसमें सन्देह नहीं

जोर का भूकंप था। उस समय तक रेडियो का इतना प्रचार न था अतः दूसरे दिन के पत्रों में बिहार के भीषण भूकंप का हाल पढ़ा। ज्योतिषी की भविष्य-वाणी सत्य हो गयी थी। भारत के पूर्वीय प्रदेश में भारी भूकंप हुआ था और उसका असर जबलपुर तक पहुँचा था।

इस भूकंप के सम्बन्ध में यहाँ ब्यौरेवार कुछ लिखने की इसलिए आवश्यकता नहीं कि उससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें प्रायः सभी लोगों को ज्ञात हैं। यहाँ इस विषय में कुछ ऐसी बातों का ही उल्लेख किया जाता है जिनसे या तो मेरा कुछ सम्बन्ध रहा है या जिनका मेरे मन पर कोई असर पड़ा है।

भूकंप-पीड़ित जनता को सहायता देने के लिए दो कोष एकत्रित हुए—एक राजेन्द्र बाबू का कोष और दूसरा वाइसराय का। राजेन्द्र बाबू के कोष को जनता द्वारा अधिक अर्थ प्राप्त हुआ और पीड़ितों को भी इसी कोष से अधिक सहायता भी मिली, क्योंकि वाइसराय के कोष द्वारा जो सहायताएँ दी गयीं उनके प्रबन्ध के लिए अन्य सरकारी कार्यों के सदृश प्रबन्धकों पर ही बहुत अधिक खर्च हो गया। राजेन्द्र बाबू के कोष के कार्य-संचालन के लिए सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के नाम से एक संगठन किया गया, जिसमें देश के प्रायः सभी प्रधान-प्रधान सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। महाकोशल की ओर से इस कमेटी में मुझे रखा गया। इस कमेटी की मातहती में कार्य करने के लिए देश की अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने देश में धन भी एकत्रित किया और बिहार जाकर काम भी किया। मैंने भी महाकोशल में दौरा कर चन्दा उघाया और फिर मैं भी बिहार गया। बिहार के भूकंप के बाद के दृश्य अत्यधिक भयानक और कारुणिक थे। भूमि में गहरी दरारें फटी थीं, उनमें से जो कुछ निकला था उससे मीलों की भूमि मरुस्थल-सी हो गयी थी। कितने मकान गिरे थे और कितने लोगों के प्राण गये थे। मुंगेर नामक नगर तो ऐसा जान पड़ता था जैसे वहाँ के सारे मकान ताश के पत्तों के बने थे। मेरे मन में बार-बार उठा कि मुंगेर का अब क्या पुनर्निर्माण होगा। परन्तु आठ वर्षों के बाद जब मैं फिर एक बार मुंगेर गया तब पूरा मुंगेर फिर से बन गया था और उस विनाशकारी भूकंप का कोई असर ही दृष्टिगोचर न होता था। स्वराज्य के

बाद शरणार्थियों की जब भीषण समस्या हमारे सामने आयी थी तब मुझे कई बार मुंगेर और वहाँ की जनता याद आ जाती थी और मुझे विश्वास हो जाता था कि समय इस समस्या को भी हल कर देगा।

सबसे बुरा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा इस भूकंप के सम्बन्ध में गान्धीजी के वक्तव्य का। उन्होंने इस भूकंप के कारण के विषय में लिखा था—"चाहे तुम मुझे अंधविश्वासी भले ही कहो, लेकिन मेरे सदृश व्यक्ति यह विश्वास किये बिना नहीं रह सकता कि इस महान दुःख में, हमारे पापों के लिए जरूर कोई ईश्वरीय प्रताडन अथवा दण्ड निहित है। मैं बिहार संकट और अस्पृश्यता में अत्यन्त ही महत्त्व का सम्बन्ध मानता हूँ। बिहार संकट, मेरे विचार में हम क्या हैं और ईश्वर क्या है, इस तत्त्व को भली भाँति समझने के लिए एक आकस्मिक एवं अलसित चेतावनी है। अस्पृश्यता जैसा पाप हम पर सदियों से सदा चला आ रहा है। यह एक अभिशाप है जो हिन्दू समाज के एक विशिष्ट अंग पर कृपालुता की अवहेलना करने के परिणामस्वरूप हम पर आ गया है। और जब एक तरफ यह बिहार संकट शरीर को नष्ट-प्राय करता है, वहाँ दूसरी ओर अस्पृश्यता का संकट आत्मा के निकेतन को क्षय रोग की भाँति शनैः शनैः क्षीण करता जाता है। अतएव जब तक हमारी साँसें शेष हैं तब तक यह बिहार संकट हमें हमेशा चेतावनी देता रहे। हमारे हृदय में अस्पृश्यता के मत का जो अस्तित्त्व है उसे समूल नष्ट कर हमें पवित्र हो जाना चाहिए और शुद्धान्तःकरण हो अपने रचयिता के सामने उपस्थित होना चाहिए।"

यद्यपि मैं गान्धीजी के बड़े-से-बड़े भक्तों में हूँ और अस्पृश्यता को भारतीय समाज के लिए महान घातक और कलंक माननेवाला हूँ पर अस्पृश्यता के कारण ऐसी नैसर्गिक आपत्ति हम पर आयी इसे मेरे बुद्धिप्रधान मन ने किसी प्रकार भी स्वीकार न किया। गान्धीजी के इस वक्तव्य के विरोध में दिये गये रवीन्द्र बाबू के वक्तव्य से मुझे बड़ी राहत मिली। उन्होंने लिखा था—"मुझे यह जान कर बड़ा दुःख और ताज्जुब हुआ कि महात्मा गान्धी उन सब लोगों को, जो सामाजिक व्यवहारों में अस्पृश्यता को अन्धविश्वासी की तरह मानते हैं, बिहार भूकंप के लिए दोषी ठहराते हैं और इस दुर्घटना को ईश्वरीय प्रकोप की प्रति-

क्रिया बताते हैं और इसी से उनके कथनानुसार उसने बिहार के कुछ भागों को विशेष रूप से दण्ड के लिए चुना। यह और ज्यादा दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे विचारों पर जो कि अवैज्ञानिक हैं, हमारे देश के अधिकांश लोग सहज ही में एकदम विश्वास करने लगते हैं। इसी कारण आज मुझे नग्न सत्य कहने को बाध्य होना पड़ता है। भौतिक क्रियाओं के विशेष संयोग ही भौतिक दुर्घटनाओं के एक मात्र और अनिवार्य कारण होते हैं। कितने हिंसात्मक कारण आज भी विद्यमान हैं, कितने ऐसे कारखाने आज भी हैं जो क्षुधा-पीड़ित कृषकों की दरिद्रता और अज्ञानता पर फूलते-फलते हैं, और पृथ्वी के सारे बन्दीगृह जहाँ दण्ड विषयक नीति प्रचलित है और जहाँ पर कि अपराध करने की सनद ही मिली हुई है, आज भी ज्यों के त्यों हैं। इससे सिर्फ यही निष्कर्ष निकलता है कि गुरुत्वाकर्षण के नियम बढ़ती हुई कठोरता के महान भार का तनिक भी प्रत्युत्तर नहीं देते।...हमारी त्रुटियाँ तथा हमारे पाप कितने ही अधिक क्यों न हों, उनमें प्रकृति की रचना को विनाश की ओर ले जाने की शक्ति कदापि नहीं है।"

बम्बई कांग्रेस

कांग्रेस का बम्बई का अधिवेशन ता० २६ से २८ अक्तूबर सन् ३४ तक हुआ। इस अधिवेशन के पहले दो बातों से वातावरण में बड़ी सनसनी आ गयी थी। एक तो गान्धीजी द्वारा कांग्रेस के त्यागने की बात थी दूसरी कांग्रेस के विधान में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन करने की।

लोगों ने कांग्रेस की शक्ति तथा अपनी जिन्दादिली के कारण बम्बई के इस अधिवेशन की बहुत शानदार तैयारियाँ की थीं। एक अलग नगर, जिसे कांग्रेस नगर कहा गया था, बसाया ही गया था, साथ ही समुद्र के किनारे खुले आकाश में एक लाख आदमियों के बैठने योग्य पण्डाल भी बनाया गया था। सभापति चुने गये थे डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जिनका स्वागत-समारोह अब तक के किसी भी अन्य कांग्रेस सभापति से अधिक भड़कदार था।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा विषय निर्वाचनी समिति में गान्धीजी द्वारा कांग्रेस त्याग पर बहुत बहस हुई। सभापति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा गान्धीजी के विचार का समर्थन सुनकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ। यद्यपि गान्धीजी ने स्पष्ट कहा था कि वे कांग्रेस से अलग रहकर भी कांग्रेस की पूरी सहायता करेंगे तथा उनके कांग्रेस से निकलने से कांग्रेस की शक्ति क्षीण नहीं होगी उल्टी बढ़ेगी, पर इस आश्वासन पर लोगों को सन्तोष नहीं होता था। लोगों के अलग-अलग मत थे। कोई कहता था कि गान्धीजी द्वारा कांग्रेस परित्याग से न केवल उसकी शक्ति कम हो जावेगी, अपितु उसकी साख को भी धक्का लगेगा। कोई कहता—कांग्रेस में नाना विचार के लोगों के घुस आने से गान्धीजी रुष्ट होकर कांग्रेस छोड़ रहे हैं। बात यथार्थ में यह थी कि कांग्रेसवाले गान्धीजी से सलाह और सहयोग तो चाहते थे पर अपनी शर्तों पर। लोगों की शर्तें मान कांग्रेस में रहने के लिए गान्धीजी झुक-से जायँ यह असम्भव था। कांग्रेस से अलग हो कर भी जिन शर्तों पर वे सहयोग देना चाहते थे, वे थीं कांग्रेस का स्वतः सुधार उसे अधिक क्रियाशील बनाना आदि, जिनका उस समय कांग्रेस में अभाव हो

गया था। सब लोग कह-कह कर हार गये परन्तु गान्धीजी अपनी बात पर अडिग रहे।

दूसरा विवादास्पद प्रस्ताव था कांग्रेस के विधान में परिवर्त्तन का। इसमें गान्धीजी के अतिरिक्त पटना में कांग्रेस के अन्तर्गत ही बननेवाले समाजवादी दल ने विशेष हाथ बटाया। अभी तक प्रतिनिधि किसी भी प्रान्त की आबादी के हिसाब से चुने जाते थे, चाहे उन प्रान्तों में कांग्रेस के सदस्य कितने ही हों। नये विधान में आबादी के साथ ही जहाँ कांग्रेस के जितने सदस्य बने उसके हिसाब से भी प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की गयी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों की संख्या आधी की गयी, परन्तु ८ प्रतिनिधि मिलकर जो एक अखिल भारतीय कमेटी का सदस्य चुनते थे, बहुत वाद-विवाद होने पर भी इसमें कोई परिवर्त्तन न हो सका, क्योंकि समाजवादियों में आशंका फैली कि उन्हें कांग्रेस में प्रभावहीन करने के लिए ही शायद यह किया जा रहा है। इन दो बातों के सिवा एक चीज और भी थी जिस पर इस अधिवेशन में बहुत विवाद हुआ। यह था मैक्डानल्ड द्वारा दिया गया साम्प्रदायिक फैसला। गान्धीजी ने हरिजनों के विषय में तो इस समझौते में परिवर्त्तन करा दिया था, पर हिन्दू-मुस्लिम समस्या वैसी ही बनी हुई थी। मुसलमान इस फैसले को अपने हित में मानते थे, पर कुछ हिन्दू समूचे देश के लिए अहितकर। कांग्रेस कार्य-कारिणी ने सिफारिश की कि कांग्रेस इस फैसले को न स्वीकार करे और न अस्वीकृत।

इस विषय पर मालवीयजी और श्री अणे बहुत बोले, परन्तु वे दोनों न तो गान्धीजी को समझा सके और न गान्धीजी उन्हें ही समझा सके। जब इस प्रस्ताव पर वोट लेने का समय आया उस समय बोलने को उत्सुक मालवीयजी को ऐसा करना नियम विरुद्ध बताकर सभापति राजेन्द्र बाबू ने रोक दिया। उसका परिणाम राजेन्द्र बाबू के शब्दों में ही सुनिए—"मुझे इस बात का दुःख हुआ कि ऐसे पूज्य व्यक्ति (मालवीयजी) की बात मैं न मान सका। पर वहाँ मैं राजेन्द्र नहीं था, कांग्रेस के सभापति की हैसियत से बैठा था, और दोनों में बड़ा अन्तर है। सम्मति लेने में बहुत बड़ा बहुमत वर्किंग कमेटी के पक्ष में निकला। पर कुछ लोग, जो उसके विरोधी थे, आपे से बाहर हो गये। दो-चार

आदमियों ने जूते दिखलाए जो तेज रोशनी में साफ मुझे दीख पड़े।"[१]

कांग्रेस के अन्य प्रस्तावों पर अधिक बहस नहीं हुई। और अन्त में गान्धीजी के नेतृत्व के प्रति विश्वास का प्रस्ताव पास किया गया।

गान्धीजी के कांग्रेस छोड़ने का मेरे मन पर भी बड़ा दुःखपूर्ण प्रभाव पड़ा, क्योंकि मुख्यतः उन्हीं के व्यक्तित्व ने मुझे कांग्रेस में खींचा था। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का पहला अधिवेशन जबलपुर में हुआ। यह अधिवेशन उन दिनों जिस गोपाल बाग में मैं रहता था, उसमें किया गया। सभापति राजेन्द्र बाबू और प्रायः सभी सदस्य वहीं ठहरे। कुछ लोग राजा गोकुलदास महल में भी ठहरे। मैं इसकी स्वागत समिति का प्रधान था। इस अधिवेशन का प्रबन्ध अच्छा रहा और मेहमानों का जो आतिथ्य सत्कार हुआ उसकी बहुत समय तक चर्चा रही।

१. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद-कृत 'आत्मकथा' पृ० ४१८।

जीविका के मार्ग का अनुसन्धान और मार्ग का निर्णय

सत्याग्रह के समाप्त होने तथा देश की राजनीति का रुख फिर से धारा सभाओं की ओर घूमने से फिलहाल जेल के दरवाजे बन्द हो गये और कांग्रेस-वादियों की दृष्टि राजनीति के सिवा अपने निजी कामों की ओर भी गयी।

रिहाई के बाद मैं गोपाल बाग के उसी बँगले में रहने लगा था जो राजस्थान से लौटकर जेल जाने के पूर्व मैंने किराये पर लिया था। मेरी पत्नी भी मेरे जेल से छूटने के पश्चात् फिर से मेरे साथ रहने लगी थीं। नित्य प्रातः-काल हम लोग श्री गोपाललालजी के दर्शन करने जाते और दर्शन के पश्चात मैं माता-पिता को प्रणाम कर गोपाल बाग लौट आता, पर मेरी पत्नी दिन भर राजा गोकुलदास महल में रहतीं और संध्या को वापस आतीं। पिताजी ने पैतृक सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्डस् में दे दी थी और उन्हें अब मासिक खर्च भर कोर्ट ऑफ वार्डस् से मिलता था। कर्ज इत्यादि के निपटाने का काम कोर्ट ऑफ वार्डस् का प्रबन्ध करता था।

मुझे सार्वजनिक जीवन के काम के सिवा अन्य कोई काम न था, पर मेरा खर्च कर्ज से चल रहा था अतः अब जीविका चलाने के लिए मुझे कोई न कोई मार्ग निश्चित् करना अनिवार्य हो गया।

जीविका का प्रश्न इस जगत में शायद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भीष्म पितामह के सदृश व्यक्ति को भी राज्य छोड़ देने पर कौरवों का आश्रित बन कर रहना पड़ा था और एक प्रसंग पर उन्होंने कहा था "पुरुष अर्थ का दास है"।

जीवन में मुझे कभी जीविका चलाने की समस्या हल करनी पड़ेगी यह मैंने सोचा भी न था पर अनेक बार जिस बात की कल्पना तक नहीं की जाती वह मूर्तिमन्त होकर सामने खड़ी हो जाती है। बहुत सोच-विचार के बाद मुझे जीविकोपार्जन के लिए अपना साहित्य ही साधन दिखा। मेरे नाटकों की

संख्या काफी हो गयी थी। इन्हें प्रकाशित करा इनमें से कुछ को पाठ्यक्रम में रखाने तथा रंगमंच के अलावा कुछ के फिल्म बनाने की कोशिश करने का मैंने निश्चय किया।

हिन्दी का नाट्य-साहित्य बड़ी ही हीन दशा में था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के बाद श्री जयशंकर "प्रसाद" ने ही कुछ मौलिक नाटकों की रचना की थी। "प्रसाद" जी के नाटकों को भी नाटक के स्थान पर काव्य ही अधिक कहा जा सकता था। शेष हिन्दी नाटकों में या तो संस्कृत के कुछ अनूदित नाटक थे या बंगला के। इन्हीं में से कुछ नाटक भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों में पढ़ाये जाते थे।

मेरे नाटक यद्यपि अब तक प्रकाशित न हुए थे, परन्तु मेरे कुछ मित्रों ने उन्हें सुन उन पर जो सम्मति दी थी उसके कारण मुझे कुछ आशा-सी थी कि उनके प्रकाशित होने पर वे कुछ पाठ्यक्रमों में नियुक्त हो जायँगे, जो आगे चल कर हुआ भी; जिससे मुझे काफी रायल्टी मिलती रही है और अभी भी मिलती है।

मेरे नाटकों में से कुछ के फिल्म बनाने के उद्देश्य से मैं बम्बई गया। इस समय कुछ साहित्यिक फिल्म-जगत की ओर आकर्षित हुए थे। इनमें मुख्य थे हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंदजी और श्री बेचन शर्माजी "उग्र"। मुंशीजी के "सेवासदन" उपन्यास का फिल्म बन रहा था और इस फिल्म के कारण वे इस समय बम्बई में ही रहते थे। फिल्म व्यवसाय में इस समय काफी आमदनी थी। इसके सिवा सिनेमा का समाज पर जो प्रभाव पड़ता है उसके कारण भी कुछ लोग उस ओर आकृष्ट हुए थे। परन्तु जो फिल्म बनते थे वे इस प्रकार के बनते थे जिनका समाज पर अच्छा प्रभाव कम और बुरा ही अधिक पड़ता था। इसलिए साहित्यिक तथा कई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता धन कमाने के उद्देश्य के सिवा सिनेमा जगत को सुधारने की दृष्टि से भी उस ओर आकृष्ट हुए थे।

सन् १९३४ के आरम्भ में मैं अपने नाटकों के फिल्म बनवाने के लिए बम्बई गया था। मैंने कई फिल्म कम्पनियों से बातें कीं और इन कम्पनियों के सिवा इस क्षेत्र से प्रेम रखनेवाले कई व्यक्तियों से भी। बातें चलते-चलते

कुछ लोगों की राय से मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अपनी ही एक फिल्म कम्पनी स्थापित की जाय। उसका सारा कार्य एक आदर्श ढंग से हो। जो फिल्म बने उनके कथानक आदर्श, कथोपकथन आदर्श, गायन आदर्श, यहाँ तक कि उनमें काम करनेवाले भी आदर्श व्यक्ति हों ; कोई बाजारू नट या नटी न रखे जायँ ; सब उच्च श्रेणी के हों तथा शिक्षित।

इस महान अनुष्ठान के लिए धन की आवश्यकता थी। अतः ढाई लाख की पूँजी से एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी बनायी गयी, जिसका एक-एक शेअर पाँच-पाँच हजार रुपये का रखा गया। बम्बई के मारवाड़ियों ने इस कम्पनी के कोई एक लाख रुपये के शेअर ले लिये। मैं इस कम्पनी का मैनेजिंग एजेंण्ट नियुक्त हुआ। मेरा महनताना ५०० रु० मासिक और आमदनी में एक-तिहाई हिस्सा निश्चित किया गया। मैंने अपने साथ मैनेजिंग एजैन्सी में बम्बई के ही एक महाशय श्री लालभाई पटेल को इसलिए लिया कि बम्बई के किसी न किसी व्यक्ति की कार्य-संचालन के लिए मुझे आवश्यकता थी। इस कम्पनी का नाम रखा गया "आदर्श चित्र लिमिटेड"।

इस प्रकार मुझे मालूम पड़ा कि मैंने अपनी जीविका का प्रश्न हल कर डाला और वह ऐसे कामों के द्वारा जिनमें एक ओर साहित्य, संगीत और कला का समावेश था, तीनों ही मेरी सौन्दर्योपासना की वृत्ति के अनुकूल, तथा दूसरी ओर सामाजिक उत्थान था, जो लोकेषणा की तुष्टि के सिवा मेरे जीवन का एक दूसरा आधार स्तम्भ था।

महाकोशल में फिर राजनैतिक झगड़ा

सन् ३० से ३४ तक का समय एक प्रकार से सत्याग्रहों के व्यापक आन्दोलन में बीता था और ऐसे व्यापक आन्दोलनों के समय, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष का यदि मूलोच्छेदन नहीं भी होता तो भी कम से कम वे दबे रहते हैं। सत्याग्रहों की समाप्ति के पश्चात् अनेक स्थानों पर ईर्ष्या-द्वेष की भावनाएँ फिर से उभरती जान पड़ीं। हमारा प्रान्त भी इन भावनाओं से अछूता न रह सका। यद्यपि सन् ३० के सत्याग्रह के बाद सागर की प्रान्तीय परिषद् में विरोध के कुछ आसार दिखे थे, परन्तु उस समय तक तो उसका व्यापक रूप न था, दूसरे उसके बाद ही फिर से सत्याग्रह आने के कारण वह विरोध ढक मुँद गया था।

मुझे प्रान्तीय सभापति पद पर छै-सात वर्षों का समय बीत चुका था, और वह समय सत्याग्रह का समय होने के कारण अत्यधिक महत्त्व का भी था। मिश्रजी प्रान्तीय कांग्रेस के मन्त्री थे। इतने लम्बे समय तक प्रान्तीय कांग्रेस का संघटन हमारे हाथों में रहने के कारण हमारे प्रति ईर्ष्या की भावनाओं का उत्तेजित होना कदाचित् स्वाभाविक था। और मिश्रजी के विरुद्ध तो आरम्भ से ही जो भावनाएँ थीं उनका अब तक भी शमन नहीं हुआ था। सन् ३४ में सत्याग्रह समाप्त होने तथा चुनावों में कांग्रेस के भाग लेने की चर्चा आरम्भ होते ही नागपुर के एक पत्र में पंडित शम्भूदयाल मिश्र के हस्ताक्षर से एक लेख निकला, जिसमें अनेक प्रकार से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि कांग्रेस संगठन पर किसी का भी इस प्रकार का आधिपत्य संगठन के लिए अवांछनीय है। इसके परिणामस्वरूप प्रान्त में शिथिलता आने लगी है और अब नेतृत्व में परिवर्त्तन आवश्यक है। श्री शम्भुदयालजी मिश्र का समर्थन जबलपुर के कुछ व्यक्तियों ने आपसी बातचीत में आरम्भ किया। इन व्यक्तियों में डाक्टर जार्ज डिसल्वा, पं० भवानीप्रसादजी तिवारी और उनके कुछ साथी थे। इसमें सन्देह नहीं कि प्रान्त में कुछ शिथिलता का श्रीगणेश दिखायी पड़ने लगा

था, पर यह था सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त होने पर उसकी प्रतिक्रिया। इस लेख की बातों में कोई तथ्य नहीं था, पर मिश्रजी को और मुझे सन्देह हुआ कि इस लेख में पंडित रविशंकरजी शुक्ल का हाथ है। सागर के विरोध के समय विरोधियों को कोई व्यक्तित्व न मिला था अब हमें शुक्लजी विरोधियों की ओर खिंचते दिखे। प्रान्त पहले भी श्री राघवेन्द्रराव और सुन्दरलालजी के दल के झगड़ों को देख चुका था, जिनके कारण प्रान्त को काफी क्षति उठानी पड़ी थी, अतः हम प्रान्त में फिर से कोई नया झगड़ा न चाहते थे।

प्रान्तीय अध्यक्ष पद पर हर बार मेरा चुनाव सर्वमत से हुआ था। अतएव किसी प्रकार के संघर्ष के पहले ही हम दोनों ने सभापति और मन्त्री पद से हट शुक्लजी को ही प्रान्तीय सभापति बनाने का निश्चय कर इन दोनों पदों से त्याग-पत्र दे दिया। इस त्याग-पत्र की प्रतिक्रिया अच्छी ही हुई। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक मेरे त्याग-पत्र पर विचार करने के लिए बुलायी गयी उसने सर्वमत से मेरे सभापतित्व में पूर्ण विश्वास व्यक्त कर मुझ से त्याग-पत्र वापस लेने का अनुरोध किया और मुझ पर विश्वास व्यक्त कर मुझे त्याग पत्र वापस लेने का अनुरोध मिश्रजी पर भी विश्वास व्यक्त करना ही था, क्योंकि चुनाव होता था केवल सभापति का, मन्त्री और कार्यकारिणी तो सभापति नामज़द करता था। परन्तु मिश्रजी और मैं अपने निर्णय पर अडिग रहने का निश्चय कर चुके थे अतः मैंने प्रान्तीय कमेटी को उसके विश्वास व्यक्त करने पर धन्यवाद दे, त्याग-पत्र वापस लेना स्वीकार न कर सभापति पद के लिए पं० रविशंकरजी शुक्ल का नाम प्रस्तावित किया। मिश्रजी ने मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया। पर मामला इतना सरल न था। सारे मामले पर बड़ा बहस-मुबाहसा शुरू हुआ। इस विवाद में बघेलखण्डवालों ने बहुत अधिक भाग लिया। बघेलखण्ड के कांग्रेसवालों के नेता कप्तान अवधेश प्रतापसिंह थे। बघेलखण्ड जिला कुछ समय पहले ही संयुक्तप्रान्त से पृथक् हो महाकोशल में सम्मिलित हुआ था और बघेलखण्डवाले इस बात के लिए जरा भी तैयार न थे कि प्रान्तीय कांग्रेस का नेतृत्व जबलपुर से हटकर छत्तीसगढ़ में जाय। इस वाद-विवाद में शम्भुदयालजी मिश्र के उस लेख की सबसे अधिक भर्त्सना की गयी, पर इस बहस-मुबाहसे का कोई नतीजा न निकला। जब हम लोग अपने निर्णय पर अड़े ही रहे तब प्रान्तीय कमेटी ने विवश होकर पं० रविशंकरजी शुक्ल को

सभापति चुन लिया।

विधान के अनुसार यद्यपि सभापति को अपनी कार्यकारिणी नामज़द करने का अधिकार था तथापि हम लोग आशा करते थे कि शुक्लजी हम लोगों से सलाह करने के पहले अपनी कार्यकारिणी घोषित न करेंगे। पर हमें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सभापति चुने जाने के दस मिनिट के भीतर शुक्लजी ने अपनी कार्यकारिणी घोषित कर दी, जिसमें उन्होंने न मिश्रजी को रखा और न मुझे तथा उपसभापतियों में से एक डॉक्टर डिसल्वा को बनाया जो जबलपुर में हम लोगों के विरोधियों में अग्रगण्य थे। मिश्रजी को और मुझे कार्यकारिणी में न रखने का बाद में यह कारण बताया गया कि प्रान्तीय विधान के अनुसार कार्यकारिणी अपने में चार सदस्यों को और सम्मिलित करती है और ये सदस्य प्रायः ऐसे होते हैं जिनका समूचे प्रान्त की राजनीति में स्थान होता है अतः उन चार में से हम दो प्रान्तीय कार्यकारिणी में आ ही जाते। हम लोगों से बिना कोई सलाह लिये तथा डाक्टर डिसलवा को उपसभापति का पद दे इतनी जल्दी प्रान्तीय कार्यकारिणी की शुक्लजी द्वारा घोषणा ने हमें यह सिद्ध-सा कर दिया कि शम्भुदयालजी मिश्र के उस लेख में शुक्लजी का भी हाथ था और पहले से ही सारा मामला हमारे विरोधियों से तय कर शुक्लजी सभापति हुए हैं। अब तो प्रान्त में जिस झगड़े को बचाने के लिए हम लोगों ने स्तीफा दिया था वह झगड़ा उलटा उत्कट रूप ग्रहण करता जान पड़ा। अनेक बार राजनीति में कितने शीघ्र परिवर्त्तन होते हैं इसका उपर्युक्त घटना एक दृष्टान्त है। मिश्रजी तो क्रोध से तमतमा उठे और जिन शुक्लजी को कुछ क्षण पहले ही हम दोनों ने ही सभापति बनवाया था उन्हें जल्दी से जल्दी किस प्रकार सभापति पद से हटाया जाय इस पर मिश्रजी विचार करने लगे। परन्तु शुक्लजी को सभापति बनाना जितना सरल था उतना हटाना नहीं यह आगे होनेवाली घटनाओं ने सिद्ध कर दिया।

शुक्लजी दो वर्ष सभापति रहे। ये दोनों वर्ष कांग्रेस के प्रान्तीय संगठन में बड़े से बड़े झगड़ों के वर्ष थे। हम लोग प्रान्तीय कार्यकारिणी में नहीं आये और जब-जब प्रान्तीय कमेटी होती सभापति पर अविश्वास का प्रस्ताव लाने की मिश्रजी तैयारी करते और उसे बचाने की शुक्लजी।

एक वर्ष के बाद जब फिर से प्रान्तीय सभापति का चुनाव हुआ तब हम

ने शुक्लजी के विरोध में श्री दुर्गाशंकरजी मेहता को खड़ा किया, पर वे तीन मत से हार गये।

इसके बाद जब तीसरी बार सभापति पद का चुनाव हुआ तब फिर से मेरा नाम प्रस्तावित हुआ। मेरी टेक थी कि बिना सर्वसम्मति के मैं कदापि वह पद स्वीकार न करूँगा। शुक्लजी इस बार खड़े नहीं हुए और मैं बहुमत से अवश्य अध्यक्ष चुना जाता पर अपनी टेक के कारण मैंने अपना नाम वापस ले लिया। कई नाम प्रस्तावित थे। मेरा नाम वापस होने पर अन्य व्यक्तियों ने भी अपने-अपने नाम वापस ले लिये और घटना कुछ ऐसी घटी कि बघेल-खण्ड के श्री कप्तान अवधेश प्रतापसिंह का ही एक नाम रह गया। इस प्रकार वे सर्वमत से प्रान्तीय सभापति निर्वाचित हो गये। बघेलखण्ड को हमारे प्रान्त में सम्मिलित हुए बहुत समय नहीं बीता था। उस समय तक कांग्रेस मन्त्रिमण्डल भी न आये थे अतः प्रान्तीय कांग्रेस का सभापतित्व ही कांग्रेस संगठन में प्रान्त का सबसे बड़ा पद माना जाता था। इस पद पर कप्तान साहब चुने जा सकते हैं इसकी किसी ने कल्पना तक न की थी, पर घटनाएँ ही कुछ इस प्रकार घटीं कि जिस बात की कल्पना भी न की गयी थी वही हो गयी। कप्तान साहब एक वर्ष सभापति रहे और उनका राज्य प्रान्त में अफगानिस्तान के "बच्चए सक्का" का राज्य कहलाता था। जो कुछ हो पर इसमें सन्देह नहीं कि प्रान्तीय अध्यक्ष पद से कप्तान साहब ने बहुत अधिक कार्य किया। उनका परिश्रम श्लाघनीय रहा। यह वर्ष आम चुनावों का वर्ष था इसलिए कप्तान साहब को और अधिक परिश्रम करना पड़ा।

शुक्लजी के और हम लोगों के आपसी झगड़ों का यह नतीजा निकला कि आम चुनावों के बाद शुक्लजी प्रान्त के मुख्य मन्त्री न बन सके और प्रान्तीय विधान सभा में महाकोशल का बहुमत होते हुए भी हम लोगों की सहायता से मुख्य मन्त्री का पद डाक्टर खरे को गया। हाँ, आगे चलकर यह झगड़ा निपटा अवश्य। पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र और शुक्लजी में फिर से मेल हुआ और डॉ० खरे को मुख्य मन्त्री के पद से हटा शुक्लजी मुख्य मन्त्री हुए। डॉ० खरे किस तरह हटे और शुक्लजी मुख्य मन्त्री किस प्रकार हुए यह सारा प्रकरण इतना प्रसिद्ध है कि उसके ब्योरेवार वर्णन करने की न यहाँ आवश्यकता है और न आगे चलकर ही।

सन् ३४ के केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव और केन्द्रीय धारा सभा

पटना की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में सत्याग्रह वापस लेकर आनेवाले केन्द्रीय धारा सभा के चुनावों को कांग्रेस द्वारा लड़े जाने का जो निश्चय हुआ था उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए डॉक्टर अन्सारी की अध्यक्षता में पच्चीस व्यक्तियों का एक बोर्ड बनाया गया। इस बोर्ड में मध्य प्रदेश की ओर से मैं एक सदस्य रखा गया था।

इन दिनों देश में एक नये व्यक्तित्व का उदय हो रहा था। ये थे बम्बई के प्रसिद्ध वकील श्री भूलाभाई देसाई। देसाईजी गत सत्याग्रह संग्राम में जेल-यात्रा कर चुके थे और अब पूरी तौर से राजनैतिक क्षेत्र में, विशेषकर धारा सभाओं की राजनीति में, आना चाहते थे। सन् १९२३ में जब पहले-पहल कांग्रेसवादी धारा सभाओं में गये थे उस समय केन्द्रीय धारा सभा के कांग्रेस दल के नेता पं० मोतीलालजी नेहरू चुने गये थे और सन् २३ से २९ तक, जब २९ में कांग्रेसवादियों ने फिर से इन धारा सभाओं को छोड़ा, केन्द्र में कांग्रेस दल का नेतृत्व मोतीलालजी ने ही किया था। पर अब पंडितजी नहीं थे और यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इन चुनावों को लड़ने के लिए पच्चीस आदमियों का जो बोर्ड बनाया था उसके सभापति डॉक्डर अन्सारी थे, पर डॉक्टर साहब की स्वयं की इच्छा चुनावों में खड़े होने की नहीं थी। अतः केन्द्र में कांग्रेस दल का नेतृत्व श्री भूलाभाई देसाई करेंगे यह एक मानी हुई-सी बात थी, यद्यपि इस सम्बन्ध में चुनाव के पहले कोई जाप्ते का निर्णय नहीं हुआ था; जाप्ते का ऐसा निर्णय हो भी न सकता था, क्योंकि अपने दल के नेता का चुनाव चुन लिये जाने पर उस दल के सदस्य ही करते हैं। भूलाभाई के इस काम के लिए आगे आने से कांग्रेस को एक बहुत बड़ा लाभ और हुआ। चुनाव के लिए चन्दा बहुत नहीं माँगना पड़ा, इसके लिए भूलाभाई ने अपनी थैली खोल दी।

इस बार भी सत्याग्रह के पश्चात् चुनाव आन्दोलन उसी प्रकार चल पड़ा जिस तरह असहयोग के बाद सन् २३ का चुनाव चला था। कांग्रेसवादियों की जिस प्रकार की सन् २० के आन्दोलन की तपस्या थी, उसी प्रकार की सन् ३० और ३२ की। हाँ, एक बात अवश्य थी कि सन् ३० में जिन्हें दो वर्ष या उससे अधिक की सजा हुई थी वे कानूनी दृष्टि से चुनाव के लिए तब तक खड़े न हो सकते थे, जब तक उनकी यह अयोग्यता सरकार द्वारा हटा न दी जाय। सरकार को यह अयोग्यता हटाने में कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती, यह मानकर कांग्रेस की ओर से घोषणा की गयी थी कि यदि किसी एक व्यक्ति की भी अयोग्यता न हटायी गयी तो कांग्रेस सारे चुनावों से अपना हाथ खींच लेगी और कांग्रेस की ओर से कहीं के लिए कोई उम्मीदवार खड़ा न होगा। जिस तरह असहयोग की असफलता को सन् २३ के चुनावों ने ढक-सा दिया था उसी प्रकार सन् ३० और ३२ के सत्याग्रह की असफलता को ३४ के चुनावों ने। एक प्रकार से तो असहयोग और सत्याग्रह असफल हो गये—यह नही कहा जा सकता, क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्त करने का कोई संग्राम कभी असफल होता ही नहीं और इन आन्दोलनों ने देश में अभूतपूर्व जागृति की थी तथापि ये आन्दोलन हुए थे स्वराज्य प्राप्त करने के लिए और स्वराज्य अब तक नहीं मिला था। फिर गान्धी-अर्विन समझौते का जो प्रभाव पड़ा था, वह भी सन् ३२ में फिर से आन्दोलन होने के कारण चला गया था। सन् ३४ के चुनाव आन्दोलन में देश में एक नयी जागृति, एक नया उत्साह आया। आन्दोलन बीते बहुत समय न हुआ था और लोगों की तपस्याएँ भी अभी नयी थीं। साथ ही कांग्रेस में इस समय कोई खास फिरकेबन्दी, मतभेद भी न था, इसलिए जनता को आशा ही नहीं, विश्वास था कि इस चुनाव में कांग्रेस की ही जीत होगी।

देश के अन्य विभागों के सदृश हमारे प्रान्त में भी चुनाव-आन्दोलन शुरू हुआ। ध्यान रहे कि इस वर्ष केवल केन्द्रीय धारा सभा का चुनाव था, प्रान्तीय धारा सभाओं का नहीं। हमारे प्रान्त से केन्द्रीय धारा सभा में उस समय केवल छः सदस्य जाते थे। दो उत्तरीय जिलों से, एक नागपुर से, एक बरार से, एक जमींदारों की ओर से और एक मुसलमानों की तरफ से। कांग्रेस

ने उत्तरी जिलों से पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र को और मुझे खड़ा किया, नागपुर से बैरिस्टर अभ्यंकर को, बरार से श्री अरणे को और जमींदारों की ओर से श्री शिवदास डागा को। सन् २३ में मध्य प्रदेश के जमींदारों की ओर से मैं खड़ा हुआ था और निर्विरोध चुन भी लिया गया था। उस समय मेरे अतिरिक्त जमींदारों का प्रतिनिधि और कोई कांग्रेसवादी नहीं था। पर सन् ३२ में अपनी समस्त संपत्ति से त्याग-पत्र देने के कारण अब मैं जमींदार न रह गया था। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, मुसलमानों की ओर से कांग्रेस ने किसी को खड़ा न किया था।

श्री अभ्यंकर, मिश्रजी और मैं तीनों दो वर्ष की सजा पाये हुए व्यक्ति थे। श्री अभ्यंकर की और मेरी अयोग्यताएँ तो सरकार ने दूर कर दीं, पर मिश्रजी की नहीं। मध्य प्रदेश के गृह सदस्य आजकल श्री राघवेन्द्रराव थे। मिश्रजी का और उनका व्यक्तिगत वैमनस्य पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। अतः माना गया कि यह श्री राघवेन्द्रराव के व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण हुआ। जहाँ तक मुझे याद है देश में कहीं भी किसी की इस प्रकार अयोग्यता सरकार ने न हटायी हो यह नहीं हुआ था। इस प्रकार मिश्रजी की अयोग्यता न हटने के कारण एक तहलका-सा मच गया। इस तहलके का प्रधान कारण यह था कि जैसा ऊपर कहा गया है कांग्रेस यह घोषणा कर चुकी थी कि यदि एक भी कांग्रेसवादी की इस तरह की अयोग्यता न हटायी गयी तो कांग्रेस सारे चुनाव से हाथ खींच लेगी।

महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति इस समय पं० रविशंकरजी शुक्ल थे। शुक्लजी को, मिश्रजी को एवं मुझे तत्काल वर्धा बुलाया गया और वहाँ गान्धीजी के समक्ष इस बात का विचार हुआ कि अब क्या किया जाय। बहुत देर तक विचार-विनिमय के बाद निर्णय हुआ कि यद्यपि कांग्रेस ने यह घोषणा अवश्य की थी कि यदि किसी की भी अयोग्यता सरकार दूर न करेगी तो कांग्रेस चुनाव से हाथ खींच लेगी तथापि अब मामला इतना आगे बढ़ चुका है तथा चुनाव की इतनी दूर तक तैयारी हो चुकी है एवं कांग्रेस की सफलता इतनी निश्चित-सी है कि अब चुनाव न लड़ना उल्टा सरकार के हाथों में खेलना होगा। मिश्रजी स्वयं भी इस निर्णय के पक्ष में थे। यह निर्णय तो हो

गया, पर मुझे बहुत कुछ समझाने के बावजूद भी इस परिस्थिति में मैंने स्वयं खड़ा होना स्वीकार न किया। जब मैं अपनी बात पर अड़ा ही रहा तब मेरे और मिश्रजी के स्थान पर किसे खड़ा किया जाय यह बात अखिल भारतीय नेताओं ने प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यकारिणी पर छोड़ दी।

जैसा पहले कहा जा चुका है शुक्लजी से हम लोगों के सम्बन्ध अच्छे न रह गये थे, पर अभी बात इतनी दूर तक न पहुँची थी कि हम लोग साथ-साथ बैठकर ऐसे मामलों में बात न करें। फिर हम सभी कांग्रेस में थे और चुनाव कांग्रेस द्वारा लड़े जाने के कारण कांग्रेस की प्रतिष्टा का सवाल था। अतः वर्धा से जबलपुर लौटकर हम सभी इस बात पर विचार करने लगे कि अब किसे खड़ा करना चाहिए।

नामजदगी के केवल दो दिन बचे थे अतः इतने थोड़े समय में यह निर्णय कर सकना बहुत सरल नहीं था। अन्त में एकान्त में बुला मिश्रजी ने मुझ पर खड़े होने के लिए अपना पूरा जोर डाला। मिश्रजी के और मेरे स्नेह सम्बन्ध में बाल बराबर अन्तर न पड़ा था। जब मिश्रजी ने देश और प्रान्त के नाम पर आँखों में आँसू भर मुझे खड़े होने के लिए सर्वथा विवश ही कर दिया तब मेरे भी आँसू बह निकले और मैं उनसे इतना ही कह सका कि मुझे ऐसा जान पड़ रहा है कि जिसे मैं संसार में सबसे अधिक चाहता हूँ देश और प्रान्त के लिए उसकी लाश को रौंदते हुए मैं केन्द्रीय धारा सभा में जा रहा हूँ।

उत्तरीय जिलों की दो प्लूरल सीटें थीं अर्थात् वे ही वोटर एक साथ दो सदस्यों को चुनते थे। मैं और मेरे साथ श्री घनश्यामसिंह गुप्त खड़े किये गये। हमारे विरोध में केवल एक सज्जन श्री हरिसिंह गौर खड़े हुए। इसका कारण कदाचित् यह था कि मेरे विरुद्ध तो किसी को जीतने की आशा न थी। गौर साहब ने समझा कि घनश्यामसिंहजी गुप्त के विरुद्ध शायद वे जीत जायँ। मुझे आशा के अनुसार ही बहुत वोट मिले, पर घनश्यामसिंहजी को भी इतने कम नहीं मिले कि डॉक्टर गौर जीत जाते। हमारे प्रान्त में एक मुस्लिम सदस्य को छोड़ शेष सब कांग्रेसवादी ही जीते। हाँ, जीतने के बाद एक बड़ी ही खेद-जनक घटना अवश्य हो गयी। श्री अभ्यंकर को मधु मेह था। चुनाव के समय उनके पैर में जूता काट खाया था। वह घाव ऐसा बढ़ा कि उसी घाव के

कारण उनकी मृत्यु हो गयी। सन् २६ के चुनाव में डॉक्टर मुंजे ने श्री अभ्यंकर को हराया था। इस चुनाव में श्री अभ्यंकर ने डॉक्टर मुंजे को। श्री अभ्यंकर की मृत्यु के पश्चात् श्री अभ्यंकर के स्थान पर डॉक्टर खरे निर्विरोध चुन लिये गये।

सारे भारत में कांग्रेस की शानदार जीत हुई। परन्तु केन्द्रीय असेम्बली का उस समय जैसा संगठन था उसमें सरकार द्वारा नामजद सदस्यों की काफी संख्या रहती थी। मुसलमान अपनी आबादी से भी अधिक मुसलमानों के मतों से आते थे, योरपियनों के भी सुरक्षित स्थान थे और भी कई हितों की सीटें सुरक्षित रखी गयी थीं, अतः कांग्रेस का बहुमत में हो सकना असम्भव था। इस बार भी कांग्रेस के करीब-करीब उतने ही सदस्य पहुँचे जितने १९२३ और २६ में पहुँच थे। कांग्रेसवादियों में इस समय वहाँ कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्त्व आये थे जैसे श्री भूलाभाई देसाई, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री सत्यमूर्ति आदि। काँग्रेस दल के नेता श्री भूलाभाई, उपनेता श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, मंत्री श्री सत्यमूर्ति चुने गये। सदा के समान में फिर से दल का कोषाध्यक्ष हुआ।

केन्द्रीय असेम्बली का यह चुनाव तीन वर्ष के लिए हुआ था, परन्तु यह असेम्बली ग्यारह वर्ष तक चली। इसका प्रधान कारण हुआ दूसरा संसार-व्यापी युद्ध।

कांग्रेस दल के इस बार के नेता श्री भूलाभाई देसाई और मोतीलालजी में कई बातों में साम्य था। दोनों की लम्बी नाक एक दूसरे से बहुत मिलती थी। अन्तिम दिनों में मोतीलालजी ने मूँछें रखना छोड़ दिया था। भूलाभाई के भी मूँछें नहीं थीं। चेहरे के अन्य अवयव भी एक दूसरे से कुछ मिलते से थे। दोनों ही उच्च कोटि के वकील थे। कुछ बातें तो भूलाभाई में मोतीलालजी से अधिक अच्छी थीं। भूलाभाई मोतीलालजी से कहीं अच्छे वक्ता थे। मोतीलालजी के उग्र स्वभाव के कारण उनके कुछ विरोधी भी हो जाते थे। भूलाभाई शान्त स्वभाव के थे अतः उनके वैसे विरोधी भी न थे। पर कहाँ मोतीलालजी का व्यक्तित्व और कहाँ भूलाभाई का? वे थे कांग्रेस के सच्चे नेता और ये थे कांग्रेस के केवल वकील। इसीलिए दोनों के जो कुछ समान दोष थे ये दोष मोतीलालजी में तो चन्द्रमा के कलंक के सदृश छिप जाते थे

पर भूलाभाई में तो वे इस तरह उभरे कि इसके बाद के चुनाव में उन्हें गान्धीजी ने केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस दल का नेतृत्त्व करने जाने तक न दिया।

भूलाभाई के बाद कांग्रेस दल में पं० गोविन्दवल्लभ पन्त का स्थान था। पन्तजी अपने विषय का अच्छा अध्ययन कर धारा सभा में आते पर आते सदा देर से। मुझे याद नहीं पड़ता कि वे किसी भी असेम्बली की बैठक आरम्भ होते समय आये हों। वे उत्तर प्रदेश की विधानसभा में कांग्रेस दल का सफल नेतृत्त्व कर चुके थे और सन् ३७ में फिर से उत्तर प्रदेश की असेम्बली में जाने तक केन्द्रीय धारा सभा में कांग्रेस दल के सफल उपनेता रहे।

श्री सत्यमूर्ति के सदृश पार्लियामेंटेरियन तो भारत में शायद न उनके पहले कोई हुआ था और न उनके बाद ही अब तक कोई हुआ है। उनके बहस के भाषण, उनके पूरक प्रश्न, सब का एक विशेष ढंग था। उनकी अंग्रेजी शायद उस समय के सभी भारतीयों से अच्छी थी, पर इतने पर भी वे 'बजट' को सदा 'बडजट' ही कहते। एक दिन इस पर उनकी और मेरी थोड़ी-सी बहस हो गयी, इस बहस में उन्होंने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि ठीक उच्चारण बजट न होकर बडजट ही है और यदि अंग्रेज भी बडजट न कहकर बजट कहते हैं तो वे अंग्रेजी भाषा के प्रति घोर अन्याय करते हैं।

श्री मुहम्मद अली जिन्ना अभी भी केन्द्रीय असेम्बली में थे। उनकी और भूलाभाई की खूब नोंक-झोंक चलती। इस नोंक-झोंक में शायद दोनों को बम्बई का हाई कोर्ट याद रहता। पर धीरे-धीरे श्री जिन्ना केन्द्रीय धारा सभा में बहुत कम आने लगे। वह असेम्बली अब उनके लिए बहुत छोटी चीज होती जा रही थी और जब से पाकिस्तान का नारा आया तब से तो उन्होंने असेम्बली में आना प्रायः छोड़ ही दिया।

सरकारी पक्ष में अब सर मालकम हेली, सर अलैकजैण्डर मुडीमैन, सर चार्ल्स इनीज़, सर बैसिल ब्लेकेट आदि के सदृश अंग्रेज और सर मुहम्मद शफी तथा बी० एन० शर्मा के सदृश भारतीय न रह गये थे। एक ही सरकारी पक्ष का उस समय का ऐसा भारतीय था जो उल्लेखनीय है। ये थे सर एन० एन० सरकार।

असेम्बली के अध्यक्ष चुने गये थे सर अब्दुर्रहीम, जिन्हें वृद्धावस्था के कारण बहुत कम दिखायी देता था और जिनकी अधिकांश कार्रवाई अटकल से होती थी।

कांग्रेस पार्टी ने इस बार तय किया कि कांग्रेस के सब सदस्य गान्धी टोपी लगावें। श्री सत्यमूर्ति और मैंने इसका विरोध किया, क्योंकि हम दोनों ही तब तक पगड़ियाँ बाँधते थे, पर यह प्रस्ताव पास हो गया और तब से हम दोनों की पगड़ियाँ गायब हो गयीं। मैं मजाक में उस समय एक कहावत कहा करता था—"पगड़ी गयी अगड़ी में सिर सलामत चाहिए।"

इस केन्द्रीय धारा सभा में महत्त्वपूर्ण तीन कानून पास हुए—एक लिमिटेड कम्पनियों के सम्बन्ध में (कम्पनीज एक्ट) दूसरा बीमा कम्पनियों के सम्बन्ध में (इन्श्योरेंस एक्ट) और तीसरा मोटरगाड़ियों के सम्बन्ध में (मोटर व्हिकिल्स एक्ट)।

मैं अब सबसे पुराने सदस्यों में था। मेरे प्रायः सभी विषयों पर भाषण होते। मेरा पहला भाषण हुआ श्री अभ्यंकर के दुखद निधन पर। कामरोको प्रस्तावों पर मेरा कीनिया की ऊँची भूमि के सम्बन्ध में श्री सत्यमूर्ति के प्रस्ताव पर भाषण हुआ। आगे चलकर जब मैं अफ्रीका गया तब मैंने देखा कि मेरे इस भाषण की अफ्रीका में काफी चर्चा पहुँच गयी थी। पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र के विरुद्ध चुनाव में खड़े होने के लिए जो पाबन्दी नहीं हटी थी उसका मुझे अत्यधिक दुःख था अतः मैंने प्रयत्न किया कि इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा जाय। केन्द्रीय धारा सभा में किसी प्रस्ताव का आना बड़ी टेड़ी खीर होता है, क्योंकि बहुत से प्रस्ताव रहने के कारण बैलट से उसका निकलना सहज नहीं रहता। इसीलिए यदि कोई प्रस्ताव लाना हो तो उसे अधिक से अधिक सदस्यों के हस्ताक्षर से भेजना पड़ता है। मैंने इस प्रस्ताव पर ज्यादा से ज्यादा सदस्यों के हस्ताक्षर कराने का प्रयत्न किया। यह प्रस्ताव बैलट से श्री जेदे के नाम से निकला। मेरा भाषण इस प्रस्ताव पर काफी मार्मिक हुआ। जब भारत सरकार के गृह सदस्य सर हेनरी क्लार्क ने बहस का उत्तर दिया तब स्पष्ट हो गया कि हमारी प्रान्तीय सरकार के कारण ही मिश्रजी की पाबन्दी नहीं हटायी

गयी थी और प्रान्तीय सरकार में इस समय मिश्रजी के विरोधी श्री राघवेन्द्र-राव सर्वेसर्वा थे ही। यह प्रस्ताव पास होगया।

केन्द्रीय धारा सभा के इस लम्बे जीवन में आरम्भ में सारी कार्रवाई में काफी जोश रहा, पर धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी। और फिर असेम्बली की मंजूरी के बिना जब सरकार ने भारतीय फौजों को युद्ध में भेजा, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस दल ने असेम्बली का बहिष्कार कर दिया, तब तो असेम्बली एक खिलवाड़ मात्र रह गयी। इसके सिवा प्रान्तों में उत्तरदायित्व शासन की स्थापना के कारण केन्द्र की इस "डिबेटिंग सुसायटी" का महत्त्व घटा। और फिर तो सन् ४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा सन् ४२ के स्वतन्त्रता के युद्ध के कारण इस असेम्बली की ओर दृष्टि विक्षेप करने का भी किसको अवकाश था ?

आदर्श चित्र और उसमें मैं तथा मिश्रजी

आदर्श चित्र कम्पनी की स्थापना के पश्चात् केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव आ गये थे अतः उन चुनावों में लग जाने के कारण अब तक इस कम्पनी का काम शुरू न हो सका था। चुनावों के निपट जाने के पश्चात् इस कम्पनी के काम का आरम्भ करने मैं बम्बई गया। पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र के पास भी इस समय कोई काम न था। वे केन्द्रीय धारा सभा में जा न पाये थे और उन्हें प्रान्तीय सरकार ने म्युनिसिपैलिटी के सभापतित्व से अलग कर दिया था अतः वे भी मेरे साथ बम्बई गये। आदर्श चित्र की मैनेजिंग एजेंसी तथा बोर्ड आफ डायरेक्टर्स पर वे भी ले लिये गये अतः हम दोनों ने सिनेमा के लिए आदर्श चित्रों को बनाने के इस अनुष्ठान में साथ-साथ काम आरम्भ किया।

आदर्श चित्र लिमिटेड का पहला चित्र मेरे "कुलीनता" नामक ऐतिहासिक नाटक की कथा पर बनाने का निश्चय किया गया। फिल्म के योग्य कथोपकथन लिखने का काम मिश्रजी को सौंपा गया। चित्र के दिग्दर्शन के लिए हमारे जबलपुर के ही एक सज्जन श्री सुकुमार चैटरजी को, जो अमरीका भी हो आये थे, नियुक्त किया गया। जहाँ तक दृश्यों, पोशाकों आदि का सम्बन्ध था हमने अपने प्रान्त के सिवनी नामक स्थान के एक कला-प्रेमी वकील श्री नित्येन्द्र नाथ सील को बुलाया। हमने यह तय किया था कि आदर्श चित्र के चित्रों के नट, नटी आदि कोई बाजारू व्यक्ति न रखे जायँगे। अतः इस चित्र के नायक के कार्य के लिए हम जबलपुर के उन्हीं तरुण वकील श्री विष्णुदयाल भार्गव को ले गये, जो सन् ३० में हमारे साथ जेल गये थे और नायिका के काम के लिए एक गृहस्थ महिला श्री लीला चिटणीस, बी० ए०, को लाये। आगे चलकर सिनेमा संसार में श्री लीला चिटणीस का बड़ा नाम हो गया था, पर जिस चित्र में उन्होंने सबसे पहले काम किया वह हमारा ही चित्र था। नायक तथा नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्रों का काम करने के लिए भी हमने देश के हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र से अनेक पढ़े-लिखे लोगों को इकट्ठा किया। इनमें से

मुख्य थे इलाहाबाद के श्री एस० एन० बैनरजी, एम० ए०; श्री प्रोफेसर गयाप्रसाद, एम० ए०; आदि। हमारे इस चित्र का नाम "धुँआधार" रखा गया और इसका काम बम्बई की उस समय की एक प्रसिद्ध स्टुडियो "इंपीरियल" में शुरू हुआ।

हम सब अपने सामने बड़े-बड़े आदर्श और उद्देश्य लेकर इस क्षेत्र में आये थे। हमारे इन आदर्शों और उद्देश्यों के साथ इस क्षेत्र में आने की बम्बई और सारे सिनेमा संसार में चर्चा भी बहुत हो गयी थी। हमारा इस क्षेत्र में बड़ा हार्दिक स्वागत हुआ था और हमारे कार्यों के फल की कला-जगत बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु काम आरम्भ करते ही हमें जान पड़ा कि जिन आदर्शों तथा उद्देश्यों को लेकर हमने इस क्षेत्र में प्रवेश किया था उनका सफल होना कोई सरल बात नहीं है। इसके मुख्यतः निम्नलिखित कारण थे—

१. हम लोग जो बड़े-बड़े आदर्शों तथा उद्देश्यों को लेकर इस क्षेत्र में आये थे उनमें से सबके सब इस क्षेत्र से सर्वथा अपरिचित थे।

२. हमारे साथ जो लोग भी इस क्षेत्र में परिचय रखने वाले थे उन्हें हमारी कोई भी बात व्यावहारिक न जान पड़ती थी। वे हमारे हर प्रस्ताव पर यही कहते थे कि इस क्षेत्र में यह नहीं चलेगा।

३. ऐसे लोगों के जो प्रस्ताव होते थे वे हमें अपने आदर्शों तथा उद्देश्यों के प्रतिकूल जान पड़ते थे।

४. जो हम चाहते थे वह इस क्षेत्र से परिचित लोगों को अव्यवहार्य दिखता था और इन लोगों का कथन हमें अपने आदर्शों तथा उद्देश्यों के प्रतिकूल। इसलिए क्या किया जाय इसका निर्णय करने में बड़ी कठिनाई होती थी। बहुत से काम रुक जाते थे और जब निर्णय होता था तब वह निर्णय प्रायः दोनों पक्षों के समझौते का निर्णय होता था। अतः इन निर्णयों से उभय पक्ष को पूरा सन्तोष न होता था।

५. स्टुडियो और चित्र से सम्बन्ध रहनेवाला समस्त वायुमण्डल हमारे आदर्शों तथा उद्देश्यों के सर्वथा विपरीत था।

६. सारा काम इतना खर्चीला था कि रोज ही हमारे बजट में परिवर्त्तन होता था।

७. हमारे दिग्दर्शक श्री सुकुमार चैटरजी अपने काम का जरा-सा भी ज्ञान न रखते थे।

"धुँआधार" चित्र का स्टुडियो से सम्बन्ध रखने वाले शूटिंग का काम बम्बई में समाप्त होने के पश्चात् फिल्म में काम करने वाले सब लोग जबलपुर आये। कथानक त्रिपुरी के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित था। अत: जबलपुर के प्रसिद्ध भेड़ा घाट के नर्मदा के जल-प्रपात धुँआधार और नर्मदा जहाँ संगमरमर की श्वेत चट्टानों के बीच से बहती है उन दृश्यों के चित्र लिये गये। जबलपुर से सारा दल रीवाँ पहुँचा। वहाँ लड़ाई के कुछ दृश्य उतारे गये। बाहर के इस शूटिंग में बजट से कहीं अधिक धन खर्च हो गया। इसके बाद प्रयाग के प्रो० दमडी ओझा की पुत्री आशा को, जो नाच के लिए उस समय बहुत प्रसिद्ध थीं, अपना एक नृत्य इस चित्र में देने के लिए बुलाया गया तथा चित्र की भूमिका के एक गान गाने के लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त के प्रसिद्ध साथी कवि मुंशी अजमेरीजी को।

"धुँआधार" फिल्म पूरा होते-होते इतना अधिक रुपया लग गया कि कंम्पनी को शेअर का जो रुपया मिला था केवल वही व्यय हुआ यह नहीं, कम्पनी को चालीस हजार रुपया कर्ज लेना पड़ा। इस रकम के लिए मुझे अपनी गारण्टी देनी पड़ी और इस पर जो काटा कटवाना पड़ा तथा जो ब्याज देना पड़ा वह पच्चीस रुपया सैकड़ा से भी अधिक पड़ गया।

फिर आदर्श चित्र के निर्माण में जिस प्रकार के वायुमण्डल की आवश्यकता थी वह भी न रहा। गृहस्थ नटी-नटों के रहने पर भी रोज ही कोई न कोई विचित्र कहानी सुनने को मिलती रही।

चित्र भी जिस प्रकार का आदर्श बनाने का विचार था वह भी न बन पाया। आर्थिक दृष्टि से चित्र असफल न हो जाय इस भय से उसमें कई ऐसे दृश्य जोड़े गये, जिनका सच्चे आदर्श चित्र में स्थान न हो सकता था।

और इतने परिश्रम, व्यय तथा अन्त में आदर्शों को तिलांजलि देकर जो "धुँआधार" चित्र बना वह सफल भी न हुआ। आर्थिक दृष्टि से वह एकदम

असफल सिद्ध हुआ ।

अमरीका के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार अप्टन सिंक्लेअर ने एक स्थान पर लिखा है—"यदि आपको रोजगार-धन्धे करना है तो आपको वही करना होगा जो अन्य करते हैं और वह भी अन्यों से पहले । बहुत परिवर्तन आप नहीं कर सकते ।" पहली फिल्म बनाते-बनाते हमें उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रतीत हो गयी ।

आदर्श चित्र लिमिटेड की स्थापना तथा "धुँआधार" के निर्माण में हम लोगों को जो अनुभव हुए थे उनके आधार पर मुझे इस कम्पनी को उसी समय समाप्त कर देना था, परन्तु हाथ में लिये हुए काम को असफल होने पर और भी दृढ़ता से पकड़ उसको सफल बनाने का प्रयत्न मेरा कुछ अभ्यास-सा हो गया है । आज जब मैं इस भावना पर विचार करता हूँ तो इसमें मुझे बल और निर्बलता दोनों ही दिखायी देते हैं । हाथ में लिये हुए काम को असफल होने पर भी न छोड़ना तथा उसे सफल बनाने का प्रयत्न प्रत्यक्ष में स्पष्ट बल का द्योतक है, परन्तु उसे न छोड़ सकना तथा उससे चिपटे रहना एक प्रकार की निर्बलता भी, जिसकी उत्पत्ति आसक्ति के मोह से होती है । राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर के उद्देश्यों की पूर्त्ति न होने पर भी मैं तब तक उससे चिपटा रहा जब तक उसके बन्द हो जाने के सिवा और कुछ भी न हो सकना निश्चित बात थी । यही बात दैनिक "लोकमत" के सम्बन्ध में हुई । वह नुकसान न देता हुआ तब तक चलता ही रहा जब तक उसके भी बन्द होने के सिवा अन्य कोई रास्ता न रह गया । यही बात "आदर्श चित्र" के सम्बन्ध में हुई और आदर्श चित्र ने तो मुझे बड़े ही गहरे पानी में उतारा ।

सन् ३७ का चुनाव

सन् ३४ में कांग्रेस केन्दीय धारा सभा के चुनाव लड़ चुकी थी। सन् ३७ में देश में नये भारतीय संविधान के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाओं का चुनाव होने जा रहा था, जिसमें १९३५ का भारतीय संविधान का कानून नामंजूर करने के बाद भी कांग्रेस भाग ले रही थी। चुनाव के उपरान्त कांग्रेसी प्रान्तों का शासन चलायेंगे या अड़ंगा नीति अपनायेंगे इस मामले पर कांग्रेस में दो विभिन्न रायें होने के कारण कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र में इस बात को तरह देकर अन्य बातों पर जोर दिया गया था, जिनमें किसानों की दशा सुधारने की बात पर सबसे अधिक बल था। मैं कांग्रेस द्वारा मन्त्रिमण्डल स्वीकार करने के विरुद्ध था और इस विषय पर पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र का और मेरा मतभेद हो गया। यद्यपि हम दोनों का यह सच्चा मतभेद था, पर लोगों ने तो इसे मिली-भगत ही समझा। इस चुनाव का घोषणा-पत्र कांग्रेस के उस समय के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू ने बड़ी फड़कती हुई भाषा में बनाया था।

चुनाव को इस बड़े पैमाने पर लड़ने के लिए कांग्रेस को पैसे और संगठन की आवश्यकता थी। लगभग २ करोड़ से ऊपर नर-नारियों को वोट देने का अधिकार मिला था। पुरुषों और स्त्रियों ने जिस उत्साह से वोटर लिस्टों में अपने नाम लिखाये, उस जागृति को देखकर सरकार चौकन्नी हो गयी और उस समय के उप-भारत मन्त्री तथा वाइसराय द्वारा निष्पक्ष चुनाव का आश्वासन देने पर भी स्थानीय सरकारों ने येन केन प्रकारेण चुनावों के मार्ग में बाधाएँ डालने के प्रयत्न किये। योग्य कांग्रेसियों को जेल जाने या किसी और बहाने से मताधिकार से वंचित करना, प्रभावशील व्यक्तियों के चलने-फिरने पर पाबन्दी लगाना तथा शान्तिपूर्ण जुलूस, सभाएँ या झंडारोहण पर भी रोक-थाम इसके कुछ उदाहरण हैं।

पर इन सब बातों के बावजूद बड़े उत्साह से चुनाव लड़े गये। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य दलों ने भी खूब तैयारियाँ की थीं तथा अपने-अपने उम्मीदवार

खड़े किये थे।

मध्य प्रदेश के महाकोशल विभाग में सन् ३७ के प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव के अवसर पर आपसी झगड़े चरम सीमा को पहुँचे हुए थे। जैसा पहले कहा जा चुका है कांग्रेस के चुनाव में रीवाँ के कप्तान अवधेश प्रतापसिंहजी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति हो गये थे, परन्तु चुनाव का वर्ष होने के कारण इस बात का भी प्रयत्न हुआ था कि धारा सभा के कांग्रेसी उम्मीदवारों के नामों के निर्णय में प्रान्त के सभी प्रधान-प्रधान कांग्रेसवादियों का हाथ रहे अतः चुनाव समिति में कप्तान साहब, पं० रविशंकरजी शुक्ल, पं०द्वारकाप्रसादजी मिश्र, और मैं सभी लोग सम्मिलित थे। इस चुनाव समिति के सभापति का चुनाव न करना पड़े, इसलिए सभापति के नाम का निर्णय करने का अधिकार मुझे दिया गया। इसका शायद एक कारण यह भी था, कि यदि मुझे नाम तय करना पड़ा तो कम से कम मैं तो सभापति न हो पाऊँगा, क्योंकि अपना ही नाम तो मैं निर्णय करने से रहा। मैं स्वयं ही इस चुनाव समिति का सभापति न होना चाहता था अतः मैंने इस भार को स्वीकार कर पं० माखनलालजी चतुर्वेदी को महाकोशल की इस चुनाव समिति का सभापति बना दिया। महाकोशल की चुनाव समिति के अतिरिक्त पूरे मध्य प्रदेश और बरार की एक और चुनाव समिति थी, जिसमें महाकोशल, नागपुर और बरार तीनों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इसके सभापति डॉक्टर खरे थे और चूँकि डॉक्टर खरे इस समय हम लोगों के साथ थे इसलिए इस संयुक्त चुनाव समिति में हमारा स्पष्ट बहुमत था।

कुछ लोगों का मत था कि इस चुनाव में मुझे प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़े होना चाहिए। मैं उस समय केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य था परन्तु उस समय के केन्द्रीय असेम्बली के कई सदस्य प्रान्तीय असेम्बलियों में जा रहे थे, जैसे उत्तर प्रदेश में श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, हमारे प्रान्त में ही डॉक्टर खरे। इसका कारण था। यद्यपि कांग्रेस ने प्रान्तों में मन्त्री-पद स्वीकार करने का निर्णय नहीं किया था, पर इसकी ही अधिक सम्भावना थी कि जहाँ कांग्रेस बहुमत में पहुँचेगी वहाँ वह मन्त्री-पद स्वीकार करेगी। इसीलिए कुछ लोग केन्द्र को छोड़ कर प्रान्तों में जा रहे थे। मध्य प्रदेश में महाकोशल से जानेवाले सदस्य ही अधिक संख्या में होते थे अतः मध्य प्रदेश में कांग्रेस मंत्रीमण्डल बनने पर महा-

कोशल का ही मुख्य मन्त्री होना एक स्वाभाविक बात मानी जाती थी। श्री रविशंकरजी शुक्ल का और मिश्रजी का झगड़ा रहने के कारण शुक्लजी का मुख्य मन्त्री होना सम्भव न था जैसा आगे चलकर हुआ भी और इस झगड़े के कारण आरम्भ में मुख्य मन्त्रित्व महाकोशल को मिल भी न पाया। फिर उस समय की प्रान्तीय राजनीति में मेरा स्थान सबसे ऊँचा था ही। पर इसी के साथ एक बात और स्पष्ट थी। जबलपुर के दो मन्त्री होना भी सम्भव न था अतः यदि मैं प्रान्तीय असेम्बली में जाकर मुख्य मन्त्री हो जाता तो द्वारका-प्रसादजी मिश्र मन्त्री न हो पाते। अतः मैंने मिश्रजी के मार्ग में आना उचित न समझा। मिश्रजी से मेरा उस समय जैसा सम्बन्ध था उसे देखते हुए यदि मैं अपनी इस प्रकार की कोई अभिलाषा मिश्रजी को व्यक्त करता तो वे यही कहते कि मैं अवश्य प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़ा हो जाऊँ, पर मैंने उनसे भी अपनी ऐसी कोई इच्छा संकेत में भी न बतायी और यह कहकर कि मैं तो कांग्रेसवादियों द्वारा उस समय की स्थिति में मन्त्री-पद ग्रहण करने के ही विरुद्ध हूँ, मैंने प्रान्तीय असेम्बली में न जाने का ही निश्चय किया।

पहले अपने-अपने क्षेत्र के उम्मीदवारों के नामों का निर्णय तीनों चुनाव समितियों ने अलग-अलग किया और फिर सब मिलकर। बहुत से उम्मीदवार तो ऐसे थे जिनके नाम सर्वमत से तय हुए। कुछ ऐसे थे जिनके नामों के सम्बन्ध में शुक्लजी का और मिश्रजी का तथा मेरा मतभेद हो गया, परन्तु हमने देखा कि महाकोशल की चुनाव समिति में भी बहुमत हमारे उम्मीदवारों को ही मिला और संयुक्त चुनाव समिति में तो मिलता ही। इस प्रकार एक तरह से हमारे प्रान्त से हमारे पक्ष के उम्मीदवारों के नाम अखिल भारतीय चुनाव समिति की मंजूरी को चले गये। जिन उम्मीदवारों के नामों को हमने स्वीकार न किया था उन्होंने अखिल भारतीय चुनाव समिति के पास अपील की। इनकी सहायता की शुक्लजी ने। नतीजा यह निकला कि हमारी सूची के चार नाम बदल दिये गये। इनमें मुख्य नाम था महाकोशल की चुनाव समिति के अध्यक्ष पं० माखनलाल चतुर्वेदी का।

यद्यपि कांग्रेस के अध्यक्ष इस समय पं० जवाहरलालजी नेहरू थे, पर उस समय पण्डितजी चुनाव समिति में नहीं थे। वे इस प्रकार की दलबन्दी के

सदृश चीजों से प्रायः दूर रहते थे। ऐसे काम सरदार पटेल के जिम्मे थे। अखिल भारतीय चुनाव समिति में सरदार पटेल ही सर्वेसर्वा थे और हमारे उम्मीदवारों के इन नामों को शुक्लजी ने सरदार साहब से बदलवाया था, शुक्लजी का सरदार पटेल से इस समय बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था।

मिश्रजी को अखिल भारतीय चुनाव समिति का यह हस्तक्षेप विशेषकर महाकोशल चुनाव समिति के अध्यक्ष पं० माखनलाल चतुर्वेदी का नाम हटाना इतना नागवार गुजरा कि उन्होंने कांग्रेस को ही छोड़ देने का निर्णय किया। मैं कांग्रेस छोड़ने के पक्ष में न था, पर चतुर्वेदीजी के नाम का इस प्रकार हटाया जाना मुझे भी अत्यधिक अपमानजनक जान पड़ रहा था।

कांग्रेस का अधिवेशन फैजपुर में था, यह कांग्रेस का पहला अधिवेशन था जो गान्धीजी की राय से गाँव में हुआ था। चूँकि भारत की अस्सी फी सदी जनता गाँवों में रहती है, इसलिए गान्धीजी ने सदा ही गाँवों को महत्त्व दिया है। इस अधिवेशन के सभापति भी जवाहरलालजी ही चुने गये थे। हम लोगों ने फैजपुर जाकर अखिल भारतीय चुनाव समिति के निर्णय के विरुद्ध सभापति को अपील की पर इसका भी कोई नतीजा न निकला। मिश्रजी कांग्रेस को छोड़ने का फैसला कर ही चुके थे। उनका और मेरा प्रेम-सम्बन्ध जैसा का तैसा था। मुझे भी चतुर्वेदीजी के नाम की अस्वीकृति अखिल भारतीय चुनाव समिति का घोर अन्याय जान पड़ता था अतः कांग्रेस छोड़ने की अनिच्छा रहते हुए भी मैं मिश्रजी के साथ खिंच गया और मिश्रजी तथा मैं कांग्रेस से इस्तीफा दे फैजपुर से बम्बई आ गये। फैजपुर से बम्बई जाते हुए दिन भर रास्ते में जो समय बीता वह जीवन के ऐसे समयों में था, जिसे मैं कभी विस्मृत न कर सकूँगा। मैंने पूरी अनिच्छा से कांग्रेस छोड़ने का निर्णय किया था। मिश्रजी का खिंचाव और चतुर्वेदीजी के प्रति अन्याय ही इसका कारण था अतः मेरे मन का संघर्ष पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। रास्ते भर मिश्रजी का और मेरा वाद-विवाद चलता रहा। यद्यपि इसके पहले भी मिश्रजी के और मेरे कई झगड़े हो चुके थे, पर उनमें और इस विवाद में बड़ा अन्तर था। इसके पहले किसी झगड़े में कोई सिद्धान्त निहित न रहता। यह विवाद था बहुत दूर तक इस सिद्धान्त की नींव पर कि संस्था और व्यक्ति के बीच चुनाव

का अवसर आवे तो मनुष्य किसे चुने। यद्यपि वाद-विवाद में सिद्धान्त का स्पष्टीकरण न हो रहा था, पर सारा वाद यथार्थ में इसी तत्त्व के चारों ओर घूम रहा था। इस बहस-मुबाहसे में काफी कटुता आ गयी थी अतः हर प्रकार से इसे झगड़े का ही नाम दिया जा सकता था। बम्बई पहुँचते-पहुँचते मेरे मुँह से यहाँ तक निकल गया—"मैंने कांग्रेस के लिए किसी भी घरवाले तक की परवाह नहीं की ; यहाँ तक कि घर-द्वार, जगह सम्पत्ति सब छोड़ दी और आखिर तुमने मुझसे कांग्रेस भी छुड़वा दी।"

फैजपुर से बम्बई पहुँचने तक हम दोनों में, अभिन्न मित्र रहते हुए भी, जैसा वार्त्तालाप हुआ था उसके कारण हम दोनों ही मानसिक दृष्टि से अत्यधिक पीड़ित थे अतः हमने बम्बई स्टेशन पर उतरते ही तय किया कि अब हम चाहे दुनिया की और कोई भी बात करें, पर कांग्रेस के सम्बन्ध में कोई बात न करेंगे।

बम्बई में आजकल हम लोग नारायण दाभोलकर रोड पर श्री गोविन्दलालजी पीती के बंगले में ठहरते थे। स्टेशन पर पीतीजी की मोटर आयी थी। हम फैजपुर से प्रातःकाल रवाना होकर बम्बई शाम को पहुँचे थे। पीतीजी के बंगले पर पहुँच स्नानादि से निवृत्त हो हमने भोजन किया और फिर मिश्रजी ने कुछ इधर-उधर की गपशप लगाना आरम्भ किया। जो मिश्रजी एक दो दिन पहले ही कांग्रेस, चुनाव आदि से ओत-प्रोत से थे वे अब ऐसे जान पड़े जैसे उनका कांग्रेस और राजनीति से कभी कोई सम्बन्ध ही न था। यह उनकी सच्ची निस्पृहता थी या वे मुझे कांग्रेस से जो हटाकर लाये थे उसके कारण जबर्दस्ती बनायी हुई वृत्ति, यह कहना कठिन है। जो कुछ हो, यह एक बड़ा भारी संयम था इसमें सन्देह नहीं हो सकता। पर मेरा मन कांग्रेस में ही रखा हुआ था और इसीलिए वह अत्यन्त उद्विग्न था। कांग्रेस देश की सबसे बड़ी संस्था थी, देश को स्वतन्त्र करने के लिए उसने बीड़ा उठाया था, महात्मा गान्धी तथा अन्य महान् विभूतियों के हाथ में उसका नेतृत्त्व था, उसी को आज मैंने छोड़ दिया था, यह तो इसका कारण था ही, पर आज जब मैं उस समय के इस प्रसंग पर विचार कर अपना निरीक्षण करता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि लोकेषणा से व्याप्त आसक्ति भी मेरी इस मानसिक अशान्ति का

कारण था। मैंने होश सँभालने के पश्चात् अपना सर्वस्व जिस संस्था के प्रति अर्पण कर दिया था, वह आज मुझ से छूट गयी थी। मेरी उसमें इतनी आसक्ति थी कि मैं निरावलम्ब हो गया हूँ ऐसा मुझे जान पड़ता था।

बम्बई पहुँचने के दूसरे दिन हम "बम्बई टाकीज" के "अछूत कन्या" चित्र को देखने गये। हम लोगों ने तय किया था कि हम कांग्रेस के सम्बन्ध में बातचीत न करेंगे, पर बातचीत न करने पर भी मिश्रजी को मालूम था कि मेरा मन कांग्रेस में ही रखा हुआ है और वे उसे वहाँ से हटा किसी प्रकार भी बहलाने का प्रयत्न कर रहे थे। "अछूत कन्या" की इस समय बड़ी प्रसिद्धि थी अतः उन्होंने सोचा होगा कि वहाँ मेरा मन कुछ न कुछ तो बहलेगा ही। हम लोगों ने चित्र आधा भी न देख पाया था कि गोविन्दलालजी पीती के यहाँ से एक आदमी मेरे नाम का एक एक्सप्रेस तार लेकर पहुँचा। सिनेमा भवन में अँधेरा था और वह आदमी भवन के प्रबन्धकों द्वारा टार्च के सहारे हमारी सीट तक लाया गया। हम दोनों तार पढ़ने बाहर निकले। तार जबलपुर से महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति कप्तान अवधेश प्रतापसिंह का था। तार में जो कुछ लिखा था उसका आशय यह था कि पं० जवाहरलालजी का चुनाव का दौरा फैजपुर से ही आरम्भ हो गया है। वे परसों जबलपुर पहुँच रहे हैं और मेरे यहाँ ही ठहरेंगे अतः मैं तत्काल जबलपुर लौटूँ। तार मिश्रजी ने ही पढ़ा और मेरे किसी प्रश्न की प्रतीक्षा किये बिना वे एकदम बोले—"हमें आज की ही मेल से जबलपुर लौटना होगा। जब पण्डितजी आपके यहाँ ठहर रहे हैं तब हमारा अशिष्ट व्यवहार तो नहीं हो सकता।"

फिल्म को अधूरा छोड़ हम डेरे पर आये और मेल से रवाना हो गये। हमें राजनैतिक मामले में क्या करना है इसकी बात न मिश्रजी ने की और न मैंने। अनेक बार मेरे ओठों तक बात आयी, पर जब बात मन में उठती, फैजपुर से बम्बई पहुँचने तक जो कुछ हुआ था, वह याद आ जाता और मुँह से कोई बात न निकल पाती। उस समय कितने कठिन संयम की आवश्यकता पड़ी थी, यह आज भी मुझे याद आ जाता है।

इन दिनों मैं गोपाल बाग में ही रहता था। निकट ही मिश्रजी रहते थे। जबलपुर पहुँचते ही हमने पण्डितजी के ठहरने की सारी व्यवस्था की। दूसरे

दिन डाक गाड़ी से पण्डितजी आये। जब वे मेरे यहाँ ठहर गये और चाय पी चुके तब कप्तान साहब, मिश्रजी और मुझको अलग लेकर उन्होंने बहुत थोड़े शब्दों में जो कहा उसका इतना ही आशय था—"आप लोग कांग्रेस नहीं छोड़ सकते।" मैंने मिश्रजी की ओर देखा, न वे कुछ बोले, न मैं और न कप्तान साहब। रात को बड़ी भारी सार्वजनिक सभा हुई उसमें अपने भाषण के दौरान में पण्डितजी ने घोषणा कर दी कि मैंने और मिश्रजी ने कांग्रेस से अपने त्याग-पत्र वापिस ले लिये हैं। कितनी प्रचंड करतल ध्वनि के बीच पण्डितजी की इस घोषणा का स्वागत किया गया।

कप्तान अवधेश प्रतापसिंहजी ने बड़ी चतुराई से यह सारी व्यवस्था की थी। एक बार पण्डित मोतीलालजी से भी मेरा झगड़ा हो चुका था। उस समय भी मैंने स्वराज्य पार्टी और केन्द्रीय असेम्बली से इस्तीफा दिया था और मुझे समझाने पण्डितजी जबलपुर आये थे। पर उस अवसर और इस अवसर में बड़ा भारी अन्तर था। उस समय मेरा चित्त ऐसा उद्विग्न नहीं हुआ था। इसका कारण कदाचित् मोतीलालजी के द्वारा मेरा व्यक्तिगत अपमान था और उस अवसर पर मैंने स्तीफा दिया था केवल केन्द्रीय असेम्बली तथा स्वराज्य पार्टी से, कांग्रेस संस्था से नहीं। मेरे स्तीफे को वापस कराने में मोतीलालजी का जो व्यवहार था वह भी सर्वथा व्यक्तिगत था। उसमें प्रेम की आर्द्रता थी। जवा-हरलालजी भी हम लोगों की ही इस पंचायत के कारण इतने शीघ्र जबलपुर आये थे। हम लोग फिर से कांग्रेस में आ जायँ, इसीलिए वे मेरे यहाँ ठहरे थे, पर जवाहरलालजी के व्यवहार में वह आत्मीयता न थी। इतने पर भी उनके व्यक्तित्व के कारण उस रूखे-सूखे व्यवहार के रहने पर भी उन्हें सफलता मिल गयी।

महाकोशल में सन् ३७ का चुनाव अभियान खूब सफलतापूर्वक चला। यद्यपि मेरा चुनाव नहीं था और मैं इस समय कांग्रेस के किसी पद पर भी न था तथापि इस चुनाव में भी परिश्रम और दौरा शायद मुझे ही सबसे अधिक करना पड़ा। व्यक्तिगत दृष्टि से मेरे लिए एक ही खेदजनक बात इस चुनाव में हुई। उत्तरीय जेलों के जमींदारों की ओर से कांग्रेस ने ब्योहार राजेन्द्रसिंह जी को खड़ा किया था। उनके खिलाफ खड़े हुए थे मेरे चचेरे भाई दीवान-

बहादुर बल्लभदासजी के पुत्र जमनादासजी। बल्लभदासजी का देहान्त हो चुका था और मैंने बहुत समय तक यत्न किया था कि जमनादासजी कांग्रेस की राजनीति में आवें, पर इसमें मैं असफल रहा। व्योहारजी और जमनादासजी जिस चुनाव-क्षेत्र से खड़े हुए उसमें लगभग तीन सौ वोटर थे। इन जमींदारों पर हमारे कुटुम्ब का कितना प्रभाव था इसका उल्लेख पिछले कई अध्यायों में हो चुका है। इस चुनाव में मुझे अपने चचेरे भाई के विरुद्ध व्योहारजी की सहायता करनी पड़ी। अनेक मतदाताओं से मैं जाकर मिला और मतदान के दिन होशंगाबाद नामक स्थान पर मैं व्योहारजी का पोलिंग एजेण्ट हो कर गया। उस पोलिंग स्टेशन पर मैंने जमनादासजी के लिए आये हुए कुछ मतदाताओं के मत परिवर्त्तन करा उनके मत व्योहारजी को दिला दिये। फल यह हुआ कि व्योहारजी तीन वोटों से चुनाव जीत गये। व्योहारजी की जीत इतने कम मतों से हुई कि यह सर्वथा स्पष्ट हो गया कि यदि राजा गोकुलदास के कुटुम्ब में ही दो दल न हो गये होते तो जमनादासजी अवश्य ही जीत जाते। हमारे कुटुम्ब की मेरे पिताजी और मेरे ताऊजी की दोनों शाखाओं के सम्बन्ध अच्छे-से-अच्छे रहे थे। करोड़ों की सम्पत्ति के बटवारे के समय भी आपस में कोई मनमुटाव न हुआ था। बल्लभदासजी ने मेरे सार्वजनिक जीवन में भी मुझे बहुत सहायता दी थी और उन्हीं के कारण महाकोशल का धनिक वर्ग कांग्रेस का पक्षपाती रहा था। जमनादास मुझ से उम्र में केवल पाँच महीने छोटे थे और उनका और मेरा भी व्यक्तिगत सम्बन्ध अच्छे से अच्छा था, पर इस चुनाव ने हमारे कुटुम्ब की दोनों शाखाओं में संघर्ष की उत्पत्ति कर दी। तीन वर्षों के बाद इस संघर्ष का जो एक अन्तिम महान् कारुणिक और शोकमय प्रसंग हुआ वह मेरे जीवन का एक अत्यधिक दुःखपूर्ण अध्याय है।

सन् ४० में जब मैं कुछ समय के लिए राजनीति से अलग हो कलकत्ते में रोजगार-धन्धा कर रहा था उस समय जमनादासजी अपनी बीमारी की जाँच कराने कलकत्ते आये और वहाँ अचानक उनका देहान्त हो गया। कुटुम्बियों में से उस समय उनके पास मेरे सिवा और कोई न था। मृत्यु-शैया पर पड़े हुए उन्होंने मुझसे कुछ इस प्रकार कहा—

"बाबू साहब, एक ही रंज लेकर मैं मर रहा हूँ। आपने मुझे गये चुनाव

में हराया। उसके पहले हमारे प्रान्त में राजा गोकुलदास के कुटुम्ब के किसी भी व्यक्ति ने कहीं नीचा न देखा था, पर आपने इस निगोड़ी कांग्रेस के लिए अपने कुटुम्ब की इज्जत का भी खयाल न रखा।"

उस चुनाव का उस समय तक मेरे मन पर कोई असर न रह गया था, पर मरते समय जमनादास ने जो कुछ कहा था वह अब भी मुझे कई बार दुःखी कर देता है।

चुनाव-फल घोषित होने पर कांग्रेस को ११ प्रान्तों में से पाँच प्रान्तों में, मद्रास, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, बिहार और उड़ीसा में, स्पष्ट बहुमत मिला। चार प्रान्तों, बंगाल, बम्बई, आसाम और सीमा प्रान्त में बहुमत न मिलने पर भी कांग्रेस अकेली सबसे बड़ी पार्टी थी तथा सिंध और पजाब की असेम्बलियों में वह अल्पसंख्यक थी। मुसलमानों की ४८२ सीटों में से कांग्रेस ने ५८ मुस्लिम सदस्य खड़े कर २६ सीटों पर कब्जा कर लिया और इसमें अधिकांश उस सीमा प्रान्त में थीं, जहाँ के नेता खान अब्दुल गफ्फार खाँ के प्रभाव से सशंकित सरकार ने उन्हें उनके प्रान्त में ही प्रवेश करने पर पाबन्दी लगा दी थी। चुनाव तो कांग्रेस की बड़ी भारी विजय से समाप्त हुआ परन्तु अब इसके उपरान्त की समस्याएँ बड़ी जटिल थीं।

सबसे पहली समस्या थी कि जहाँ कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया वहाँ उसे मन्त्रिमण्डल बनाकर सरकार चलाना चाहिए अथवा जैसा कि कांग्रेस ने सन् १९३२ के संविधान को नामंजूर करते हुए उसके केन्द्रीय विभाग को लागू होने देने की दृष्टि से चुनाव में भाग लिया था, उसको मद्देनजर रखते हुए मन्त्रिमण्डल बनाने से इनकार कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी समस्या थी राजभक्ति की शपथ लेने के विषय में। इसके लिए कांग्रेस की कार्य-समिति ने फौरन ही अनुशासन की नियमावली बनाकर धारा सभाओं के कांग्रसी सदस्यों में संगठन और सुशासन स्थापित कर दिया। इस नियमावली के अनुसार बिना वर्किंग कमेटी की आज्ञा के उनसे कुछ भी न करने की पाबन्दी स्वीकार करा निम्नांकित शपथ लिखायी गयी—

"मैं, इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं हिंदुस्तान की सेवा करूँगा, धारा सभा के बाहर और भीतर, हिन्दुस्तान की आजादी के लिए काम करूँगा और

हिन्दुस्तानी जनता की गरीबी और शोषण को खत्म करने की कोशिश करूँगा। मैं इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं कांग्रेस के आदर्श और उद्देश्यों को हासिल करने के लिए कांग्रेस के अनुशासन में काम करूँगा ताकि हिन्दुस्तान आजाद हो और उसके करोड़ों निवासी जिस बोझ और तकलीफ से पिस रहे हैं, उससे छुटकारा पा सकें।"

इस प्रकार की प्रतिज्ञा लिखाकर कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया कि धारा सभाओं में शपथ लेने से कांग्रेस के पूर्ण स्वतन्त्रता के उद्देश्य में कुछ भी अन्तर नही पड़ता।

जिन प्रान्तों में कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया था वहाँ नियम के अनुसार गवर्नर द्वारा बुलाये जाने पर भी कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाने से इंकार कर दिया। इसका प्रधान कारण यह हुआ कि यथार्थ अधिकार पाने की दृष्टि से कांग्रेसियों ने गवर्नरों से अपने विशेषाधिकारों के उपयोग में न लाने का आश्वासन माँगा जो उन्हें नहीं दिया गया।

ब्रिटिश सरकार ने इन विशेषाधिकारों में गवर्नरों को इतने अधिक अधिकार दे दिये थे कि यदि वे उनका प्रयोग करने लगते तो प्रान्तीय स्वराज्य नाम मात्र को भी न चलता। इस प्रकार एक हाथ से कुछ देकर दूसरे हाथ से उससे भी अधिक छीन लेने की यह ब्रिटिश नीति थी। गवर्नर के इन विशेषाधिकारों में अल्पसंख्यक जातियों से सम्बन्ध रखनेवाली बातें, ब्रिटिश स्वार्थ, नौकरियों के विशेषाधिकार आदि थे। इस प्रकार के मामलों में गवर्नर बिना मन्त्रियों से सलाह लिये अपने निजी तौर पर काम कर सकता था तथा इसके लिए वह धारा सभाओं के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर-जनरल के द्वारा भारत मन्त्री के प्रति जिम्मेदार था। गवर्नर को मन्त्रिमण्डल तथा धारा सभाओं को भंग करके शासन अपने हाथ में लेने का अधिकार भी था। यद्यपि इन समस्त विशेषाधिकारों को काम में लाने की आशंका नहीं थी, तो भी मन्त्रिमण्डल जिस प्रकार की भी हीनता अनुभव करता हुआ अपना शक्तिहीन अस्तित्व कायम रखता वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के हिमायती तथा जनता के सच्चे प्रतिनिधियों के आत्मसम्मान के बिलकुल विपरीत पड़ता था। इस मामले पर इंगलैण्ड और भारत के विधान विशेषज्ञों तथा भारत मन्त्री आदि से कांग्रेसी

नेताओं का बड़ा विवाद चला पर कांग्रेसवाले अपनी नीति पर अडिग रहे।

कई लोगों का कहना था कि मन्त्रियों द्वारा गवर्नरों से इस प्रकार का आश्वासन माँगना विधान के विपरीत है। हमारे दुर्भाग्य से बदलती हवा की तरफ पीठ करनेवाले और दोनों श्रेणी विभागों में से किसी में निश्चित रूप से न आनेवाले अनेक नरम दल के नेता भी इस मसले पर सरकार के स्वर में स्वर मिला रहे थे। इसके विपरीत कुछ लोग, जिनमें इंगलैण्ड के कानूनी महारथी बैरी डेल कीथ तथा भारत के श्री तारापोरवाला एवं डॉ० बहादुरजी (ये दोनों भूतपूर्व एडवोकेट जनरल थे) इस मत के थे कि मन्त्रियों द्वारा इस प्रकार के आश्वासन माँगे जा सकते हैं।

इस विवाद में तीन महीने के करीब व्यतीत हो गये। इस बीच कांग्रेसी बहुमतवाले प्रान्तों में सरकार ने अन्य सदस्यों के मन्त्रिमण्डल भी बनाये पर वे तो धारा सभाओं का अधिवेशन होते ही पटके जानेवाले थे। हमारा प्रान्त भी कांग्रेस बहुमत वाला प्रान्त था। हमारे प्रान्त में भी मन्त्रिमण्डल के मुख्य मन्त्री श्री राघवेन्द्रराव थे जो कुछ लोगों के मतानुसार चुनाव में अनेक अवैधानिक बातें कर चुने जा सके थे। कितना प्रसन्न था मैं इस बात से कि कांग्रेस ने पद स्वीकार न किये। मेरी प्रसन्नता का कारण था मेरा आरम्भ से ही पद स्वीकार न करने के पक्ष में होना।

आदर्श चित्र का नया चित्र

"दलित कुसुम"

सन् ३७ के प्रान्तीय चुनावों के हो जाने के बाद मेरा ध्यान फिर से पूर्णतया आदर्श चित्र की ओर घूमा। आदर्श चित्र को आगे चलाने के लिए उसका कर्ज चुकाना और दूसरा फिल्म बनाना आवश्यक था। इसके लिए सर्वप्रथम रुपये की जरूरत थी।

मैं भाग्यवादी नहीं हूँ और न मेरा फलित ज्योतिष पर ही विश्वास है। परन्तु इतने पर भी न जाने कैसा योग था कि इतने सम्पन्न घर में जन्म लेने और घर में यथेष्ट सम्पत्ति के रहते हुए भी मुझे सार्वजनिक जीवन में आने के पश्चात् सदा धन की किसी न किसी प्रकार की चिन्ता रही। पहले आमदनी से खर्च अधिक, फिर कर्ज का बोझ, उसके बाद पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र और जीविका का प्रश्न। मेरी रहन-सहन और आदतों में सादगी ही थी। गान्धीजी के अनुसरण के पश्चात् इस सादगी में वृद्धि ही हुई थी और एक जमाने में मैं सोचता था कि मैं तीस रुपये महीने में अपनी गुजर-बसर कर सकता हूँ। पैतृक सम्पत्ति से त्याग-पत्र देने के पश्चात् उस आदर्श पर चलकर यदि मैं जीविका का प्रश्न हल करने का प्रयत्न करता तथा अन्यों के खर्च चलाने की जो जिम्मेदारी मैंने ले रखी थी उससे मुक्त हो जाता तो अपनी पुस्तकों की रायल्टी से मेरा काम सुभीते से चल सकता था, क्योंकि मुझ पर कुटुम्ब के खर्च का कोई बोझ न होकर केवल अपने खर्च का बोझ था, परन्तु ऐसा न हुआ और जीविका चलाने के लिए जो मार्ग मैंने चुना उसमें मैं अधिकाधिक फँसता गया। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) अपनी जीविका चलाने का जो मार्ग मैंने चुना उससे मेरे नाटकों का सम्बन्ध था। हर रचयिता को अपनी रचना में आसक्ति रहती है, और उसके प्रचार के काम में मोह।

(२) अपनी जीविका चलाने के सिवा जिनकी जीविका चलाने की मैंने जिम्मेदारी ले ली थी उससे मैं विमुख न होना चाहता था।

(३) मैं हाथ में लिये हुए काम को सरलता से न छोड़ सकता था।

(४) सार्वजनिक जीवन बड़ी खर्चीली चीज था।

(५) नेताओं द्वारा भी धनवान बड़ी आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

इस दोष से मैंने गान्धीजी तक को मुक्त न पाया। गान्धीजी के आश्रम में भी जहाँ दरिद्रनारायण की पूजा की बात कही जाती थी, मैंने लक्ष्मीनारायण की पूजा देखी। और जब मैंने यहाँ तक देखा कि मेरा सम्मान भी उसी कांग्रेस में धन की कमी के कारण कम हो गया है, जो कांग्रेस मेरी इस कमी का यदि सर्व प्रधान नहीं तो कम से कम एक प्रधान कारण अवश्य थी, तो धन कमाने की मेरी वृत्ति और अधिक जागृत हो गयी।

आदर्श चित्र के कर्ज चुकाने तथा नये फिल्म बनाने के लिए जिस रुपये की आवश्यकता थी वह कम्पनी के शेअर बेचकर ही आ सकता था। मैंने देश में इसके लिए भ्रमण आरम्भ किया। जिससे भी मेरा परिचय था, जिस पर भी मैं जोर डाल सकता था, सबसे मैंने इस कम्पनी के शेअर भरवाये। जब ऐसा जान पड़ा कि कर्ज चुकाने तथा नया फिल्म बनाने के लिए पर्याप्त धन मिल जायगा तब इस बार बम्बई की जगह कलकत्ते में फिल्म बनाना तय किया गया।

आदर्श चित्र का चित्र आदर्श बनना चाहिए इस आदर्श को छोड़ आदर्श चित्र के अन्य अनेक आदर्शों को हमने अब परिवर्तित किया, इनमें मुख्य था केवल पढ़े-लिखे लोगों को फिल्म के पात्रों का काम करने के लिए न लेकर सिनेमा संसार के अन्य प्रसिद्ध नटों को भी लेना।

मेरे ही एक सामाजिक नाटक "दलित कुसुम" का फिल्म बनाना तय हुआ। फिर से पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र को कथोपकथन लिखने का काम सौंपा गया। कला विभाग सिवनीवाले वकील श्री नित्येन्द्रनाथ सील के ही जिम्मे रहा। फिल्म के दिग्दर्शक कानपुर के श्री मुन्नेलाल टण्डन बनाये गये। श्री टण्डन अमरीका के हालीवुड में यह काम सीखकर आये थे। वे सचमुच में अपने कार्य में बड़े योग्य थे और योग्यता के साथ ही उनमें भलमनसाहत भी

कूट-कूट कर भरी थी। चित्र के पात्रों में मुख्य पात्रों का काम बंगाल के प्रसिद्ध नट श्री अहीन्द्र चौधरी तथा नटी श्री जरीनाखातून को दिया गया।

"दलित कुसुम" फिल्म सचमुच में अच्छा बना। आर्थिक संकट से कम्पनी मुक्त होती तो आर्थिक दृष्टि से भी यह फिलम कदाचित् सफल होता, परन्तु फिल्म पूरा बनते-बनते फिर रुपये की कमी हो गयी। जिसके फलस्वरूप इस चित्र का डिस्ट्रीब्यूशन उन्हीं को देना पड़ा जिनकी स्टुडियो में कलकत्ते में यह फिल्म बना था। "थोड़ी पूँजी धनी को खा जाती है" इस कहावत के अनुसार यह फिल्म भी आर्थिक दृष्टि से असफल हो गया।

आदर्श चित्र कम्पनी की फिर वही दशा हो गयी जो "धुँआधार" फिल्म पूरा होने के समय थी।

हसीना काण्ड

जब "दलित कुसुम" फिल्म के काम को समाप्त कर हम लोग जबलपुर लौटे तब जबलपुर में एक नयी घटना घटित हो गयी।

जैसा पहले कहा जा चुका है—पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र इन दिनों में गोपाल बाग में रहते थे। गोपाल बाग में ही मैं भी रहता था। गोपाल बाग का हाता बहुत बड़ा होने के कारण यद्यपि हम दोनों के रहने के स्थान बहुत दूर नहीं थे, परन्तु अत्यन्त सन्निकट भी नहीं। मेरे पास अब एक मोटर भी हो गयी थी और हम दोनों उस मोटर का उपयोग करते थे। हमारे मोटर ड्राइवर का नाम नाना नायडू था और वह भी गोपाल बाग के ही एक भाग में रहता था। मैं जब जबलपुर में रहता था तब नित्य प्रातःकाल गोपाललालजी के दर्शन करने एवं माताजी और पिताजी को प्रणाम करने जाता था। मेरी पत्नी, जब मैं जबलपुर में रहता, मेरे साथ गोपाल बाग में रहतीं, पर वे प्रातःकाल ही राजा गोकुलदास महल को चली जातीं और सन्ध्या को लौटतीं। नाना नायडू समय का बड़ा पाबन्द था। नित्य ठीक समय मेरी पत्नी के लिए और फिर मेरे लिए मोटर ले आता। एक दिन जब मेरी पत्नी के लिए मोटर नहीं आयी तो जहाँ नायडू रहता था वहाँ एक नौकर भेजा गया। उसने लौटकर खबर दी कि नायडू का रात से ही पता नहीं है। नायडू बीमार हो सकता था, इधर-उधर जा सकता था, छुट्टी ले सकता था, पर बिना किसी सूचना के उसका इस प्रकार गायब होना एक विचित्र खबर थी! नायडू सन् १९२७ से हमारे यहाँ ड्राइवरी का काम करता था। पहले मिश्रजी का ड्राइवर था, फिर हमारी संयुक्त मोटर का। सन् १९३० के आन्दोलन में वह जेल भी गया था। उसने आज तक ऐसी बात कभी न की थी कि बिना कोई खबर दिये या छुट्टी लिये वह इस प्रकार गायब हो जाय। खैर, सवारी तो राजा गोकुलदास महल से मँगवा ली गयी और मेरी पत्नी तथा मैं जहाँ हमें जाना था ठीक समय अपने कामों के लिए पहुँच भी गये, पर गोपाल बाग लौटकर जब मैं मिश्रजी

से मिला तब उन्होंने नायडू के गायब होने के कारण का जो रहस्य मुझे बताया उससे मैं दंग रह गया। एक हसीना नाम की नाबालिग मुसलमान लड़की की माँ ने पुलिस में रिपोर्ट की थी कि उसकी लड़की को नाना नायडू मिश्रजी के पास लाता था। वह लड़की मिश्रजी के पास आती थी इसका तो पुलिस को अब तक कोई सबूत न मिला था, परन्तु उस लड़की का नायडू से रफ्त-जफ्त है इसका पुलिस को प्रमाण मिल चुका था। इस प्रमाण के कारण पुलिस ने नायडू की गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला था। नायडू को इस वारण्ट का किसी प्रकार पता लग गया और वह फरार हो गया। नायडू के गायब होने के कारण मिश्रजी ने जब पुलिस में रिपोर्ट करायी तब उन्हें यह पता लगा था।

मिश्रजी पर इस प्रकार के आरोप का वृत्त सुन मेरा आश्चर्य से दंग रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था। कुछ देर तक तो मेरी समझ में ही न आया कि यह सब क्या है, परन्तु मिश्रजी को एकदम शान्त मुद्रा में देख मैंने इस विषय में उनसे बातें शुरू कीं। नायडू का विवाह न हुआ था। वह तरुण था। अतः उसका ऐसी किसी लड़की से सम्बन्ध हो जाना हमें आश्चर्य की बात न जान पड़ी, पर मिश्रजी का नाम जो इस मामले में घसीटा गया था उसमें हमें राजनीतिक गन्ध आयी। मध्य प्रदेश की धारा सभा में कांग्रेस का प्रचण्ड बहुमत था। अस्थायी मन्त्रिमण्डल जिसके प्रधान मन्त्री श्री राघवेन्द्रराव थे, किसी दिन भी भंग हो सकता था, जो आगे चलकर हुआ भी। इस अस्थायी मन्त्रिमण्डल के भंग होने पर कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल बनना, उस मन्त्रिमण्डल के प्रधान मन्त्री डॉ० खरे तथा खरे मन्त्रिमण्डल के एक मन्त्री मिश्रजी का होना एक निश्चित-सी बात थी। श्री राघवेन्द्रराव की जितनी शत्रुता मिश्रजी से थी, प्रान्त में अन्य किसी से नहीं अतः इस हसीना काण्ड में हमें राजनीतिक गन्ध का आना स्वाभाविक था और यदि हमारा सन्देह सत्य था तो राजनीतिक सत्ता के कारण मिथ्या बात का भी सत्य सिद्ध किया जाना असम्भव न था।

इधर हसीना काण्ड आगे बढ़ा और उधर अस्थायी मन्त्रिमण्डलों की समाप्ति कर कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के निर्माण की चर्चा शुरू हुई। पर हम लोग इस समय इस हसीना काण्ड में इतने फँस से गये कि देश के इस महान्

राजनीतिक परिवर्त्तन की ओर भी हम विशेष ध्यान न रख सके।

समय बीत रहा था, पर समय की गति इस समय हमें बड़ी धीमी जान पड़ती थी। नित्य ही नयी-नयी बातें सुनने को मिलती थीं। इन संवादों में अतिशयोक्तियों का बड़ा भारी मिश्रण रहते हुए भी सत्यांश सर्वथा नहीं था यह नहीं कहा जा सकता। उस समय जो-जो और जैसे-जैसी खबरें मिल रही थीं उनका वैसा का वैसा उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि एक तो उनमें से अधिकांश खबरें अब स्मृति-पटल से विलुप्त हो गयी हैं, दूसरे उनके ब्यौरेवार उल्लेख की आवश्यकता भी नहीं जान पड़ती। अतः उन खबरों या अफवाहों को एक ओर रख इस प्रकरण की एक सबसे बड़ी घटना का ही यहाँ उल्लेख कर दिया जाता है।

एक दिन एकाएक पुलिस मिश्रजी के निवास-स्थान पर पहुँची और उन्हें कोतवाली इसलिए ले गयी कि नायडू हसीना को किसके पास ले जाता था यह कई आदमियों को खड़ा कर हसीना द्वारा पहचाने जाने की व्यवस्था की गयी थी। कोतवाली में मिश्रजी कई आदमियों के साथ खड़े किये गये। एक बुरका पहने हसीना आयी और उसने मिश्र जी का हाथ पकड़ लिया।

मैं उस दिन जबलपुर में न था, कुछ काम के लिए नागपुर गया था। उस समय फोन का इतना प्रचार न हुआ था अतः मिश्रजी ने तार द्वारा इस घटना की मुझे खबर दी और तत्काल जबलपुर लौटने के लिए कहा। मैं फौरन जबलपुर लौट आया।

समय बीत रहा था। उसकी गति अब हमें और धीमी जान पड़ रही थी। नाना नायडू का अभी भी कोई पता न था। जबलपुर और प्रान्त के हमारे सब शत्रु आकाश और पाताल एक कर किसी भी प्रकार मिश्रजी को इस जघन्य पाप का पापी घोषित कराने में कुछ भी न उठा रखना चाहते थे। उस समय जिनके हाथों में राजनीतिक सत्ता थी, उनका भी सारा बल इन लोगों के साथ था। किसी भी दिन किसी भी घटना का घटित होना असम्भव न था।

उन्हीं दिनों रथ-यात्रा के उत्सव का दिन पड़ा। मार्क्स और फ्रायड ने मुझे संशयात्मा अवश्य बना दिया था, परन्तु प्राचीन संस्कारों का प्रभाव मुझ पर

से गया न था। मैंने रथ-यात्रा के उत्सव में गोपाललालजी के मन्दिर में स्नान किया। मेरा मन एकदम अशान्त और भरा हुआ था। वल्लभ कुल सम्प्रदाय में रथ-यात्रा के उत्सव के चार दर्शन होते हैं और अन्तिम दर्शन में आरती होकर रथ में विराजमान भगवान की मूर्ति की परिक्रमा होती है। चौथे दर्शन में आरती तथा परिक्रमा होने के पश्चात् मैंने साष्टांग दण्डवत कर प्रार्थना की—"जीवन में आज पर्यन्त मैंने आपसे कभी कुछ नहीं माँगा। मेरा अटल विश्वास है कि इस हसीना काण्ड में मिश्रजी सर्वथा निर्दोष हैं। यदि मैंने जीवन में कोई सत्कार्य किया हो तो वे इस अभियोग से मुक्त हो जायँ।"

भावोद्वेग के कारण मेरी आँखों से आँसू बह चले। प्रार्थना बिना किसी भी सन्देह के अटल विश्वास से की गयी थी। प्रार्थना के समय मेरे मन पर न मार्क्स का प्रभाव था और न फ्रायड का।

दूसरे दिन जो बात हुई वह महान् आश्चर्यजनक थी। शहर कोतवाल मुझसे मिलने को आये और उन्होंने मुझे खबर दी कि सारी छानबीन के बाद सरकार को यह सिद्ध हो गया कि मिश्रजी इस मामले में निर्दोष हैं और कल संध्या की प्रान्तीय कैबिनेट की बैठक में सरकार ने उन पर कोई भी मुकदमा न चलाने का निर्णय किया है।

मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। मैं बालकों के सदृश झपटकर मिश्रजी के पास पहुँचा। उनका गाढ़ आलिंगन कर गद्गद् स्वर से मैंने उन्हें यह संवाद सुनाया। मिश्रजी को यह संवाद सुनकर हर्ष नहीं हुआ यह तो मैं नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं मिश्रजी को कोई स्थित-प्रज्ञ या गुणातीत व्यक्ति नहीं मानता, पर मिश्रजी ने मुझे उत्तर यही दिया कि वे कई बार कह चुके थे कि जो बात सत्य से सर्वथा रहित है, वह सत्य सिद्ध हो नहीं सकती।

रथ-यात्रा के दिन मेरी प्रार्थना के कारण मिश्रजी की यह आपत्ति टली, यह कहना तो एक ऐसी बात होगी जो बड़े से बड़े ईश्वरवादी एवं भक्त भी सिद्ध नहीं कर सकते, परन्तु जिस दिन तीसरे पहर प्रार्थना और उसी दिन संध्या को प्रार्थना का इस प्रकार का फल यह एक ऐसी घटना अवश्य है जो निरीश्वरवादियों को तो नहीं, पर संशयात्माओं को विचार में डाले बिना नहीं रह सकती, विशेषकर ऐसे संशयात्माओं को जो उसके

श्रोता न हों पर जिनके जीवन में यह स्वयं घटित हुई हो और जिनकी मानसिक अवस्था कम से कम प्रार्थना के समय संशयात्मक न रह एक सच्चे, आर्त एवं याचक भक्त की रही हो। जब मैंने मिश्रजी से इस प्रार्थना का वृत्त कहा तब उन्होंने कहा कि वे तो ईश्वर और प्रार्थना दोनों में ही विश्वास रखते हैं और उनके लिए इस प्रकार की प्रार्थना मेरे अतिरिक्त और कोई न कर सकता था। मिश्रजी मेरे सदृश भावुक नहीं हैं। उनकी आखें भी मैंने बहुत कम सजल देखी हैं, पर जिस समय वे उपर्युक्त बात कह रहे थे उनके नेत्र नीर से रहित न थे।

मिश्रजी के निर्दोष घोषित होने पर इस मामले का कोई महत्त्व न रह गया। हसीना की माँ ने जो दरख्वास्त पुलिस में दी थी उसे उठा लिया। नाना नायडू भी प्रकट हो गया। नायडू से हसीना का सम्बन्ध अवश्य था अतः उसने हसीना को हिन्दू बना उससे विवाह कर लिया। और इतना सब होने पर भी हमने नायडू को ही अपना ड्राइवर रखा।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डल और मुझ पर एक नया आघात

हमने देखा कि कांग्रेसी सदस्यों द्वारा गवर्नरों से अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करने का आश्वासन माँगने और उसके न मिलने पर किस प्रकार तीन महीनों तक नया विधान कुछ प्रान्तों में लागू न हो सकने के कारण सरकार परेशान थी। वह संसार के सामने अपने प्रजातन्त्र प्रेम का ढिंढोरा पीटा करती थी अतएव भारत की समस्याओं को लेकर अपना मुँह दिखाने योग्य रखने के लिए वाइसराय महोदय ने जून के तीसरे सप्ताह में कुछ गोलमाल शब्दों में कुछ मुकरते हुए कुछ बढ़ते हुए हाथों से कांग्रेसियों का सहयोग माँगा तथा उन्हें आश्वासन की आशा-सी दी। उन्होंने कहा कि गवर्नर और मन्त्री पारस्परिक सौहार्द्र और सहयोग से काम चलाकर नये विधान को सफलतापूर्वक चलाने में कुछ उठा न रखें। इन तीन महीनों में जहाँ कांग्रेस का बहुमत नहीं था, वहाँ के मन्त्रिमण्डल सफलतापूर्वक काम कर भी रहे थे। वाइसराय के कथन में कांग्रेसियों को कुछ समझौते की सरकार की नियत दिखी यद्यपि उनके माँगे हुए आश्वासन उन्हें नहीं मिले थे। फिर यह विचार चला कि गवर्नर सर्वथा अपने को मन्त्रियों के ऊपर छोड़ दे या मन्त्री बिलकुल ही गवर्नर के हाथ की कठपुतली हो जायँ ऐसा सोचना निरा अतिवाद है और वास्तविकता से परे है। अतएव बिना प्रयत्न किये पहले से ही एक दूसरे के प्रति शंका करना उचित नहीं। तीन महीने में जो कुछ हुआ था कांग्रेस कार्यकारिणी ने उस पर विचार किया और उसने देखा कि कुछ परिस्थितियों को छोड़ गवर्नर को अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करना सरल नहीं है। अतः उसने कांग्रेस के बहुमतवाले प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाने की राय दी।

कांग्रेस की कार्यकारिणी द्वारा पद ग्रहण करने का निश्चय होते ही कांग्रेसी बहुमत वाले प्रान्तों के अन्तर्कालीन मन्त्रियों ने त्याग-पत्र दे दिये। अब गवर्नरों ने अपने-अपने प्रान्तों की असेम्बलियों के कांग्रेस दल के नेताओं को आमं-

त्रित कर उनसे मन्त्रिमण्डल बनाने को कहा। इन भेंटों में सन्तोषप्रद वातावरण पाकर नेताओं ने मन्त्रिमण्डल बनाना स्वीकार कर अपने साथी मन्त्रियों के नाम गवर्नरों को दे दिये। इस प्रकार सात प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बने—बम्बई, मद्रास, युक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त, उड़ीसा और सीमा प्रान्त।

हमारे प्रान्त में डॉक्टर खरे के नेतृत्व में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना जिसमें मिश्रजी भी लिये गये।

यहाँ यह बात दृष्टव्य है कि अब के मन्त्रिमण्डलों के विपरीत उस समय के मन्त्रिमण्डलों ने अपना वेतन कांग्रेस के कराँचीवाले प्रस्ताव का पालन करते हुए केवल ५००) प्रति माह ही रखा था। सच बात तो यह थी कि उस समय भी देश में बहुत दूर तक एक पवित्रता का वातावरण छाया हुआ था तथा प्रत्येक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता के सामने पूर्ण स्वतन्त्रता का कठिन परन्तु पुनीत उद्देश्य होने से उसके कार्य बहुत दूर तक सात्विकता लिये हुए रहते थे।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डल संगठित होने से जनता में नये उत्साह की लहर आयी, क्योंकि जनसाधारण अपने मन्त्रियों से बहुत कुछ सुधार की आशा रखते थे। मन्त्रियों में बहुतों को शासन का ज्ञान न था तथा उन्हें कई विरोधी हितों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए कठिनाई उठानी पड़ती थी। फिर भी धीरे-धीरे उन्हें अनुभव होने लगा। शासन में अनुभव प्राप्त करने के साथ ही जनता से वे निकट का सम्पर्क रखने का भी प्रयत्न करते थे। जनता अपने इन मन्त्रियों का बड़ा आदर करती थी। जहाँ-जहाँ ये जाते इनके स्वागत-समारोह होते, पुष्प-मालाएँ चढ़ायी जातीं और नाना प्रकार से अपना आदर भाव जनता दर्शाती। ये दृश्य देखने योग्य होते थे।

× × ×

सन् १९२१ से ३७ तक लगभग १५ वर्ष पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र का और मेरा करीब-करीब चौबीसों घण्टों का संग रहा था। सन् १९२२ में जब वे श्री मोतीलाल घोष के पास से पत्रकारिता का काम सीख कर वापस जबलपुर लौटे थे तब से तो कई वर्ष वे राजा गोकुलदास महल में मेरे साथ ही रहे थे और उसके बाद जब मैंने उस घर को छोड़ा तब मैं गोपाल बाग में उन्हीं के निकट रहने लगा था। जेल जीवन के समय को छोड़ इन पन्द्रह वर्षों में हम

सदा एक दूसरे के संग ही रहे थे और जेल जीवन में यदि अलग-अलग रहना पड़ा था तो इस आशा से सदा मन भरा रहता था कि मुक्त होते ही हम फिर साथ हो जायँगे। मेरा जीवन जिस प्रेममय वायुमण्डल में बीता था और इस वायुमण्डल में असहयोग के समय जो व्यतिक्रम हुआ था उसे मिश्रजी के संग ने फिर जैसा का तैसा कर दिया था इसका उल्लेख पिछले एक अध्याय में किया जा चुका है। मेरे जन्मजात भावुक स्वभाव को इस प्रेम के वायुमण्डल ने सदा ही एक ऊँचे स्तर पर रहने में सहायता पहुँचायी थी। इस सृष्टि में अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर के लिए ही सब कुछ करने का जो स्वार्थ प्रायः सभी की कृतियों का प्रेरक रहता है, उससे में अछूता रहा हूँ यह मेरा दावा नहीं है, परन्तु आत्म-निरीक्षण करते हुए मुझे यह अवश्य प्रतीत होता है कि निसर्ग से जिन्हें भावुक स्वभाव मिला है, और उस स्वभाव को परिस्थितियों ने यदि प्रेममय वायुमण्डल में पनपने का अवसर दिया है, तो स्वार्थ से वंचित न रहने पर भी अपने और अपने शरीर के लिए ही सब कुछ करने की वृत्ति के निम्नतम स्तर की कृतियों से बचाने में यह भावुकता और प्रेम बहुत दूर तक सहायता अवश्य पहुँचाते हैं। ऐसे व्यक्ति चाहे दुनियादारी के कामों में सफल न हों, कुछ लोग चाहे उनसे अनुचित लाभ भी उठा सकें, पर उनसे स्वार्थपरायणता के कारण अन्यों को हानि पहुँचाने अथवा किसी निम्नतम स्तर की कृति हो सकना कदाचित सम्भव नहीं रहता।

मिश्रजी के और मेरे इन पन्द्रह वर्षों के संयुक्त जीवन के सम्बन्ध में जैसा पिछले एक अध्याय में कहा जा चुका है मिश्रजी अनेक बार कहा करते थे— "आवर लाइफ इज़ ए रेग्युलर फीस्ट।" मिश्रजी के मन्त्री होने से तो मुझे अत्यधिक हर्ष हुआ, परन्तु उनके नागपुर जाने से मुझे घोर आघात-सा लगा। जब हम जेल जाते तब भी एक दूसरे से अलग होते थे, पर उस वियोग और इस वियोग में अन्तर था, एक तो यह कि उन अवसरों पर भावुकता के क्षेत्र की ही एक दूसरी भावना रहती थी, वह यह कि हमारा यह वियोग किसी महान् कार्य के लिए हो रहा है, और दूसरे यह कि जेल से लौटते ही हम फिर एक दूसरे के साथ हो जायँगे। मन्त्री-पद सँभालना भी एक कर्त्तव्य अवश्य था, पर उस कर्त्तव्य और जेल जाने के कर्त्तव्य में मुझे अनजाने ही बहुत बड़ा

अन्तर महसूस हुआ, फिर जेल से लौटकर फिर से साथ रहने को जो आशा रहती थी, वह अब न रह गयी थी। कुछ समय तक तो मुझे जीवन फिर से बड़ा नीरस जान पड़ने लगा और यदि मेरी पत्नी आदि कुटुम्बियों से मेरा असहयोग के पूर्ववाला सम्बन्ध फिर से स्थापित न हो गया होता तो इस नीरसता का कितना विकराल स्वरूप हो जाता।

नागपुर जाते हुए मुझ से बिदा लेते समय मिश्रजी की मुद्रा भी मेरी मुद्रा से मिलती-जुलती थी। बिदा होनेवाले दिन उन्होंने कुछ मित्रों से एक बात कही थी जो अभी भी मुझे कई बार याद आ जाती है। उन्होंने कहा था—"आज बाबू सा० बड़े दुखी से हैं। उनकी आज मनोदशा देखकर मुझे महर्षि कण्व की उस समय की मनोदशा का स्मरण आ जाता है जब उन्होंने अपने आश्रम से शकुन्तला को बिदा किया था।" मिश्रजी मेरे स्वभाव से जितने परिचित हैं अन्य किसी का उतना परिचित होना सम्भव ही नहीं। वे जानते हैं कि मैं उनकी अपेक्षा कहीं अधिक भावुक हूँ और इसीलिए नागपुर जाते-जाते उन्होंने मुझे अनेक प्रकार की सान्त्वनाएँ दी थीं जैसे—"हम सदा ही मिला करेंगे। कभी आप वहाँ आयेंगे कभी मैं यहाँ। जब आप बुलायेंगे मैं तत्काल आ जाऊँगा।" इत्यादि इत्यादि। बात ठीक भी थी—नागपुर और जबलपुर एक दूसरे से कोई बहुत दूर नहीं, एक ही प्रान्त में हैं और फिर हम दोनों के काम करने का एक ही क्षेत्र है राजनीतिक।

मिश्रजी के मन्त्री हो जाने के कुछ दिन बाद सर्वप्रथम मैं ही नागपुर गया, पर वहाँ का वायुमण्डल मुझे तो गला घोटता-सा प्रतीत हुआ। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उस बन्धन वाले सरकारी वातावरण में मैं मिश्रजी के साथ उस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक रह ही नहीं सकता, जिस जीवन के सम्बन्ध में मिश्रजी कहा करते थे—"आवर लाइफ इज़ ए रेग्युलर फीस्ट"। और मिश्रजी का जबलपुर आना तो दुश्वार-सा हो गया। जब कभी आते भी तो सर्किट हाउस में निवास।

उस समय की अनेक बातों का जब मैं स्मरण करता हूँ तब मुझे इंगलैण्ड के प्रसिद्ध नाटककार जेम्स बैरी का कथन याद आ जाता है। "तुम्हारा जीवन रूपी बाग बर्बाद हो रहा है। उसमें ऐसा कूड़ा-कर्कट फैल रहा है कि वह उसके

हरित पौधों और पुष्पों को सुखा डालेगा।"

और इसका कारण क्या था, कहना कठिन है। पर शायद हैनरी एडैम्स का यह कथन ठीक हो—"यदि कोई मित्र किसी अधिकार के पद पर पहुँच जाय तो फिर वह मित्र नहीं रह जाता।" और इसीलिए अनेक अनुभवों के आधार पर सेम्युअल जानसन लिखते हैं—"मनुष्य को सदा अपनी मैत्री की मरम्मत करते रहना चाहिए।" समरसैट मोघम ने एक जगह लिखा है—"प्रेम की सबसे बड़ी ट्रेजिडी उदासीनता है।" चाहे मेरी गलतफहमी ही क्यों न हो, मिश्रजी के व्यवहार में अब मुझे उदासीनता का अनुभव होता था। चाहे इस सरकारी ओहदे के वायुमण्डल के कारण हो और चाहे मेरा भ्रम ही हो, मुझे मिश्रजी तक में परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगा। वे मन्त्री पद पर कोई चौदह वर्ष रहे। लड़ाई के समय जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दिया था, उस काल को तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं सन् ४२ के आन्दोलन के समयों को छोड़कर वे सन् ३७ के बाद से गये आम चुनावों के कुछ पहले तक मन्त्री ही रहे। इन वर्षों में हम लोग न जाने कितने बार मिले-जुले, पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि उनके मन्त्री होने के पहले के हमारे संग के जीवन तथा उनके मन्त्री रहने के समय के हमारे जीवन में महान् अन्तर हो गया था और इस अन्तर ने हमारी मैत्री के भव्य भवन की भीतरी भित्ति में एक ऐसी छिपी-सी दरार कर दी जो आगे चलकर उस भवन को ढाने का एक सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुई। बात यह है कि जीवन में कौन बात किस प्रकार कही जाती है इसे बहुत कम महत्त्व है। महत्त्व है इसे कि किस बात का हृदय पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

मेरी अफ्रिका यात्रा

पिछले एक अध्याय में कहा जा चुका है कि "दलित कुसुम" फिल्म बनने के बाद "आदर्श चित्र" कम्पनी की फिर वही दशा हो गयी थी जो "धुँआधार" फिल्म बनने के पश्चात् हुई थी। कम्पनी पर फिर से कर्ज भी हो गया था जिसके लिए मेरी व्यक्तिगत गारंटियाँ भी थीं। भारतवर्ष में अपने प्रभाव से जितना धन मैं इस कम्पनी के लिए इकट्ठा कर सकता था, कर चुका था और अब यहाँ धन मिलना सम्भव न था। जैसा पहले कहा जा चुका है मेरी एक ऐसी आदत है जो मेरा बल और निर्बलता दोनों है। हाथ में लिये हुए किसी काम को मैं बड़ी कठिनाई से छोड़ पाता हूँ।

"आदर्श चित्र" को मुझे धुँआधार फिल्म के असफल होते ही बन्द कर देना था, "दलित कुसुम" फिल्म के असफल होने पर तो अवश्य ही, पर मैं यह न कर सका। अब तक जिनसे मैंने रुपया लिया था, उन्होंने मुझे कुछ इसलिए रुपया नहीं दिया था कि उन्हें आदर्श चित्र से किसी बड़े भारी लाभ की आशा थी। उन्होंने जब मुझे रुपया दिया उस समय भी मैं सहायता माँग रहा हूँ इस लिए रुपया दिया था, यह निश्चय कर कि वे शेयर न लेकर मुझे दान दे रहे हैं। सबसे पहले इतने लोगों का रुपया डूबने पर वे क्या कहेंगे इसकी मुझे चिन्ता थी। दूसरे "आदर्श चित्र" सफल न होकर असफल होगा इसे मेरा मन किसी प्रकार भी न मानता था। तीसरे मैं नाटककार था और रंगमंच न होने के कारण मेरे नाटक फिल्मों के रूप में जनता के सामने आवें इसका मुझे लोभ था। चौथे अच्छे फिल्मों से समाज का कल्याण हो सकता है मेरे इस विश्वास में तो थोड़ी भी कमी न आयी थी। और पाँचवें मेरी गारंटियों के कर्ज चुकाने तथा मेरी जीविका का भी प्रश्न था।

सन् १९२३ से ही केन्द्रीय धारा सभा का सदस्य होते ही मैंने प्रवासी भारतवासियों की समस्याओं में खासी दिलचस्पी ली थी। पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका दोनों की संस्थाओं एवं सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से मेरा पत्र-व्यवहार

हुआ था और मुझे मालूम था कि वहाँ के भारतीय बड़े सम्पन्न हैं तथा अनेक बार उन्होंने भारत के लोगों की कई प्रकार से सहायता की है। अतः मैंने तय किया कि मैं अफ्रिका जाऊँ, दोनों बातें हो जायँगी—मैं वहाँ के भारतीयों की समस्याओं का भी प्रत्यक्ष में अध्ययन कर आऊँगा और आदर्श चित्र के शेयर भी भरवा लाऊँगा। एक पंथ दो काज।

मेरे मन में यह विचार आते ही मैंने अफ्रिका की कुछ संस्थाओं एवं व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार कर उन्हें बताया कि मेरा विचार अफ्रिका आने का है। सभी ने मेरा हार्दिक स्वागत किया।

अब अफ्रिका जाने के पहले मैंने अपने वहाँ जाने के उन दोहरे उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से गान्धीजी के सामने रख उनसे जाने के लिए आज्ञा ले लेना उचित समझा। आगे चलकर जो कुछ हुआ, और जिसका विवरण आगे आयगा, यह सिद्ध हो गया कि इस मामले में मैंने यही सबसे बड़ी बुद्धिमानी की।

गान्धीजी से मिलने में वर्धा गया और अफ्रिका की अपनी यात्रा के इन दोहरे उद्देश्यों का स्पष्ट उल्लेख कर उनसे जाने की आज्ञा माँगी। गान्धीजी पहले कुछ विचार में पड़ गये और विचारते हुए उन्होंने जो कुछ कहा उसका अर्थ यह था कि स्वार्थ और परार्थ दोनों काम इकट्ठे मैं किस प्रकार करूँगा। जब मैंने उनसे यह कहा कि मैं कांग्रेस या सरकार किसी की ओर से और किसी के खर्च पर न जाकर व्यक्तिगत रूप से अपने निज के खर्च पर जा रहा हूँ और इतने पर भी यदि वे उचित नहीं समझते तो मैं न जाऊँगा, तब उन्होंने मुझे जाने की आज्ञा दे दी।

वर्धा से लौटकर मैंने अपने जाने की तैयारी की और पासपोर्ट तथा दक्षिण अफ्रिका जाने के लिए जो एक विशेष प्रकार के आज्ञा-पत्र की आवश्यकता होती है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया। घर के लोग मुझे अकेला न जाने देना चाहते थे और अभी तक मैं भी देश के बाहर न गया था, मेरे मन में भी कुछ झिझक थी, अतः मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द और एक नौकर का भी मेरे साथ जाना तय हुआ।

भारत सरकार ने मेरी यात्रा के सम्बन्ध में अपने पूर्वी और दक्षिणी अफ्रिका के दूतावासों को विशेष हिदायतें भेजीं। दीनबन्धु एंड्रूज ने मुझे अनेक

परिचय पत्र दिये। मैं सन् १९३७ के अक्टूबर मास की १० तारीख को बम्बई से "टायरिया" नामक जहाज में अपने दामाद और नौकर के साथ अफ्रिका के लिए रवाना हो गया।

इस विषय में एक बात जो बम्बई में हुई उसका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है। जिस दिन मैं बम्बई पहुँचा उस दिन कुछ पत्रों में छपा कि मैं अफ्रिका के भारतीयों की स्थिति की जाँच करने कांग्रेस की ओर से भेजा जा रहा हूँ। यह संवाद पढ़ते ही मैंने तत्काल इसका प्रतिवाद किया, जिसमें मैंने स्पष्ट कहा कि मैं कांग्रेस की ओर से न जाकर सर्वथा व्यक्तिगत हैसियत से जा रहा हूँ। जिस दिन मैं भारत से रवाना हुआ उस दिन के अखबारों में यह प्रतिवाद छप गया और आगे चलकर जो कुछ हुआ उसमें मुझे यह प्रतिवाद भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

देश के बाहर मैं पहली बार निकला था और जब इस देश के लोग प्राय: यूरोप जाया करते हैं तब मैं चला था अफ्रिका को।

सन् ३७ में हवाई जहाज की यात्रा प्रचलित नहीं हुई थी अत: मैं पानी के जहाज से ही अफ्रिका गया और पानी के जहाज से ही वापस लौटा। पहली वैदेशिक यात्रा होने के कारण मेरे मन में इस यात्रा में खूब उत्साह रहा। फिर कुछ अन्य बातों ने इस उत्साह को और अधिक बढ़ा दिया। इनमें मुख्य थी—मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द का संग, अफ्रिका में मेरा सार्वजनिक कार्य और आदर्श चित्र के शेअर भरवाने की सफल योजना बन जाना।

अफ्रिका की इस यात्रा में हम लोगों को दो महीने ग्यारह दिन लगे। हम पूर्वी अफ्रिका के चारों ब्रिटिश गवर्नमेंट द्वारा शासित उपनिवेशों—कीनिया, जंजीबार, टैंगनीका और युगाण्डा, पूर्वी अफ्रिका के पोर्चुगल द्वारा शासित भूखण्ड और दक्षिण अफ्रिका के ट्रांसवाल और नैटाल प्रान्तों को गये।

पूर्वी अफ्रिका में श्वेतांगों की संख्या भारतीयों से भी कहीं कम है, मूल निवासी हब्शियों से तो कम है ही और दक्षिण अफ्रिका में भी वहाँ के मूल निवासी हब्शियों की अपेक्षा बहुत कम, परन्तु अल्पमत में होते हुए भी सारे राजनैतिक अधिकार श्वेतांगों के हाथ में ही हैं। इतना ही नहीं, वर्ण-भेद जितना अफ्रिका के इन देशों में है उतना दुनिया के किसी भी देश में नहीं।

कीनियां की ऊँची जमीनें श्वेतांगों को छोड़ अन्य कोई नहीं खरीद सकता, यहाँ तक कि आगा खाँ के सदृश व्यक्तियों को भी यह भूमि उनकी श्वेतांग पत्नी के नाम से ही मिली। दक्षिण अफ्रिका में जो श्वेत नहीं, वे वहाँ की उच्च कही जानेवाली होटलों में ठहर नहीं सकते, सिनेमा में जा नहीं सकते, यहाँ तक कि ट्रामों, बसों, रेलों में श्वेतांगों के बैठने के अलग स्थान तथा अन्य वर्णों के अलग स्थान हैं। जो सफेद नहीं उसका किसी भी जगह कभी भी किसी भी तरह का अपमान हो सकता है। मेरा भी एक जगह इस प्रकार अपमान हुआ।

यूनियन सरकार की राजधानी प्रिटोरिया में मुझे यूनियन सरकार के एक मंत्री मिस्टर हाफमेयर से मिलने का निमन्त्रण था। ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस के मंत्री श्री नाना तथा अन्य कुछ सज्जनों के साथ मैं प्रिटोरिया गया। मिस्टर हाफमेयर का दफ्तर स्टैंडर्ड बैंक की इमारत में था। मैं इस इमारत में पहुँच ज्यों ही लिफ्ट में घुसने लगा कि एक गोरे डच लिफ्ट बॉय ने मुझे लिफ्ट के अन्दर घुसने से रोक दिया।

मेरे इस अपमान से मेरे साथियों में बड़ी खलबली मच गयी। श्री नाना तत्काल मिस्टर हाफमेयर के पास पहुँचे। उन्हें ज्यों ही यह हाल मालूम हुआ उन्होंने अपने सेक्रेटरी को मुझे लिफ्ट द्वारा लाने के लिए भेजा, पर लिफ्ट बॉय तो बड़ा दृढ़-प्रतिज्ञ था। उसने मिस्टर हाफमेयर के सेक्रेटरी की आज्ञा न मानी। कह दिया किसी हिन्दुस्तानी को लिफ्ट से ले जाना उसकी आत्मा के विरुद्ध है। आखिर मिस्टर हाफमेयर के सेक्रेटरी को लिफ्ट बॉय का काम करना पड़ा।

हमारे देश के साधारण लोगों के सिवा पढ़े-लिखे व्यक्तियों के भी अफ्रिका के सम्बन्ध में बड़े अजीब विचार हैं। भूमध्यरेखा पर होने के कारण हम लोग समझते हैं कि अफ्रिका बड़ा गरम देश है। जब भारतवर्ष में भी कई स्थानों का तापमान १२० डिग्री तक पहुँच जाता है तब अफ्रिका का १३० डिग्री तक होना तो एक साधारण बात समझी जाती है। ऐसे गरम देश का रूखा-सूखा होना भी स्वाभाविक माना जाता है। फिर अफ्रिका के जंगल और उनमें रहने वाले सिंह, हाथी और जेबरा के बहुत मशहूर होने के कारण हम अफ्रिका को अधिकतर जंगली देश समझते हैं। सबसे बड़ी गलतफहमी यह है कि हम

अफ्रिका के भिन्न-भिन्न भागों में कोई अन्तर न कर समूचे देश को एक-सा मान बैठे हैं। पूरबी अफ्रिका और दक्खिनी अफ्रिका में तो कोई भेद माना ही नहीं जाता, यहाँ तक कि पूरबी अफ्रिका के अनेक शहरों तक को दक्खिनी अफ्रिका में स्थित समझ लिया जाता है।

दक्खिणी अफ्रिका तो भूमध्य रेखा के बहुत नीचे है अतः वहाँ ज्यादा गरमी न होना स्वाभाविक है, परन्तु पूरबी अफ्रिका के भूमध्य रेखा पर होने पर भी वहाँ बहुत गरमी नहीं है। इसका कारण यह है कि वहाँ के कुछ शहर तो समुद्र के किनारे हैं और समुद्र के किनारे अधिक गरमी नहीं रहती। जो शहर समुद्र के किनारे नहीं हैं उनकी जमीन समुद्र-तह से बहुत ऊँची है, इसलिए वहाँ गरमी न होकर उलटी ठण्ड रहती है। छोटे-छोटे गाँव तो पूरबी और दक्खिनी अफ्रिका दोनों में से किसी में भी नहीं हैं। वहाँ या तो शहर हैं, जहाँ हिन्दुस्तानी, अरब और यूरोपियन रहते हैं या मूल निवासी अफ्रिकन दूर-दूर पर अलग-अलग झोंपड़े बनाकर बसे हैं। पूरबी अफ्रिका और दक्खिनी अफ्रिका दोनों बड़े हरे-भरे देश हैं। मैंने दोनों देशों का, जहाज, मोटर, ऐरोप्लेन और रेल – चारों प्रकार की सवारियों से दौरा किया है, सबसे कम रेल से। करीब दस हजार मील जहाज से, चार हजार मील मोटर से, दो हजार मील ऐरोप्लेन से और करीब पन्द्रह सौ मील रेल से, यह सफर किया गया था। समुद्र और नदी-तट, पहाड़, जंगल, झीलें, नगर और उनके आस-पास की भूमि सभी को मैंने देखा। सारी जमीनें हरी-भरी और अत्यन्त उपजाऊ हैं। सबसे ऊँचा पहाड़ किलिमेंजारो है जिसकी ऊँचाई १९,३२४ फुट है अर्थात् सारे संसार के पहाड़ों में भारत के गौरीशंकर से सिर्फ दो हजार फुट कम। सबसे बड़ी नदी नाइल है जो विक्टोरिया झील से निकलती और भूमध्य सागर में गिरती है। सबसे बड़ी झील विक्टोरिया है जिसका क्षेत्रफल ३,७२६ वर्ग मील है। यह झील दुनिया की सब झीलों में से केवल कैनेडा की एक झील से छोटी है। जंगल बहुत बड़े-बड़े हैं जहाँ सैकड़ों के झुण्डों में सिंह, हजारों के झुण्डों में हाथी, जेबरा आदि जंगली जानवर रहते हैं।

बम्बई से बिदा होकर हमने दस दिन जहाज में बिताये। बड़े सुखद संस्मरण हैं मेरे इन दस दिनों के जहाजी जीवन के। बम्बई छोड़ने के कुछ

ही समय बाद हम पोरबन्दर पहुँचे और पोरबन्दर छोड़ने के बाद जमीन अदृश्य होकर हमें नौ दिन पानी ही पानी मिला। नीचे नीलसमुद्र और ऊपर नीलाकाश। उषःकाल में पूर्व दिशा में प्रकाश फैलता, कभी-कभी बादलों के कारण इस काल में भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्य दिखायी देते। फिर होता सूर्योदय। समुद्र से ही सूर्य निकलता और उसी में डूब जाता। उदय होते तथा अस्त होते हुए सूर्य की लाल किरणें नीले समुद्र पर पड़ एक विचित्र रंग घोल देतीं। मध्याह्न का सूर्य समुद्र पर मीलों चाँदी की चादरें बिछा देता तथा अनेक स्थानों पर समुद्र को हीरों से जड़ देता। जब कभी लहरें पानी के छींटें उड़ातीं उस समय सूर्य की किरणें उन छींटों को सातों रंग दे इन्द्र धनुष बना देतीं। रात्रि को शुक्ल पक्ष के कारण बढ़ते हुए चन्द्र की ज्योत्स्ना और उसका उस नीलाम्बर तथा नीले समुद्र पर प्रकाश कैसा अद्भुत दिखता। जहाज चलने के कारण उसके दोनों ओर जो समुद्र का फेन उठता वह चाँदनी में चमका करता। उस समय ऐसा भास होता मानो वह नीर सागर क्षीर सागर हो गया है।

पृथ्वी के गोलाकार होने का प्रमाण नेत्रों को जितना जहाज पर मिलता है उतना शायद कहीं नहीं। चारों ओर गोलाकार समुद्र और बीच में जहाज। इसी तरह क्षितिज का जैसा मनोहर दृश्य जहाज पर से दिखता है उतना कदाचित् कहीं से नहीं। आकाश और सागर के सम्मिलन की एक सीधी और गोल लकीर चारों ओर कितनी भली दिखती थी।

हमारी सारी यात्रा में समुद्र एकदम शान्त रहा। उस समुद्र में हमारा छोटा-सा "टायरिया" नामक जहाज कैसा झूमता-सा चला था। जहाज के डैक पर लक्ष्मीचन्द के साथ मैं घण्टों खड़ा-खड़ा विविध प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों को देखा करता। चलती हुई वायु कैसा प्रफुल्लित करती रहती हम लोगों को। वर्षों बीत जाने पर भी मैं जहाज में बीते उस काल की न जाने कितनी बातों को आज भी याद किया करता हूँ।

दसवें दिन हम लोग पूर्वी अफ्रिका के पहले बन्दरगाह मुंबासा पहुँचे। मुंबासा पहुँचते ही जिन दो बातों ने हमारा सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया वे थीं वहाँ का खूब हरा-भरा प्राकृतिक सौन्दर्य और वहाँ के हब्शी।

हब्शियों के चित्र मैंने पहले देखे थे, पर प्रत्यक्ष में हब्शियों को देखने का यह पहला अवसर था। एकदम काला रंग, ऊँचा-पूरा, मोटा-ताजा शरीर, छोटे-छोटे काले घूँघरवाले बाल, चपटी नाक और मोटे ओंठ। किसी एक के भी मूँछें या दाढ़ी नहीं थी। सुनने में आया कि दाढ़ी-मूँछों के स्थान पर इनके छोटे-छोटे बाल निकलते हैं पर उस्तरे की जगह काँच के टुकड़े फेर ये उन्हें निकाल देते हैं। सिर के बाल भी स्त्री-पुरुष किसी के भी आधी इंच से लम्बे नहीं होते। पुरुष गले से पैर तक एक लम्बा सफेद कुरता और पाजामा पहने थे, और स्त्रियाँ छपे हुए दो वस्त्र—एक लँहगे के समान और दूसरा उसके ऊपर वक्षस्थल से कमर तक। पुरुष सिर पर सफेद गोल टोपी लगाये थे और स्त्रियाँ नंगे सिर थीं।

मुंबासा में हमारे स्वागतार्थ कीनिया की धारा सभा के सदस्य माननीय श्री पण्ड्या, "कीनिया डेली मेल" के सम्पादक श्री पण्ड्या के छोटे भाई, वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर कर्वे, इंडियन ऐसोसियेशन के सभापति श्री पटेल आदि अनेक महानुभाव आये थे। मुंबासा में हम केवल दो दिन रहे। इन दो दिनों में हम ने मुंबासा नगर और वहाँ की कुछ संस्थाओं को देखा, तथा वहाँ एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया। मुंबासा नगर यद्यपि बहुत बड़ा नहीं था, आबादी थी करीब चालीस हजार, पर साफ-सुथरे, सम्पन्न मकानों और सड़कों वाला सर्वथा आधुनिक नगर था। श्री पण्ड्या ने हमारे सम्मान में एक चाय पार्टी दी, जिसमें वहाँ के सब भारतीयों से हमारा मिलना भी हो गया। वहाँ की समस्याओं पर भी इस पार्टी में तथा मुलाकातों में बहुत सी बातें मालूम हुईं। यद्यपि कीनिया की ऊँची जमीनों की समस्या उस समय न थी, पर इमीग्रेशन आदि का अब के सदृश उस समय प्रतिबन्ध न था। भारतीयों की उस समय भी बड़ी समृद्धिशाली अवस्था थी।

मुंबासा से हम "टायरिया" जहाज द्वारा ही जंजीबार पहुँचे। जंजीबार एक हरा-भरा टापू है। उस समय वहाँ लौंग का भारतीय व्यापारियों से सम्बन्ध रखनेवाला झगड़ा उठा हुआ था अतः हमारा वहाँ बड़ा जोर का स्वागत हुआ। स्वागतार्थ बन्दर पर जंजीबार में रहनेवाले प्रायः सभी भारतीय आये थे जिनमें मुख्य थे इंडियन एसोसियेशन के कायम मुकाम सभापति तथा

जंजीबार की कौंसिल के सदस्य माननीय श्री गुलाम अली, मंत्री श्री पटेल, "जंजीबार वायस" के सम्पादक श्री इब्राहिम, वहाँ के सबसे पुराने भारतीय व्यापारी श्री पोपटवीरजी। उपस्थित लोगों में अधिक मुसलमान थे। उस समय अफ्रिका में हिन्दू-मुस्लिम सवाल जरा भी न था। यह यथार्थ में वहाँ पहुँचा श्री जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त के प्रतिपादन के समय से और फिर पाकिस्तान के निर्माण के बाद। जंजीबार मुंबासा से ठीक उलटा पुराने ढंग का छोटे-छोटे मकानों और गलियों का शहर था। जंजीबार पर राज्य था एक सुल्तान का, पर यथार्थ में वह ब्रिटिश राज्य के उसी प्रकार अधीन था जैसे हमारे राजे-महाराजे थे। जंजीबार टापू में हमने जो विशेष वस्तु देखी वह थी लौंग के बगीचे।

जिस तरह आम के बगीचों में आम के वृक्ष कतार में लगाये जाते हैं उसी प्रकार लौंग के वृक्ष लगे थे, पर लौंग के दरख्त आम के दरख्तों के समान घेरदार नहीं होते। इसके सिवा वे एक दूसरे से इतनी दूर नहीं लगाये जाते जितने आम के। वे थे पतले और सीधे और उनकी लम्बाई थी करीब २० फुट।

लौंग न फल है न फूल। जो पेड़ फूल जाता है उसमें तो फिर लौंग होती ही नहीं। लौंग निकलती है छोटी-छोटी टहनियों के सिरों पर। लौंग तीन तरह की होती है हरी, लाल और मोटी। मोटी को "लौंग की जननी" कहते हैं। हरी लौंग प्रथम श्रेणी की समझी जाती है। भारत में यही आती है। लाल द्वितीय श्रेणी की मानी जाती है। यह यूरोप के कई देशों को जाती है। वहाँ उससे तेल निकाला जाता है। यह लाल लौंग अगर ठीक समय नहीं तोड़ी जाय तो मोटी होकर लौंग की जननी बन जाती है। यही इसका बीज है। हर चौथे वर्ष लौंग की एक बड़ी फसल आती है। वह साल भी बड़ी फसल का साल था। हर वृक्ष लौंग के गुच्छों से भरा हुआ था। चलती हुई वायु में वृक्ष लहरा कर लौंग की सुगन्धि से सारे जंजीबार टापू को सुगन्धित कर रहे थे।

"क्लोव डिक्री" कानून के कारण हिन्दुस्तानियों ने इस व्यापार का बायकाट कर रखा था। इसलिए लौंग तोड़ने के लिए हमें बहुत मजदूर दिखायी दिये। लौंग वृक्षों से झड़-झड़कर धूल में मिल रही थीं। जब मैंने यह

पूछा कि जिस तरह से अभी लौंग तोड़ी जा रही है उस तरह तो शायद आधी से ज्यादा फसल बरबाद हो जायगी तो मुझ से कहा गया कि लौंग बुवानेवाले एसोसिएशन ने जान-बूझकर तुड़ाई का ठीक इन्तजाम नहीं किया है। वह चाहता था कि ज्यादातर फसल बरबाद हो जाय जिससे निर्यात का प्रश्न बहुत जटिल न होने पाये। मालूम नहीं इस बात में कितनी सत्यता थी, पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि यह बात असम्भव नहीं हो सकती। जंजीबार में लौंग की खरीद और निर्यात वहाँ के भारतीय व्यापारी करते थे। उपज का आधा हिस्सा भारत को आता था। जब क्लोव डिक्री के इस कानून के कारण जंजीबार के भारतीय व्यापारियों ने जंजीबार में लौंग की खरीद और निर्यात तथा भारत में भारतीय व्यापारियों ने लौंग की आयात के व्यापार का बायकाट कर रखा था, और यह साल बड़ी फसल की साल थी, तब लौंग बुवानेवाले एसोसियेशन की यह चाल गैर मुमकिन नहीं।

लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में जितना साहित्य प्रकाशित हुआ था वह मैं बम्बई से रवाना होने के बाद जहाज पर ही पढ़ चुका था। इस अध्ययन के बाद मेरी राय हो गयी थी कि वहाँ के भारतीय और अरब आदि सभी व्यापारियों के साथ जंजीबार की सरकार ने घोर अन्याय किया था। मेरा यह मत भी बन गया था कि वहाँ के मूल निवासी हब्शियों के हितों की रक्षा के नाम पर इस रोजगार का एकाधिकार पैदा किया जा रहा था जो एक न एक दिन किसी यूरोपियन कम्पनी या सिंडिकेट के हाथ में दे दिया जानेवाला था। मैं इस सब कार्रवाई को ब्रिटिश गवर्नमेंट की भारतीयों को अफ्रिका से बाहर निकाल देने की नीति का एक हिस्सा मानता था। जंजीबार में मैंने जो कुछ देखा और वहाँ के लोगों से जो बातचीत मैंने की, उससे मेरी यह राय और भी पुष्ट हो गयी। मैंने अपने भाषण के प्रत्येक पहलू को नोट कर जंजीबार के सभी कार्यकर्त्ताओं से हर पहलू पर सलाह की। जब मेरे भाषण के प्रत्येक हिस्से को वहाँ के लोगों ने ठीक समझ लिया तब मैंने भाषण देने का निश्चय किया। मेरे भाषण में एक अंश श्री गुलाम अली ने जुड़वाया। वह था उप-निवेशों के सम्बन्ध में भारतीयों के प्रति ब्रिटिश गवर्नमेंट का जो रुख था उसे देखते हुए ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस बात की चेतावनी देना कि यदि उनका

यह रुख ऐसा ही रहा तो उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों को भी ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी होगी।

सन्ध्या को ५ बजे रायल सिनेमा में सार्वजनिक सभा थी। लौंग व्यापार के महत्त्वपूर्ण सवाल के कारण भीड़ इतनी हुई कि एक-एक कुर्सी पर दो-दो आदमियों के बैठने और अनेकों के खड़े रहने पर भी सिनेमा हाउस में सब लोग न सभा सके और बहुतों को बाहर रहना पड़ा। श्री गुलाम अली सभा के सदर थे। सब बातें कहने में मुझे सवा घण्टा लगा। मेरे भाषण का अधिकांश हिस्सा लौंग के व्यापार और उसके प्रतिबन्ध के विषय में जो कानून बने थे उनसे सम्बन्ध रखता था। जब मैंने जंजीबार के सम्बन्ध में भारत की केन्द्रीय असेम्बली के काम रोको प्रस्ताव की चर्चा की और जनता को बतलाया कि श्रीयुत जिन्ना के कारण किस प्रकार वह चेष्टा सफल न हो सकी तो सभा ने जिन्ना पर "शेम-शेम" के नारे लगा कर अपना घोर असन्तोष प्रकट किया।

सभा में ज्यादातर मुसलमान उपस्थित थे। श्रीयुत जिन्ना पर जंजीबार के मुसलमान कितने नाराज थे यह बात उस सभा में साफ-साफ मालूम हो गयी। मैंने वहाँ के व्यापारियों को एक सिद्धान्त पर अड़े रहकर सब कुछ त्याग करने की तैयारी पर बधाई दी और उन्हें आश्वासन दिया कि हिन्दुस्तान में एक छोटी-सी लौंग भी आकर न बिके इसे कांग्रेस करके दिखा देगी। मेरा भाषण मौखिक ही हुआ पर जिन बातों पर चर्चा हो चुकी थी उनके बाहर मैं जरा भी न गया। ब्रिटिश गवर्नमेंट को चेतावनी की बात मैंने अन्त के लिए रखी थी। श्री गुलाम अली इस बात के लिए बड़े चिन्तित थे कि कहीं वह बात रह न जाय। इसीलिए जब सभा समाप्त हुई तब उन्होंने मुझ से कहा, "मैं तो आपको इस बात की याद दिलाने के लिए एक चिट देने वाला था।"

जंजीबार में भी हमारे सम्मान में सेठ पोपटवीरजी और गुलाम अली ने भोज तथा चाय पार्टी का आयोजन किया था।

जंजीबार से "टायरिया" जहाज द्वारा ही हम टेंगनीका की राजधानी दारस्सलाम पहुँचे। यहाँ हमें लेने आये यहाँ के इंडियन एसोसियेशन के सभापति श्री चितले, "टाँगनीका उपीनियन" के सम्पादक श्री आचार्य, वहाँ के

प्रसिद्ध व्यापारी श्री सेठ मथुरादास कालिदास, "टैंगनीका हैरल्ड" के सम्पादक श्री बोल, कम्पाला जनरल एजेन्सी के डायरेक्टर श्री पटेल आदि। दारस्सलाम के चारों ओर का दृश्य भी कीनिया और जंजीबार के सदृश था, पर दारस्सलाम मुंबासा के सदृश छोटा-सा आधुनिक नगर था। टैंगनीका में उस समय कोई विशिष्ट समस्या न थी, फिर भी वहाँ एक सार्वजनिक सभा हुई। दारस्सलाम की भारतीय संस्थाओं ने मुझे काफी प्रभावित किया—आर्य समाज मन्दिर, सनातन धर्म मन्दिर और आर्य कन्या विद्यालय वहाँ की उस समय विशिष्ट संस्थाएँ थीं। अन्तिम संस्था का संचालन करते थे श्री सेठ मथुरादास कालिदास।

दारस्सलाम में हम "टायरिया" जहाज को छोड़ पूर्वी अफ्रिका की यात्रा एक विशेष हवाई जहाज किराये पर ले उससे करना चाहते थे। अतः हम यहाँ चार दिन ठहरे।

हवाई जहाज से युगांडा की राजधानी कम्पाला के लिए रवानगी तय हुई थी। बीच में नैरोबी में कुछ देर मुकाम कर उसी दिन कम्पाला पहुँचना निश्चित किया गया था। दारस्सलाम से नैरोबी है करीब ४०० मील और नैरोबी से कम्पाला और ४०० मील। यह यात्रा करीब ७ घण्टे में खत्म हो जायगी, ऐसी उम्मीद थी। इसके पहले मैंने एरोप्लेन से कोई यात्रा न की थी। इसलिए कुछ तो उत्कण्ठा और कुछ झिझक से मन भरा हुआ था।

जब पहले-पहल वायुयान ने जमीन छोड़कर आकाश में उड़ना शुरू किया उस समय ऐसा मालूम हुआ मानों पैरों के नीचे से पृथ्वी छूट कर नीचे जा रही है और शरीर ही ऊपर उड़ रहा है। दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। विमान प्रचण्ड शब्द करता हुआ चक्कर खाकर दरख्तों और मकानों के ऊपर से तेजी के साथ ऊपर को उठ रहा था। कुछ ही क्षणों में हम लोग करीब दो हजार फुट ऊपर हो गये। अब एरोप्लेन सीधा उड़ने लगा। न किसी तरह की हलचल थी और न यही मालूम होता था कि वह चल रहा है। पर उस समय उसकी गति थी १०० मील प्रति घण्टा। नीचे की सरकती हुई पृथ्वी से यह जान पड़ता था कि पृथ्वी चल रही है, एरोप्लेन नहीं। जब हम लोग दारस्सलाम के ऊपर से उड़ रहे थे, उस समय सारा नगर एक अजीब-सी चीज

दिखायी दिया। उसके मकान खिलौने से दिखायी पड़े और उसकी सड़क ४ अंगुल चौड़ी निवाड़ की पट्टियों के समान। सड़कों पर मोटरें और आदमी ऐसे दिखायी देते थे जैसे चाभी भरे हुए टीन के खिलौने दौड़ते और चलते-फिरते हैं।

थोड़ी ही देर में हम लोग जमीन से करीब ५ हजार फुट ऊपर हो गये। ऊपर से दरख्त छोटे-छोटे गुलदस्ते-से दिखायी देते थे और छोटे-छोटे पहाड़ों की चोटियाँ नजर आती थीं बड़े-बड़े मिट्टी के ढेलों के समान। तालाब दिखायी देते थे पानी से भरे हुए प्याले और नदियाँ मालूम होती थीं पानी से भरी हुई नालियाँ जैसी। जंगलों में हब्शियों के दूर-दूर पर बने हुए केलों के पेड़ों से घिरे हुए झोंपड़े विमान पर से एक दूसरे के बड़े नजदीक दिखायी दिये। उन झोंपड़ों के केलों के वृक्षों के बीच में होने से जान पड़ता था मानों हरे-हरे पत्तों के बीच में बड़ा-सा भूरा फूल लगाकर गुलदस्ते बनाये गये हों। इन झोंपड़ों की आस-पास की जमीन पर भूरी भेड़ों और काली बकरियों के झुण्ड के झुण्ड चरते थे। दूर से ये झुण्ड भूरी और काली घटाओं से लगते थे। हवाई जहाज की आवाज सुन जब वे भेड़-बकरियाँ इधर-उधर भागती थीं तब ऐसा मालूम होता था कि हवा इन घटाओं को छिन्न-भिन्न कर उड़ा रही है। पहाड़ों, जंगलों, नदियों और सरोवरों को पार करता हुआ विमान तेजी से आगे उड़ा जा रहा था और ये सब चीजें दौड़ती हुई पीछे को चली जा रही थीं। विमान जब ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चोटियों के बीच की दरारों के ऊपर होकर उड़ता था उस समय वे दरारें और उन पर उगे हुए वृक्ष समूह देखते ही बनते थे। जब पहाड़ों को पार कर वह हरे-हरे मैदानों पर से गुजरता था उस समय ऐसा जान पड़ता था कि वह मीलों लम्बे-चौड़े हरे मखमली फर्श पर से उड़ रहा है। उन मैदानों की पगडंडियाँ उस मखमली फर्श पर जरदोजी के जालीदार काम के सदृश दिखायी देती थीं। जब कभी पाइलट खिड़की का हिस्सा खोलता था तब मालूम होता था कि हवा में कितनी अधिक तेजी है।

थोड़ी देर बाद हमें बादल मिलने शुरू हुए। वायुयान बादलों के बीच से उन्हें चीरता हुआ जाने लगा। जैसे-जैसे हम आगे बढ़े आकाश में बादल घने होने लगे। कभी-कभी तो बादलों के बीच में पड़कर चारों ओर धुन्ध के सिवा

हमें कुछ दिखायी ही न देता था। जब बादलों ने बहुत तंग करना शुरू किया तब तो चालक ने मशीन को और उपर उठाया। थोड़ी ही देर में हम बादलों को पार कर करीब १० हजार फुट उनके ऊपर उड़ने लगे। वह दृश्य दर्शनीय था। हमारे ऊपर नीले अकाश में सूर्य चमक रहा था और हमारे नीचे अगणित बादलों के छोटे टुकड़े दौड़ रहे थे। इन बादलों के टुकड़ों के बीच में कभी-कभी पृथ्वी दिखायी दे जाती थी। बादल के टुकड़े सूर्य की किरणों में चमक रहे थे। कभी-कभी उनमें बिजली भी चमक जाती थी। नीचे से ऊपर की तरफ तो बिजली चमकते सदा देखते ही थे, परन्तु अपने नीचे बिजली की चमक देखने का यह पहला अवसर था।

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर वर्षा आरम्भ हुई, परन्तु यह वर्षा हमारे ऊपर न होकर हमारे नीचे हो रही थी। बीच-बीच में जब जमीन का थोड़ा सा हिस्सा दिखायी दे जाता तब उस भाग पर ये बादल पानी बरसाते हुए नजर आते थे। दारस्सलाम से नैरोबी तक ४०० मील का सफर हमने साढ़े तीन घण्टे में पूरा किया।

नैरोबी के एरोड्रोम की ओर जब विमान ने उतरना शुरू किया तब मुझे महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के निम्नलिखित श्लोक की सत्यता का पूर्ण अनुभव हो गया—

शैलानामवरोहतीव शिखराबुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तर-लीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः
सन्तानैस्तनुभाव नष्टसलिला व्यक्ति भंजत्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते।

दारस्सलाम वालों ने नैरोबी को तार दे दिया था। हवाई अड्डे पर नैरोबी के इंडियन एसोसियेशन के सभापति श्री ठाकुर, कीनिया की व्यवस्था-पिका सभा के सदस्य माननीय डॉक्टर डिसोजा और माननीय श्री ईसरदास, डाक्टर पटवर्धन आदि अनेक सज्जन आ गये थे। यद्यपि नैरोबी का कार्यक्रम कम्पाला से लौटने पर रखा गया था पर एक दिन के लिए वहाँ ठहरने का ही तय हुआ। उस दिन नैरोबी में आराम करने तथा कुछ लोगों से मिलने के सिवा कोई काम नहीं हुआ। दूसरे दिन सबेरे ६ बजे हम लोग कम्पाला के

लिए रवाना हो गये।

दूसरे दिन तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं वर्षों से उड़ता रहा हूँ। वह झिझक, हृदय की वह धड़कन, जिसका अनुभव पहले दिन हुआ था, कुछ भी मौजूद न थी।

एरोप्लेन नैरोबी की परिक्रमा करता हुआ उसे भी एक छोटा-सा खिलौना सिद्ध कर आगे बढ़ा। आज विशेष बादल नहीं थे अतः पृथ्वी की चीजें कुछ अधिक स्पष्ट दिखायी दे रही थीं। कुछ ही देर में हम लोग विक्टोरिया झील पार करने लगे। ऊपर से यह समुद्र के समान दिखायी दी।

मैंने पाइलट से पूछा—"क्या हम लोग समुद्र के ऊपर उड़ रहे हैं?"

पाइलट ने उत्तर दिया—"नहीं, वह विक्टोरिया झील है। इसका नम्बर संसार की सबसे बड़ी झीलों में सिर्फ दूसरा है।"

झील के बीच के छोटे-छोटे टापू ऐसे जान पड़े मानो उस झील में कमल के पत्ते उगे हों। कहीं-कहीं उन टापुओं पर छोटे-छोटे टीले थे। जब कभी बादल के सफेद टुकड़े उन टीलों पर पहुँच जाते तब ऐसा जान पड़ता था मानो उन कमल पत्रों में श्वेत कमल के पुष्प खिल गये हों। थोड़ी ही देर में हम लोग नाइल के उद्गम स्थान पर पहुँच गये।

ऊपर से नाइल का उद्गम स्थान एक छोटे से पहाड़ी झरने के रूप में दिखायी दिया। हम लोगों को ध्यान तो उस ओर आकृष्ट भी नहीं हुआ, पर हमारा चालक बोला—"यही नाइल नदी का उद्गम स्थान है, जो अफ्रिका के अनेक देशों और संसार के प्राचीनतम देश मिस्र को हरा-भरा करती हुई भूमध्य सागर में गिरती है। आगे चलकर यह नाइल इतनी गहरी और चौड़ी हो जाती है कि बड़े से बड़े जहाज इसमें चलते और बड़े से बड़े समुद्री वायुयान इसमें उतरते हैं।" अफ्रिका की इस पवित्र गंगा को प्रणाम कर हम आगे बढ़े।

लगभग ४०० मील का सफर ३ घण्टे में पूरा कर करीब बारह बजे हमारा विमान कम्पाला के एरोड्रोम में उतरा।

कम्पाला युगांडा की राजधानी है। छोटा-सा शहर, उस समय उसकी आबादी कुल छः हजार थी, पर सारी आधुनिक सुविधायें—बिजली की रोशनी,

नल, पोस्ट और टेलिग्राफ ऑफिस, वायरलेस स्टेशन, बड़े-बड़े तीन बैंक, होटल, रेलवे स्टेशन, एरोड्रोम—सभी कुछ मौजूद। रोम के समान कम्पाला सात पहाड़ियों पर बसा हुआ है। हर पहाड़ी का अलग-अलग नाम है। प्राकृतिक सौन्दर्य में अब तक देखे हुए पूर्वी अफ्रिका के सभी नगरों से मैंने इसे श्रेष्ठ पाया। सड़कों और मकानों को छोड़ कर यहाँ एक अंगुल भी जमीन ऐसी न दिखायी दी जो हरी घास या सघन वृक्षों से आच्छादित न हो। मीलों लम्बे हरे-हरे मैदान कैसे सुन्दर दिखायी देते थे। वृक्षों से आच्छादित पहाड़ियाँ इन मैदानों को एक नयी सुषमा देती थीं। हर एक मकान एक छोटे से नजरबाग के साथ था और विशेषता यह थी कि इस नजरबाग को ठीक दशा में रखने के लिए कोई व्यय नहीं। बगीचे में न कभी कोई खाद दी जाती और न सिंचाई होती। जमीन इतनी उपजाऊ है कि वृक्षों को लगा भर देने की आवश्यकता थी, फिर वे आप से आप फूलते रहते। पानी वहाँ थोड़ा-थोड़ा साल भर बरसता रहता। इसलिए सिंचाई का सवाल ही नहीं उठता।

मेरे दौरे के कारण यहाँ सबसे अधिक उत्साह था। दुर्भाग्य की बात यही थी कि इंडियन मर्चेण्ट चेम्बर और इंडियन एसोसियेशन के कार्यकर्त्ताओं में कुछ अच्छा सम्बन्ध न था। यद्यपि मुझे निमंत्रित किया था इंडियन मर्चेण्ट चेम्बर ने, परन्तु मेरे स्वागत में इंडियन एसोसियेशन के पदाधिकारी भी शामिल थे। श्री पटेल के यहाँ मेरे पहुँचते ही युगांडा का कार्यक्रम निश्चित होने लगा। सार्वजनिक सभा मर्चेण्ट चेम्बर की ओर से बुलायी जाय, या इंडियन एसोसियेशन की तरफ से—यह एक बड़ा भारी सवाल समझा गया। मर्चेन्ट चेम्बर के कार्यकर्त्ता मुझे निमन्त्रण भेजने के कारण समझते थे कि यह उनका हक था और इंडियन एसोसियेशन के राजनीतिक संस्था होने के कारण उसके कार्यकर्त्ता सोचते थे कि यह उनका अधिकार था। बड़ा वाद-विवाद हुआ, बड़ी दलीलें पेश हुईं। अपने-अपने समर्थन में दोनों दलों ने बड़े-बड़े दृष्टान्त दिये। चाय के छोटे से प्याले में बड़ा तूफान उठा। कुछ लोगों ने यह तजवीज पेश की कि दोनों की ओर से सभा बुलायी जाय। मर्चेण्ट चेम्बर के कार्यकर्त्ता इस पर राजी हो गये, पर इंडियन एसोसियेशन के नहीं। इस पर मर्चेण्ट चेम्बर की जीत हो गयी और सभा मर्चेण्ट चेम्बर की ओर से बुलाया जाना तय हुआ

जो झुकता है उसकी जीत होती ही है।

लंच से निपटते ही हम लोगों ने एण्टेबी जाने का निश्चय किया। वहाँ युगांडा के गवर्नर रहते थे। हम लोग मोटरों पर रवाना हुए। चार मोटरों में वहाँ के सभी लोग गये। कम्पाला के लोगों ने तो मेरे वहाँ रहते हुए अपना सब कामकाज बन्द कर देने का निश्चय कर लिया था अतः उन्हें मेरे साथ रहने के अतिरिक्त कोई काम ही न था। जो लगातार मेरे साथ रहे उनमें श्री सोमाभाई पटेल, नारायणदास राजाराम फर्म के मैनेजर श्री साह, वृद्ध एडवोकेट श्री अमीन, युगांडा सभा के सदस्य माननीय एम० एम० पटेल और मर्चेण्ट एसोसियेशन के पदाधिकारी आदि थे। एण्टेबी कम्पाला से कुछ ही दूर विक्टोरिया झील के किनारे है। उस समय वहाँ इने-गिने अफसरों के बंगले और गवर्नर की कोठी ही एण्टेबी नगर की कुल आबादी थी। एक तरफ रोज की आवश्यक चीजों की कई दुकानें थीं। एन्टेबी की आबादी उस समय कठिनाई से चार-पाँच सौ होगी। कैसा सुन्दर प्राकृतिक हरा-भरा दृश्य और उसे विक्टोरिया झील ने कितना मनोरम बना दिया था। एण्टेबी की एक भी सड़क पर हमें कचरे के नाम तिनका भी न दिखायी दिया। इसी प्रकार वहाँ एक भी मकान और बंगले में कूड़े-करकट का नामोनिशान तक न मिला। एण्टेबी की सैर कर हम लोग शाम को कम्पाला लौटे और उसी दिन कम्पाला भी घूम डाला। कम्पाला की उन सातों पहाड़ियों पर मोटर ने चढ़-उतर कर थोड़ी ही देर में हमें सारा नगर दिखा दिया। कम्पाला का सौंदर्य मुझे बहुत समय तक याद रहा है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सार्वजनिक सभा थी। इतवार का दिन था; इसलिए सभा किसी समय भी हो सकती थी। फिर मुझ पर वहाँ के लोगों की कुछ ऐसी कृपा थी कि उन्हें किसी भी दिन किसी भी समय बुलाया जाता तो वे आ जाते। सभा का समय था १० बजे, पर समय के बहुत पहले ही थियेटर हाल भर गया था। सभा मर्चेण्ट चेम्बर की ओर से बुलायी गयी थी, पर इंडियन एसोसियेशन के सभापति, मन्त्री तथा सभी पदाधिकारी सभा में मौजूद थे। मर्चेण्ट चेम्बर के सभापति ने सभा आरम्भ की और मेरे भाषण के बाद ही इंडियन एसोसियेशन के सभापति ने मुझे धन्यवाद देकर सभा का काम

समाप्त किया।

चूँकि मुझे युगांडा में मर्चेण्ट चेम्बर ने निमंत्रित किया था इसलिए मैंने आज के भाषण में राजनीतिक चर्चा कम और व्यापारिक चर्चा अधिक की। इतने दिनों की अफ्रिका की यात्रा के कारण मैं वहाँ की व्यापारिक स्थिति से बहुत कुछ परिचित हो चुका था। जो कुछ मैंने वहाँ देखा था उससे मेरा यह निश्चित मत हो गया था कि यदि अफ्रिका प्रवासी भारतवासी अपनी व्यापारिक पद्धति न बदलेंगे तो थोड़े समय के बाद उनका वहाँ कोई स्थान न रह जायगा। बात यह है कि उस समय पूर्वी अफ्रिका के व्यापारी या तो छोटी-छोटी दुकानें खोले हुए बनी-बनायी चीजें बाहर के देशों, विशेषकर जापान से मँगा कर बेचते थे, या युगांडा में बिनौले निकालने के कारखाने (जीन, प्रेस) चला कर वहाँ की रुई बाहर के देशों, विशेषकर भारत को भेजते। जितनी बिनौले निकालने के कारखानों की युगांडा में जरूरत थी उससे कहीं अधिक वहाँ स्थापित हो चुके थे। इसलिए जब तक सब कारखानों का सहयोग न हो तब तक कोई कुछ कमा नहीं सकता था। छोटी-छोटी दुकानें इतनी अधिक हो गयी थीं कि दुकानदारों में आपस में बड़ी स्पर्द्धा थी। फिर वहाँ के मूल निवासी भी आगे बढ़ रहे थे। वे भी इस प्रकार की दुकानें खोल रहे थे। उनकी रहन-सहन तथा दुकानें चलाने का खर्च हिन्दुस्तानियों से बहुत कम था अतः उनके सामने छोटे कामों में हिन्दुस्तानी टिक नहीं सकते थे।

पूर्वी अफ्रिका में उस समय हिन्दुस्तानी व्यापारियों का सारा व्यापार व्यक्तिगत व्यापार था, यानी ३-४ या कुछ अधिक आदमियों ने मिलकर प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियाँ स्थापित की थीं। कोई बड़े उद्योग-धन्धे नहीं थे। सभी जरूरत की चीजें बाहर से आती थीं और कच्चा माल बाहर भेज दिया जाता था। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के लिए क्षेत्र होते हुए भी उस ओर भारतीयों का ध्यान ही नहीं गया था। मैंने उन्हें इस व्यक्तिगत व्यापार के स्थान पर सामूहिक ढंग से बड़ी-बड़ी पब्लिक लिमिटेड कम्पनियाँ या सहकारी संस्थाएँ स्थापित कर नये-नये उद्योग-धन्धों की ओर बढ़ने की सलाह दी। दूसरे ही दिन वहाँ के व्यापारियों का एक डेपुटेशन मुझ से मिला, जिससे मुझे मालूम हुआ कि उन्हें मेरी सलाह पसन्द आयी। मालूम नहीं कि वहाँ मेरी

सलाह कार्यरूप में परिणत हुई या नहीं।

हमने वहाँ की संस्थाएँ भी देखीं। इनमें हिन्दुस्तानी क्लब, हाई स्कूल और विद्यालय मुख्य थे। इतना छोटा शहर होते हुए भी कम्पाला में हाई स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या करीब ६०० थी। लड़के और लड़कियाँ इकट्ठे ही पढ़ते थे।

कम्पाला में एक दिन डिनर और एक दिन चाय पार्टी का इन्तजाम किया गया था।

करीब ४०० मील का सफर तीन घण्टों में समाप्त कर हम लोग नैरोबी पहुँच गये। नैरोबी में उसी दिन सन्ध्या को सार्वजनिक सभा थी। सभा का प्रबन्ध किया गया था पटेल ब्रदरहुड के हाल में। नैरोबी की यह संस्था वहाँ के सभी समुदायों के काम आती थी। एक सुन्दर पुस्तकालय और एक बहुत बड़ा हाल, जिसमें कुर्सियों पर करीब एक हजार आदमी बैठ सकते थे। पटेल ब्रदरहुड की उस संस्था का यह भवन दर्शनीय था। सभा के समय से पहले ही हाल लोगों से भर गया। सभा के सभापति थे इंडियन एसोसियेशन के प्रेसिडेण्ट श्री ठाकुर।

दूसरे दिन सारा समय नैरोबी घूमने में बीता। कितना सुन्दर शहर था। उस समय नैरोबी की आबादी केवल एक लाख के लगभग थी, पर हर बात में नैरोबी किसी भी देश के बड़े-बड़े नगर का मुकाबला कर सकता था—ऊँची-ऊँची इमारतें, चौड़ी-चौड़ी सड़कें तथा बस, मोटरों की भरमार। यह सुना गया कि वहाँ के हर तीसरे आदमी के पास मोटर है और आबादी के हिसाब से यदि मोटरों की संख्या का मिलान किया जाय तो संसार में न्यूयार्क के बाद नैरोबी का ही नम्बर आता था। इतने बड़े शहर में हमें एक भी घोड़े या बैल की सवारी न दिखायी दी। मालूम हुआ कि वहाँ इन जानवरों का उपयोग न तो सवारी के काम में होता और न खेती के काम में ही। कोई घोड़ा वहाँ लाया जाय तो उसे एक तरह की बीमारी हो जाती है और वह चार-छः महीने में मर जाता है। खेती के लिए ट्रैक्टरों की आवश्यकता होती है। बैल का उपयोग बोझा ढोने या खेती के किसी काम में हो सकता है, यह उस समय तक किसी ने समझा ही न था। सांड, 'तथा दूध के लिए गायें रख कर बछड़े

कसाईखाने में दे दिये जाते थे।

नैरोबी का सार्वजनिक बाग तो मैं कभी भूल ही न सकूँगा। एक जंगली स्थान में यह बाग लगाया गया था। बीच में दूब के कुछ मैदान और फूलों से भरी हुई क्यारियाँ थीं और चारों तरफ जंगली वृक्षों के समूह, जिनमें आड़ी-टेढ़ी सड़कें घूमने के लिए बना दी गयी थीं। नवम्बर-दिसम्बर में अफ्रिका में गरमी पड़ती है, पर समुद्र-तह से पाँच हजार फुट ऊपर होने के कारण नैरोबी में बसन्त छाया हुआ था और वह अपनी सारी सेना के साथ इस उपवन में निवास कर रहा था। रंग-बिरंगे पुष्पों से लदे हुए वृक्षों में से चलती हुई मन्द सुगन्धित वायु पुष्पों की वर्षा कर रही थी।

आज सन्ध्या को माननीय डॉक्टर डिसोजा ने मुझे "एट होम" दिया था। डॉक्टर साहब के बंगले पर एक छोटा-सा सभ्य समाज एकत्रित था। जब "एट होम" में मेरी स्वास्थ्य-कामना की गयी तब लोगों ने हिन्दी में भाषण देना आरम्भ किया। मालूम हुआ कि नैरोबी में यह एक नयी बात थी। कई हिन्दुस्तानियों ने निश्चय किया था कि हिन्दुस्तानी जलसों में अब वे हिन्दी में ही भाषण करेंगे।

नैरोबी से हम फिर जंजीबार आये और जंजीबार से वहाँ के एक और प्रसिद्ध द्वीप पेंबा गये।

एक बजे के करीब हम लोग जंजीबार के एरोड्रोम में उतरे। जंजीबार के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एरोड्रोम पर मौजूद थे। हम लोगों के एरोप्लेन से बाहर निकलते ही "जंजीबार वायस" के सम्पादक इब्राहीम ने मेरे जंजीबार से जाने के बाद वहाँ जो कुछ हुआ था उसका वृत्तान्त सुना दिया, जो एरोप्लेन की आज की यात्रा से कम मनोरंजक न था। श्री इब्राहीम ने कहा "आपके २१ ता० के भाषण ने यहाँ सनसनी पैदा कर दी है। उपनिवेशों को भी ब्रिटिश गवर्नमेंट के वर्तमान रुख के कारण ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ेगी",—आपके इस कथन पर ब्रिटिश रेजिडेण्ट बड़ा क्रुद्ध है। 'हमारे पूर्व पुरुषों ने अंग्रेजों को यहाँ बुला कर भारी गलती की थी' आपके इस कथन पर जंजीबार के सुलतान बड़े अप्रसन हैं। यह खबर थी कि आपको तो अब यहाँ उतरने ही न दिया जायगा।"

इसके बाद श्री इब्राहीम ने मेरे हाथ पर "अल फलक" अखबार का २७ नवम्बर का वह अंक रख दिया जिसमें मेरे भाषण की आलोचना छपी थी। अखबार के सुयोग्य सम्पादक ने लिखा था—

> "Zanzibar a traditionally, peaceful and Law-abiding Country received a rude shock the other day in form of a miniature earth-quake the tremors of which must have been felt throughout the country, when Seth Govinddas a distinguished Indian visitor arrived here on his way to main land and perorated at the Royal cinema to regale his compatriots. Up to the time of going to the press, the courtesy that has been extended to our contemporaries by the Indian National Association under whose auspices the Indian mass meeting was held by furnishing them with a copy of this highly interesting speech, has not been found fit to be accorded to us. Nevertheless, according to our information, we are told that the speech was conspicuous by its congress mentality and references avent to Zanzibar were unusually caustic.
>
> "Happily we in Zanzibar enjoy freedom of speech and venting our thoughts and opinions have been untrammelled, and courteous ; but we must say that the speech delivered by Seth Govinddas was a novelty and foreign to peace-loving and Law-abiding people of this country.
>
> "Anyhow we hope it would not be regarded as impertinent if we observe at this juncture that what could not be tolerated in Mysore can never be tolerated in this country."

जंजीबार के उस क्षुब्ध वायुमण्डल को देखकर मुझे बड़ा आनन्द आया। मैंने अनुमान किया कि ब्रिटिश रेजिडेण्ट और सुल्तान का क्षोभ मेरे भाषण पर कम और इस बात पर अधिक होगा कि जो व्यापारी लौंग के व्यापार के बहिष्कार में ढुलमुल हो रहे थे वे पक्के हो गये हैं। फिर मुझे ब्रिटिश रेजिडेण्ट के क्रोध पर तो कोई विशेष आश्चर्य न हुआ पर जंजीबार के सुल्तान की अप्रसन्नता पर जरूर ताज्जुब हुआ। मेरे इस कथन पर कि "हमारे पूर्व पुरुषों ने अंग्रेजों को वहाँ बुलाकर भारी गलती की थी" सुल्तान को तो सबसे ज्यादा खुश होना चाहिए था, क्योंकि इस गलती का सबसे अधिक अनुमान तो सुल्तान ही करते थे, जिनकी स्थिति एक पेंशनर कैदी की-सी थी। हाँ, यदि गुलामी

किसी के खून में ही प्रविष्ट हो गयी हो, और जिस प्रकार गन्दी जगहों में रहते हुए कीड़े-मकोड़े आनन्द से रह सकते हैं उसी प्रकार गुलामों को गुलामी में ही आनन्द का अनुभव होता है, तो दूसरी बात है। विवशता के कारण अपनी पतितावस्था को ही सच्ची उच्च स्थिति मान लेना तो अधःपतन की पराकाष्ठा है। सुल्तान किस मानसिक प्रवृति के मनुष्य थे यह मैं न जानता था।

जंजीबार से हम "करंजा" नामक जहाज से दक्षिण अफ्रिका जा रहे थे और रास्ते में हम पुर्तगाली पूर्वी अफ्रिका के कुछ स्थानों को देखनेवाले थे, ये थे – मुजंबिक, बैरा और लुरेंको मार्क्विस।

तीनों जगह भारतीयों ने हमारा बड़ा स्वागत सत्कार किया। इनमें मुख्य थे—पुहुमल ब्रदर्स के मैनेजर श्री दयाराम, सेठ ब्रजदास, श्री नटवरलाल, श्री भगवानजी काकूभाई, सेठ गोवर्धनदास वल्लभदास के मालिक सेठ पुरुषोत्तम-धनजी, सेठ दामोदर आनन्दजी के मैनेजर श्री कानजी दया भाई, सेठ गोरधनदास खेतसी के मैनेजर श्री धनसुखलाल दलाल और सेठ अमरसी गोकुलदास के हिस्सेदार श्री वल्लभदास वसनजी। इनमें से कुछ दुकानें इस क्षेत्र में कोई डेढ़ सौ वर्ष से व्यापार कर रही थीं। पुर्तगाली पूर्वी अफ्रिका भी ब्रिटिश ईस्ट अफ्रिका के सदृश ही हरा-भरा सुन्दर प्रदेश है। नगर वैसे ही स्वच्छ और आधुनिक। यहाँ भी मेरे सार्वजनिक भाषण हुए, पर यहाँ के भारतीयों की उस समय कोई समस्याएँ न थीं।

लुरेंको मार्क्विस से हम रेल द्वारा दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल प्रान्त के जोहान्सबर्ग के लिए रवाना हुए। हमें लेने के लिए दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों ने स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी को लुरेंको मार्क्विस भेजने की कृपा की थी। स्वामीजी से मेरा बहुत समय का परिचय ही न था, पर गाढ़ी मित्रता थी। वे कई बार भारत आते-जाते रहते थे। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग ले वे वर्षों भारतीय जेलों में भी रह चुके थे और हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी थे। लुरेंको मार्क्विस से स्वामीजी का जो साथ हुआ वह अफ्रिका छोड़ने तक एक क्षण को भी न छूटा।

अफ्रिका में रेल से हमारी यह पहली यात्रा थी। वहाँ की रेल की पटरियाँ हिन्दुस्तान की बड़ी लाइन से कुछ छोटी और छोटी लाइन से कुछ बड़ी थीं।

ट्रेन के डब्बे बम्बई और पूना के बीच जो ट्रेनें चलती हैं उनके सदृश थे, अर्थात् रेल के यात्री एक सिरे से दूसरे सिरे तक गुजर सकते थे। अन्तर इतना ही था कि बम्बई और पूना के बीच चलनेवाली गाड़ियों में सोने का स्थान नहीं रहता, इन डब्बों में सोने का स्थान भी था। युरोपियन डब्बों में हिन्दुस्तानी न बैठ सकते थे। हिन्दुस्तानियों के लिए जो डब्बे थे उन पर "रिज़र्वड" का लेबिल लगा हुआ था जैसा हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े अफसरों के सैलूनों पर रहता है। पर रिज़र्वड लेबिलवाले ये डब्बे सैलूनों की श्रेणी के न होकर युरोपियनों के साधारण डब्बों से भी कहीं नीची श्रेणी के थे। रिज़र्वड् लेबिल शायद हिन्दुस्तानियों का मजाक उड़ाने के लिए इन डब्बों पर लगाया गया था। हब्शियों के लिए अलग डब्बे थे। उनमें सिर्फ हब्शी यात्रा कर सकते थे। पहले और दूसरे दरजे की टिकटें युरोपियन और हिन्दुस्तानियों को मिलती थीं। हिन्दुस्तानी तीसरे दरजे में यात्रा न कर सकते थे। तीसरा दरजा सिर्फ हब्शियों के लिए था।

मुझ पर से और लक्ष्मीचन्द पर से दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने सारे प्रतिबन्ध हमारे वहाँ महमान होने के कारण हटा दिये थे अतः लक्ष्मीचन्द का और मेरा बर्थ युरोपियन डब्बे के पहले दरजे में रिजर्व था और हमारे नौकर का रिज़र्वड डब्बे के दूसरे दरजे में। स्टेशन पर बहुत भीड़ थी। वहाँ भाषण हुए, हार पहनाये गये, इतना ही नहीं हुर्रे भी बोला गया। जब हम लोग युरोपियन डब्बे में सवार हुए तब खिड़कियों में से सिर निकाल-निकाल कर युरोपियन यात्रियों तथा प्लेटफार्म पर खड़े हुए युरोपियन समुदाय ने घूर-घूर कर हमें देखना शुरू किया। उनके लिए किसी हिन्दुस्तानी का उस डब्बे में यात्रा करना एक नयी बात थी। इस नयी बात को देखकर अनेक क्रोध और क्षोभ से तिलमिला उठे और अनेक आश्चर्य से भौंचक्के रह गये।

जब प्रातःकाल हम लोगों की नींद खुली, उस समय हम जोहान्सबर्ग के निकट थे। जल्दी से नित्य कर्म से निवृत्त हो हम लोग कपड़े पहन अपनी सीटों पर बैठे ही थे कि ट्रेन जोहान्सबर्ग स्टेशन पर पहुँच गयी।

जोहान्सबर्ग स्टेशन पर हमें खूब धूमधाम दिखायी दी। ट्रांसवाल की इंडियन कांग्रेस ने इस स्वागत का आयोजन किया था। स्टेशन पर भारतीयों

का एक बहुत बडा समुदाय पुष्पहारों और गुलदस्तों के साथ उपस्थित था। गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया की ओर से सर रजा अली के अंग्रेज सेक्रेटरी मिस्टर रिंडली भी मुझे लेने के लिए स्टेशन पर आये थे। स्टेशन पर उतरते ही ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस के मन्त्री श्री नाना ने, जिनसे मेरा परिचय कराया उनमें निम्नलिखित सज्जन मुख्य थे—

मिस्टर डब्ल्यू अर्न्स्ट स्थानापन्न सभापति और श्री बी० के० पटेल उप-सभापति ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस ; श्री छोटूभाई पटेल, प्रेसीडेण्ट, पाटीदार सोसायटी ; श्री वल्लभभाई प्रेसीडेण्ट, हिन्दू सेवा समाज ; श्री खण्डूभाई, प्रेसीडेण्ट, अनाविल समाज ; बैरिस्टर हजारी ; एडवोकेट मिस्त्री ; खान बहादुर कासम आदम ; श्री कुँवरजी तबाड़िया ; श्री आशाभाई ; श्री प्रागजी भाई देसाई ; श्री गोपालदास ; श्री भगत ; श्री बापूभाई देसाई; श्री नाथूभाई ; श्री रणछोड़जी पटेल ; श्री डी० एन० पटेल ; श्री आर० बी० पटेल ; श्री एन० पी० पटेल ; और श्री ओकाभाई।

स्टेशन से हम लोग डाक्टर दादू के मकान पर पहुँचाये गये। वहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। ठहरने का इन्तजाम पहले तो जोहान्सबर्ग के सबसे बड़े युरोपियन होटल "कार्लटन" में किया गया था, जहाँ हिन्दुस्तानी न ठहर सकते थे, पर चूँकि मैंने होटल में ठहरने से इनकार कर दिया था, इस लिए अब ठहरने का प्रबन्ध डाक्टर दादू के यहाँ था। डॉक्टर दादू मुसलमान थे। उस समय ट्रांसवाल के सोशलिस्ट नेता थे और उन्होंने शादी भी न की थी। डाक्टर दादू के यहाँ पहुँचते ही कुछ ही घण्टों में हमारा उनका ऐसा सम्बन्ध हो गया मानो हम एक दूसरे को वर्षों से जानते हों। डाक्टर दादू का घर हमें अपना ही घर-सा जान पडा।

डाक्टर दादू के यहाँ नाश्ता कर हम लोग निश्चिन्त हुए ही थे कि जोहान्सबर्ग के मुख्य अंग्रेजी दैनिक "स्टार", "डेली मेल" और "सण्डे स्टैण्डर्ड" के प्रतिनिधि आ पहुँचे। उनके साथ कैमरावाले भी थे। मुझ से मुलाकात हुई, तसवीरें उतारी गयीं। मुलाकात में जब मुझ से पूछा गया कि इंडियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय क्या है, तब मैंने साफ-साफ कह दिया कि पूर्ण स्वतन्त्रता और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद। पत्रों में मेरी मुलाकात जैसी की तैसी

छप गयी और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद की बात पर तो उस समय वहाँ बड़ी हलचल मची।

पत्र-प्रतिनिधियों से मिलने के बाद हम लोग "लैंगहम होटल" में सर रजा अली से मिलने गये। कौंसिल ऑफ स्टेट के मेरे इस पुराने मित्र ने मेरा इस समय बड़े उत्साह और सम्मान के साथ स्वागत किया और अपनी नयी हिन्दू पत्नी लेडी अली से मिलाया। इसके बाद जब तक मैं जोहान्सबर्ग में रहा तब तक रजा अली प्रायः मेरे साथ ही रहे। मेरे सम्मान में जितने लंच, जितनी पार्टियाँ, जितने डिनर दिये गये सभी में सर रजा अली मौजूद रहते थे और सभी में वे कुछ न कुछ अवश्य कहते थे। इन सारे भाषणों में सर रजा ने राजनीतिक चर्चाएँ भी कीं। उत्तर में जब-जब मैं बोला अपने प्रति सद्व्यवहार के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उनके राजनीतिक मतों का तीव्र विरोध किया। सर रजा अली और मेरे इस पारस्परिक प्रेम और विरोध का यह विचित्र सम्मिलन था। जोहान्सबर्ग के सारे पत्र भी उस सप्ताह में इन समाचारों से भरे रहे।

जोहान्सबर्ग में पहले दिन का लंच था श्री बी० के० पटेल के यहाँ और डिनर था महात्मा गान्धी के प्रसिद्ध जर्मन यहूदी शिष्य मिस्टर कैलनबैक के यहाँ। श्री कैलनबैक के डिनर को तो मैं कभी न भूलूँगा। कितने सुन्दर स्थान पर श्री कैलनबैक का बँगला था। एक लम्बा टीला था जिसके दोनों ओर आधा-आधा जोहान्सबर्ग बसा हुआ था। उसी टीले पर श्री कैलनबैक का यह सुन्दर बँगला था। बैक महोदय का धन्धा था इमारतों का निर्माण। इस लिए यह बँगला स्थापत्यकला का एक उत्तम नमूना था। सादगी में सौन्दर्य का अच्छा सम्मिलन था। बँगले पर से अगणित बिजली की बत्तियों से आलोकित जोहान्सबर्ग का कितना सुन्दर दृश्य दिखायी देता था। श्री कैलनबैक का बँगला महात्मा गान्धी के विचारों से विमग्न था। इन धनवान जर्मन यहूदी के जीवन में भी भारत की उस महान् आत्मा ने कैसा परिवर्त्तन कर डाला था! बैक साहब ने मांसाहार छोड़ दिया था और विपुल सम्पत्ति रहते हुए भी उनकी रहन-सहन अत्यन्त सादी थी। दक्खिनी अफ्रिका के सत्याग्रह संग्राम में श्री कैलनबैक भी जेल-यात्रा कर चुके थे।

हम लोग कैलनबैक महोदय के यहाँ श्री प्रागजी देसाई के साथ गये थे।

श्री देसाईजी दक्खिणी अफ्रिका के उन इने-गिने कार्यकर्त्ताओं में से थे जिन्होंने अपना सब कुछ देश-सेवा पर कुर्बान कर दिया था। श्री देसाई महात्मा गान्धी के अफ्रिका निवास के समय से देश-सेवा में तत्पर थे और महात्मा गान्धी के दक्खिनी अफ्रिका के सत्याग्रह आन्दोलन में भी वे दो बार जेल हो आये थे। वे ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस के मन्त्री और महात्मा गान्धी के पत्र "इंडियन ओपीनियन" के सम्पादक भी रह चुके थे। वहाँ से जो मिस्टर देसाई का हमारा साथ हुआ वह बम्बई पहुँचकर ही छूटा, क्योंकि देसाईजी हरिपुरा कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए भारत आ रहे थे। श्री देसाईजी ने मि० कैलनबैक से हम लोगों का परिचय कराया।

उनसे मिलने के बाद मैं मिला महात्मा गान्धी के तीसरे पुत्र श्री रामदास गान्धी से, जो स्वास्थ्य-सुधार के लिए दक्खिन अफ्रिका आये हुए थे और श्रीयुत कैलनबैक के साथ रहते थे। रामदासजी से मैं इससे पहले कभी न मिला था। मिलते ही उनके लिए मेरे हृदय में अत्यधिक स्नेह की उत्पत्ति हो गयी और यही बात उनके हृदय में मेरे लिए भी हुई।

बेक महोदय के डिनर से हम लोग सीधे पाटीदार हाल को चले, जहाँ आज की सार्वजनिक सभा थी। हाल भरा हुआ था और हाल के बाहर भी आदमी थे। यह भी सुना कि स्थानाभाव के कारण बहुत लोग लौट भी गये हैं। जोहान्सबर्ग के सभी वर्गों के प्रतिष्ठित व्यक्ति सभा में उपस्थित थे। सर रजा और लेडी अली भी सभा में पहुँच चुके थे।

सभा के सभापति थे ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस के स्थानापन्न प्रेसीडेण्ट श्री डबल्यू अर्न्स्ट। पहले जोहान्सबर्ग की अनेक संस्थाओं की ओर से मुझे पुष्पहार पहनाये गये। फिर मेरे स्वागत में सर रजा अली, श्री कैलनबैक, श्री रामदास गान्धी, श्री प्रागजी भाई देसाई, श्री सुलेमान नाना, डॉक्टर यूसुफ मुहम्मद दादू, रेवरेण्ड सिगामनी आदि अनेक सज्जनों के भाषण हुए। मेरी इतनी स्तुति की गयी कि प्रसन्न होकर "वरम् ब्रूहि" कहना तो दूर रहा लज्जा से उल्टा मैं दब गया। सर रजा अली ने दक्खिनी अफ्रिका में मेरा स्वागत भारतीय सरकार की ओर से किया। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ कहा उसमें मेरी प्रशंसा के अतिरिक्त सार्वजनिक दृष्टि से निम्नलिखित बातें महत्त्व की थीं। उन्होंने कहा—

"१९३२ ई० में श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखले के बाद सेठ गोविन्ददास पहले आदमी हैं जो बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सदस्य होते हुए गैर-सरकारी हैसियत से इस देश में हिन्दुस्तानियों की हालत की जाँच करने आये हैं। अनेक भारतीय भारतवर्ष से यहाँ और यहाँ से भारतवर्ष सरकारी प्रतिनिधित्व में आये और गये हैं। उनका भी महत्त्व है, परन्तु गैर-सरकारी व्यक्तियों के आने-जाने का महत्त्व उनसे कहीं अधिक है। इस देश में भारतीयों के खिलाफ जो कानून हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। इन कानूनों का रद्द होना बहुत दूर तक एक समाज से दूसरे समाज के अधिकाधिक सम्बन्ध पर निर्भर है और इस प्रकार के आवागमन से इस सम्बन्ध की बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।"

मैंने आज अपना भाषण हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में देने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि एक तो सभा में कुछ युरोपियन तथा तमिल भाषा-भाषी सज्जन थे, जो हिन्दी न समझते थे, दूसरे कई मुसलमान तथा गुजराती सज्जन थे, जो अंग्रेजी अच्छी तरह न समझते थे। मेरा भाषण करीब डेढ़ घण्टे तक हुआ। मैंने अपने भाषण में महात्मा गान्धी के १९०६ से आरम्भ किये गये ट्रांसवाल के सत्याग्रह आन्दोलन के कारण हिन्दुस्तान में दक्खिनी अफ्रिका के लिए जो एक प्रकार की पूज्य भावना है उसका वर्णन कर वहाँ के भारतीयों के विरुद्ध कानूनों के कारण उस देश के प्रति जो घृणा है उसका उल्लेख किया। मैंने वहाँ के युरोपियनों को बताया कि इस प्रकार के विचित्र कानूनों से यदि भारतीयों को चोट पहुँचती है तो संसार के सभ्य समाज में यहाँ रहनेवाली यूरोपियन जाति की भी कम बुराई नहीं है। फिर मैंने उनसे यह भी कहा कि किसी भी जाति के विरुद्ध इस प्रकार के कानून सदा कायम नहीं रखे जा सकते और भारत स्वतन्त्र होने के बाद देख लेगा कि ये कानून किस तरह कानून की किताब पर कायम रह सकते हैं। इसके बाद मैंने विस्तारपूर्वक भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम का वर्णन कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वह समय बहुत दूर नहीं है जब भारत पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो जायगा।

ट्रांसवाल में जोहान्सबर्ग नगर के सिवा मुझे निम्नलिखित स्थान दिखाये गये—

१, बाक्सबर्ग, जर्मिस्टन, बिनोनी, कूगर्स डार्प और रूडी पोर्ट।

ट्रांसवाल में उस समय भी पूरी-पूरी पृथकता थी। वहाँ के युरोपियन मुहल्लों में न भारतीय रह सकते थे और न रोजगार कर सकते थे। ट्रांसवाल में भारतीय जायदाद भी न खरीद सकते थे। ट्रांसवाल में यही प्रश्न भारतीयों का सबसे बड़ा प्रश्न था। जिन स्थानों में भारतीय रहते थे वे बड़े गन्दे थे। इसी प्रकार के एक गन्दे स्थान को देख कर जब हम लोग लौट रहे थे, उस समय एक सज्जन पूछ बैठे, "क्या हिन्दुस्तान में लोग इससे भी गन्दे स्थानों में और इससे भी गन्दे तरीके से नहीं रहते ?"

लक्ष्मीचन्द ने इसका बड़ा समुचित उत्तर दिया। वे बोले—"गरीबी के कारण चाहे उन्हें हिन्दुस्तान में ऐसा करना पड़ता हो, पर वहाँ कानून की कोई ऐसी कैद नहीं है। यहाँ तो धन रहते हुए भी लोगों को इस प्रकार रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है।"

हम लोग जहाँ-जहाँ गये हमारा बड़ा आतिथ्य सत्कार हुआ। यह तो असम्भव था कि हम बिना कुछ खाये-पिये कहीं से आ सकें।

जोहान्सबर्ग भी हमने खूब घूमा।

एक हफ्ते रहने पर भी हमें इतना अवकाश न मिला कि हम जोहान्सबर्ग नगर अच्छी तरह देखते और संसार में सबसे बड़ी वहाँ की सुवर्ण खान का अवलोकन करते। फिर भी इधर-उधर घूमने के कारण नगर कैसा है इसका अनुमान हो गया था। जोहान्सबर्ग की उस समय आबादी थी करीब तीन लाख। जोहान्सबर्ग में पूर्वी अफ्रिका के नगरों के सदृश मुझे कोई खास बात न दिखायी दी। बहुत बड़ा शहर था, बड़ा धनवान। संसार भर में सबसे बड़ा सोने का केन्द्र था तब धनवान क्यों न हो। फिर पड़ोस के किम्बरली नगर में हीरे की भी खानें थीं। बड़े-बड़े मकान, भारी-भारी दुकानें, बड़ी-बड़ी सड़कें उन पर चलनेवाली सहस्रों मोटरें, बसें, ट्राम तथा बढ़ी-चढ़ी जनसंख्या उसकी महानता सिद्ध करती थी। जनता में हब्शी सबसे अधिक थे, फिर युरोपियन, फिर कलर्ड और सबसे कम हिन्दुस्तानी। जो हब्शी रिक्शा चलाते थे वे बड़ी विचित्र वेषभूषा रखते थे। उस वेषभूषा के कारण कई तो जानवरों के सदृश दिखायी देते थे। यही दिखलाने के लिए कदाचित् उनकी उस प्रकार की वेषभूषा रखी गयी थी।

जोहान्सबर्ग का मिलान बम्बई या कलकत्ते से किया जा सकता है, पर वहाँ की वसुधा यहाँ से कहीं अधिक थी और उसकी वसुधा का संकेत करा रही थी वह पीली-पीली सुवर्ण की खानों की मिट्टी जो सोना निकल जाने के बाद छोटी-छोटी पहाड़ियों के सदृश नगर के चारों ओर नजर आती थी। मुझे तो जोहान्सबर्ग की यह पीली मिट्टी की पहाड़ियाँ ही वहाँ की विशेष बात दिखायी दीं जो मैंने अन्य किसी स्थान पर न देखी थी।

जोहान्सबर्ग से रेल द्वारा हम नैटाल प्रान्त की राजधानी डरबन के लिए रवाना हुए। जोहान्सबर्ग से हम सन्ध्या को रवाना हुए थे और दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजे डरबन पहुँचनेवाले थे।

जब प्रातःकाल हम लोग उठे उस समय ट्रेन पीटर मैरिटसबर्ग स्टेशन के समीप थी, जहाँ से डरबन पहुँचने में करीब दो घण्टे लगते थे। मैरिटसबर्ग स्टेशन पर गाड़ी ठहरते ही महात्मा गान्धी के द्वितीय पुत्र "इंडियन ओपीनियन" के सम्पादक श्री मणिलाल गान्धी मुझसे मिलने आ पहुँचे। फिनिक्स, जहाँ महात्मा गान्धी का आश्रम था और जहाँ मणिलालजी रहते थे, वहाँ से करीब ५० मील था। मणिलालजी ने फिनिक्स से करीब ३ बजे रात को मोटर से रवाना होने का कष्ट इसलिए उठाया था कि वे ट्रेन के समय यहाँ पहुँच जायँ और मुझसे मिल कर यहाँ से मेरे साथ डरबन जायँ। मणिलालजी से मैं १९३० में महात्मा गान्धी के ऐतिहासिक डांडी यात्रा के अवसर पर अहमदाबाद में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में मिला था।

"इंडियन ओपीनियन" ने मेरे स्वागत में अग्रलेख लिखने की कृपा की थी। उसी लेख में नैटाल के कार्यकर्त्ताओं के आपसी मतभेद की चर्चा भी थी। डरबन पहुँचने तक मणिलालजी से इस मतभेद के सम्बन्ध में बहुत सी बातें होती रहीं और मैंने अपने मन में निश्चय किया कि मैं नैटाल में रहते हुए इस मतभेद को मिटाने का अवश्य प्रयत्न करूँगा।

ठीक ६ बजे ट्रेन डरबन स्टेशन पर पहुँच गयी। नैटाल इंडियन कांग्रेस ने मेरे स्वागत का धूमधाम से आयोजन किया था। स्टेशन पर सभी वर्गों और सभी समुदायों की एक भारी भीड़ इकट्ठा थी। इस भीड़ में सबसे पहले जिसने मेरा ध्यान आकर्षित किया वह था नैटाल के कहे जानेवाले नाहर श्री

सोराबजी रुस्तमजी पारसी का विशालकाय शरीर। विद्यार्थी अवस्था में मैंने जब दक्खिन अफ्रिका के सत्याग्रह का नाम सुना था उसी समय सोराबजी के पिता सेठ रुस्तमजी का नाम सुना था। रुस्तमजी की महात्मा गान्धी के प्रति श्रद्धा और देश के प्रति भक्ति का वृत्तान्त मैं भली भाँति जानता था। मुझे मालूम था कि उस वीर पुरुष ने अपने शरीर रहते ही देश-सेवा नहीं की है वरन् अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी सम्पत्ति में से केवल दस-दस हजार पाउण्ड अपने दोनों पुत्रों जालभाई और सोराबजी को देकर शेष साठ हजार पाउण्ड का देश-सेवा के लिए ट्रस्ट कर दिया है।

उस वीर पिता के इस पुत्र सोराबजी का नाम भी मैं बहुत समय से जानता था और यह भी जानता था कि श्री सोराबजी भी अपने पिता के पद-चिह्नों पर चल कर पिता द्वारा दिये गये उन दस हजार पाउण्ड को भी देश-सेवा में स्वाहा करके फक़ीर हो गये हैं। श्री सोराबजी में जो रोब और रोब के साथ ही जो नम्रता थी वह मुझे भुलाये न भूलेगी। स्टेशन पर उपस्थित अन्य सज्जनों से उन्होंने मेरा परिचय कराया। जिन लोगों से स्टेशन पर मैं मिला उनमें मुख्य थे मेरे पूर्व-परिचित स्वामी भवानीदयालजी, दक्खिन अफ्रिका इंडियन कांग्रेस के मन्त्री श्री काजी, कोषाध्यक्ष मिस्टर पारिख, नैटाल इंडियन कांग्रेस के सभापति मिस्टर ई० एम० पारिख, श्री जाल भाई, श्री एम० बी० नायक, श्री भूला, श्री पुरुषोत्तमदास देसाई, श्री गोविन्दराम, श्री तैयब, श्री मुताला, श्री रान्देरिया तथा मिस्टर लारेन्स आदि।

सबसे मिलकर हम लोग डरबन के नजदीक जैकब्स नामक स्थान पर श्री स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी के बँगले पर पहुँचे। यहीं हमारे ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। कितना सुन्दर था वह स्थान और कितना सुन्दर था वह बँगला। फिर बँगले में रहने वाले स्वामीजी के परिवार के लोगों का सौजन्य भी अपूर्व था। स्वामीजी की पुत्री गायत्री, उनकी पुत्र-वधू प्रकाशवती, उनके दामाद मगनलाल, उनके पुत्र आदि सभी ने हम लोगों का जैसा स्वागत किया और हमारे वहाँ रहते हमारी जैसी महमानदारी की, वह हम कभी न भूलेंगे।

श्री सोराबजी, दक्खिनी अफ्रीका इंडियन कांग्रेस के मन्त्री श्री काजी,

मणिलाल गान्धी आदि सभी मेरे साथ स्वामीजी के बँगले पर आ गये थे। आज की संध्या को "एम० के० गान्धी लाइब्रेरी एण्ड रुस्तमजी पारसी हाल" में सार्वजनिक सभा थी, अतः आज की सभा तथा नैटाल के मेरे दस दिनों के कार्यक्रम के सम्बन्ध में सब बातें उसी समय तय करने का हमने निश्चय कर करीब दो घण्टे के भीतर सारी बातें निश्चित कर लीं।

हम लोगों ने निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा के पहले वहाँ के सभी दलों के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से मिल लिया जाय तथा इन दलों में समझौता कराने का प्रयत्न आज ही से आरम्भ कर दिया जाय। भोजन कर प्रागजी, मणिलाल जी, रामदासजी और लक्ष्मीचन्द को साथ ले मैं इन मुलाकातों के लिए मोटर में रवाना हुआ।

सबसे पहले हम लोग उपनिवेशोत्पन्न प्रवासी एसोसियेशन के सभापति, दक्खिनी अफ्रिका के एक बड़े प्राचीन सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, बैरिस्टर क्रिस्टोफर के यहाँ पहुँचे। उन्हीं के यहाँ एसोसियेशन के अन्य पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता भी आ गये थे। पहले ये सभी कांग्रेस की छत्रछाया में काम करते थे, पर सन् १९३२ की कालोनाइजेशन स्कीम के आन्दोलन के समय से ये लोग कांग्रेस से अलग हो गये थे और इन्होंने इस संस्था को जन्म दिया था। इस समय नैटाल के कार्यकर्त्ताओं में तीन दल थे—कांग्रेस, उपनिवेशोत्पन्न प्रवासी एसोसियेशन और कुछ फुटकर कार्यकर्त्ता।

उसी दिन हमने देख लिया कि वहाँ के भारतीयों का समझौता आसान नहीं था।

ठीक साढ़े पाँच बजे हम लोग सार्वजनिक सभा में पहुँच गये। सभा के सभापति थे डरबन नगर के अंग्रेज मेयर मि० फ्लोमिंग जान्स्टन। मेरे स्वागत के भाषणों और मुझे पुष्पहार समर्पण करने के बाद मेरा भाषण करीब एक घण्टे तक हुआ। महात्मा गान्धी के समय के नैटाल के इतिहास तथा तीन पाउण्डवाले टैक्स के विरुद्ध किये गये उनके महान् युद्ध का संस्मरण एवं नैटाल को उपनिवेश-वाटिका (गार्डन कालोनी) का पद प्रदान करानेवाले परिश्रमी भारतीयों की वन्दना के बाद आज के भाषण में भी मैंने प्रायः वे ही बातें कहीं जो जोहान्सबर्ग के भाषण में कही थीं, क्योंकि दोनों स्थानों की

परिस्थिति प्रायः एक-सी थी।

दूसरे दिन दोपहर को हम लोग फिनिक्स की तपोभूमि के दर्शन करने चले। गन्ने के पौदों से ढकी हुई छोटी-छोटी पहाड़ियों वाली वहाँ की भूमि बड़ी रमणीय थी। महात्माजी का आश्रम था एक छोटी-सी पहाड़ी पर। उन सब स्थानों को देख कर जहाँ वह महापुरुष रहता था, बैठता था, सोता था, उस स्थान के प्रति एक विचित्र प्रकार की श्रद्धा और भक्ति का हृदय में संचार हुआ। जब मैं उन सब स्थानों को देखकर बरामदे में एक कुरसी पर बैठा हुआ सामने की भूमि को चुपचाप देख रहा था, उस समय वहाँ के सत्याग्रह काल के एक पढ़े और सुने हुए दृश्य नेत्रों के सामने घूमने लगे। उस कल्पना संसार में मैं कुछ ऐसा तल्लीन हो गया कि कितना समय उस परिस्थिति में बीत गया इसका मुझे पता ही न लगा और मेरी वह तल्लीनता भंग हुई उस समय जब मणिलालजी ने कहा कि भोजन तैयार है।

धीरे-धीरे नैटाल ठहरने का यह समय बीत चला। डरबन के आस-पास की हिन्दुस्तानियों की बस्तियों को छोड़ नैटाल के टोंगाद, स्टैंगर, पीटर मैरिटसबर्ग, वैरूलम और फिनिक्स आदि स्थानों को भी मैंने देखा। डरबन के सिवा टोंगाद और पीटर मैरिटसबर्ग में सार्वजनिक सभाएँ हुईं। मैरिटसबर्ग की सार्वजनिक सभा के सभापति भी वहाँ के अंग्रेज मेयर थे। मैरिटसबर्ग में हम लोगों ने एक अद्भुत कुटुम्ब देखा। यह कुटुम्ब था श्री नलिया नायडू का। इनकी अवस्था करीब ७६ वर्ष की थी और इनके कुटुम्ब में लगभग १२५ आदमी थे जिनका हिसाब-किताब नीचे लिख देना ही ठीक होगा —

श्री नायडू की ३ धर्मपत्नियाँ थीं जिनकी ३३ सन्तानें जीवित थीं। इनकी आखिरी सन्तान का जन्म श्री नायडू की ६३ वर्ष की अवस्था में हुआ था। श्री नायडू के ७६ पौत्र-पौत्रियाँ थीं और ७ प्रपौत्र और प्रपौत्रियाँ। इनके अलावा श्री नायडू की पुत्र-वधुओं आदि की संख्या देने की आवश्यकता नहीं है।

नैटाल में भी हम लोगों की बड़ी खातिरदारी हुई। बम्बई प्रेसिडेन्सी ऐसोसियेशन, सूरत हिन्दू एसोसियेशन, जैकब इंडियन कांग्रेस और लाइफ सेवर्स एसोसियेशन नाम की प्रमुख संस्थाओं ने डरबन में मेरा स्वागत किया।

दस दिन नेटाल में रहने पर भी जोहान्सबर्ग के सदृश ही डरबन को भी देखने का हमे अवकाश न मिला था, पर शहर कैसा है इसका ज्ञान अवश्य हो गया था। डरबन की आबादी थी उस समय करीब दो लाख। मकान और सड़कें बड़े-बड़े शहरों के समान ही थीं। वहाँ की हिन्दुस्तानी आबादी वहाँ की युरोपियन आबादी के बराबर थी। जोहान्सबर्ग की विशेषता यदि यहाँ की सोने की खानों की निकली हुई पीली मिट्टी के टीले थे, तो वहाँ की विशेषता थी यहाँ का समुद्र तट। जोहान्सबर्ग की वसुधा की चाहे डरबन बराबरी न कर सके पर सफाई में वह जोहान्सबर्ग से कहीं आगे था। जोहान्सबर्ग और डरबन में इस सम्बन्ध में उतना ही फर्क था जितना कलकत्ता और बम्बई में है। डरबन में वहाँ की जिस चीज ने सबसे अधिक मेरा ध्यान खींचा वह था वहाँ का टाउन हाल। इस हाल में कुर्सियों पर दस हजार आदमी बैठ सकते थे। सुन्दर हाल था और सुन्दर थी सारी इमारत। सुना गया कि सारे संसार में इससे बड़ा उस समय कोई टाउन हाल नहीं था।

"टकलीवा" जहाज से हम लोग अपनी मातृभूमि को बिदा होनेवाले थे।

जब हम लोग स्वामीजी के बंगले से बिदा हुए तो उस समय गायत्री बार-बार पूछ रही थीं, "अब आप यहाँ कब आवेंगे ?" मेरी समझ में ही न आया कि मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ।

डरबन के वार्फ पर बहुत बड़ा जनसमुदाय इकट्ठा था। वहाँ के सभी प्रतिष्ठित सज्जन मौजूद थे। हम लोग करीब ११ बजे वार्फ पर पहुँचे। फिर एक बार वार्फ पर बिदाई के भाषणों का करुण श्रोत बहा और मैं फूल-मालाओं से लाद दिया गया। डरबन के अनेक व्यक्तियों ने मुझे खींच-खींच कर गले लगाया। न जाने मेरे प्रति उनके इस महान् प्रेम का क्या कारण था। जब मैं प्रागजी भाई देसाई और लक्ष्मीचन्द के साथ जहाज पर चढ़ा उस समय तो इस करुण श्रोत की धारा का रूप महान् हो गया था।

अभी भी जहाज की रवानगी को करीब डेढ घण्टा बाकी था। प्रखर सूर्य वार्फ को तपा रहा था, क्योंकि उन दिनों वहाँ कोई छाया न थी। पसीने की धाराएँ लोगों के शरीरों से बह रही थीं। मैंने जनता से बार-बार जाने की प्रार्थना की, परन्तु सभी ने निश्चय कर लिया था कि जहाज की रवानगी तक

कोई भी वहाँ से न जायगा ।

ठीक १ बजे जहाज ने लंगर उठाया ।

डरबन के भारतीयों का स्नेह, उनका आतिथ्य-सत्कार, उनकी बिदाई, सभी अपूर्व थे ।

लौटते हुए जो महत्त्वपूर्ण बात हुई वह थी जंजीबार में मेरी औपनिवेशिक मंत्री लार्ड डफरिन से मुलाकात । इस मुलाकात के परिणामस्वरूप ही आगे चलकर लौंग व्यापार का झगड़ा मिटा । जंजीबार में वहाँ के भारतीय निवासियों ने बड़ा भारी आयोजन कर मुझे एक मानपत्र भी दिया ।

मेरी फिल्म कम्पनी आदर्श चित्र के शेअर इस दौरे में केवल पाँच हजार के टैंगनीका में सेठ मथुरादास कालिदास ने लिये । हाँ, कुछ लोगों ने इन शेअरों के भरवाने का काम अपने जिम्मे अवश्य ले लिया जो आगे चलकर पूरा भी किया ।

अफ्रिका की इस यात्रा पर मैंने "हमारा प्रधान उपनिवेश" नाम से एक पुस्तक भी लिखी । इस पुस्तक का पूर्वी अफ्रिका में काफी प्रचार हुआ । इस "आत्म-निरीक्षण" पुस्तक का यह अध्याय उसी पुस्तक पर अवलंबित है ।

अफ्रिका से लौटते ही मुझ पर एक नया संकट

जब मैं अफ्रिका से लौटा तब मेरे मन में बड़ा जोश और उत्साह था। अफ्रिका का मैं जिन दोहरे उद्देश्यों को लेकर गया था दोनों में मुझे पूरी-पूरी सफलता मिली थी। मेरे सम्मान में वहाँ जो सार्वजनिक आयोजन हुए थे और उनमें मेरे भाषणों का जो प्रभाव पड़ा था, उनका वृत्त भारतीय पत्रों ने भी बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ छापा था। जंजीबार में जो लौंग के व्यापार का झगड़ा चल रहा था उसके विषय में भी मैं ग्रेट ब्रिटेन के औपनिवेशिक मंत्री लार्ड डफरिन से जो जंजीबार में मिलकर आया था और उस झगड़े के निपटाने की जिस योजना पर उनसे बातें हुई थीं, उसके कारण इस झगड़े के निपटने की भी सम्भावना दीख पड़ रही थी और अन्त में यह झगड़ा मेरी ही उस योजना के फलस्वरूप निपटा भी। "आदर्श चित्र" के शेअर यद्यपि मेरी मौजूदगी में बहुत कम भरे गये थे, परन्तु इस काम की जिम्मेदारी वहाँ के कुछ लोगों ने ले ली थी। यह काम किसी सार्वजनिक आयोजन में अपील करके नहीं हुआ था, केवल व्यक्तिगत मुलाकातों में हुआ था, इससे मुझे और अधिक सन्तोष था।

बम्बई में मेरा सार्वजनिक स्वागत हुआ और "इम्पीरियल इंडियन सिटीजनशिप एसोसियेशन" में उसके सभापति सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने मुझे एक चाय पार्टी दी, जिसमें श्रीमती सरोजनी नायडू भी मौजूद थीं। अफ्रिका के मेरे काम पर मुझे श्रीमती नायडू, सर पुरुषोत्तमदास आदि ने अनेक बधाइयाँ दीं। अफ्रिका देश के तथा वहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में मुझसे पत्रकारों ने बम्बई में ही जो मुलाकातें लीं वे सारे भारत के पत्रों में बड़े-बड़े शीर्षकों से छपीं। बम्बई से मैं गान्धीजी से मिलने वर्धा गया और जो कुछ मैं अफ्रिका में करके आया था उसका सारा हाल उन्हें सुनाया। मेरे उनसे मिलने के पूर्व ही मेरे कार्य की प्रशंसा में उनके पास अफ्रिका से कई पत्र आ चुके थे।

बापू ने भी मेरे कार्य पर बड़ा सन्तोष प्रकट किया।

हरिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। उसके सभापति नेताजी सुभाषचन्द्र बोस चुने गये थे। मैंने अपनी अफ्रिका की यात्रा की रिपोर्ट कांग्रेस अधिवेशन के पूर्व ही तैयार करने का निश्चय किया और इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर वह रिपोर्ट छपा कर हरिपुरा में सुभाष बाबू को दे भी दी। यह रिपोर्ट भारत तथा अफ्रिका के पत्रों में महत्त्वपूर्ण ढंग से छपी।

अफ्रिका की यात्रा पर भारत लौटते हुए जो पुस्तक मैंने जहाज में लिखी थी वह भी पहले धारावाहिक रूप से हिन्दी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सरस्वती" में प्रकाशित हुई और उसके बाद पुस्तकाकार। इसका भी उस समय यथेष्ट आदर हुआ।

केन्द्रीय धारा सभा में मैं अफ्रिका पर विशेषज्ञ-सा माना जाने लगा।

इस प्रकार जब मैं अफ्रिका की अपनी इस यात्रा को हर प्रकार से सफल मान रहा था उसी समय मैंने सुना कि कांग्रेस के कुछ नेता, जिनमें प्रधानतया हमारी असेम्बली पार्टी के नेता श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल थे, मुझ पर यह अभियोग लगानेवाले हैं कि मैंने कांग्रेस की अपनी स्थिति और कांग्रेस के नाम का उपयोग कर अपनी फिल्म कम्पनी आदर्श चित्र के शेअर भरवाये हैं।

श्री नरीमैन कुछ समय पहले किसी भी जिम्मेदार पद के अयोग्य घोषित कर कांग्रेस संगठन से निकाले गये थे। पं० मोतीलालजी को छोड़ कांग्रेस के अखिल भारतीय किसी भी नेता से मेरा कोई व्यक्तिगत गहरा सम्बन्ध न था। गान्धीजी से भी मेरा जो सम्बन्ध था वह उतनी दूर तक व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। श्री भूलाभाई के विषय में मेरे जो विचार थे उन्हें मैं पिछले एक अध्याय में व्यक्त कर चुका हूँ। यद्यपि गत तीन-चार वर्षों से मैं केन्द्रीय धारा सभा में उनके नेतृत्व में काम कर रहा था और कांग्रेस दल के कोषाध्यक्ष होने के कारण उस दल की कार्यकारिणी का सदस्य था तो भी उनकी और मेरी पटरी न बैठ रही थी। प्रान्तीय धारा सभाओं के गत चुनाव में सरदार पटेल से मिश्रजी का और मेरा झगड़ा हो चुका था और मध्य प्रदेश एवं बरार के कांग्रेस दल के नेता तथा प्रधानमन्त्री डॉक्टर खरे को हम लोगों ने

सरदार की इच्छा के प्रतिकूल बनवाया था जिसके कारण सरदार का हम लोगों पर अब भी कम प्रकोप न था। मुझे यह भी मालूम था कि सरदार पटेल चाहे कितने ही महान् व्यक्ति और नेता क्यों न हों, पर अपने विपक्षियों को समाप्त करने में साधन की ओर शायद ही उनकी दृष्टि रहती है।

अपने पर जब इस प्रकार के अभियोग का मैंने वृत्त सुना तब मेरे पैर के नीचे की धरती-सी खिसक गयी। मुझे जान पड़ने लगा कि श्री नरीमैन के सदृश ही मेरा हाल हो तो कोई आश्चर्य की बात न होगी और जब मेरे मन में यह बात उठी तब क्या-क्या याद आया मुझको ? सन् २० से अब तक कांग्रेस के लिए मैंने क्या न किया था ? सन् २० में मेरे क्षेत्र के किसी व्यक्ति का कांग्रेस में सम्मिलित होना, कांग्रेस में आ उसके सारे कार्यक्रम का ईमानदारी, पूरी-पूरी ईमानदारी से पालन, सरकारी अदालतों के बहिष्कार और विलायती कपड़े के व्यापार को छोड़ने से हजारों नहीं, लाखों की हानि ! आखिर घर की सम्पत्ति से भी त्याग-पत्र और जीविका निर्वाह के लिए प्रयत्न ! मेरी जिस गरीबी को लाने में कांग्रेस का भी हाथ, उस गरीबी के कारण कांग्रेस में भी मेरा अपमान और मुझ पर एक साम्पत्तिक अभियोग ! मेरा मन ग्लानि से भर गया ! गरीबी बुरी, सार्वजनिक धन की सहायता उससे भी बुरी, जीविका उपार्जन का प्रयत्न अभियोग ! मैंने किसी का रुपया नहीं खाया था। किसी को धोखा नहीं दिया था। कोई चोरी नहीं की थी, कोई डाका नहीं डाला था। अफ्रिका मैं व्यक्तिगत रूप से अपने खर्च पर गया था। क्या किसी कांग्रेसवादी को अपनी जीविका चलाने के लिए अपनी किसी कम्पनी के शेअर भरवाने का भी अधिकार न था ? फिर ये शेअर मेरे कांग्रेस-वादी होने के कारण मेरे स्वागत समारोहों में कोई अपील करके, कांग्रेस के नाम का किसी भी प्रकार उपयोग करके, नहीं भरवाये गये थे। और फिर मैंने अपनी जीविका चलाने के लिए जो मार्ग चुना था वह मेरी दृष्टि से देश के कल्याण का भी मार्ग था।

कुछ दिन तक मेरी समझ में न आया कि मैं क्या करूँ। एकाएक मेरे मन में उठा कि सारी अफवाह कहीं कुछ मनचलों की कल्पना ही तो नहीं है। अतः इस विषय में मैं श्री भूलाभाई और सरदार वल्लभभाई से बात क्यों न

कर लूँ ? यदि अफवाह सही निकली तो मैं कह दूँगा कि मैं गान्धीजी से सब कुछ कह, उनसे आज्ञा लेकर गया था तथा जाने के पहले बम्बई में स्पष्ट कर गया था कि मैं कांग्रेस की ओर से न जाकर व्यक्तिगत हैसियत से जा रहा हूँ।

पहले मैं भूलाभाई देसाई से मिला। उन्होंने अफवाह को सत्य बता मुझसे जैसा व्यवहार और सम्भाषण किया वह मैं कभी भी विस्मृत न कर सकूँगा। मैं क्रोध से तिलमिला उठा, पर गनीमत यही हुई कि मैंने अपने को सँभाल लिया। गान्धीजी वाली बात मैंने भूलाभाई से न कहना ही ठीक समझा।

इसके बाद मैं सरदार पटेल से मिला। उन्होंने भी इस संवाद को सही बताया, पर भूलाभाई और सरदार के व्यवहार तथा सम्भाषण में आकाश-पाताल का अन्तर था। उनके कहने का सारांश था कि मेरी कांग्रेस-निष्ठा और कार्य को मैंने अफ्रिका में जा "आदर्श चित्र" के शेअर भरवा धक्का पहुँचाया है और इस सम्बन्ध में मुझसे कैफियत तलब होनेवाली है। जब सरदार को मैंने यह कहा कि मैं सारे मामले पर गान्धीजी से स्पष्ट बातें कर उनसे आज्ञा लेकर अफ्रिका गया था, तब सरदार विचार में पड़ गये। कुछ देर बाद उन्होंने कहा कि यदि ऐसी बात है तो वे गान्धीजी से पूछेंगे और अगर मेरा कहना सही निकला तो यह मामला समाप्त हो जायगा।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि सरदार ने इस विषय में गान्धीजी से बात की। गान्धीजी ने उनसे जो कुछ हुआ था वह स्पष्ट कह दिया। मुझसे कोई कैफियत नहीं माँगी गयी और मैं अभियोग से मुक्त हुआ। यदि मैं गान्धीजी से सब बातें कह, उनसे आज्ञा लेकर अफ्रिका न जाता तो इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि मेरा कांग्रेस में वही हाल होता जो श्री नरीमैन का हुआ था और बाद में डॉक्टर खरे तथा नेताजी सुभाष बाबू का हुआ। और मेरा यदि यह हाल होता तो मेरे किसी दोष के कारण कदापि नहीं; क्योंकि मैं आज भी इस बात को रंचमात्र मानने को तैयार नहीं हूँ कि मैंने अफ्रिका में "आदर्श चित्र" के शेअर भरा कोई अनुचित काम किया था, पर नेताओं के प्रकोप के कारण।

त्रिपुरी में कांग्रेस का अधिवेशन

महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के उस साल के सभापति ठाकुर ... लालजी ने सन् १६३८ में गुजरात के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के अगले अधिवेशन को महाकोशल में निमंत्रित किया। यह निमंत्रण महाकोशल प्रान्त के लिए दिया गया था, किसी विशिष्ट जिले, नगर या गाँव के लिए नहीं। पर इसके बाद कुछ ही समय में निर्णय हो गया कि यह अधिवेशन जबलपुर के निकट त्रिपुरी में होगा। उन दिनों कुछ समय से महात्मा गान्धी की इच्छानुसार कांग्रेस के अधिवेशन गाँवों में होते थे। त्रिपुरी में अधिवेशन करने का निश्चय इसीलिए किया गया था। फिर जब कभी भी महाकोशल में कांग्रेस अधिवेशन होगा वह महाकोशल की राजधानी जबलपुर में ही किया जायगा यह चर्चा तो सन् २० से ही थी। अब चूँकि कांग्रेस के अधिवेशन गाँव में होते थे और चूँकि त्रिपुरी एक ऐतिहासिक गाँव था, जबलपुर के समीप, इसलिए त्रिपुरी इस अधिवेशन के लिए चुना गया। त्रिपुरी में कांग्रेस का यह अधिवेशन सन् ३६ के मार्च महीने में हुआ।

कांग्रेस की स्थापना के बाद मध्य प्रदेश में कांग्रेस के तीन अधिवेशन हो चुके थे—सन् १८६१ में नागपुर में, सन् १८६७ में अमरावती में और सन् १६२० में फिर नागपुर में। सन् १६२० का नागपुर का अधिवेशन तो वह अधिवेशन था जिसमें कांग्रेस संगठन महात्मा गान्धी के नेतृत्व में आ गया था और कांग्रेस की कायापलट ही हो गयी थी। उसी साल कांग्रेस संगठन में प्रान्तों का विभाजन भाषा के आधार पर हो गया था और जैसा पहले कहा जा चुका है पहले मध्य प्रान्त के हिन्दी भाषा-भाषी जिले हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त तथा बाद में महाकोशल कहलाने लगे थे। महात्मा गान्धी के हाथ में देश के और कांग्रेस के नेतृत्व आने के बाद इस क्षेत्र में जिस ढंग से नया सार्वजनिक जीवन आरम्भ हुआ था उसका उल्लेख पिछले कई अध्यायों में आ चुका है। अब इस प्रदेश की चिरकाल से कांग्रेस अधिवेशन करने की जागृत अभिलाषा पूर्ण होने का

अवसर आया था अतः बड़े भारी जोश-खरोश से कांग्रेस अधिवेशन की तैयारी आरम्भ हुई।

इस तैयारी में आरम्भ में दो वस्तुओं की सबसे प्रधान आवश्यकता थी—पहली धन और दूसरी कांग्रेस नगर निर्माण करनेवाला योग्य व्यक्ति। सदा के समान प्रान्तव्यापी दौरा कर धन एकत्रित करने का काम मुझे सौंपा गया और कांग्रेस नगर-निर्माण करने के लिए अ० भा० कांग्रेस कमेटी की ओर से इन दिनों जो एक इंजीनियर श्री आर० डी० गुलाटी सब जगह जाते थे, वे त्रिपुरी भी आ गये।

मैंने प्रान्त भर में दौरा कर सभी स्थानों के कांग्रेसवादियों के सहयोग और सहायता से लगभग अस्सी हजार रुपया एकत्रित किया। इस कार्य में मुझे सबसे अधिक सहायता जिन सज्जनों से मिली उनके नाम हैं—श्री कुंजीलाल जी दुबे, सेठ शिवदासजी डागा और ठाकुर छेदीलालजी। यथेष्ट धन एकत्रित होने पर इधर श्री गुलाटीजी ने नगर-निर्माण का कार्य आरम्भ किया और उधर स्वागत-समिति के यथेष्ट सदस्य बन जाने पर स्वागत-समिति के पदाधिकारियों तथा स्वागत-समिति की मातहती में भिन्न-भिन्न कार्य करने के लिए भिन्न-भिन्न कमेटियों का चुनाव हुआ।

सर्वमत से मैं स्वागत-समिति का अध्यक्ष चुना गया और अपनी कार्यकारिणी समिति के नामजद करने का मुझे अधिकार दे दिया गया। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कार्य के लिए जो भिन्न-भिन्न समितियाँ बननेवाली थीं उनके सभापतियों का चुनाव हुआ और उन्हें अपनी-अपनी कार्यकारिणी को नामजद करने का अधिकार दिया गया।

मैंने जो अपनी कार्यकारिणी नियुक्त की उसमें चार उपसभापति, एक प्रधान मन्त्री, चार अन्य मन्त्री, एक कोषाध्यक्ष और एक स्वयंसेवक दल का अधिपति मुख्य थे। उपसभापति नियुक्त हुए—पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, सेठ शिवदासजी डागा, श्री चिरागुद्दीन सा० और पं० बद्रीनाथ दुबे; प्रधान मन्त्री श्री घनश्यामसिंह गुप्त, चार मन्त्री—पं० शम्भुदयाल मिश्र, महन्त लक्ष्मीनारायणदास, श्री रघुनाथसिंह किलेदार और पं० कुंजीलालजी दुबे; कोषाध्यक्ष श्री सुगनचन्द राठी और स्वयंसेवक दल के अधिपति ठाकुर छेदीलालजी।

जिस आपसी सहयोग, प्रेम और उत्साह से सारी स्वागत-समिति का काम हुआ वह विरले अवसरों पर ही देखने को मिलता है।

प्रान्त में कांग्रेस दल का शासन था। मुख्य मन्त्री थे पं० रविशंकर शुक्ल और उनके मुख्य साथी मन्त्री थे पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र। कांग्रेस सरकार से भी स्वागत-समिति को अपने कार्य में पूरी सहायता प्राप्त हुई।

श्री गुलाटी ने भी अपना काम बड़ी ही योग्यता से किया। कांग्रेस का पण्डाल, अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का पण्डाल, प्रतिनिधियों तथा दर्शकों के ठहरने का स्थान, सारे कांग्रेस नगर की शोभा दर्शनीय थी। इस शोभा को नर्मदा तट की स्वाभाविक प्राकृतिक सुषमा ने कई गुना बढ़ा दिया था। फिर इसे पुरानी कलचुरि कलावाले विशाल फाटकों, मूर्तियों आदि से सुसज्जित किया गया था। यह कलात्मक कार्य हुआ था प्रधानतया श्री नित्येन्द्रनाथ सील की देख-रेख में। कांग्रेस नगर का नाम महाकोशल के प्रथम राजनीतिक नेता श्री विष्णुदत्त शुक्ल के नाम पर विष्णुदत्त नगर रखा गया।

जहाँ विष्णुदत्त नगर को सुन्दरतम बनाने का प्रयत्न किया गया वहाँ इस नगर के निवासियों तथा दर्शकों की सुविधाओं पर भी पूर्ण ध्यान दिया गया। इसीलिए नर्मदा तट पर गहरे कुएँ खोद नगर का अलग वाटर वर्क्स बनाया गया और नगर की रोशनी के लिए बिजली का भी पृथक् प्रबन्ध किया गया। लोगों के भोजन की एक नयी व्यवस्था की गयी। यह व्यवस्था थी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन किया जाता था उसके भिन्न-भिन्न होटल। स्वागत-समिति ने भोज्य वस्तुओं की केवल निरख नियुक्त कर दी। अस्पतालों और सफाई की भी बड़ी अच्छी वैज्ञानिक व्यवस्था हुई। यातायात का प्रबन्ध भी बहुत संतोषजनक रहा।

स्वयंसेवक दल के अधिपति थे इस कार्य के भारतवर्ष भर के एक विशेषज्ञ ठाकुर छेदीलालजी, जो प्रयाग की प्रसिद्ध सेवा-समिति में वर्षों कार्य कर चुके थे। अतः स्वयंसेवकों का तो इतना सुन्दर प्रबन्ध रहा कि लोग कहते सुने गये कि स्वयंसेवकों का इतना सुन्दर प्रबन्ध कांग्रेस के किसी अधिवेशन में नहीं हुआ था। स्वयंसेवकों की संख्या थी तीन हजार, जिनमें तीन सौ महिला स्वयं-

सेविकाएँ थीं। ये सब स्वयंसेवक और स्वयंसेविकाएँ महाकोशल के हर जिले से आये थे।

और इस अधिवेशन की सबसे आकर्षक वस्तु सिद्ध हुई कांग्रेस के सभापति का बावन हाथियों के रथ में निकलनेवाला जुलूस। कैसा प्राचीन कलापूर्ण विशाल बना था वह रथ और कहाँ-कहाँ से वे बावन हाथी मँगाये गये। सबसे अधिक और चाँदी-सोने के हौदों, भूषणों, जरी की झूलों से सुसज्जित हाथी भेजे सरगूजा के महाराजा साहब ने।

जहाँ तक स्वागत-समिति के सारे प्रबन्ध का प्रश्न है वहाँ तक उस समय यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गयी कि उसके पूर्व ऐसा अच्छा प्रबन्ध किसी भी कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत-समिति ने नहीं किया था। अधिवेशन के अन्तिम दिन जब श्रीमती सरोजिनी नायडू ने स्वागत-समिति को धन्यवाद दिया तब उन्होंने अपने भाषण में यह बात कहते हुए यहाँ तक कह डाला कि गोविन्ददास के प्रबन्ध के सामने हरिपुरा का सरदार वल्लभभाई का प्रबन्ध भी तुच्छ था। और ऐसे प्रबन्ध पर भी सारे अधिवेशन का सस्ते का समय होने के कारण कुल खर्च आया लगभग ढाई लाख रुपया। इस रकम में से करीब अस्सी हजार तो आया दान से, शेष टिकटों की बिक्री आदि से। खर्च के बाद कुछ रुपया बचत में भी रहा। स्वागत-समिति ने हिसाब भी बड़ी अच्छी तरह रखा जिस पर उसे अ० भा० कांग्रेस कमेटी के आडीटर से अनेक साधुवाद मिले। कमेटी के इतने अच्छे ढंग से हिसाब रखे जाने का प्रधान श्रेय था कटनी के श्री गोविन्दप्रसादजी खंपरिया को।

अधिवेशन में बड़ी धूमधाम रही। कांग्रेस नगर, प्रदर्शनी, जुलूस, झंडा-अभिवादन, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा कांग्रेस के खुले अधिवेशन सभी दर्शनीय हुए। कोई पाँच लाख मानवों की भीड़ हुई।

मेरे समस्त साथियों के पूर्ण प्रेम तथा सच्चे सहयोग के कारण मैं इस कार्य में जो सफलता प्राप्त कर सका उसे मैं अपने जीवन की महान् से महान् बातों में एक मानता हूँ। इस अधिवेशन के कारण मैं नौ दिन और नौ रात एक क्षण भी नहीं सो सका। इस अधिवेशन में मेरे निजी सचिव का काम किया श्री अनंतराम त्रिवेदी ने और उनका काम भी अत्यन्त सराहनीय रहा।

परन्तु जब हम राजनैतिक दृष्टि से त्रिपुरी के इस कांग्रेस अधिवेशन को देखते हैं तब हमें मानना पड़ता है कि कांग्रेस के अधिवेशनों में यह अधिवेशन एक बड़े से बड़ा असफल अधिवेशन था। गान्धीजी की इच्छा के विरुद्ध नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इस अधिवेशन के सभापति चुने गये और इस चुनाव पर गान्धीजी के सदृश महान् व्यक्ति ने भी तलमलाकर यहाँ तक कह डाला कि सुभाष बोस की जीत और डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया की हार उनकी व्यक्तिगत हार है। सुभाष बाबू के चुने जाते ही उस समय की कांग्रेस कार्यकारिणी ने त्याग-पत्र दे दिया और मुझे तो इन सदस्यों के आचरण का सबसे अधिक हास्यास्पद दृश्य वह दिखा जिसमें अ० भा० कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के प्रथम दिन ये लोग मंच पर न बैठ नीचे बैठे तथा मंच पर तब आये जब सुभाष बाबू ने इनसे मंच पर बैठने की अपील की। सचमुच ही रागद्वेष का जीतना छोटा काम नहीं है। गान्धीजी इस अधिवेशन में नहीं आये और अधिवेशन के समय ही उन्होंने राजकोट में उपवास किया। सभापति सुभाष बाबू बीमारी में आये और सारे अधिवेशन में बीमार ही रहे, जिसके कारण वे न जुलूस में जा सके और न अधिवेशन की कार्रवाई का संचालन कर सके। अधिवेशन की कार्रवाई चलायी मौलाना अबुल कलाम आजाद ने। सुभाष बाबू की इस बीमारी को कई अखिल भारतीय नेताओं ने ढोंग तक कहा। मुझे आश्चर्य हुआ ऐसी बात सुन कर, पर ऐसी बात मुँह से निकालते उन्हें कोई संकोच तक न हुआ। कांग्रेस में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं हुआ जिसका उस काल की राजनीति पर कोई व्यापक प्रभाव पड़े। सबसे अधिक महत्त्व मिला पं० गोविन्दवल्लभ पंत के उस प्रस्ताव को जिसमें उन्होंने कहा था कि सुभाष बाबू अपनी कार्यकारिणी गान्धीजी की इच्छानुसार बनावें। कांग्रेस के उस अधिवेशन में पंतजी के जिस प्रस्ताव को सबसे अधिक प्रधानता मिली उसे मैं इस अधिवेशन का सबसे बेहूदा प्रस्ताव मानता हूँ। भाषणों में भी सभापति और स्वागताध्यक्ष के भाषण के सिवा कोई महत्त्वपूर्ण भाषण नहीं हुआ। सारे अधिवेशन में सभी लोग अनमने-अनमने से रहे।

परन्तु इस सब में स्वागत-समिति का कोई दोष न था।

× × ×

त्रिपुरी कांग्रेस के कुछ दिन पूर्व ही मेरे बड़े पुत्र मनमोहनदास का मेरठ निवासी श्री रामगोपालजी माहेश्वरी की कन्या शान्ताकुमारी से विवाह हुआ। विवाह बड़ी सादगी से तथा सारे समाज-सुधार के सिद्धान्तों के अनुसार परदा निवारण करके किया गया। मेरी पुत्रवधू को देख मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मनमोहनदास इस समय बी० ए० में पढ़ रहे थे।

राजनीति से अवकाश ग्रहण

कुछ कारण ऐसे आये कि जिनकी वजह से त्रिपुरी कांग्रेस के पश्चात् तुरन्त ही मुझे राजनीति से अवकाश ग्रहण करना पड़ा। सन् १९२० के अन्त में मैंने राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया था और अब तक मैंने जितने काम किये थे और जितने स्थानों पर मैं रहा था, उन सब कामों में त्रिपुरी कांग्रेस का अधिवेशन सबसे बड़ा काम था तथा उन सब स्थानों में कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष का स्थान सबसे बड़ा स्थान था। फिर नेताओं के झगड़ों के कारण चाहे कांग्रेस के इस अधिवेशन में कोई महत्त्वपूर्ण बात न हो सकी हो, पर जहाँ तक स्वागत-समिति के प्रबन्ध का सम्बन्ध है, वहाँ तक सभी एक मत थे कि कांग्रेस के इस अधिवेशन का प्रबन्ध सन् २० से अब तक के समस्त अधिवेशनों से अच्छा था। ऐसे अवसरों को पाकर उनमें सफलता प्राप्त कर मनुष्य अपने और अधिक उत्कर्ष की बातें सोचते तथा नये-नये मार्गों को खोजते हैं, पर मेरे सम्बन्ध में उल्टी बात हुई और जिस पथ पर मैं गत १८ वर्षों से चल रहा था हठात् मुझे उस पथ को छोड़ना पड़ा। मेरे इस अवकाश ग्रहण के निम्नलिखित कारण थे—

(१) मैंने त्रिपुरी कांग्रेस में जो कुछ देखा, सुना और भोगा था उससे मेरा मन अत्यधिक ग्लानि से भर गया था। प्रजातंत्र की दुहाई देनेवाले नेताओं का सुभाष बाबू के चुनाव पर इस प्रकार का रोष तथा आपसी झगड़ा मेरी समझ में न आता था। सुभाष बाबू की जीत पर गान्धीजी के सदृश महापुरुष का तलमलाकर यह कहना कि यह मेरी हार है, मुझे किसी प्रकार युक्तिसंगत न दिखायी पड़ता था। गान्धीजी का त्रिपुरी न आकर उसी समय राजकोट जा उपवास करने में चाहे उनके द्वारा कहे गये अन्य कारण ही सर्वथा सत्य हों, पर बार-बार बरजने पर भी मेरा मन न जाने क्यों यही सोचता था कि वे सुभाष बाबू के सभापति चुने जाने के कारण ही वे त्रिपुरी नहीं आये। गान्धी जी के विषय में ऐसी बात की शंका भी कदाचित् पाप है, उनके त्रिपुरी न

आने से त्रिपुरी का कांगेस अधिवेशन जो श्री हीन हो गया उसके स्वागताध्यक्ष होने के कारण इसका प्रभाव भी मेरे उपर्युक्त विचार में हो सकता है, पर जब इस पुस्तक में मैं आत्म-निरीक्षण करने बैठा हूँ और वह असत्य से दूर रह, सत्य, केवल सत्य का आश्रय लेकर तब यदि मेरे मन में कोई पापमय विचार भी उठे हों तो उन्हें भी स्पष्ट लिखना मेरा कर्त्तव्य ही नहीं, धर्म हो जाता है। कांग्रेस के कैम्प में आकर ठहरनेवाले बड़े से बड़े नेताओं को भी दो-चार दिन रहने के लिए भी अपने आराम की व्यवस्था का कितना ध्यान रहता था, इसका भी मेरे मन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और जिस बात ने मेरा हृदय ग्लानि से सबसे अधिक भर दिया वह था एक बहुत बड़े अखिल भारतीय नेता का कथन कि सुभाष बाबू की बीमारी यथार्थ में बीमारी नहीं, ढोंग है।

(२) घर की आर्थिक स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गयी थी। सरकार कोर्ट ऑफ वार्ड्स के प्रबन्ध द्वारा कर्ज के एक अंश को ही कुछ बड़े रहनदारों को जायदादें दे-दे कर चुका पायी थी। जायदादों की कीमत और अधिक गिर गयी थी अतः जायदाद न बिक सकने के कारण जो कर्ज किसी जायदाद पर नहीं था वह न चुक पाया था और नालिशों पर नालिशें होते देख सरकार ने कोर्ट आफ वार्ड्स छोड़ दी थी। मध्य प्रान्त में कर्जदारों की रक्षा के लिए जो एक "डेट कन्सीलिएशन" का कानून था और जिसके अनुसार पचास हजार के कर्ज तक के फैसले करने के लिए कर्ज बोर्ड नियुक्त थे उन्हें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित होने के पश्चात् पिताजी ने कुछ अन्य कर्जदार मालगुजारों को साथ ले दस लाख तक के कर्ज के फैसले करने का अधिकार दिलवाया था, वह प्रान्तीय कांग्रेस मन्त्रिमण्डल का एक अनुचित कार्य मान कांग्रेस हाई कमाण्ड द्वारा फिर से पचास हजार का ही करवा दिया गया था। सन् १९१३ में हमारे घर की जो आर्थिक स्थिति हो गयी थी इस समय फिर करीब-करीब वैसी ही हो गयी थी। उसी समय के सदृश पिताजी इस समय भी अत्यन्त उद्विग्न थे। जबलपुर और मेरे प्रान्त के अनेक लोग मेरी अब तक की सारी सेवाओं को भूल यह कहा करते थे कि जो व्यक्ति अपने घर को नहीं सुधार सकता वह देश का क्या कल्याण करेगा। मेरा वर्षों से घर से कोई आर्थिक सम्बन्ध न रहा था फिर भी मैं उस घर में पैदा हुआ था, अपने पिता का इकलौता

पुत्र था, पिताजी बहुत वृद्ध होते जा रहे थे और मेरे बच्चे अभी अल्पवयस्क थे। अतः मुझ पर घर को सुधारने की भी जिम्मेदारी है यह बात न साधारण जनता की दृष्टि से ओझल हो सकती थी और न नेताओं की दृष्टि से। नेताओं ने तो सबसे आगे बढ़ मेरी खिल्ली-सी उड़ाना आरम्भ कर दिया था।

(३) "आदर्श चित्र" कम्पनी के लिए मैं जब अफ्रिका तक से रुपया लाया था तो अब उसे ठीक करने का मेरा उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ गया था।

त्रिपुरी कांग्रेस में जो कुछ हुआ था, उसकी ग्लानि, घर की घोर संकटमय आर्थिक अवस्था और "आदर्श चित्र" के काम के कारण मैंने राजनीति से अवकाश ग्रहण करने का निश्चय किया। इस निश्चय ने मुझे कम ठेस पहुँचायी ऐसी बात न थी, पर मुझे अन्य कोई रास्ता भी न दीखता था। मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता से स्तीफा दिया। केन्द्रीय धारा सभा से उस समय त्याग-पत्र देने की इसलिए आवश्यकता न थी कि भारत सरकार द्वारा भारतीय सेनाओं को युद्ध में भेजने के कारण कांग्रेस दल ने अपने सदस्यों को केन्द्रीय धारा सभा की सदस्यता से स्तीफा न देते हुए केन्द्रीय धारा सभा के अधिवेशनों में न जाने का आदेश दिया था।

जब मैंने राजनीति से अवकाश ग्रहण किया तब इतनी बात अवश्य कह दी कि यदि स्वतन्त्रता का कोई संग्राम छिड़ा तो मैं सब कुछ छोड़ उस संग्राम में अवश्य सम्मिलित हो जाऊँगा।

राजनीति से अवकाश ग्रहण कर मैंने कलकत्ते के शेयर बाजार और पाट तथा हैसियन बाजार में काम करने एवं "आदर्श चित्र" के नये फिल्म "अफ्रिका में भारत" कलकत्ते में बनाने का निश्चय कर कलकत्ते में रहना तय किया। परन्तु कलकत्ते जाकर रहने का निर्णय करने के बाद भी कलकत्ते में रहने का प्रबन्ध करते-करते और वहाँ जाते-जाते मुझे कोई पाँच छः-महीने का समय लग गया।

सन् १९३४ से ३९ तक की राजनैतिक घटनाओं पर एक विहंगम दृष्टि

अपने कलकत्ते के इस नये जीवन पर कुछ लिखने से पूर्व सन् ३४ से ३९ तक की राजनैतिक स्थिति पर कुछ विचार करना उचित होगा। १९३४ तक यह बात भली भाँति व्यक्त हो चुकी थी कि सरकार कांग्रेस को मिटाने के लिए समर्थ नहीं है। साथ ही सत्याग्रह का जो रुख होगया था वह भी गान्धीजी को ठीक न जँचता था। वे यह महसूस कर रहे थे कि गुप्त कार्रवाई का बड़ा अहितकर परिणाम हो सकता है। साथ ही उन दिनों सत्याग्रह का उतना वेग भी न रहा था। कांग्रेस के भी कुछ बड़े नेता यह सोच रहे थे कि जो परिस्थितियाँ पैदा हो रही थीं उनमें यह वांछनीय है कि सरकार और कांग्रेस का यह संघर्ष खत्म हो जाय और दोनों आपस में अघोषित संधि कर लें। अतः १९३४ में पहले कांग्रेस ने सत्याग्रह बन्द करने का निश्चय किया। उसके पश्चात् सरकार ने कांग्रेस पर से सब प्रतिबन्ध हटा लिये और कांग्रेस के जब्त भवनों तथा कार्यालयों को वापस लौटा दिया। कांग्रेस के नेता भी शनैः शनैः छोड़ दिये गये।

प्रतिबन्ध हटने के कुछ दिनों पश्चात् ही कांग्रेस का देशव्यापी संगठन पुनः क्रियाशील हो उठा। संभवतः सरकार यह न समझती थी कि इतनी शीघ्रता से कांग्रेस पुनः प्रबल हो जायगी, किन्तु जो संस्था जनता के हृदय में बसी होती है वह चाहे बाहरी तौर से कैसी ही क्षीण क्यों न लगे उसका बल सर्वदा अक्षय होता है। इस बात का सबूत भी कुछ समय बाद ही मिल गया।

अंग्रेजी सरकार यह बात भली भाँति समझ गयी थी कि भारत की जनता के क्षोभ को वह तभी किसी सीमा तक दूर कर पायेगी जब वह शासन के ढंग में ऐसा कोई परिवर्तन करे जिससे जनता को यह लगे कि राजतन्त्र में उसका अपना भी विशेष हाथ है। कम से कम इतना तो अंग्रेजी सरकार समझती ही थी कि नरम दलवालों को अपने साथ मिलाने और गरम दलवालों को दबाने की

दुहरी नीति पर चल कर ही वह भारत की जनता को एक होने और सरकार का मुकाबला करने से रोक पायेगी। अतः इंगलैण्ड में निरन्तर शासन तंत्र में ऐसे परिवर्त्तनों के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा था जिनसे यह उद्देश्य पूरा हो सके। सन् १९३४ में प्रस्तावित परिवर्त्तनों का मसविदा "श्वेत पत्र" के रूप में प्रकाशित कर दिया गया और १९३५ में कुछ परिवर्तनों के पश्चात् उन्हें विधि का रूप दे दिया गया।

इस नये संविधान के अनुसार प्रान्तीय क्षेत्र में विधान सभाएँ पूर्णतः चुने हुए सदस्यों से मिलकर बननेवाली थीं और प्रान्तों के मन्त्रिमण्डल कुछ विषयों को छोड़कर इन विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी होने थे। केन्द्र में भी विधानमण्डल लगभग चुने हुए सदस्यों का ही बननेवाला था। हाँ, उसमें भारत संघ में सम्मिलित होने वाली देशी रियासतों के प्रतिनिधि भारतीय नरेशों द्वारा नामजद किये जाने थे। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय क्षेत्र में कुछ विषय भारत के गवर्नर-जनरल के हाथ में ही रहने थे। केन्द्र और प्रान्त दोनों में ही गवर्नर-जनरल को अनेक विशेषाधिकार दिये गये थे और प्रान्तीय क्षेत्रों में गवर्नर के भी अनेक विशेषाधिकार थे। इन विशेषाधिकारों के ही कारण आलोचकों का यह कथन था कि १९३५ के संविधान ने जनता को स्वतन्त्रता देने के बजाय गवर्नरों को ही स्वतन्त्रता प्रदान की है कि वे अपनी मनमानी कर सकें। किन्तु इतना स्पष्ट था कि यदि प्रान्तीय विधानमण्डलों में कांग्रेस अपना बहुमत कर ले तो उसके लिए यह सम्भव होगा कि वह प्रान्तों में अपने मन्त्रिमण्डल बनाये एवं प्रान्तीय क्षेत्र में पर्याप्त सीमा तक राज-काज को अपनी इच्छा के अनुकूल चला सके। दूसरे शब्दों में यह स्थिति पैदा होगयी थी कि सरकार के प्रान्तीय गढ़ पर कांग्रेस जनमत द्वारा अपना कब्जा कर ले।

अतः अनेक कांग्रेस जनों का यह मत था कि इस संविधान के अमल में आने पर कांग्रेस जनमत के सहारे इन विधानमण्डलों पर अपना कब्जा जमाये और प्रान्तों में शासन की बागडोर सँभाले।

सन् १९३४ में ही केन्द्रीय धारा सभा का चुनाव होनेवाला था। इस चुनाव में भाग लेने का कांग्रेस ने निर्णय किया। केन्द्रीय धारा सभा के चुनावों

से भली भाँति व्यक्त हो गया कि जनता में कांग्रेस का कितना असर है। अनेक जगहों में कांग्रेस के उम्मीदवार भारी बहुमत से जीते तथा विपक्षियों की जमानतें तक जब्त हो गयीं। जिन स्थानों के बारे में सरकार और सरकार भक्त यह समझे बैठे थे कि उनमें तो सरकार के हिमायती ही जीतेंगे वहाँ भी सरकार के पक्षपातियों की हार हो गयी।

१६३६ के अन्तिम दिनों में नये संविधान के अधीन गठित होनेवाली प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। सरकारी उच्च कर्मचारियों ने छिपे तौर से यह प्रयास किया था कि वे सब लोग जो सरकार के साथी थे एवं कांग्रेस के विरोधी थे अपना एक दल तैयार करें तथा चुनाव में उस दल के नाम से संगठित रूप में भाग लें। युक्त प्रान्त और बिहार में ऐसा दल सफलता से संगठित हो गया था। किन्तु सरकार और नये दलवालों के सब प्रयास विफल हुए, कांग्रेस के उम्मीदवारों को आशातीत सफलता हुई।

अधिकतर लोग तो यह समझे बैठे थे कि पिछले अनुभव के अनुसार इस बार भी नगर क्षेत्रों में कांग्रेस के उम्मीदवारों को सफलता मिलेगी और ग्राम्य क्षेत्रों से जमींदार वर्ग के लोग चुने जायँगे। किन्तु इन लोगों ने इस बात को तब तक न समझ पाया था कि १६३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन ने भारतीय राज्य-क्रान्ति को भारत के ग्राम्य प्रदेशों में पूर्णतः फैला दिया है। जब निर्वाचन के फल प्रकाशित होने लगे तब पता चला कि नगरों में मिली सफलता से कहीं बड़ी सफलता कांग्रेस को ग्राम्य क्षेत्रों में मिली है। नगरों में तो कांग्रेस-विरोधियों को कुछ मत मिले भी थे किन्तु ग्राम्य क्षेत्रों में तो कांग्रेस विरोधियों को नगण्य मत मिले एवं लगभग सर्वत्र ही उनकी जमानतें जब्त हुईं।

किन्तु कांग्रेस को यह सफलता साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों में तथा हरिजनों के लिए रक्षित क्षेत्रों में ही मिली। मुस्लिम सम्प्रदायवालों के लिए रक्षित क्षेत्रों में कांग्रेस को वैसी सफलता न मिली, यद्यपि उन क्षेत्रों में से कुछ में कांग्रेस के उम्मीदवार सफल हुए, किन्तु अधिकतर क्षेत्रों में कांग्रेस के उम्मीदवार असफल ही रहे।

यह निर्वाचन भारतीय इतिहास का एक और मोड़ सिद्ध हुआ। इस

निर्वाचन ने सर्वप्रथम तो यह बात स्पष्ट कर दी कि अनेक दशाब्दियों से जिन लोगों का ग्राम्य क्षेत्रों पर प्रभुत्व एवं दबदबा चला आता था वह अब समाप्त हो गया है और ग्राम्य क्षेत्रों का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में चला गया है, जो या तो नगरवासी हैं या फिर कृषक वर्ग के ही हैं। जमींदार वर्ग का जो राजनैतिक प्रभुत्व इसके पूर्व था वह इसी आधार पर था कि वे ग्राम्य क्षेत्रों के नैसर्गिक नेता हैं। जब से विधानमण्डल केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन तन्त्र के अंग बने थे तभी से उनमें जमींदार वर्ग का प्रधान प्रतिनिधित्व रहा था। किन्तु इस निर्वाचन ने सहसा जमींदार वर्ग के इस राजनैतिक प्रभुत्व का अन्त कर दिया। इसी बात को ध्यान में रखकर नवाब छतारी ने यह कहा था कि मत-पेटियों द्वारा नयी क्रान्ति हो गयी है।

यह भी स्मरण रहे कि भारत में जितने साम्राज्य हुए उन सबका मूल आधार सामन्त या जमींदार वर्ग ही रहा था। मौर्यों, गुप्तों, राजपूतों, पठानों, मुगलों—सबके साम्राज्य मण्डलेश्वरों के ही सहयोग पर निर्भर करते थे। अंग्रेजों का साम्राज्य भी जमींदारों के समर्थन पर बहुत कुछ आश्रित था। यह होना अनिवार्य भी था। भारत कृषि प्रधानदेश है। यहाँ की जनता की बहुत बड़ी संख्या खेती-बाड़ी पर निर्भर करती है तथा ग्राम्य प्रदेशों में रहती है। ये कृषक अनेक छोटे-छोटे ग्रामों में बसे हुए हैं। अतः जिसे भी भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित करना एवं चलाना है उसी के लिए यह अनिवार्य है कि वह भारत की इस विशाल जनसंख्या पर अपना दबदबा और प्रभुत्व बनाये रखे। किन्तु सफलता से यह प्रभुत्व तभी कायम किया जा सकता है तथा बनाया रखा जा सकता है जब इन बिखरे हुए कुछ ग्रामों के आस-पास साम्राज्य का ऐसा प्रतिनिधि और प्रतीक रहता हो जिसका अपना आर्थिक हित साम्राज्य के बने रहने से जकड़ा हुआ हो। अतएव हर साम्राज्य ने ग्राम्य प्रदेशों में इन जमींदारों को ही अपनी शक्ति तथा प्रभुता का आधार बनाया था। अब इन जमींदारों की शक्ति एवं प्रभुत्व के अन्त का यह अर्थ था कि ग्राम्य प्रदेशों पर से साम्राज्य की प्रभुता उठ गयी या उठने लगी। सन् १९३६-३७ के निर्वाचन ने इस बात को स्पष्ट कर दिया और भारत से अंग्रेजी साम्राज्य के अन्त का प्रारम्भ कर दिया। मैं अन्त का प्रारम्भ इसलिए कहता

हूँ कि अपने साम्राज्य को बनाये रखने का एक और सहारा अंग्रेजों के पास था। वह था मुसलमानों का हिन्दुओं के प्रति विद्वेष। अंग्रेज यह जानते थे कि जब तक मुसलमान हिन्दुओं का विरोध करते रहेंगे तब तक अंग्रेजों को हिन्दुओं के मुकाबले में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त होता रहेगा। इस बल से वे हिन्दुओं को दबाने में सफल रहेंगे। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना उचित है कि भारतीय राष्ट्रीयता का प्रमुख आधार हिन्दू इसलिए हो गये थे कि इस देश में उन्हीं की अधिक संख्या है। इस कारण उन्हें इस बात की कोई आशंका नहीं थी कि राज्य-परिवर्त्तन से उनकी अपनी शक्ति में कोई कमी आयेगी; वरन् उन्हें तो यह विश्वास था कि अंग्रेजों के चले जाने के पश्चात् अपने जन-बल के आधार पर इस देश के शासन में उनका ही प्रधान हाथ होगा। यह ठीक है कि राष्ट्रवादियों में ऐसे अनेक व्यक्ति भी थे जिनके मन में हिन्दू मुसलमान का विभेद न रहा था। ये लोग पाश्चात्य सभ्यता और दर्शनशास्त्र से इतने प्रभावित हो गये थे कि उनके मन में मजहब का कोई विशिष्ट महत्त्व न रह गया था, किन्तु इन लोगों की संख्या कुछ अधिक न थी। अधिकतर राजनीतिज्ञ तो हिन्दू या मुसलमान संस्कृति तथा विचारधारा से प्रभावित थे। जहाँ तक ऐसे राजनीतिज्ञों का प्रश्न है उनमें से जो हिन्दू थे उनको यह आशंका न थी कि अंग्रेजों के जाने के पश्चात् उनकी शक्ति में किसी प्रकार की कमी आयेगी। उनमें जो मुसलमान थे उनको यह भय अवश्य था कि अंग्रेजों के जाने के पश्चात् लोकतन्त्रात्मक भारत में उनका प्रभुत्व वैसा न रहेगा जैसा कि उनका अंग्रेजों की मौजूदगी में है। इसलिए अंग्रेजों को यह पूरा भरोसा था कि भारतीय राष्ट्रीयता के मुकाबले में उन्हें मुसलमानों का समर्थन अवश्य मिलेगा।

अतः इस निर्वाचन के पश्चात् अंग्रेजों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे मुसलमानों का पूरा सहारा लें। साथ ही इस निर्वाचन में मुसलमानों को भी पहली बार यह स्पष्ट हो गया कि इस देश से अंग्रेजों का साम्राज्य उठने वाला है, इसलिए उन्हें अब यह प्रयास करना चाहिए कि अंग्रेजी साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् भारत में उनका पर्याप्त राजनैतिक प्रभुत्व तथा दबा-दब रहे। यहाँ यह बात कह देनी भी ठीक है कि मुसलमानों के मन में

विशेषतः मुसलमान सामन्तों और साहूकारों के मन में, यह विचार पैदा हुआ था कि कुछ शताब्दियों पूर्व भारत पर उनके पूर्वजों का ही साम्राज्य था। वे यह भी माने बैठे थे कि अंग्रेजों ने उनसे ही भारत का साम्राज्य छीना था। अतः अब उन्हें यह स्वप्न दिखायी देने लगा कि अंग्रेजों के जाने के पश्चात् वे फिर भारत के शासक हो सकते हैं। साथ ही उनके मन में यह बात तो बैठ ही गयी कि किसी न किसी तरह वे हिन्दुओं के हाथ में तब तक राजनैतिक तन्त्र न जाने देंगे जब तक कि उनकी अपनी राजनैतिक स्थिति सुनिश्चित न हो जाय। इस प्रकार एक ओर तो जमींदारों के ग्राम्य नेतृत्व के समाप्त हो जाने के कारण अंग्रेजों को भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध मुसलमानों का सहारा ढूँढना पड़ा एवं दूसरी ओर मुसलमानों को अंग्रेजों को अपना सहारा इसलिए बनाना पड़ा जिससे कि समस्त भारत पर हिन्दुओं का प्रभुत्व न हो जाय। १९३६-३७ के पहले भी अंग्रेजों ने मुसलमानों का सहारा ढूँढा था, किन्तु उस समय वे उनके एक मात्र आधार न रहे थे। सन् १९३६-३७ के निर्वाचन के पश्चात् अंग्रेजों के लिए मुसलमान ही एक मात्र सहारा रह गये। यही कारण है कि सन् १९३७ के पश्चात् मुसलमान साम्प्रदायिकता ने वह रौद्र रूप धारण किया जिसका बाद में अत्यन्त भीषण परिणाम हुआ।

इस निर्वाचन का तीसरा परिणाम यह हुआ कि प्रथम बार कांग्रेसजन के हाथ में राजनैतिक तन्त्र आया और उनको यह सुविधा मिली कि वे देश का भाग्य अपने विचारों के अनुसार निर्मित करें। भारत के छः महत्त्वपूर्ण प्रान्तों में कांग्रेस सदस्यों का पूर्ण बहुमत था। अन्य प्रान्तों में भी उनकी संख्या इतनी थी कि वे शासन की नीति पर पूरा प्रभाव डाल सकें। कांग्रेस ने इस बात का प्रबन्ध किया कि कांग्रेस जन इस शासन-शक्ति का सम्यक् प्रयोग करें। कांग्रेस की एक केन्द्रीय संसदीय समिति स्थापित की गयी जिसके सदस्य सरदार वल्लभभाई पटेल, देशरत्न डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और मौलाना अबुल कलाम आजाद बनाये गये।

जहाँ इस शासन-शक्ति के हाथ में आने से कांग्रेस का जनता में प्रसर और भी बढ़ा वहाँ यह बात भी हुई कि प्रथम बार कांग्रेस तथा भारतीय राजनैतिक क्रान्ति में विभेद भी पैदा हुआ। भारतीय राजनैतिक क्रान्ति में

हर दल एवं हर विचार के वे सब लोग थे जो भारत से अंग्रेजों की राजनैतिक प्रभुता को समाप्त करना चाहते थे। ऐसे लोगों में साहूकार भी थे, मिल मालिक भी थे, कुछ इने-गिने जमींदार भी थे, व्यापारी भी थे, कृषक भी थे और मिल मजदूर भी थे। स्वभावत: इनमें से कुछ लोग व्यक्तिवादी, कुछ समाजवादी, कुछ साम्यवादी, कुछ अराजकतावादी भी थे। दूसरे शब्दों में भारतीय राजनैतिक क्रान्ति एक प्रकार का सांघिक आन्दोलन था, जो अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए मैदान में आया था। किन्तु जब शासनतन्त्र कांग्रेसजन के हाथ में आया तब यह प्रश्न पैदा हुआ कि वह किन विचारों के अनुकूल चले। अत: कांग्रेस में कई दशाब्दियों के पश्चात् पुन: आदर्शों के आधार पर संघर्ष पैदा हुआ। यदि कांग्रेस की इतनी बड़ी जीत न हुई होती तो संभवत: यह विचार संघर्ष अधिक प्रबल न होता। पर कांग्रेस की विजय से यह स्पष्ट हो गया था कि भविष्य में शासनतन्त्र पर भारतीयों का ही प्रभुत्व रहेगा, इसके कारण अब प्रभुता के लिए आन्तरिक संघर्ष आरम्भ हो गया। स्मरण रहे कि संसार की हर राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास में इस प्रकार का संघर्ष हुआ है। कारण भी स्पष्ट है। राजनैतिक क्रान्ति सर्वदा तभी सफल होती है जब शासक वर्ग के विरुद्ध जनता के अनेक वर्ग मिल जाते हैं और शासक वर्ग को अपदस्थ करने का हिंसात्मक या अहिंसात्मक प्रयास करते हैं। किन्तु सफलता मिलने के पश्चात् क्रान्तिकारियों के विभिन्न वर्गों में की एकता टूट जाती है, प्रत्येक वर्ग अपने ही हितों को सर्वोपरि करने का प्रयास करता है और उनमें आपस में संघर्ष आरम्भ हो जाता है। यही बात हमारे यहाँ भी इस निर्वाचन के पश्चात् हुई। यह ठीक है कि हमें ऐसी आशंका न थी। हमने तो अपनी राजनैतिक क्रान्ति का प्रधान अस्त्र शुद्ध नैतिकता बनाया था। हमारा यह विचार था कि हम अपने उच्च चरित्र बल और सत्य के प्रति आग्रह से अपने विरोधियों के हृदय में भी परिवर्त्तन कर देंगे। अत: हम में से किसी ने यह न सोचा था कि विजय के दिन ही हम आपस में लड़ने-भिड़ने लगेंगे। किन्तु शासनतन्त्र हाथ में आने के पश्चात् हमारे लोगों में ही विद्वेष तथा कलह बढ़ने लगा। यह अवांछनीय बात थी। इससे यह भी स्पष्ट था कि हमने सत्याग्रह के ठीक स्वरूप को न तो पूर्ण रीति से पहचाना था और न उसकी

चुनौती को स्वीकार किया था।

बाद में मेरे प्रान्त में जो घटनाएँ घटीं, कांग्रेस के अन्दर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए जो दलबन्दियाँ हुईं, उनके कारण कांग्रेस में जो विषाक्त वातावरण पैदा हुआ उनका विशद वर्णन देने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, किन्तु मेरा यह मत है कि ये सब उसी ऐतिहासिक घटना के परिणाम थे जिसके कारण कांग्रेस भारतीय शासनतन्त्र पर अपना प्रभुत्व कर पायी थी।

यह बात पूर्णतः सम्भव थी कि अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने से पूर्व ही भारतीय राजनैतिक क्रान्ति के अनेक जननायक आपस में ही लड़-लड़ा कर एक दूसरे को इतना निर्बल कर दें कि राजनैतिक क्रान्ति की सफलता दशाब्दियों के लिए टल जाय। जैसे कच्चे आम के खा लेने से दाँत खट्टे हो जाते हैं और जठराग्नि गड़बड़ा जाती है वैसे ही यह भी भय था कि राजनैतिक प्रभुता रूपी कच्चे आम के खाने से कहीं हमारे देशवासियों को भी विकार न हो जाय। इसी भय से अनेक कांग्रेसी राजनीतिज्ञों ने मन्त्रिमण्डल स्वीकार करने का विरोध भी किया था। मैं भी उनमें से एक था। किन्तु इसके पूर्व कि कांग्रेस का यह आन्तरिक कलह कोई विशिष्ट खराबी पैदा करे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रलयंकारी युद्ध छिड़ गया और उस युद्ध के कारण भारत की राजनीति का रुख भी बदल गया।

मेरा कलकत्ते का जीवन

कलकत्ते का मेरा जीवन अब तक के बीते हुए जीवन से सर्वथा भिन्न था।

"आदर्श चित्र" के "अफ्रिका में भारत" फिल्म के निर्माण में कोई नयी बात न थी, क्योंकि बम्बई में "धुँआधार" और कलकत्ते में "दलित कुसुम" फिल्मों को हम पहले बनवा चुके थे। फिल्म-जगत् में जब हमने "धुँआधार" बनाने के समय प्रवेश किया था उस समय यह जीवन भी सर्वथा नवीन था और इस जीवन के विषय में पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है। "अफ्रिका में भारत" बनाने के समय इस क्षेत्र के जीवन में कोई नयी बात न रह गयी थी। यह जीवन अब तक के बीते हुए जीवन से सर्वथा भिन्न होने के अन्य कारण थे।

शेअर बाजार और पाट बाजार मेरे लिए एक नयी दुनिया थी। कलकत्ते के ये बाजार, जिन्हें साधारण तौर पर बाजार कहा जाता है, उनसे सर्वथा भिन्न थे। साधारण तौर से बाजार कहे जानेवाले बाजारों में जो दूकानें होती हैं, उनमें विविध प्रकार की चीजें बेचने के लिए रहती हैं। अनाज के बाजार में अनाज के बोरे, कपड़े के बाजार में कपड़े की गाँठें, थान, इत्यादि, सोने-चाँदी के बाजार में सोने-चाँदी के गहने, साग-भाजी और फल-फूल के बाजार में साग-भाजी और फल-फूल आदि और गंज, बजाजी, सराफी तथा साग फल के मार्केट के सिवा जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ बिकती हैं वहाँ उन वस्तुओं की दूकानें। इन बाजारों में खरीददार जाते हैं और चीजों की बिक्री-खरीद होती है। बाजारों और दूकानों पर बातचीत भी चलती रहती है। पर कलकत्ते के शेअर और पाट के बाजार में न शेअर रहते हैं और न पाट। वहाँ होती हैं केवल बातें और ये बातें साधारण बातचीत के स्वर में नहीं पर ऐसे स्वर में जैसा स्वर कहीं आग लग जाने पर होहल्ले का होता है। किसी चीज के न रहने पर भी बातों में ही उसकी खरीद-बिक्री हो जाती है और इस क्रय-विक्रय में सैकड़ों, हजारों नहीं, लाखों-करोड़ों के सौदे होते हैं तथा इसी अनुपात में लाखों, करोड़ों के ही नफे-नुकसान। दोनों बाजार प्रायः एक ढंग से बने थे, और दोनों में ही

क्षेत्र और समाज-सुधार के क्षेत्र में मेरा जो स्थान था उसके कारण भी कलकत्ते के इस क्षेत्र के लोग मुझे जानते थे। फिर न जाने कैसे इन दोनों बाजारों में काम आरम्भ करते ही मुझे मुनाफा होने लगा। इसकी ऐसी धाक जमी कि तीन-चार महीने के भीतर ही मैं इस क्षेत्र का विशेषज्ञ माना जाने लगा और लोग मुझसे परामर्श कर-कर के व्यापार करने लगे। सन् १९३९ में जब मैं कलकत्ते गया उस समय वहाँ मकान और टैलीफोन मिलना बहुत ही सरल था। मैंने वहाँ के "लेक एरिया" में रहने के लिए एक "फ्लैट" लिया था और "क्लाइव स्ट्रीट" में दफ्तर के लिए एक जगह। दोनों स्थानों पर फोन भी लगवाये थे। मेरी व्यापारिक सफलता का संवाद फैलने में देर न लगी और दफ्तर तथा घर में दिन भर मेरे परामर्श के लिए कितने फोन आने लगे तथा कितनी व्यक्तिगत मुलाकातें होने लगीं! जब मुझे नफा होने लगा तब मेरे परामर्श से रोजगार करने वालों को भी। इस समय मैं एक विचित्र मनोवैज्ञानिक दशा में था। सर्वप्रथम तो व्यापार क्षेत्र, शेअर बाजार, पाट तथा हैसियन बाजार किसी का कोई अनुभव न रहने पर भी इस सफलता के कारण मुझे भी ऐसा जान पड़ने लगा जैसे सचमुच ही मैं कोई विशेषज्ञ होऊँ। दूसरे रोजगार में नफा होने पर भी मुझे शान्ति एक पल के लिए भी न थी। कुछ काम ऐसे होते हैं जिनमें असफलता मिलने पर मनुष्य उद्विग्न होता है, पर शायद सट्टा ऐसा धन्धा है जिसमें हानि में ही नहीं पर लाभ में भी मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती, वरन् जितना अधिक लाभ उतनी ही अधिक अशान्ति। यहाँ तक हुआ कि मेरी नींद भी बहुत कम हो गयी और भूख भी।

कलकत्ते से मेरे व्यापार आरम्भ करने के कुछ ही समय बाद विश्व का द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया।

यह युद्ध छिड़ा था धुरी राष्ट्र वाले देशों के, जिनमें तानाशाही थी, और प्रजातन्त्र वाले देशों के बीच। भारत प्रजातन्त्र का समर्थक था अतः यद्यपि भारत की सहानुभूति प्रजातन्त्रवादी देशों के साथ थी और गान्धीजी ने इंगलैण्ड के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित भी की तथापि युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण के बिना गान्धीजी और कांग्रेस ने युद्ध में कोई सहायता देने में असमर्थता प्रकट की। फिर गान्धीजी की अहिंसा का आदर्श भी उनके और

कांग्रेस के सामने था। लेकिन इस समय मेरा क्षेत्र राजनैतिक न होकर व्यापारिक था।

युद्ध की चर्चाओं का ही देश के बाजारों पर प्रभाव पड़ रहा था, युद्ध-घोषणा का तो अत्यधिक पड़ा। बाजारों पर ऐसी चीजों का जितना प्रभाव पड़ता है अन्य कहीं नहीं। इस प्रकार की छोटी-छोटी बात भी बाजारों को क्षणों में तेजी तथा मंदी की ओर ले जाती हैं। युद्ध का अर्थ ही बाजारों का तेज होना था। ऐसे ही अवसरों पर सट्टे-फाटके के क्षेत्रों में काम करनेवाले लखपति और करोड़पति हो जाते हैं। ऐसे मौकों पर लोग बनते अधिक हैं, बिगड़ते कम। पिछले युद्ध में भी कितने व्यापारी बन गये थे। फिर से वैसा ही अवसर आया था। मैं इस क्षेत्र में काम करने ही लगा था। मैंने सोचा मेरे जीवन में धन कमाने का यह ईश्वर-प्रदत्त अवसर है और मैं इस मौके का पूरा-पूरा लाभ उठाऊँगा।

यह युद्ध मेरे नवीन व्यापार को सचमुच ही वरदान सिद्ध हुआ और मेरे नफे बढ़ चले।

इस व्यापारिक सफलता के कारण अब मैंने अपनी मोटर जबलपुर से मँगवा ली और अपनी पत्नी को भी जबलपुर से बुलवा लिया। इस नये वायु-मण्डल में सफलता के सोपान पर चढ़ते हुए हम लोग एक नये ढंग से कलकत्ते में रहने लगे। मुझे ऐसा जान पड़ता था कि बहुत जल्दी मैं न केवल घर का कर्ज चुका दूँगा वरन् स्वयं करोड़पति हो जनता और नेताओं दोनों को यह सिद्ध कर दूँगा कि जिस धन का आज भी वे पूजन करते हैं, उस धन-उपार्जन की मुझ में भी क्षमता है तथा जनता एवं नेताओं के साथ पिताजी को भी मैं बता दूँगा कि मुझे सम्पत्ति से वंचित कर उन्होंने जिस सरकार का आश्रय लिया था वह सरकार उन्हें कोई सहायता न दे सकी और अन्त में मैं ही उनका सच्चा उद्धारक सिद्ध हुआ।

मैंने अपने जीवन में एक बात और देखी। मैं कभी भी बहुत दिन तक साहित्यिक क्षेत्र से सर्वथा पृथक् नहीं रह सका। जेल से निकले मुझे ५ वर्ष के करीब बीत चुके थे। इन वर्षों में मैं कोई साहित्यिक रचना न कर पाया था। मुझे इस व्यापारिक क्षेत्र में अशान्ति भी बहुत रहती थी अतः मन को कुछ

शान्ति देने के लिए मैंने रोजगार-धन्धे से कुछ समय बचा कुछ नाटक और लिखने का निश्चय किया। पाँच वर्ष के पश्चात् मैंने फिर से कलम उठायी और थोड़े ही समय में मैंने चार पूरे नाटक लिख डाले—"त्याग या ग्रहण", "हिंसा या अहिंसा," "प्रेम या पाप" और "आत्म-हत्या या आत्म-बलिदान"। बाद में अन्तिम नाटक "पतित सुमन" के नाम से प्रकाशित हुआ। ये सब नाटक समस्या नाटक हैं और ये जिन समस्याओं पर लिखे गये हैं, वे इनके नामों से ही प्रकट हो जाती हैं। ये सभी नाटक रंगमंच पर आ चुके हैं। इन पूरे नाटकों के सिवा मैंने कुछ एकांकी भी लिखे, जिनमें "धोखेबाज" नाटक में कलकत्ते के बाजारों का अच्छा दिग्दर्शन बन पड़ा है। इस समय "अफ्रिका में भारत" फिल्म में श्री गुलाब प्रसन्न "शाखाल" काम करते थे और इन दिनों श्री भगवती चरण वर्मा भी कलकत्ते में रहते थे। इन लोगों के सहयोग से मैं कलकत्ते के उस समय के अन्य साहित्यिकों से भी मिला। हम सब ने मिल कर निश्चय किया कि हिन्दी में कोई रंगमंच नहीं और कलकत्ता बंगाल में होने पर भी हिन्दी भाषा-भाषियों का सबसे बड़ा नगर है अतः कलकत्ते में हिन्दी रंगमंच के स्थापित करने का भी प्रयत्न किया जाय। मेरे "हिंसा या अहिंसा" नाटक को इस रंगमंच के प्रथम नाटक के रूप में खेलना तय हुआ और निश्चय किया गया कि इस नाटक के उद्‌घाटन की प्रार्थना महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से की जाय। नाटक के अन्य कार्यों का भार मेरे अन्य साहित्यिक मित्रों ने लिया, पर गुरुदेव से प्रार्थना कर उनकी स्वीकृति लेने का कार्य मेरे जिम्मे हुआ। लोगों का यह मत था, जो बहुत दूर तक सही था, कि कलकत्ते सदृश नगर में यदि हिन्दी का रंगमंच रवीन्द्र बाबू द्वारा उद्‌घाटित हो गया तो उसके स्थायित्व और उन्नति दोनों की बहुत बड़ी आशा है। गुरुदेव इस समय कलकत्ते में ही थे, अतः उनसे समय नियुक्त कर मैं उनसे मिलने चला।

इसके पहले मैंने रवीन्द्र बाबू को उन्हीं के एक नाटक में अभिनय करते हुए देखा था। इसके सिवा न मैंने उन्हें कहीं देखा ही था और न मेरा उनसे कोई व्यक्तिगत परिचय ही था; हाँ, उनका साहित्य जो हिन्दी अथवा अंग्रेजी के द्वारा प्राप्त था उसका मैंने अध्ययन अवश्य किया था। उनके जिन सेक्रेटरी के द्वारा उनकी मेरे साथ मुलाकात तय हुई थी अब वे मुझे लेकर कवि-सम्राट्

के कमरे में पहुँचे तब गुरुदेव एक आराम कुर्सी पर लेटे हुए थे। खाकी रंग का एक लम्बा कुरता और उसी रंग का एक ऐसा पाजामा जिसमें दोनों टाँगें अलग-अलग न ढक कर एक साथ ही ढकी हुई थीं, अर्थात् वह पाजामा यथार्थ में पाजामा न होकर बिना घेर का एक लहँगा-सा था, गुरुदेव के शरीर पर धारण था। उनको नाटक के अभिनय के समय देखे हुए मुझे कई वर्ष बीत गये थे और फिर उस अभिनय में मैंने उन्हें दूर से देखा था। आज मैंने इनके अत्यन्त सन्निकट से दर्शन किये। कैसा भव्य था वह रूप! सिर, मूँछों और दाढ़ी के लम्बे श्वेत केशों ने उनके गौरवर्ण को और भी शुभ्र बना दिया था। लम्बे-पूरे तथा भारी शरीर ने उन्हें भव्यता ही दी थी, भद्दापन नहीं। ऐसा व्यक्तित्व न जीवन में मैंने कभी देखा था और न आगे देखने की कभी आशा ही है।

सेक्रेटरी महोदय ने बंगला भाषा में गुरुदेव को मेरा परिचय दिया। मैंने दोनों हाथों से प्रणाम किया और मेरे प्रणाम का उसी प्रकार दोनों हाथों को उठाकर उत्तर देते हुए गुरुदेव उसी आराम कुर्सी पर बैठ गये तथा मुस्कराते हुए बंगला में ही बोले कि "सेठ गोविन्ददास को नाम से कौन नहीं जानता।" मुझे थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ कि रवीन्द्र बाबू तक भी मेरा नाम पहुँच गया है। उन्होंने संकेत से मुझे अपने निकट की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा और जब मैं बैठ गया तब सेक्रेटरी साहब ने उस कमरे को छोड़ दिया। इसके बाद गुरुदेव की और मेरी जो बातचीत हुई उसमें उन्होंने अंग्रेजी और मैंने हिन्दी भाषा का उपयोग किया। कितना धीरे और मधुर स्वर में कवि बोलते थे! साधारण संभाषण भी एक प्रकार का कलात्मक मधुर संगीत था!

इधर-उधर की कुछ बातों के बाद जब मैंने अपने आने का उद्देश्य बताया तब कवि-सम्राट् कुछ विचार-विमग्न हो गये। कुछ देर विचारने के पश्चात् गम्भीरता से क्षमा-सी माँगते हुए उन्होंने कहा—"इस प्रकार से मैं उसी साहित्यिक आयोजन का उद्घाटन करता हूँ जो मेरी दृष्टि से मेरे उद्घाटन के योग्य होता है। आपके नाटक को मैंने न पढ़ा है और न सुना अतः उसका उद्घाटन मैं कैसे करूँ?"

मेरे इस प्रस्ताव पर कि मैं उन्हें वह नाटक सुनाने को तैयार हूँ गुरुदेव ने मुझे चार दिन तक नित्य ४५ मिनिट का समय देने को कहा। दूसरे दिन से ही ३ बजे

से ३।।। बजे तक यह काम आरम्भ हुआ। इन चार दिनों तक जो अनुभव मुझे हुआ वैसा जीवन में उसके पहले कभी न हुआ था। मैं नित्य ठीक ३ बजे पहुँचता, गुरुदेव मेरे नाटक सुनने के लिए तैयार मिलते। नाटक में चार अंक थे। मैं नित्य एक अंक पढ़ता। वे उसे अत्यधिक दत्तचित हो सुनते रहते। न बीच में कभी कुछ बोलते और न अन्त में ही। कोई भी रचयिता अपनी रचना पर दाद का इच्छुक रहता है। अच्छे स्थलों पर जब वह श्रोताओं की सराहना सुनता है उसका उत्साह बढ़ता है। किसी विशेष स्थल पर भी रवीन्द्र बाबू ने यदि कुछ न कहा होता और हर दिन अन्त में ही कुछ कह दिया होता तो भी मुझे कुछ संतोष तो होता, पर चौथे दिन जब तक नाटक पूरा न हो गया तब तक उस नाटक के विषय में वे एक शब्द भी न बोले। हर दिन मैं इस आशा पर जाता कि आज शायद वे कुछ कहेंगे, पर हर दिन और अधिक व्यग्र होकर लौटता। मेरा दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ अधैर्य चौथे दिन नाटक को पूरा करते-करते तो चरम सीमा को पहुँच गया। नाटक को किसी प्रकार पूरा कर, आँखें फाड़, मुँह खोल उनसे कुछ भी भला-बुरा सुनने के लिए मैं एकटक उनकी ओर देखने लगा।

नाटक पूरा होते ही कवि अपनी आराम कुर्सी पर बैठ गये और मेरे हाथ को खींच अपने हाथ में ले मुस्कराते हुए बोले—"आपका और मेरा स्कूल अलग-अलग है। मैं कवि हूँ, आप आलोचक। पर आपकी इस कृति का आपके स्कूल की किसी भी अच्छी से अच्छी कृति से मिलान किया जा सकता है और मैं सहर्ष इसका उद्‌घाटन करूँगा।"

साहित्य-क्षेत्र में अब तक मुझे आज से अधिक हर्ष कभी भी न हुआ था।

गुरुदेव ने आगे चलकर मुझे शान्ति निकेतन आने और वहाँ कुछ समय तक रहने को आमन्त्रित किया तथा यह कहा कि मैं अपने सारे नाटकों को वहाँ लाऊँ और वे कुछ का अभिनय वहाँ के विद्यार्थियों से करायँगे। अब मैं निःशंक हो गया था अतः आज मैंने उनसे एक बात और पूछी, "आपने मेरा पूरा नाटक हिन्दी में सुना और कहीं भी उसका कोई हिस्सा पुनः पढ़ने या समझाने के लिए नहीं कहा। जिसका यह अर्थ है कि आप हिन्दी भली भाँति जानते हैं। फिर आप हिन्दी में बात क्यों नहीं करते ?"

उन्होंने फिर से मेरे हाथ को अपने हाथ में ले उसे सुहलाते हुए जो कुछ कहा वह मैं कभी भी न भूल सकूँगा। वे बोले—"किसी भाषा को समझना और बोलना दो अलग-अलग बातें हैं। मैं सरस्वती-उपासक हूँ। किसी भाषा का अशुद्ध उच्चारण सरस्वती की प्रतिमा पर आघात करना है। मुझे इतनी हिन्दी नहीं आती कि इस बात का आत्म-विश्वास हो कि मैं बोलने में कोई अशुद्धि न करूँगा अतः सरस्वतीपूजक से सरस्वती की प्रतिमा पर आघात का पाप कैसे हो सकता है ?"

"अफ्रिका में भारत" फिल्म तैयार हो चुका था, इसके कई दृश्य अफ्रीका में लिये गये थे। परन्तु इस फिल्म के पूरे होते-होते फिर रुपये की कमी पड़ गयी और फिर से मेरी व्यक्तिगत गारण्टी पर रुपया लिया गया। मेरा रोजगार ठीक चल रहा था। रवीन्द्र बाबू के मेरे नाटक उद्‌घाटन करने की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् इस नाटक की तैयारी बड़े उत्साह से आरम्भ हो गयी। पर इसी समय एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ, जिसके कारण कलकत्ते के सारे कामों को छोड़ मुझे जबलपुर लौटना पड़ा। यह प्रसंग था व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ। मैंने जब राजनीति से अवकाश ग्रहण किया था, उस समय कह ही दिया था कि यदि देश की स्वाधीनता का कोई आन्दोलन हुआ तो मैं पुनः राजनैतिक क्षेत्र में लौट आऊँगा। घर की जैसी आर्थिक स्थिति थी, और उसे ठीक करने के लिए कलकत्ते में जो मेरा व्यापार चल रहा था उसके कारण तथा मेरे नाटक को जो रवीन्द्र बाबू ने उद्‌घाटन करने की स्वीकृति दे दी थी, उसके कारण कलकत्ते से लौटने के निर्णय करने में मुझे कम मानसिक संघर्ष नहीं हुआ। जैसा पहले कहा जा चुका है घर की आर्थिक अवस्था बिगड़ी थी सन् १९१३ में। उसे बिगड़े सन् ४० तक कोई सत्ताइस वर्ष बीत चुके थे। इन सत्ताइस वर्षों में मेरे घर ने अनेक बार उन्नति और पुनः अवनति के दृश्य देखे थे पर इस समय अवनति की नीचे से नीची अवस्था थी। घर की यह आर्थिक अवस्था किस प्रकार मुझ पर भी जनता द्वारा ही नहीं, पर नेताओं के द्वारा भी छींटा-कशी की सामग्री हो गयी थी और मेरे सार्वजनिक जीवन में भी अनेक प्रकार से बाधक सिद्ध हुई थी, इसका उल्लेख भी पहले हो चुका है। गत युद्ध में अनेक लोग व्यापार कर लखपति ही नहीं करोड़पति

बन गये थे और इस लड़ाई में भी इसकी वैसी ही संभावना थी। मेरा रोजगार भी ठीक चल रहा था और यदि मैं कलकत्ते में जमा रहता तो घर का आर्थिक संकट से मुक्त होना ही नहीं, मेरा स्वयं का भी काफी कमा लेना असंभव नहीं था अतः मेरा कलकत्ते के आकर्षण का लोभ सर्वथा अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। साहित्य-जगत् से भी मेरा अत्यधिक अनुराग रहा था और थोड़ा-सा भी समय मिलते ही यह क्षेत्र सदा मुझे आकृष्ट करता रहा था। साहित्य में नाटक विषय अब मेरा विषय बन चुका था और जिस रंगमंच का हिन्दी में अभाव था वह रंगमंच मेरे नाटक द्वारा इस समय संसार की एक महान् साहित्यिक विभूति रवीन्द्र बाबू उद्घाटित कर रहे थे अतः इस ओर भी मेरा आकर्षण पूर्णतः स्वाभाविक था। परन्तु इन महान् प्रलोभनों के होते हुए एवं अत्यधिक मानसिक संघर्ष के पश्चात् भी मैंने जबलपुर लौट व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने का ही निर्णय किया। क्या यह निर्णय एक मात्र देश-भक्ति की उच्च भावना के कारण ही हुआ? आज जब १२ वर्ष के एक युग के पश्चात् मैं उस समय का अपना आत्म-निरीक्षण करता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि देश-भक्ति की भावनाएँ मेरे मन में न हों यह बात नहीं थी, पर उस समय भी मैं लोकेषणा से अपना पूरा पिंड न छुड़ा सका था। कैसी उत्कट और गहरी वस्तु है यह लोकेषणा!

व्यक्तिगत सत्याग्रह

सन् १६३६ में द्वितीय महा समर छिड़ने के उपरान्त भारत की राय लिये बिना भारत को युद्ध में झोंक देने के विरुद्ध कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल (जिन किन्हीं भी प्रान्तों में वे काम कर रहे थे) स्तीफा देकर अलग हो गये थे। कुछ दिन तक तो सरकार यह बाट देखती रही कि शायद कांग्रेसी लोग फिर से वापिस आ जावें, परन्तु जब ऐसी आशा निराशा में बदली तो १६३५ के भारत सरकार कानून की ६३वीं धारा के अनुसार सारा प्रान्तीय शासन गवर्नरों ने अपने हाथों में ले लिया।

कांग्रेस ने यद्यपि मित्र दलों के पक्ष का समर्थन करते हुए नाजी राष्ट्रों को उनके अन्याय के लिए फटकारा था फिर भी वह सरकार को उसके द्वारा युद्ध उद्देश्य के बतलाये बिना सहयोग नहीं देना चाहती थी। कांग्रेस के सहयोग के बिना धन-जन की मनचाही सहायता मिलने पर भी सरकार कांग्रेस के समर्थन की अपेक्षा करती थी, क्योंकि वह भारत में कांग्रेस के महान् प्रभाव को अब समझने लगी थी। अहिंसा के कट्टर भक्त गान्धीजी तो युद्ध को हिंसात्मक समझ कर सरकार को किसी दशा में भी कोई ठोस मदद देने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि वे ऐसा करना संसार में हिंसा को बढ़ावा देना मानते थे।

यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि भारत को युद्ध में भारत की जनता की इच्छा के विरुद्ध झोंके देने पर कांग्रेस क्षुब्ध रह कर भी ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहती थी जिससे शत्रु के हाथ मजबूत हों या अंग्रेजों के युद्ध-प्रयत्न में शिथिलता आवे। यही कारण था कि कांग्रेस कोई सत्याग्रह आदि करने का विचार नहीं कर रही थी, क्योंकि इससे सरकार को परेशानी उठानी पड़ती। कम से कम इसी उदाहरण से हम भारतीयों की सात्विकता का अंदाजा लगा सकते हैं। तो कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध ऐसी कोई हैरान करनेवाली कार्यवाही न कर उससे केवल उसके युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण माँगा। पर सरकार ने सदा गोलमाल करनेवाले शब्द-जाल ही दिये। इधर साल भर में

युद्ध की घटनाएँ तेजी से बढ़ रही थीं। जर्मनी की धड़ाधड़ विजय होती ज रही थी। इसी बीच भारत के राजनैतिक क्षेत्र में एक नवीन घटना घटी हिंसा और अहिंसा की बात पर गान्धीजी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य में मतभेद हो गया। गान्धीजी चुपचाप होकर अलग बैठ गये और कार्य कारिणी ने कहा कि यदि भारत की आजादी की घोषणा कर दी जाय तथ तत्काल भारत सरकार को ऐसा रूप दिया जाय कि भारतीय नेताओं के हाथ में अधिकार आ जाय तो कांग्रेस लड़ाई में सक्रिय सहायता देगी। कांग्रेस कार्य कारिणी को आशा थी कि सरकार इस पर ध्यान देकर कुछ कार्य करेगी परन्तु वाइसराय ने वही पुरानी दलीलें—युद्ध-काल में ऐसे परिवर्त्तन कठिन हैं तथा लड़ाई में सहायता तो बिना शर्त के ही देना चाहिए, और युद्ध के उप रान्त ही इतने महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया जा सकता है—देकर कार्य समिति का प्रस्ताव नामंजूर कर दिया। इतना वाइसराय ने कह दिया कि उनकी कार्यकारिणी का भारतीयकरण हो सकता है।

फिर से कांग्रेसियों की आँखें खुलीं और उन्होंने पुन: गान्धीजी से सलाह माँगी। वे सलाह देने को सदा तैयार ही रहते थे; हाँ, उन्हें कोई भी विवश कर उनकी अन्तरात्मा के विपरीत कोई काम नहीं करा सकता था। गान्धीजी की सलाह से बम्बई में जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी बैठी उसने सरकार के उत्तर पर गौर कर वाइसराय द्वारा दी गयी उनकी कार्यकारिणी के भारतीयकरण के थोथे लोभ में न आकर उसे नामंजूर कर दिया।

अब कांग्रेस के लिए कुछ न कुछ करना अनिवार्य हो गया और उसने व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का निर्णय किया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के संचालन का भार महात्मा गान्धी पर डाला गया।

सामूहिक सत्याग्रह करने से सरकार दिक्कत में पड़ जाती। जिस नात्सी दल से कांग्रेस को कोई सहानुभूति न थी उसे लाभ पहुँचता। मित्रराष्ट्र भारतीय जनता को गलत समझते। फिर सामूहिक सत्याग्रह में रक्तपात की भी आशंका थी। इसी से गान्धीजी का आशय इस समय की नाजुक परिस्थिति में हलका से हलका परन्तु रामबाण उपचार करने का था। पर इस हलके उपचार में भी वे एक तात्त्विक बात संसार को बता देना चाहते थे कि

ब्रिटिश सरकार की भारत के प्रति वर्त्तमान नीति से भारत अत्यधिक असन्तुष्ट है। इसीलिए इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में धारा सभाओं के कुछ चोटी के व्यक्तियों, जिला और म्युनिसिपल बोर्डों के सदस्यों आदि को ही गान्धीजी की अनुमति के उपरान्त सत्याग्रह करने की आज्ञा थी। इस प्रकार का एक व्यक्ति जो अनेकों द्वारा चुना गया प्रतिनिधि है अपने सत्याग्रह द्वारा उस विराट् समूह का मत दर्शाने वाला माना गया, जिस समूह ने उसे चुना था। यह गान्धीजी की एक निराली सूझ थी।

× × ×

व्यक्तिगत सत्याग्रह १७ अक्तूबर सन् १९४० को आरम्भ हुआ। यह ऊपर कहा जा चुका है कि कोई भी व्यक्ति गान्धीजी की अनुमति के बिना सत्याग्रह नहीं कर सकता था। गान्धीजी अनुमति देने के पहले अन्य उपयुक्त बातों के साथ यह भी देख लेते थे कि वह सत्याग्रह का प्रार्थी कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को कितना मानता है तथा उसे जीवन में चरितार्थ करता है या नहीं।

सबसे पहले सत्याग्रही श्री विनोबा भावे हुए, जिन्हें गान्धीजी मूर्तिमान अहिंसा कहते थे। उनका सत्याग्रह आरम्भ होते ही सरकार ने समाचारपत्रों पर सत्याग्रह सम्बन्धी समाचार छापने के विषय में विशेष रोक लगा दी। भावेजी के पश्चात् पण्डित नेहरू दूसरे सत्याग्रही चुने गये, परन्तु सत्याग्रह करने के पहले ही एक सभा में भाषण देने के अपराध में उन्हें चार वर्ष की सजा दे दी गयी। इसी सत्याग्रह के लिए विनोबाजी को केवल ३ माह की सजा दी गयी थी। इसी बीच सरदार वल्लभभाई पटेल को बिना किसी कारण पकड़कर बिना मियाद के जेल में बन्द कर दिया गया। आग का जला सियार बिजली के कौंधने से चौंकता है। अतः सरकार नागपुर के झण्डा सत्याग्रह तथा बारदौली के करबन्दी आन्दोलन के व्यवस्थापक को ऐसे अवसर पर स्वतन्त्र कैसे रहने दे सकती थी। इसके उपरान्त सारे देश में गान्धीजी की स्वीकृति को ले लेकर सत्याग्रही सत्याग्रह करने निकल पड़े। सत्याग्रह का रूप यह रहता कि सत्याग्रह करनेवाला व्यक्ति उस स्थान के मजिस्ट्रेट तथा पुलिस को अपने सत्याग्रह करने की सूचना दे देता तथा बाद में "हम युद्ध में किसी

भी तरह की मदद नहीं कर सकते" इस आशय का प्रचार करता हुआ गिरफ्तार होने तक आगे बढ़ता जाता। जनता ने भी "न एक भाई और न एक पाई" का नारा बना लिया था। हाँ, जनता को सख्त ताकीद की गयी थी कि वह कोई भी अशोभनीय या कलंकस्वरूप घटना न होने दे। पहले तो सरकार ने सत्याग्रहियों को सख्त सजायें देना आरम्भ किया परन्तु बाद में उन्हें पकड़ना बन्द कर दिया। इस पर सत्याग्रहियों को सुझाव दिया गया कि वे अपने पकड़े जाने तक दिल्ली की ओर बढ़ते चले जायँ। व्यक्तिगत सत्याग्रह होने पर भी देश के विस्तार के कारण इन सत्याग्रहियों के विषय में भी नाना प्रकार की खबरें आती थीं जिनमें कुछ अच्छी होतीं, कुछ बुरी। कुछ सत्याग्रही बड़े लम्बे और गपोड़पंथी भाषण दे डालते थे। अतएव अब अनुशासन के बन्धन और कड़े किये गये। सौभाग्य से गान्धीजी जेल के बाहर थे और उनके काम में इस समय सबसे अधिक सहायता कर रहे थे डॉ० राजेन्द्रप्रसाद तथा आचार्य कृपलानी।

देश पर इस सत्याग्रह की भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। कुछ ने तो इसका विरोध किया और कुछ ने मजाक उड़ाया। विरोध में गरम और नरम दोनों प्रकार के लोग थे। गरम विचारवाले इस सत्याग्रह द्वारा सरकार को झुकाना असम्भव मानते थे, और नरम विचारवाले तो सत्याग्रह के लिए कभी कोई अवसर उपयुक्त समझते ही न थे, फिर इस समय तो सर्वथा नहीं। मजाक उड़ानेवालों में श्री आर्थर मूर के सम्पादकत्व में निकलनेवाला अंग्रेजी दैनिक "स्टट्समैन" अग्रगण्य था। उसने इन सत्याग्रहियों का वर्णन देने को अपने पत्र में पागलों का स्तम्भ नामक एक नया स्तम्भ बनाया। यह समझ रखना चाहिए कि यह सारा विरोध इस सत्याग्रह का उद्देश्य न समझने के कारण ही था। इस सत्याग्रह के उद्देश्य ही कुछ और थे, जिन्हें नैतिक स्तर को जीवन का मुख्य स्तर माननेवाले ही समझ सकते थ।

× × ×

इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय देश में एक नयी स्फूर्ति आयी। गान्धीजी ने इस सत्याग्रह के लिए जिस प्रकार के व्यक्तियों का आह्वान किया था और जैसे व्यक्तियों को इस सत्याग्रह में भाग लेने की

इजाजत दी जाती थी उससे इस सत्याग्रह का नैतिक स्तर काफी ऊँचा रहा। यद्यपि इस समय मैं कांग्रेस के किसी पद पर नहीं था, पर कलकत्ते का कारोबार बन्द कर इसी सत्याग्रह के लिए लौटा था, यह बात मेरे प्रान्त में एक नयी प्रेरणा देनेवाली मानी गयी और मेरे प्रान्त के व्यक्तिगत सत्याग्रह के आरम्भिक काल में ही मुझे सत्याग्रह करने का अवसर दिया गया। जिस समय मैंने सत्याग्रह किया जबलपुर की जनता में सदा के समान ही एक नया जोश आया और सत्याग्रह के मेरे जुलूस और सभा में सदा के समान ही अन्य सत्याग्रहियों के सत्याग्रह के जुलूस और सभाओं से कहीं अधिक संख्या में जनता एकत्रित हुई। जनता की इस उपस्थिति में नगर की अपेक्षा गाँवों के लोगों की संख्या कहीं ज्यादा थी। अपने प्रान्त, जिले और नगर के सार्वजनिक जीवन में मैं सदा ही इस स्नेह का भाजन रहा था।

मेरे कुटुम्बवाले भी अब मेरे जेल जाने के कार्यक्रम से अच्छी तरह अभ्यस्त हो चुके थे अतः उनके लिए भी यह कोई बड़ी भारी चिन्ता और घबराहट की बात न रह गयी थी। उन्हें कलकत्ते के काम से अवश्य थोड़ा अनुराग था। यद्यपि पूर्णतया नहीं, पर कुछ दूर तक उन्हें यह आशा थी कि लड़ाई के इस जमाने में कलकत्ते के इस रोजगार से शायद कुछ आ ही जाय इस लिए कलकत्ते का काम इस प्रकार बन्द करना मेरे घरवालों को कुछ बहुत अच्छा न लगा, पर वे यह भी भली भाँति जानते थे कि देश में स्वतन्त्रता का कोई संग्राम चले और मैं कलकत्ते में बैठा हुआ रोजगार-धन्धा करता रहूँ यह भी असम्भव कल्पना है। इसलिए घर में किसी ने भी मुझसे कुछ न कहा। हाँ, पिताजी ने मेरी इस जेल-यात्रा को एक नया नाम अवश्य दिया। मेरी यह जेल-यात्रा चौथी जेल-यात्रा थी अतः इसके पूर्व की मेरी तीन जेल यात्राओं के साथ इसे मिलाकर वे कहने लगे—"बाबू ने तो चारों धामों की अपनी यात्रा कर डाली।"

इस सत्याग्रह को गान्धीजी जिस नैतिक स्तर पर चला रहे थे उसे पूर्णतः समझना अंग्रेज सरकार के लिए सम्भव न था अतः सरकार ने इस सत्याग्रह को वह महत्त्व न दिया जिसकी गान्धीजी ने आशा की थी। इसीलिए इस बार सत्याग्रहियों के प्रति सरकार का बड़ा मुलायम रुख रहा। एक वर्ष, छः

महीने, तीन महीने इस प्रकार थोड़ी अवधि की सजाएँ, जेल में हर प्रकार की सुविधाएँ और छोटे से छोटे कारण पर रिहाई इस बार के सत्याग्रह की विशेषताएँ थीं। मेरी सजा की अवधि तो उस समय की अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि ही थी, पर मुझे अब तक जो कभी जबलपुर जेल में नहीं रखा गया था वह इस बार जबलपुर जेल में ही रखा गया।

मैंने सदा के समान इस बार भी अपना जेल-जीवन पढ़ने-लिखने में काटने का निश्चय किया। कई वर्ष का मेरा छूटा हुआ लेखन-कार्य कलकत्ते में आरम्भ हो ही गया था, जेल में वह और भी बढ़ा। कुछ दिन तक मैं जेल में अकेला रहा। कुछ दिनों के बाद श्री ओमप्रकाश मेहता, जो कांग्रेसी न होते हुए भी एक राजनैतिक कैदी थे, मेरे पास रखे गये, पर श्री ओमप्रकाश और जेल के अधिकारियों में कुछ झगड़ा होने के कारण वे बहुत दिन तक मेरे पास न रह सके और अब आकोले के श्री गोले साहब को मेरे पास लाकर रखा गया। श्री गोले मध्य प्रदेश की धारा सभा के सदस्य थे और खरे-मन्त्रिमण्डल के समय मन्त्री रह चुके थे। वे एक कर्मनिष्ठ और सज्जन व्यक्ति हैं। मेरा और उनका साथ खूब निभा।

सत्याग्रहियों के प्रति सरकार का इस समय का रुख, जबलपुर जेल, घर के लोगों से मुलाकात का भी कोई विशेष बन्धन नहीं और श्री गोले सा० का संग, सब मिलकर इस समय का मेरा जेल-जीवन अब तक के सारे जेल-जीवनों से कहीं अच्छा था। मेरा पठन-पाठन और लेखन भी इस बार के जेल-जीवन में सबसे अच्छा हुआ। इस बार के अध्ययन में सबसे बड़ी बात यह हुई कि मैंने श्री गोले साहब के साथ सम्पूर्ण महाभारत मूल संस्कृत में पढ़ा और इस अध्ययन के साथ कर्ण पर एक नाटक लिखने के नोट तैयार किये, जिनके आधार पर इसके बाद की सन् ४२ की जेल-यात्रा के अवसर पर मैंने "कर्ण" नाटक लिखा। इस नाटक को मैं अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में एक मानता हूँ। महाभारत में व्यासजी ने हर प्रकार के चरित्र की रचना की है। कर्ण का चरित्र एक अद्भुत चरित्र है। एक ओर यदि कर्ण में महान् परिमाण में उच्चता दिखायी पड़ती है तो दूसरी ओर अत्यधिक नीचता भी। एक ही व्यक्ति में एक ओर इतनी उच्चता और दूसरी ओर इतनी नीचता, कर्ण के

चरित्र की विशेषता है । अपने इस नाटक में मैंने कर्ण की इस द्वैध वृत्ति के कारण को बताने का प्रयत्न किया है । इस बार की जेल-यात्रा में मैंने "सन्तोष कहाँ", "सुख किस में" और "गरीबी या अमीरी" तीन पूरे तथा अनेक एकांकी नाटक लिखे और मेरा मत है कि मेरी ये सभी रचनाएँ अच्छी बन पड़ीं ।

"सन्तोष कहाँ", "सुख किस में" और "गरीबी या अमीरी" तीनों समस्या नाटक हैं । "सन्तोष कहाँ" और "सुख किस में" इन दोनों नाटकों के नायक अपने सन्तोष और सुख के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का प्रयोग करते हैं । इन दोनों नाटकों की समस्याएँ मूलतः दार्शनिक हैं । "गरीबी या अमीरी" के स्थान अफ्रीका और भारत दो देश हैं । इसे अपने समय का सर्वश्रेष्ठ नाटक घोषित कर प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडमी ने मुझे बारह सौ रुपये का पुरस्कार दिया था ।

इस बार जो एकांकी नाटक मैंने लिखे उनमें कुछ एकपात्री नाटक भी थे । संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के एकपात्री नाटक "आकाश-भाषित" टैकनीक पर लिखे गये हैं । एक पात्र आकाश की ओर देखते हुए यह कहता जाता है "क्या कहा" और अपना भाषण जारी रखता है । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार के दो आकाश-भाषित एकपात्री नाटक लिखे हैं, परन्तु पश्चिम में इस टैकनीक का काफी विकास हुआ और पहले इंगलैण्ड के प्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग ने तथा आधुनिक समय में अमरीका के नाटककार नील ने कुछ बड़े अच्छे एकपात्री नाटक लिखे हैं । इस विकसित टैकनीक में बोलने वाला पात्र किसी अन्य पात्र से, अथवा किसी पालतू जानवर से, अथवा किसी चित्र से, अथवा किसी निर्जीव वस्तु जैसे चश्मा, घड़ी, पुस्तक आदि से अथवा टैलीफोन पर बात करता है और यह सम्भाषण एकदम स्वाभाविक रहते हुए अत्यधिक मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक होता है । कहा जाता है कि इस आधुनिक विकसित एकपात्री टैकनीक पर हिन्दी में सर्वप्रथम मेरी ही ये रचनाएँ हुई हैं । इनमें "शाप और वर" बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसके पूर्वार्द्ध में मृत्यु शैया पर पड़ी हुई एक धनवान पत्नी अपने पति को शाप देती है और उत्तरार्द्ध में इसी प्रकार मृत्यु-शैया पर पड़ी हुई एक निर्धन पत्नी अपने पति को वर । दोनों में पति भी मौजूद रहते हैं, पर भाषण होता है केवल पत्नी का ।

जेल-जीवन में अब की बार खबरें मिलने में भी कोई विशेष बन्धन न था। हर प्रकार की खबरें अखबारों तथा अन्य प्रकार सभी तरह मिलती रहतीं। इन सब खबरों में से बड़ी दो खबरें थीं—नेताजी सुभाष बाबू का पलायन। जिस दिन हमने यह खबर सुनी उसी दिन मैंने गोले सा० से कहा कि इस पलायन को मैं औरंगजेब की कैद में से शिवाजी के ऐतिहासिक पलायन से कम महत्त्व का नहीं मानता। और दूसरी खबर थी कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर का देहावसान।

रवीन्द्र बाबू यद्यपि दीर्घायु में गये थे, पर उनके साथ भारत के आधुनिक युग का सबसे महान् साहित्यिक उठ गया था, ऐसा साहित्यिक जिसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने देश के मस्तक को सारे संसार में ऊँचा किया था। अब तक आधुनिक युग के दो ही भारतीयों को दुनिया सबसे अधिक जानती थी—एक महात्मा गान्धी और दूसरे कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर। एक भारतीय की हैसियत से रवीन्द्र बाबू के निधन से मुझे दुःख होना स्वाभाविक था। फिर हाल ही में कलकत्ते में उनसे मेरा निकट का सम्बन्ध हो गया था। जेल से छूटने के पश्चात् मैंने शान्ति निकेतन जा कुछ समय उनके पास रहने और अपने नाटकों को वहाँ अभिनय करवाने का कार्यक्रम बनाया था। कलकत्ते के रोजगार को चाहे मैं पुनः आरम्भ न करूँ, पर कलकत्ते में रंगमंच खोलने का मेरा अभी भी विचार था। इन कारणों से रवीन्द्र बाबू की इस मृत्यु ने मुझे व्यक्तिगत ठेस भी पहुँचायी। मेरे मन में यह उठे बिना भी न रहा कि कलकत्ते से लौटने की मैंने बहुत शीघ्रता तो नहीं की। गुरुदेव के द्वारा कलकत्ते के रंगमंच का उद्घाटन करवा तथा अपने नाटक के सम्बन्ध में उनसे दो शब्द कहलवा कर यदि मैं कलकत्ते से लौटता तो कौनसी बड़ी भारी हानि हो जाती। पर यह बात बहुत समय तक मेरे मन में स्थिर न रह सकी।

स्वतन्त्रता के किसी भी संग्राम के छिड़ने के बाद उसमें भाग मैं देर से कैसे लेता? और जहाँ तक अपनी साहित्यिक रचनाओं का सम्बन्ध था, मुझे अब एक ऐसा आत्मविश्वास-सा हो गया था कि उनकी कोई सराहना करेगा इस पर उनका कोई स्थान बनेगा यह मैं न मानता था। साहित्य क्षेत्र की वस्तुएँ इस प्रकार की प्रशंसाओं से चाहे क्षणिक महत्त्व पा जायँ, पर उनका स्थायित्व

उनके गुणों पर अवलम्बित रहता है, इसमें मुझे कोई शंका ही न रह गयी थी। अब तक भी कभी भी मैंने अपनी किसी रचना की भूमिका आदि किसी से न लिखवायी थी।

मेरे राजनैतिक क्षेत्र के कामों में लोकेषणा का चाहे कैसा ही स्थान क्यों न रहा हो, पर साहित्य-सृजन के क्षेत्र में वह कभी भी मेरी प्रेरक नहीं रही। नाटक से मुझे स्वाभाविक रुचि थी। पहले उस रुचि के कारण नाटक रचना आरम्भ हुई, इसके पश्चात् जेल का समय बिताने के लिए और अब मुझे इस विषय में आत्मविश्वास हो गया था।

जबलपुर का जेल-जीवन हर तरह से अच्छा रहने पर भी सदा के समान इस बार के जेल-जीवन में भी मैं स्वस्थ न रह सका। न जाने क्यों मेरी रीढ़ की हड्डी में दर्द शुरू हुआ और मेरा वजन घटने लगा। दो बार एक्सरे द्वारा जाँच करने पर भी जब मेरे इस दर्द के कारण का पता न लगा तब अवधि के चार मास पूर्व आठ महीने के बाद मैं स्वास्थ्य की बिना पर बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया गया।

मुझ पर पहली शल्य क्रिया

यों तो मैं सदा ही स्वथ्य रहता था, पर जैसा पहले कहा गया है जेल में कभी भी नहीं। व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय मैं अस्वस्थता के कारण ही जेल से छोड़ा गया था और यद्यपि धीरे-धीरे मेरा वजन फिर बढ़ गया था पर रीढ़ की हड्डी में जो दर्द मुझे रहने लगा था वह न जा रहा था। जब इसके कारण का कोई पता न लग पाया तब मुझे वर्षों से जो "हाइड्रोसील" और "हर्निया" थे उनके आपरेशन की बात सोची गयी। यद्यपि रीढ़ की हड्डी के दर्द और हाइड्रोसील तथा हर्निया से कोई सम्बन्ध न जोड़ा जा सकता था और रीढ़ की हड्डी के दर्द का निवारण इन आपरेशनों से होगा, इसमें मेरा जरा भी विश्वास न था तथापि इसी बहाने इन व्याधियों से मेरा पिंड छूट जायगा इसलिए मैंने भी ये आपरेशन करवा डालना ही उचित समझा। इन आपरेशनों को इस समय कराने का एक कारण और हुआ। इन्हीं दिनों जबलपुर की विक्टोरिया अस्पताल में डॉ० चारी नामक एक नये सिविल सर्जन आये जो हमारे प्रान्त के ही नहीं समूचे देश के अच्छे से अच्छे सर्जनों में एक सर्जन माने जाते थे। वे लन्दन के एफ० आर० सी० एस० तो थे ही, पर साथ ही उनका हाथ शल्य क्रिया के लिए बड़ा अच्छा माना जाता था। सबसे पहले मेरे हाइड्रोसील का आपरेशन कराना तय हुआ।

शल्य क्रिया और शल्य क्रिया के समय दिये जानेवाले क्लोरोफार्म का मेरा पहला अवसर था। आपरेशन के कई दिन पहले से मन में एक अजीब तरह की झिझक भर गयी थी। आपरेशन के दिन की पहली रात को तो मैं अच्छी तरह सो भी न सका था। आपरेशन दोपहर को होनेवाला था और यद्यपि साधारण-सा आपरेशन था तथापि अस्पताल में कितनी भीड़ जमा हो गयी थी—कुटुम्बी, मित्र, सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, जनता सभी तो उपस्थित थे। इस भीड़ ने मेरी झिझक और अधिक बढ़ा दी।

जिस समय मैं आपरेशन टेबिल पर लिटाया गया और मुझे क्लोरोफार्म

दिया जाने लगा मैं जिन श्लोकों में नित्य प्रात:काल भगवान की प्रार्थना करता था, मन ही मन वे ही श्लोक बोलने लगा। मैं कब बेहोश हो गया, इसका मुझे स्मरण नहीं और बेहोशी के बाद क्या हुआ यह भी मैं नहीं जानता। बेहोशी की वह कदाचित् ऐसी अवस्था थी जो स्वप्न और सुषुप्ति दोनों से भिन्न होती है। इस अवस्था में मस्तिष्क का कार्य सर्वथा बन्द हो जाता है और हृदय की धड़कन तथा साँस चलने के सिवा जीव को कदाचित किसी प्रकार का कोई भी बोध नहीं रहता। आपरेशन के बाद जब मैं होश में आने लगा, उस समय का भी मुझे कोई स्मरण नहीं, पर मेरे उस समय के समीपवर्तियों ने मुझ बताया कि होश में आते समय पहले-पहल मेरे मुँह से कुछ श्लोक निकले। बाद में जब मैंने अपनी बेहोश होने के पहले की मानसिक अवस्था और उस समय भगवद् प्रार्थना में कहे हुए श्लोकों तथा होश में आने के समय पहले-पहल मेरे मुँह से निकले हुए श्लोकों की बात पर विचार किया तब मेरे मन में एकाएक एक बात उठी। हमारे दर्शन में कहा गया है कि मृत्यु के समय व्यक्ति जो कुछ सोचते हुए मरता है उसी के अनुसार उसका आगे का जन्म होता है। बेहोश होते समय जो बात सोचते-सोचते मैं बेहोश हुआ था, होश में आते समय वही बात सोचते-सोचते मैं होश में आया। जिस प्रकार इस समय की बेहोशी और होश में आने के बीच का जीवन एक विचार के सूत्र से बँधा हुआ था उसी प्रकार मृत्यु और पुनर्जन्म में भी तो नहीं होता ! जो कुछ हो, जिन श्लोकों का मन ही मन पाठ करते हुए मैं बेहोश हुआ था होश में आते समय उन्हीं श्लोकों के पाठ में मुझे कोई गुप्त प्राकृतिक रहस्य अवश्य जान पड़ा।

आपरेशन सर्वथा सफल हुआ था। मैं दस दिन अस्पताल में रहा। इन दस दिनों में कितने लोगों ने मेरे स्वास्थ्य पूछने के लिए अस्पताल आने की कृपा की। इन सब में महात्मा गान्धी भी मुझे देखने अस्पताल पधारे। वे हिन्दू विश्वविद्यालय के एक उत्सव में वर्धा से काशी जा रहे थे। उन्हें आपरेशन का हाल मालूम हो गया था और यद्यपि साधारण-सा आपरेशन था तथापि उन्होंने भी मेरा स्वास्थ्य पूछने के लिए अस्पताल आने की कृपा की थी।

इसके बाद कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुईं कि हर्निया का आपरेशन जल्दी न हो सका।

घर उन्नति के पथ पर

जल से मेरी इस रिहाई के बाद मैंने घर का जो हाल देखा उससे मुझे विश्वास हो गया कि घर एकाएक उन्नति के पथ पर आ गया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में मुझे कुछ खबरें जेल की मुलाकातों में मिलती रहती थीं, परन्तु इस दिशा में जितना काम हुआ था उसका पूरा हाल मुझे जेल से लौटने पर ही मालूम हुआ।

पिताजी अब बहुत वृद्ध हो गये थे। आर्थिक अड़चनों, उनके और मेरे संघर्षों, मेरे कौटुम्बिक सम्पत्ति से त्याग-पत्र दे राजा गोकुलदास महल के बाहर एक किराये के मकान में रहने और बार-बार इन जेल-यात्राओं ने उनकी रीढ़-सी तोड़ दी थी। वे सर्वथा निराश थे और उन्हें अंधकार के अतिरिक्त कहीं प्रकाश दृष्टिगोचर न होता था। उन्होंने अपने जीवन में जैसे सुख भोगे थे वैसे सुख भोगनेवाले इस देश में बिरले ही मिलेंगे। फिर उनमें जो उदारता रही थी उसके दर्शन भी आधुनिक पीढ़ी में होना कठिन है। ऐसे पुरुष की इस समय की आपत्तियों के कारण सभी को उनसे अत्यधिक सहानुभूति हो गयी थी, यहाँ तक कि जिन साहूकारों का पिताजी पर रुपया बाकी था वे भी उन पर कोई कड़ी कार्रवाई न करना चाहते थे। पिताजी ने इस समय घर के किसी भी काम में भी अपने को असमर्थ पा घर का सारा काम छोड़ दिया था। मैं जेल में था। अतः एक ऐसी बात हुई जिससे घर एकाएक उन्नति के पथ पर आ गया। यह बात थी घर के सारे काम का भार मेरी पुत्री रत्न-कुमारी पर आना।

मेरे चार बच्चे हैं सबसे बड़ी रत्नकुमारी, उनके पश्चात् दो पुत्र, मनमोहन-दास और जगमोहनदास और सबसे छोटी मेरी दूसरी पुत्री पद्मा। मेरे दोनों पुत्र भी यद्यपि अब बड़े हो गये थे, पर उनका विद्यार्थी जीवन अभी चल रहा था। फिर रत्नकुमारी और उनकी अवस्था में काफी अन्तर था। रत्नकुमारी का तो मेरी १७ वर्ष की उम्र में ही जन्म हो गया था। यह पहले कहा ही

जा चुका है कि रत्नकुमारी संस्कृत में काव्यतीर्थ थीं, अंग्रेजी में इण्टर पास, बी० ए० तक पढ़ी हुईं और प्रचक्षरण बुद्धिवाली। उनकी ससुराल में बड़ा कड़ा परदा था। इस प्रकार के परदे में रहना रत्नकुमारी के लिए असम्भव था। मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द भी इस मामले में रत्नकुमारी के समर्थक थे। अतः अपने पति से अपने मत का समर्थन पा उन्होंने परदे में रहने की अपेक्षा जबलपुर आकर रहना ही निर्णय किया और मेरे दामाद तथा वे दोनों कुछ वर्षों से जबलपुर में रहने लगे थे। रत्नकुमारी ने अपना जेवर बेच जबलपुर में अपनी गुजर-बसर के लिए कुछ जायदाद भी खरीद ली थी।

पिताजी के घर के काम को छोड़ देने और मेरे जेल में रहने से जब मेरे घर के काम का भार रत्नकुमारी पर पड़ा तब उन्होंने उसे बड़ी चतुराई से सँभाला। समय ने भी उनका साथ दिया। लड़ाई के कारण जायदादों, जवाहरात, सोने और अनाज की कीमतें एकाएक बढ़ीं। जहाँ कोई एक एकड़ जमीन खरीदने को तैयार न था वहाँ अब खरीददारों की कमी न रही। फिर हमारे घर की स्त्रियों ने सदा ही घर की इज्जत बचाने में अग्रगण्य भाग लिया था। जो थोड़ा-बहुत जवाहरात और सोना-चाँदी घर में बच गया था वह भी मेरी माताजी और पत्नी ने रत्नकुमारी को सौंप दिया। गाँव, जमीनें, मकान, बँगले, जवाहरात, सोना-चाँदी सभी रत्नकुमारी ने ऊँची से ऊँची कीमत में बेच कर कर्ज चुकाया और ऐसी जायदाद जो कोई आमदनी न देती थी उसे बेच उन्होंने ऐसी जायदादें बनाना भी आरम्भ किया जिनसे अच्छी आमदनी की आशा हो गयी।

जो घर सन् १९१३ की प्रथम आर्थिक आपत्ति के पश्चात् अब तक मजबूत आर्थिक नींव पर न आ पाया था, वह अब ठोस नींव पर आता हुआ दिखायी पड़ा। समय तो अनुकूल मिला ही, पर इस समय का पूरा उपयोग रत्नकुमारी ने किया और इस विषय में उन्हें पूरी सहायता मेरी माताजी, मेरी पत्नी, मेरे दामाद और मेरे दोनों पुत्रों से मिली। पिताजी एक दर्शक के रूप में इस सारे काम को देख रहे थे। उन्हें मन ही मन इससे कम सन्तोष न था; हाँ, गाँवों और जमीन से उन्हें मोह था और जब ये चीजें बिकतीं तब कभी-कभी वे क्षुब्ध भी हो जाते, पर बयनामों पर हस्ताक्षर न करने का उन्हें साहस न

होता और जो भी कागज उनके सामने रत्नकुमारी रखतीं, कभी प्रसन्नता से और कभी अप्रसन्न होकर वे उस पर हस्ताक्षर अवश्य कर देते। रत्नकुमारी उनकी प्रसन्नता या अप्रसन्नता किसी बात की परवाह न कर बड़ी चतुराई और तनदेही से सारा काम करती चली जातीं। कितनी मेहनत पड़ रही थी उन्हें इस सारे काम में !

जब मैं जेल से निकला तब मैंने भी पिताजी के सदृश ही एक दर्शक का स्थान ले लिया, पर अब मुझ से सलाह लिये बिना रत्नकुमारी कुछ न करतीं। पिताजी के और उनके बीच अब मैं सूत्र-सा हो गया। मेरा मुख्य काम हुआ पिताजी की कभी-कभी होनेवाली अप्रसन्नता को ठीक करने का प्रयत्न। आज जब मैं उस समय का सिंहावलोकन करता हूँ तब मुझे जान पड़ता है कि सन् ४० और ४२ का मेरा जेल जाना घर की दृष्टि से कदाचित् लाभप्रद ही हुआ। यदि मैं उस बीच जेल में न रहता तो कौटुम्बिक संपत्ति में कोई कानूनी हक न रहते हुए भी पिताजी के काम न करने के कारण मुझ पर काम का भार आता, हर बात में मैं पिताजी की प्रसन्नता और अप्रसन्नता पर दृष्टि रखता। जिस बेरहमी से रत्नकुमारी ने सारी जायदाद बेची थी, पिताजी के रुख के कारण वह मुझ से कभी न बेची जाती, जैसा कि इसके पूर्व कई बार हो चुका था और ऐसा अच्छा अवसर मिलने पर भी हमारा घर कर्ज के गढ़े से बाहर न निकल पाता। पर ध्यान रहे कि इस अवसर का उपयोग रत्नकुमारी ने केवल पुरानी कौटुम्बिक सम्पत्ति बेचकर कर्ज चुकाने और उसी सम्पत्ति की बची हुई रकम से ऐसी सम्पत्ति तैयार करने में किया जिससे हमारी आमदनी बढ़ गयी, उन्होंने कोई नया रोजगार-धन्धा या सरकारी ठेके आदि लेकर धन नहीं कमाया, जैसा इस बीच अनेकों ने किया। रोजगार करने की तो उनकी वृत्ति ही न थी, पर पिताजी के प्रभाव से वे सरकार से काफी लाभ उठा सकती थीं। वह कर सकना उनके लिए मेरे कारण असम्भव था।

इस प्रकार मैंने देखा कि हमारा घर उन्नति की ओर है, पर मेरी व्यक्तिगत आर्थिक अवस्था इस समय बड़ी शोचनीय हो गयी थी। मेरी फिल्म कम्पनी "आदर्श चित्र" फिर से उसी शोचनीय अवस्था को पहुँच गयी थी, जिस अवस्था को वह "धुँआधार" और "दलित कुसुम" चित्रों के बनने के

बाद पहुँची थी। उन्हीं दोनों चित्रों के सदृश "अफ्रिका में भारत" चित्र भी असफल हो चुका था। कलकत्ते का मेरा दफ्तर बन्द हो गया था। और जब गान्धीजी की आज्ञा थी कि व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले सत्याग्रही जेल से छूटने पर बार-बार सत्याग्रह करें, तब मैं जानता था कि स्वस्थ होते ही फिर मुझे जेल जाना है अतः फिर से कलकत्ते के काम के सदृश कोई काम भी मैं आरम्भ न कर सकता था। कौटुम्बिक सम्पत्ति से त्याग-पत्र देने के पश्चात् उसमें से फूटी कौड़ी भी न लेने का मेरा निश्चय तब तक बराबर चला था अतएव कौटुम्बिक सम्पत्ति से कुछ लेना मेरे लिए सम्भव न था। फिर मैं अपना काम कैसे चलाऊँ ? मेरी पुस्तकों की जो रायल्टी मुझे मिलने लगी थी, वही इस समय की मेरी आमदनी थी, पर वह अभी इतनी न हुई थी कि मैं उस आमदनी से अपना नित्य का खर्च सुविधापूर्वक चला सकूँ। मैं व्यथित-सा हो उठा और जल्दी से जल्दी स्वस्थ होकर फिर से जेल जाने की बात सोचने लगा।

पर इसी बीच अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय क्षेत्र में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वापस ले लिया गया। ये घटनाएँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि इनके विषय में यहाँ कुछ लिखना निरर्थक है।

मेरा एक नवीन कौटुम्बिक जीवन

व्यक्तिगत सत्याग्रह वापस होने से मुझे चिन्ता और खुशी दोनों हुए। चिन्ता तो मुझे हुई अपनी आर्थिक अवस्था के कारण। इस समय मेरी पुस्तकों की रायल्टी के सिवा मेरी कोई आय न रह गयी थी और मैं फिर से जल्दी ही जेल चला जाऊँगा इस बिना पर मैंने अपनी आमदनी के उपायों पर सोचना तक मुल्तवी कर दिया था। व्यक्तिगत सत्याग्रह वापस होते ही यह प्रश्न अत्यन्त विकराल रूप से मेरे सामने आया और मैं इस विषय में अत्यधिक चिन्तित हो उठा। अपना खर्च कम-से-कम कर पुस्तकों की रायल्टी से ही उसे किसी प्रकार चलाना मेरे सामने मुझे एक मात्र रास्ता दिखा। खुशी हुई मुझे इसलिए कि मेरे कौटुम्बिक जीवन ने एक नया रूप ले लिया था।

मेरा कौटुम्बिक जीवन सदा ही बड़ा सुखी जीवन रहा है। मेरा अपने कौटुम्बियों से अधिकांश बातों में मतभेद होते हुए भी तथा मेरे घर से अलग हो जाने पर भी हमारे आपसी स्नेह-बन्धन इतने मजबूत थे कि इन मतभेदों के कारण मेरे कौटुम्बिक जीवन में कोई कटुता न आ पायी थी। माता, पिता, पत्नी सबसे मेरा अच्छे से अच्छा सम्बन्ध था, पर अब जो एक बात मेरे कौटुम्बिक जीवन में आयी वह सर्वथा नयी थी। यह बात थी जीवन की हर बात में मेरे कुटुम्ब की नयी पीढ़ी का और मेरा मतैक्य। मेरे कुटुम्ब की इस नयी पीढ़ी में मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द, मेरी पुत्री रत्नकुमारी, मेरे दोनों पुत्र मनमोहनदास तथा जगमोहनदास और मेरी बड़ी पुत्र-वधू शान्ताकुमारी थीं। मेरे सब बच्चों का निर्माण मेरे मतानुसार हुआ है और इनमें तीन अब काफी बड़े हो गये थे। इन्हें देख मुझे एक पश्चिमी विद्वान गोल्डोनी का यह कथन याद आ जाया करता था—"वह आधा मरता है जो अपने पुत्र में अपनी प्रतिमूर्ति छोड़ जाता है।" रत्नकुमारी तो बहुत समय से हर बात अच्छी तरह समझने लगी थीं अब मन-मोहनदास और जगमोहनदास भी सब कुछ समझने की अवस्था में आगये थे। मैंने अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर भी बहुत अधिक ध्यान रखा था और

चूँकि इनका आधुनिक युग में निर्माण हुआ था, और आधुनिक युग में निर्माण होने पर भी आर्थिक संकटों के कारण इनमें कोई आधुनिक दोष न आ पाये थे तथा मेरा जीवन इनके लिए इनके मतानुसार एक आदर्श के रूप में रहा था, इसलिए रत्नकुमारी, मनमोहनदास और जगमोहनदास का तो मुझ से मतैक्य होना स्वाभाविक माना जा सकता है, पर मेरे दामाद और मेरी पुत्र-बधू भी हर बात में मुझसे सहमत रहते थे। मानव का निर्माण कितनी दूर तक पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार होता है और कितनी दूर तक आनुवंशिकता तथा वातावरण के अनुसार इस विषय पर पिछले अध्यायों में कुछ लिखा जा चुका है। मेरे कुटुम्ब की इस नयी पीढ़ी के निर्माण में भी इन सभी बातों के साथ ही मुझे जान पड़ने लगा कि मानों मेरे भाग्य का भी कुछ हाथ हो। इस पीढ़ी के मेरे बच्चे ही मेरे मतानुकूल हों यह नहीं मेरे कुटुम्ब में जो बाहर से आये थे, जैसे मेरे दामाद और मेरी पुत्र-बधू, वे भी मेरे बच्चों के सदृश ही मेरे हर मत से मतैक्य रखते थे।

रत्नकुमारी बुद्धिमती थीं, विदुषी थीं, साहित्यिक थीं। मनमोहनदास ने बी० ए० पास कर लिया था। वे बड़े गम्भीर थे। उन्हें सबसे अधिक ध्यान अपने कुटुम्ब की प्रतिष्ठा और सम्मान का था। जगमोहनदास अपनी सब परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में आते थे। अत्यधिक परिष्कृत बुद्धि और प्रतिभा। उन्हें सार्वजनिक जीवन के हर पहलू से दिलचस्पी थी। मेरे दामाद मेरे साथ अफ्रिका हो आये थे और हमारे घर को उन्होंने अपना घर मान लिया था। मेरी बड़ी पुत्र-बधू को अपने घर की प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ व्यवस्था का भी बहुत ध्यान रहता था। और सब का चरित्र अत्यन्त शुद्ध होने के कारण किसी में भी स्वार्थ की वह भावना न थी जिससे संयुक्त कुटुम्ब प्रथा एक शाप हो जाती है। संयुक्त कुटुम्ब प्रथा के सारे लाभ हमारे इस कुटुम्ब को प्राप्त थे। एक दूसरे पर सब का असीम स्नेह और प्रेम था और हर काम सब एक दूसरे की सलाह से करते थे तथा बहस-मुबाहसा होने के बाद किसी विषय में किसी का कोई मतभेद न रहता था। गोस्वामी तुलसीदासजी की इस उक्ति के अनुसार कि—"जहाँ सुमति तहँ संपद नाना। जहाँ कुमति तहँ विपद निधाना।" आपसी सुमति के कारण हमारे कुटुम्ब में न जाने कितनी संपदाएँ

इकट्ठी होगयी थीं। जो यह एक प्राचीन विचार है कि यदि सन्तान अच्छी हो तो बुरी से बुरी परिस्थिति भी अच्छी हो सकती है और यदि सन्तान बुरी हो तो अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति भी बुरी हो सकती है, यह विचार कितना सत्य है उसका भी हमारे घर में इस समय पूरा अनुभव हो रहा था।

अधिकतर पुरानी पीढ़ी का नयी पीढ़ी पर स्नेह देखने में आता है। माता-पिता अपनी सन्तति को जितना चाहते हैं सन्तति माता-पिता को नहीं, पर मैं उन बड़भागियों में हूँ जिन पर सन्तति का भी उतना ही स्नेह रहता है जितना उनका अपनी सन्तति पर। मुझे अब एक ऐसा कौटुम्बिक जीवन मिला जिसका अब तक मेरे जीवन में अभाव रहता था। इस जीवन में स्नेह के साथ ही जो पूर्ण मतैक्य था। इस समय इस नये कौटुम्बिक जीवन ने मुझे आनन्द-विभोर कर दिया। मेरी इस सुखमय मनोवृत्ति का एक परिणाम यह भी निकला कि इन्हीं दिनों मैंने दो पूरे नाटक लिख डाले—एक ऐतिहासिक "शशिगुप्त" और दूसरा सामाजिक "महत्त्व किसे ?"। "शशिगुप्त" चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा पर है। "कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" में भारत पर सिकन्दर की चढ़ाई के समय पश्चिमोत्तर प्रदेश में अश्वक नामक एक जाति और उसके सरदार शशिगुप्त का वर्णन आया है। हमारे प्रान्त के एक इतिहासवेत्ता प्रोफेसर हरिश्चन्द्र सेठ ने अपनी एक खोज में यह सिद्ध किया है कि यह शशिगुप्त और चन्द्रगुप्त मौर्य एक ही व्यक्ति थे। चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के न होकर यथार्थ में पश्चिमोत्तर प्रदेश के थे और तक्षशिला विश्वविद्यालय में इनका तथा चाणक्य का संपर्क हुआ। इसी खोज में प्रोफेसर सेठ ने यूनानी इतिहासकारों के ही कथनों के आधार पर यह भी सिद्ध किया है कि सिकन्दर भारत में विजयी होकर नहीं पर पराजित होकर लौटा और उसकी पराजय हुई पश्चिमोत्तर के इन्हीं अश्वकों तथा उनके सरदार शशिगुप्त के कारण। इसीलिए वह पश्चिमोत्तर के मार्ग से न लौटकर मकरान के रास्ते लौटा। मगध के नंदों के विलासों में लिप्त रहने के कारण आगे चल कर इसी शशिगुप्त ने अपने ही नाम का दूसरा पर्यायवाची चन्द्रगुप्त नाम धारण कर मगध के नंदों को हरा भारत सम्राट् का पद पाया। आरम्भ से अन्त तक चाणक्य ने उसके गुरु का काम किया। प्रोफेसर सेठ की इसी खोज पर यह "शशिगुप्त" नाटक लिखा गया है। जिस व्यक्ति पर संस्कृत में "मुद्राराक्षस"

बँगला में श्री द्विजेन्द्रलाल राय "चन्द्रगुप्त" और हिन्दी में भी प्रसादजी "चन्द्रगुप्त" नाटक लिख चुके हों उस व्यक्ति पर कुछ लिखने का पहले तो मेरा साहस ही न हुआ, पर प्रोफेसर सेठ की खोज में कुछ नवीनता थी अतः मैं अपने लोभ का संवरण न कर सका। मेरे नाटकों के गायन प्रायः मेरी पुत्री रत्न-कुमारी लिखती हैं। इस नाटक के उनके गायन बहुत ही सरस बन पड़े। इसकी जो आलोचनाएँ हुई हैं उनमें से कुछ में तो इस नाटक को चन्द्रगुप्त मौर्य पर सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया है, पर इसका कारण शायद हरिश्चन्द्रजी की वह खोज है जिसमें उन्होंने सिकन्दर का इस देश से पराजित होकर पलायन दिखाया है। मेरा यह नाटक जितनी बहुतायत से खेला गया उतना अन्य कोई नाटक नहीं। यह नाटक उत्तर प्रदेश के मैट्रिक के पाठ्यक्रम में है और वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के भी किसी कोर्स में। "महत्त्व किसे" एक समस्या नाटक है और इसमें यह दर्शाया गया है कि इस संसार में किस वस्तु को सबसे अधिक महत्त्व है?

मेरी उस समय की मनोवृत्ति की इन नाटकों में काफी झलक है। इन दोनों पूरे नाटकों के साथ ही मैंने कुछ एकांकी भी लिखे।

मुझे अब ज्ञात हुआ कि अनातोले फ्रांस और गेटे के निम्नलिखित कथन कितने सत्य हैं—"घरेलू बाड़ी। वहीं सच्चा सुख है।" "वही सबसे अधिक सुखी है चाहे वह बादशाह हो या किसान जिसे अपने घर में शान्ति मिलती है।"

× × ×

कुछ समय बाद मेरे छोटे पुत्र जगमोहनदास का विवाह इलाहाबाद निवासी रायबहादुर हिम्मतसिंहजी माहेश्वरी की पुत्री विद्यावती के साथ हुआ। इस विवाह में भी पूरी सादगी, समाज-सुधार के सारे सिद्धान्त और परदा-निवारण रहा। बहुत समय के बाद मेरी छोटी पुत्री पद्मा का विवाह भी इसी प्रकार के सिद्धान्तों के अनुसार कलकत्ता निवासी गोवर्धनदासजी बिन्नानी के सुपुत्र घनश्यामदास के साथ हुआ। मेरे ये नवीन कुटुम्बी भी उपर्युक्त जीवन के अनुकूल ही सिद्ध हुए।

सन् ४२ के स्वतन्त्रता युद्ध की भूमिका और वह युद्ध

युद्ध की परिस्थिति मित्रराष्ट्रों के लिए निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। रूस के ऊपर जर्मन आक्रमण होने से ब्रिटेन को जो थोड़ी राहत मिली थी उसकी दिसम्बर सन् १९४१ में ब्रिटेन पर जापान के आक्रमण से इतिश्री हो गयी। यद्यपि अमेरिका भी युद्ध में शामिल हो गया था और मित्रराष्ट्रों के पक्ष में था, परन्तु जापान का आक्रमण इतना फुर्तीला और भयानक हुआ कि ब्रिटेन और अमेरिका जापान के आक्रमण के कारण आरम्भ में तो तलमला उठे। ईस्ट इंडीज़, मलाया और बरमा एक के बाद एक विजय करता हुआ जापान भारत के दरवाजे खटखटाने लगा।

बरमा में जापानियों को रोकने में अंग्रेजों की असमर्थता तथा वहाँ उनकी हर वस्तु को नष्ट करने (स्कोर्ड अर्थ) नीति को देख-सुन कर भारतीय जनता के हृदय में अंग्रेजों के बल के प्रति विश्वास उठ गया था।

आर्थिक क्षेत्र में भी कठिनाइयाँ कम न थीं। देश में अन्न, वस्त्र तथा नित्य-प्रति की उपयोगी वस्तुओं का अभाव था। हाँ, काले बाजार में कई गुनी कीमतें देकर वही वस्तुएँ चाहे जितनी मात्रा में मिल सकती थीं। पर सभी तो इतने साधन-सम्पन्न नहीं थे कि ऐसी मँहगी कीमत की वस्तुओं को खरीद सकें। इसी से आर्थिक क्षेत्र में भी जनता में अत्यधिक असन्तोष था। फिर सरकार ने भारतीयों के मत की परवाह न कर उसे युद्ध में झोंक ही दिया था। वह उनके सुख-सुविधा की कुछ भी परवाह न कर अपनी सारी शक्ति युद्ध सम्बन्धी कार्यवाहियों में लगाये हुए थी। कांग्रेस द्वारा बार-बार सरकार से उसके युद्ध उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग हो रही थी, पर सरकार उसका कुछ भी उत्तर नहीं देती थी। यह भी जनता में क्षोभ का कारण बना हुआ था।

अब कांग्रेस की भलमनसाहत देखिए। युद्ध छिड़े २॥ वर्ष से अधिक का समय हो गया था तो भी वह अपनी माँगें मनवाने के लिए सरकार को बाध्य

कर उसके युद्ध प्रयत्नों में किसी भी प्रकार का रोड़ा नहीं अटका रही थी। उसने जो व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया था वह भी जापान के आक्रमण के कारण सरकार से बिना किसी शर्त किये स्थगित कर दिया था। इससे जनता में थोड़ी निष्क्रियता अवश्य छा गयी थी, फिर भी वह कांग्रेस के साथ थी। पर यह वैसी ही शान्ति थी, जैसी आँधी चलने के पूर्व भूमि पर रहती है या बिजली गिरने के पहले श्यामल घटा के कारण अम्बर में छा जाती है। सारांश यह कि आर्थिक और राजनीतिक कारणों से जनता में क्रान्ति के लक्षण मौजूद थे तथा वह कुछ न कुछ करने को उत्सुक थी।

इस समय ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल थे। उन जैसा कट्टर आदमी भी राष्ट्र की उस नाजुक घड़ी में झुक गया और उसने भारत से समझौता करने के लिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। सर स्टेफर्ड क्रिप्स बड़े चतुर कूटनीतिज्ञ थे तथा वे हाल ही में रूस और जर्मनी में युद्ध करा देने के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। वही स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवासियों पर उल्लू की लकड़ी फेरने आये। उल्लू की लकड़ी कहने का अर्थ यह है कि कई लोगों का मत है और मैं भी इसी मत का हूँ कि उस परिस्थिति में भी सब बातें पहले से सधी-बधी थीं तथा यथार्थ में ब्रिटेन भारतीयों को कुछ भी अधिकार न दे उन्हें केवल झाँसा देकर युद्ध में सहायता चाहता था।

खैर, अंदरूनी बात कुछ भी रही हो, पर सर स्टेफर्ड क्रिप्स से देश के नेताओं की बातें बड़े ही मैत्रिक वातावरण में हुई, परन्तु उनमें कुछ अधिक तथ्य न होने से वे कांग्रेस और लीग द्वारा नामंजूर कर दी गयीं। बस, क्रिप्स-योजना के नामंजूर होने के कारण उसके पहले जो आशा बँधी थी वह घोर निराशा में परिणत हो गयी और जनता का क्षोभ अगणित गुना बढ़ गया।

अब हम कांग्रेस संगठन की उस काल की कुछ कार्रवाहियों को देखें क्यों कि उन्हीं की चरम सीमा पर पहुँचने के परिणामस्वरूप ८ अगस्त का भारत का अन्तिम स्वातन्त्र्य युद्ध आरम्भ हुआ था।

ता० २७ अप्रैल से २ मई तक प्रयाग में कांग्रेस कार्यकारिणी तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठकें हुई। कार्यवशात् इन बैठकों में गान्धीजी न आ सके। पर उन्होंने इन बैठकों के लिए जो सन्देश भेजा वह इस प्रकार था—"जापान की भारत से कोई शत्रुता नहीं;

वह लड़ रहा है ब्रिटिश साम्राज्य से। अंग्रेज यदि भारत छोड़ दें तो एक तो जापान भारत पर आक्रमण करेगा ही नहीं और यदि किया भी तो हम अहिंसात्मक तरीके से उसका प्रतिकार करेंगे। इस प्रकार भारत अपनी रक्षा कर लेगा और जापान से सुलह हो जायगी। अंग्रेजों के गुलाम रहकर हम उनकी सहायता कर ही नहीं सकते। विदेशी फौजें यहाँ से हट जानी चाहिएँ और अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए।" गान्धीजी के इस सन्देश में अगस्त सन् ४२ के युद्ध के सारे बीज मौजूद थे।

सरकार ने देखा कि अब तो रंग-ढंग ही बदल रहे हैं तो वह भी चुपचाप तैयारी करने लगी। यहाँ १४ जुलाई को होनेवाली वर्धा में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इस बात को पास कर दिया कि सरकार हमारे आश्वासन के लिए यदि कुछ भी नहीं करती है तो हमें विवश हो संघर्ष आरम्भ करना ही होगा। यद्यपि इस संघर्ष का कार्यक्रम स्थिर न हो सका था तो भी यह निश्चित सा था कि इस बार का आन्दोलन सर्वस्व आहुति पर चढ़ानेवाला होगा और निरे जेल जाने से कुछ नहीं होगा। अब कार्यक्रम को पूर्ण रूप से तैयार करने के लिए अगस्त के पहले सप्ताह में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बम्बई में बुलायी गयी। हाँ, यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना उचित होगा। वर्धा में ही कुछ ऐसी बातें चली थीं जिनमें लोगों ने गान्धीजी से पूछा कि तार काटना, रेल उखाड़ना आदि कार्यवाहियाँ हिंसात्मक हैं या अहिंसात्मक। बापू ने विचार व्यक्त किया था कि यदि उनके परिणामस्वरूप कोई जीव की हानि न हो तो ये तो जड़ वस्तुएँ हैं, अतएव इनका उन्मूलन अहिंसात्मक ही कहा जाना चाहिए। अपना मतलब गाँठने को सरकार ने बाद में कांग्रेस नेताओं को जेल में डालकर यह बखेड़ा उठाया था कि उन्होंने तार काटने, रेल उखाड़ने आदि की सलाह दी थी। आपसाने की मामूली बातों को लेकर प्रस्ताव जैसी गम्भीरता का आरोप लगा तिल का ताड़ बनाना उस समय की सरकार को खूब आता था; वह थी विदेशी सरकार और वह स्वतन्त्रता का आन्दोलन कुचलने पर तुली हुई थी। उसकी हरकतें इस बात को चरितार्थ करती हैं कि "प्रेम और युद्ध में सब कुछ उचित है।"

× × ×

घटना बीत जाती है; उसकी याद भर रह जाती है। परन्तु कितनी

आह्लादकारी है सन् ४२ के स्वातन्त्र्य युद्ध के पुण्य पर्व की स्मृति, जिसमें स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर जनता ने अपने सर्वस्व की आहुति देने की ठान ली थी। कोई-कोई इस पर्व की तुलना सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध से करते हैं; परन्तु दोनों में अन्तर है। पहला युद्ध अन्य युद्धों की तरह हिंसात्मक था और इस दूसरे युद्ध में कुछ हिंसात्मक कार्यवाही हो जाने से इसे सर्वथा अहिंसात्मक तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी वह सम्यक दृष्टि से अहिंसात्मक ही था। जो हिंसात्मक कार्यवाही इस युद्ध में हुई है वह या तो बिना नेता की फौज होने के कारण व्यक्तिगत सनकों के कार्यरूप में परिणत करने के कारण अथवा पुलिस द्वारा उत्तेजना दिये जाने पर। परन्तु जब हम देखते हैं कि इस आन्दोलन में मृत सरकारी आदमी और जनता के आदमियों की मृत्यु संख्या में महान अन्तर है तो जनता में अहिंसा के प्रति ही आस्था व्यक्त होती है। यदि ऐसा न होता तो उत्तेजित जनता न जाने कितनों को मौत के घाट उतार सकती थी। जो कुछ हो, इस प्रकार के सम्यक विवेचन की न तो यह जगह है और न मैं अपने को उसका योग्य अधिकारी ही मानता हूँ। हाँ, एक तुच्छ सेवक की हैसियत से मैं इस स्वातन्त्र्य युद्ध में जो योग दे सका, उसका मुझे गर्व है।

इस युद्ध के सम्बन्ध में हमारी सर्वप्रथम स्मृति है बम्बई की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी। कैसा अभूतपूर्व जोश था लोगों में उस समय और इस जोश के साथ ही अपना सर्वस्व लगा देने के दृढ़ संकल्प की कैसी भावना झलक रही थी लोगों के मुखों पर! पण्डाल के भीतर और उसमें पर्याप्त स्थान न होने के कारण उसके बाहर दर्शकों की संख्या लाखों थी। दर्जनों विदेशी और सैकड़ों देशी पत्र-प्रतिनिधि अधिवेशन की कार्यवाही लिख रहे थे। महात्मा गान्धी, पंडित नेहरू, सरदार पटेल के ओजस्वी भाषण अपना सानी ही नहीं रखते थे। गान्धीजी तो उस दिन एक अलौकिक दिव्यपुरुष से ज्ञात होते थे तथा उनके वचनों में आँधी की तेजी और दावानल की गरमी थी। अहिंसा के बारे में उन्होंने कहा था—"ईश्वर मुझसे पूछेगा कि जब दुनिया में चारों ओर आग धधक रही थी, क्रान्ति की लपटें प्रचण्ड होकर उठ रही थीं, हिंसा का साम्राज्य था, तो क्यों न तूने उस महामंत्र अर्थात् शान्ति के पाठ को दुनिया के सामने रखा? क्यों न अँधेरे में उजाले का सन्देश दिया?" और भारतीयों

को यह सन्देश था उनका—"हर हिन्दुस्तानी आज से अपने को स्वतन्त्र समझे। वह आजादी प्राप्त करने अथवा उसके लिए प्रयत्न करने में मिट जाने के लिये तैयार रहे। आजादी की माँग में समझौता नहीं हो सकता। आजादी सबके पहले, उसके बाद कुछ और। कायर मत बनो, क्योंकि कायरों को जीने का अधिकार नहीं है।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने सत्याग्रह सम्बन्धी एक लम्बा प्रस्ताव पास किया, पर समझौते का द्वार इस प्रस्ताव में भी खुला रखा, बन्द नहीं किया।

अब उस अहिंसात्मक युद्ध पर आइए। चूँकि सरकार ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के समझौते का द्वार बन्द कर दिया, इसलिए युद्ध छिड़ गया। उसी रात्रि को कांग्रेस कार्यकारिणी के सारे सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये और भारतव्यापी गिरफ्तारियाँ सुबह से आरम्भ हो गयीं। जनता अपने नेताओं के इस प्रकार यकायक हटा लिये जाने से क्षुब्ध हो उठी। कांग्रेसी नेता इस प्रकार एकाएक पकड़े जाने से सत्याग्रह या आगामी आन्दोलन की कोई रूपरेखा तैयार न कर पाये थे। अतएव जनता ने नेताओं को गिरफ्तार करने के लिए सरकार ने जो उन पर तार काटने, रेल की पातें उखाड़ने, पोस्ट आफिस, रेलवे स्टेशन आदि सरकारी इमारतों को जलाने के कार्यक्रम बनाने का आरोप लगाया था, उसे सत्य मान कर कार्यरूप में परिणत करना आरम्भ किया। सरकार दमन के लिए तैयार ही बैठी थी जहाँ-तहाँ जुलूसों और सभाओं पर लाठी चार्ज हुए और गोलियाँ बरसीं! अरे! वायुयानों तक का इस दमन में उपयोग किया गया! रेल और तार सम्बन्धी कार्यवाही इतनी व्यापक हुई कि देश में कई स्थानों में आवागमन बन्द हो गया।

यह आन्दोलन क्या पूरी क्रान्ति ही थी। सरकार ने नये-नये आर्डिनेंस जारी कर जनता को कुचलना आरम्भ कर दिया। पुलिस राज की धाँधली मच गयी। जैसा दमन इस अहिंसात्मक क्रान्ति को कुचलने के लिए हुआ वैसा मानव इतिहास में शायद ही कहीं हुआ हो।

हमारे प्रान्त और जबलपुर में भी पहले दिन से ही दमन हुआ। हम सभी कांग्रेसवादी तत्काल गिरफ्तार कर लिये गये।

बिना किसी निश्चित अवधि के जबलपुर जेल में

व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रति और इस स्वतन्त्रता के युद्ध के प्रति सरकार का जो रुख था उसमें आकाश-पाताल और दिन-रात का सा अन्तर था। सरकार का यह रुख जेल के बाहर के दमन तक ही सीमित नहीं था, पर स्वतन्त्रता के इस युद्ध के सिलसिले में जो लोग गिरफ्तार किये गये थे, उनके साथ का व्यवहार भी इसी रुख के अनुसार था। जेल के बाहर जैसा घोर दमन था वैसा ही जेल के भीतर भी। हम लोगों पर इस बार कोई मुकदमा नहीं चलाया गया था और हम सब बिना किसी निश्चित अवधि के नजरबन्द कैदी थे। हमारी मुलाकातें, पत्र-व्यवहार आदि हर प्रकार का बाहरी सम्पर्क बन्द कर दिया गया था। लिखने-पढ़ने तक का हमें कोई सामान न दिया गया था। किसी कागज पर कुछ लिख कर हम किसी प्रकार उसे बाहर न भेज दें, इसलिए यह सावधानी की गयी थी। बाहर की कोई खबर हमें न मालूम हो, इसलिए हमें अखबार भी न दिये जाते थे। सरकार के अधिक से अधिक भरोसेवाले तथा ज्यादा से ज्यादा सख्त माने जानेवाले जेल कर्मचारी हम लोगों पर नियुक्त थे। किसी प्रकार की कोई भी रिआयत हमें न दी जाय इस सम्बन्ध में सरकार की बड़ी ही स्पष्ट आज्ञाएँ थीं। अब तक के मेरे जेल-जीवनों से यह जीवन सर्वथा भिन्न था—न मुलाकातें, न पत्र-व्यवहार, न अखबार, और सबसे बड़ी बात लिखने-पढ़ने के सामान तक का अभाव। चार बार की जेल-यात्राओं के सारे समय को मैंने पढ़-लिख कर काटा था। इस बार बिना किसी निश्चित अवधि का यह जेल-जीवन पढ़ने-लिखने के अभाव में किस प्रकार कटेगा, यह सोच मैं तो तलमला उठा। मैं जेलों में अनेक बार एकान्त वास में रह चुका था, मुलाकातें भी कई बार मैंने स्वयं बन्द रखी थीं, पर जेल का मेरा सबसे बड़ा अवलम्ब था—पुस्तकें और लिखने की नोटबुकें। आज जब सरकार ने स्वतन्त्रता के साथ ही मेरा यह अवलम्ब भी छीन लिया तब मेरा तलमला उठना स्वाभाविक था।

जबलपुर जेल में इस समय मेरे साथ काफी भीड़ थी। भीड़भाड़ में रहने की अपेक्षा मुझे एकान्तवास कहीं अधिक प्रिय था, परन्तु उपाय क्या था? अन्य अनेक लोगों के साथ में बैरक में रहने लगा। इसके पहले के किसी भी जेल-जीवन में मैं दो-चार व्यक्तियों से अधिक लोगों के साथ न रहा था। इस बार इनकी संख्या कहीं अधिक थी। फिर जिनके साथ मैं रखा गया था उनमें से अधिकांश की दिनचर्या, आहार-व्यवहार, स्वभाव, बर्ताव की पटरी भी मेरे साथ न बैठती थी, पर इस सम्बन्ध में भी क्या किया जा सकता था? मुझे बौद्ध मत की प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग की बात याद आयी। गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता के भी निम्नलिखित चरण स्मरण आये— "मिलत एक दारुण दुखदेहीं। बिछुरत एक प्राण हर लेहीं।।" तो वियोग ही दुःख का कारण नहीं, अनेक ऐसे संयोग भी होते हैं जो दुःख का कारण होते हैं। जीवन में मुझे इस प्रकार का संयोगात्मक दुःख भोगने का यह प्रथम अवसर था। लेकिन इस सम्बन्ध में भी मैं निरुपाय था।

जबलपुर जेल के नजरबन्दों की संख्या रोज ही बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे सब कुछ धैर्यपूर्वक सहने की मैंने अपनी मनोवृत्ति बनाने का प्रयत्न किया। इस समय जबलपुर जेल के जिन साथियों के कारण मेरा समय किसी प्रकार निकल रहा था उनमें मुख्य थे—श्री कुंजीलालजी दुबे, श्री व्योहार राजेन्द्रसिंहजी, श्री लक्ष्मणसिंहजी चौहान, गोविन्दप्रसादजी तिवारी और श्री नर्मदाप्रसादजी सर्राफ। बाहर से जो लोग जबलपुर जेल में लाये गये थे उनमें से जिनसे मेरा कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध हो सका वे थे श्री किशोरलालजी मश्रूवाला और श्री काका साहब कालेलकर। श्री मश्रूवालाजी बहुत दिन तक जबलपुर जेल में न रह सके और शीघ्र ही उनका वहाँ से तबादला हो गया। बहुत प्रयत्न करने के बाद हमें लिखने-पढ़ने का सामान किसी तरह मिलते ही मैंने बड़े उत्साह से फिर से अपना लिखना-पढ़ना शुरू किया। भीड़भाड़ के कारण मैं पढ़ने में तो मन एकाग्र न कर पाता, पर लिखने में मैंने एक नया अनुभव किया। जब मैं लिखने बैठता किसी प्रकार का भी गुलगपाड़ा मुझ पर कोई असर न कर सकता। व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय महाभारत के कर्ण पर जो नोट मैंने बनाये थे उनके आधार पर बहुत शीघ्र मैंने "कर्ण" नाटक

लिख डाला। इसके गायन जेल में ही श्री भवानीप्रसादजी तिवारी और श्री गोविन्दप्रसादजी तिवारी ने लिखे और जेल में इसे खेलना भी तय पाया, पर इसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी जिसके कारण नाटक खेलने का जेल का यह आयोजन बन्द हो गया।

यह एक ऐसी बात हुई जिससे एक बार तो जेल हिल-सा गया। यह बात उठी हमारी बैरक में ताला बन्द करने के सम्बन्ध में। एक दिन हठात् जेल सुपरिण्टैण्डेण्ट ने आकर हम से कहा कि प्रान्तीय सरकार की आज्ञा आयी है कि अब हमें सूर्यास्त के पहले बरकों में बन्द कर ताले लगाये जायँगे। सरकार का इस समय जो रुख था और जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है उसका यह हुक्म एक अंग था। सुपरिण्टैण्डैण्ट को उनकी इस बात का हमने दूसरे दिन उत्तर देने के लिए कह दिया।

सुपरिण्टैण्डेण्ट के जाते ही सब नजरबन्द कैदियों की एक बैठक हुई और उसमें सरकार के इस नये हुक्म पर विचार होने लगा। सरकार की इस समय की मनोवृत्ति किसी से छिपी न थी अतः भिन्न-भिन्न लोगों ने अपनी भिन्न-भिन्न रायें जाहिर कीं। अन्त में बहुमत से यह तय हुआ कि सूर्यास्त के पहले हम बैरकों में न जायँगे चाहे इसका कोई भी परिणाम क्यों न निकले। हाँ, चूँकि सरकार के इस समय के सख्त रुख से सभी परिचित थे, इसलिए जो लोग इस निर्णय के विरुद्ध थे, उन्हें यह आजादी दे दी गयी कि वे चाहें तो सरकार की आज्ञा का पालन कर सकते हैं। दूसरे निर्णय के बाद इस निर्णय को कार्यरूप में परिणत करने का भार मुझे सौंपा गया और जिस बहुमत ने यह निर्णय किया था उसके प्रत्येक व्यक्ति ने ईश्वर को साक्षी दे प्रतिज्ञा की कि जो कुछ मैं करने को कहूँगा हर व्यक्ति अक्षरशः उसका पालन करेगा।

दूसरे दिन जब सुपरिण्टैण्डैण्ट आया तब हम लोगों ने जो निर्णय किया था उसकी सूचना मैंने उसे दे दी। जबलपुर जेल का सुपरिण्टैण्डैण्ट इस समय डॉक्टर दाते नामक व्यक्ति था। इसके पिता से मेरे पिताजी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था, अतः इसने मुझे अलग ले कर बहुत समझाया, यहाँ तक कहा कि इस समय सरकार जिस मनोवृत्ति में है उसे देखते हुए हमारे इस निर्णय का भयानक से भयानक परिणाम हो सकता है, गोली तक चल सकती है, जैसा

इस समय कुछ जेलों में हुआ भी है। चूँकि हमें इस समय कोई अखबार न मिलते थे, इसलिए कहाँ क्या हुआ है मैं न जानता था, पर श्री दाते की उपर्युक्त बात में सन्देह करने का मेरे पास कोई कारण न था। सरकार की इस समय की मनोवृत्ति हम लोगों से भी छिपी न थी और हमने जो निर्णय किया था सब कुछ सोच-विचार कर किया था। श्री दाते के इस समझाने का मुझ पर कोई असर न पड़ा और जब मैं अपनी बात पर कायम रहा तब दाते ने यह कह कर कि वह फिर प्रान्तीय सरकार से सलाह करेगा, इस मुलाकात का अन्त किया।

इस भेंट के दूसरे दिन डॉक्टर दाते फिर आया और उसने हमें खबर दी कि प्रान्तीय सरकार अपने निर्णय को बदलने को तैयार नहीं है और ता० १ सितम्बर की शाम से ताला बन्द होगा।

ता० १ को केवल दो दिन बाकी थे। ताला किस तारीख से बन्द होगा यह सूचना मिलते ही जेल में एक सनसनी फैल गयी। सरकार की इस समय की मनोवृत्ति के कारण हमारे जेल के इस सत्याग्रह का भयानक से भयानक परिणाम भी निकल सकता है यह सब जानते थे, पर यह जानते हुए भी हमने देखा कि हमारे इस निर्णय के जो लोग विरुद्ध थे उनकी संख्या उल्टी घटने लगी और हमारी बढ़ने लगी। हम क्या करेंगे, इसकी योजनाएँ बनने लगीं और इन योजनाओं पर बहस-मुबाहसे होने के बाद अन्त में नीचे लिखी योजना निश्चित हुई—

१. हम मनसा, वाचा, कर्मणा हर प्रकार से अहिंसक रहेंगे।

२. इसके लिए ताला बन्द होने के समय हम पर चाहे लाठियाँ पड़ें, गोलियाँ बरसें या हमें चाहे कुछ लोग मिल कर उठाने का प्रयत्न करें हम न अपना कोई अवयव हिलायेंगे और न एक शब्द मुँह से निकालेंगे। हम पूरा मौन रखेंगे। यह निश्चय हमने इसलिए किया कि सरकारी हिंसा के प्रतिकार में हमारे द्वारा न कोई हिंसा की चेष्टा हो और न कोई हिंसात्मक अपशब्द ही मुँह से निकले।

३. हम एक दूसरे से सत्याग्रह के समय इतनी दूर हट कर बैठेंगे कि हाथ फैलाकर भी हम एक दूसरे को पकड़ न सकें, हर व्यक्ति उस पर जो कुछ

बीतेगी उसे अलग-अलग सहन करेगा। हमारे इस निश्चय का कारण यह था कि उस समय यदि हम एक दूसरे का सहारा लेंगे तो सरकार को और अधिक हिंसा करने का अवसर मिलेगा।

४. सत्याग्रह की टैकनीक में सबसे पहला बलिदान नेता का होता है अतः हमारे वार्ड के फाटक पर मैं रहूँगा और मेरे आस-पास श्री कुंजीलालजी दुबे और लक्ष्मणसिंहजी चौहान।

ता० १ को तीसरे पहर हमारा जोश चरम सीमा को पहुँच गया। जेल के वार्डरों ने प्रातःकाल से ही हमें जो उड़ती हुई खबरें सुनाना आरम्भ किया था, उन खबरों ने इस जोश को और बढ़ा दिया था। टीयर गैस, लाठी चार्ज, गोली वर्षा कोई ऐसी बात न थी जिसके होने की खबर हमारे पास न आयी हो। हमारे इस सत्याग्रह को ध्वंस करने के लिए पुलिस ही नहीं फौज के सिपाही भी बुलाये गये हैं यह समाचार भी हमें मिला था।

ठीक ५ बजे सारे सत्याग्रही नम्बरवार वार्ड में बैठ गये। इनकी पूरी संख्या तो मुझे इस समय याद नहीं, पर वह अस्सी और नव्बे के बीच में थी। जिन्होंने इस सत्याग्रह में भाग न लेने का निर्णय किया था और जो बैरकों में जा कर बैठे थे वे शायद बारह और पन्द्रह के बीच में थे। हमारे साथियों में से एक महाराष्ट्र सज्जन के पास केसर मिल गयी। वह घोटी गयी और मैं सबके मस्तक पर केसर के तिलक लगा श्री कुंजीलालजी दुबे और लक्ष्मणसिंहजी चौहान के साथ अपने स्थान पर खड़ा हो गया।

कैसा वह दृश्य था! जीवन में न उसके पहले कभी मैंने वैसा दृश्य देखा था और न उसके बाद ही अब तक कभी देखा है! लगभग सौ आदमी अपने-अपने प्राणों को हथेली पर रखे अपने नेत्रों में एक विचित्र ज्योति तथा ओंठों पर एक अद्‌भुत मुस्कराहट लिये डटे हुए थे भयानक से भयानक परिणाम भोगने के लिए! कोई अपने घर का एक मात्र आधार था, कोई अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र, कोई ऐसा तरुण जिसकी तरुणाई आरम्भ ही हुई थी और कोई ऐसा युवक जो जेल में आने के कुछ समय पहले ही पत्नी के रूप में युवती को लाया था और जो कदाचित् उस युवती का मुख भी अच्छी तरह न देख पाया था! पर उन सत्याग्रहियों को इस समय किसी भी बात की

चिन्ता न थी, सबसे प्यारे प्राणों की भी नहीं ! उन्हें चिन्ता थी केवल अपनी आन की, बान की, शान की ! लोकेषणा वृत्ति भी इस समय किसी की प्रेरक नहीं थी, इस समय तो जो वृत्ति उन्हें प्रेरणा दे रही थी वह और ही वृत्ति थी उच्च······उच्चतम ! जो राजपूत केसरिया बाना पहन रण में जूझ मरने को जाते होंगे, और जो राजपूतनियाँ जौहर में भस्म होने को, उनकी भावनाएँ कैसी रहती होंगी, उन्हें भी रण से भीषण मृत्यु के आलिंगन में भी कैसा भान होता होगा, वे मौत को सामने देख किस जोश और खरोश से उल्टे उसके प्रति झपट कर बढ़ते होंगे, इसका आज मुझे अनुभव हुआ ! मुझे आज ३२ वर्ष पूर्व के चित्तौड़ के समस्त दृश्य याद आ रहे थे। विजय स्तम्भ तो मुझे जीवन में कई बार याद आया था, पर आज दिख रहा था वह स्थान जहाँ वीर जयमल को गोली लगी थी, वह जगह जहाँ उसके बाद जौहर हुआ था, वे पढ़े हुए दृश्य जब इस जौहर के बाद केसरिया बाना पहन-पहन कर राजपूत गढ़ के बाहर निकले थे और उन वीरों ने अपने प्राणों को उत्सर्ग कर वीर पद के साथ हुतात्मा पद भी प्राप्त किया था ! मुझे कभी पढ़े हुए एक विद्वान के इस कथन की भी कि यदि जीने से ही प्रेम हो जाय तो जीवन से प्रेम नहीं रहता, कितना सत्य है, इसका आज जितना अनुभव हो रहा था उतना इसके पहले कभी न हुआ था।

मिनिट पर मिनिट ही नहीं, सैकिण्ड पर सैकिण्ड इस समय किस प्रकार बीत रहे थे इसका वर्णन कठिन ही नहीं असम्भव है। हम सब यही चाह रहे थे कि जो कुछ होना हो, जल्दी से जल्दी हो जाय। विक्टर ह्यूगो ने एक स्थान पर लिखा है—"जहाँ बाहर सब कुछ आक्रमण के लिए तैयार हो रहा था, वहाँ भीतर सब कुछ सामना करने को।···हर मस्तक ऊँचा उठा हुआ था। हर दृष्टि एकटक हो गयी थी।" वह दृश्य ह्यूगो के ठीक इस वर्णन के अनुसार था।

पर हैं ! यह क्या हुआ ? ताला बन्द करने के समय पुलिस और फौज तो दूर की बात है, कोई वार्डर तक न आया, सुपरिण्टैण्डैण्ट भी नहीं, केवल जेलर आया और उसने यह सूचना दी कि ताला बन्द करने का प्रश्न फिलहाल मुल्तवी कर दिया गया है।

सत्याग्रहियों का बहुत देर का मौन इस प्रकार खुला जैसे वर्षों से जिस ज्वालामुखी में लावा भरता रहता है उसका एकाएक विस्फोट होता है । कितनी जोर से उन्होंने महात्मा गान्धी का जयघोष किया । जान पड़ता था कि सौ नहीं, हजारों भी नहीं, लाखों आदमियों ने जयघोष किया हो । जेल की ऊँची-ऊँची दीवारों ने प्रतिध्वनि की और जान पड़ा जैसे सारा जेल ही नहीं, भूकम्प से भूमण्डल थर्रा उठा हो ! और इसके बाद सब लोग एक दूसरे से किस प्रेम, किस उत्साह, किस ओत-प्रोत शुद्ध भावना से गले मिले । जो एक दूसरे से द्वेष रखते थे, जिनके मन में एक दूसरे के लिए ईर्ष्या थी, जो एक दूसरे का भला न चाह कर सदा बुरा ही चाहते थे, उनकी भी आज की इन भेंटों में कोई मलिनता, कोई कलुषता नहीं थी ! तप कर सब निर्मल सुवर्ण के से हो गये थे और उस समय किसी को चाहे कैसी भी कसौटी पर कसा जाता सब सौ पूरे सौ टंच के निकलते ।

कितनी बधाइयाँ दीं सबने मुझे इस जीत पर !

इस प्रकार ताला बन्द तो न हुआ, पर दूसरे ही दिन मेरा जबलपुर जेल से नागपुर तबादला कर दिया गया । बड़े भारी हृदयों से नेत्रों में जल भर कर मेरे सब साथियों ने मुझे बिदा किया ।

सन् ४२ के आन्दोलन के समय के नागपुर जेल के कुछ संस्मरण

नागपुर जेल में मैं इसके पहले की दो जेल-यात्राओं में रह चुका था, परन्तु उस समय और इस समय की रहन-सहन में बड़ा अन्तर था। उस समय केवल "ए" श्रेणी के कैदी वहाँ रखे गये थे और उनकी संख्या चार के ऊपर कभी न हो पायी थी, पर इस बार जबलपुर के सदृश नागपुर जेल में भी भीड़-भाड़ थी। गनीमत यही हुई कि यहाँ के कैदियों में से कुछ को "सैल" भी मिले थे और मुझे भी एक सैल मिल गया। ये सैल एक पंक्ति में थे, अतः मेरे सैल के आस-पास के सैलों में अन्य राज-बन्दी भी थे, परन्तु बैरक के जीवन की अपेक्षा सैल में कहीं अधिक एकान्तता थी। मुलाकातें और पत्र-व्यवहार अभी भी बन्द था। अखबार भी नहीं मिलते थे और सरकार के रुख में भी कोई अन्तर न पड़ा था। जबलपुर जेल से नागपुर जेल का मेरा तबादला इतना गुप्त रखा गया था कि नागपुर पहुँचने के पहले मुझे तक इस बात का पता न लगा था कि मैं कहाँ ले जाया जा रहा हूँ।

नागपुर जेल के जीवन में भी मैंने सदा के समान पढ़ना-लिखना आरम्भ किया, परन्तु यहाँ के जीवन में श्री विनोबा भावे के कारण एक विशेषता आ गयी। वे इस समय एक घण्टा मराठी के प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर महाराज की "ज्ञानेश्वरी" पर और एक घण्टा श्री मद्भगवद्गीता पर प्रवचन करते थे। उनका प्रवचन "ज्ञानेश्वरी" पर मराठी और गीता पर हिन्दी में होता था। इन प्रवचनों के समय प्रायः सभी राजबन्दी विनोबाजी की बैरक में आ इन प्रवचनों को श्रवण करते और कई उन पर नोट भी लिखते थे। अपने पढ़ने-लिखने के साथ मैंने भी इन प्रवचनों में जाना आरम्भ किया। इसके पहले मैं विनोबाजी को केवल नाम से जानता था। गान्धीजी से मेरा निकट का संपर्क होते हुए भी अपने स्वभाव के कारण मेरा वर्धा बहुत कम आना-जाना हुआ था अतः मुझे अब तक विनोबाजी के दर्शन न हुए थे। इस बार नागपुर जेल

में मैंने पहले-पहल उनके दर्शन किये और फिर तो इन प्रवचनों में जाते-जाते मैं उनकी कृपा का ही नहीं स्नेह का पात्र भी बन गया। विनोबाजी केवल अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान ही नहीं हैं, विद्वत्ता के साथ उनके दार्शनिक विचारों में बड़ी भारी मौलिकता भी है। इन प्रवचनों में उनकी विद्वत्ता और मौलिकता दोनों ही स्पष्ट रूप से ज्ञात होती थीं और मौलिकता के कारण उनकी विद्वत्ता न केवल निखर गयी थी वरन् उनके प्रवचन मनोरंजक भी हो गये थे। "ज्ञानेश्वरी" का तो मैंने कभी अध्ययन न किया था, परन्तु गीता का तो मैं नित्य ही पाठ किया करता था। गीता पर लोकमान्य तिलक का "भगवद्-गीता-रहस्य" गान्धीजी का "अनासक्ति योग" योगीराज अरविन्द का "एसेज ऑन दि गीता" तथा और भी अनेक विद्वानों के विचार पढ़ चुका था, परन्तु गीता पर विनोबाजी के प्रवचनों में जो आनन्द मुझे आया वह इसके पहले कभी न मिला था। "ज्ञानेश्वरी" का आधार भी गीता ही था अतः विनोबाजी के ये दोनों प्रवचन मन को एक ही दिशा में ले जाते थे। मराठी भाषा का थोड़ा-बहुत ज्ञान होते हुए भी "ज्ञानेश्वरी" के प्रवचनों के समझने में आरम्भ में मुझे कुछ कठिनाई हुई, पर धीरे-धीरे यह कठिनाई दूर होगयी। विनोबाजी के इन प्रवचनों और संग का मुझ पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। मार्क्स और फ्रायड के प्रभाव ने जो मुझे "संशयात्मा" सा बना दिया था उसमें भी अन्तर हुआ। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं फिर से पूर्ण विश्वासी हो गया, पर मेरे सन्देहों का इन प्रवचनों और इस सत्संग ने बहुत दूर तक निवारण अवश्य किया। संशयात्मा होने पर भी मेरा सन्ध्या-वन्दन, पूजा-पाठ, जप, ध्यान बराबर चलता था। अपने अध्ययन और मनन द्वारा मैंने अपने लिए एक नये ध्यान की रचना की थी। इसका विवेचन पिछले एक अध्याय में किया जा चुका है। ध्यान द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार होता है, तथा अनेक को हुआ है, यह मैंने पढ़ा था। मैं जिस स्थिति तक पहुँचा था उसके आगे जाने के लिए कोई ग्रन्थ मुझे सहायता न पहुँचा पाये थे। आगे जाने को मुझे किसी गुरु की आवश्यकता जान पड़ती थी। विनोबाजी शायद मुझे आगे ले जा सकें, उनके अधिक संपर्क के पश्चात् मुझे यह आशा हुई। एक दिन मैंने उन्हें अपने सैल में बुलाया और इस क्षेत्र में मेरी मानसिक स्थिति को मैंने उनके सामने स्पष्ट रूप

से खोलकर रखने का प्रयत्न किया। मैंने उन्हें उन संस्कारों का वृत्त बताया जिनका बाल्यावस्था से ही मेरे निर्माण में बड़ा भारी योग रहा था। अपने मन्दिर और बाल्यकाल से अपने मन में प्रादुर्भूत भक्ति की बात कही। इसके पश्चात् जिस पूर्वीय दार्शनिक अध्ययन ने मुझे विश्वास और जिस पाश्चात्य दार्शनिक अध्ययन ने मुझे अविश्वास दिया था उसका हाल भी कहा। विनोबा जी के इस संपर्क का मुझ पर जो असर हुआ था उसका भी जिक्र किया। उन्हें अपने ध्यान का हाल बता मैंने उनसे उस ध्यान को आगे कैसे बढ़ाया जाय जब यह पूछा तब उन्होंने मुझे स्पष्ट कह दिया कि वे ज्ञान मार्ग के अनुयायी हैं ध्यान और भक्ति मार्ग के नहीं और इस विषय में मुझे अन्य किसी की खोज करनी होगी। मेरी यह खोज जारी है, यद्यपि इस दिशा में जितने समय की आवश्यकता है वह मैं नहीं दे पाता। "जिन खोजा तिन पाइयाँ" के आधार पर न जाने मेरी खोज का कोई परिणाम निकलता है या नहीं।

विनोबाजी के इन प्रवचनों और संग से मेरे मन में फिर से एक बार आध्यात्मिक अध्ययन की बात उठी जो इस बार की तीन वर्ष की जेल की लम्बी अवधि में बराबर चलती रही। मैंने साहित्य के साथ इस बार फिर से आध्यात्मिक अध्ययन भी किया, फिर भी अधिक समय तो साहित्यिक अध्ययन और लेखन में ही गया।

नागपुर जेल में मैंने दो पूरे और कुछ एकांकी नाटक लिखे। पूरे नाटकों में एक था ऐतिहासिक शेरशाह सूरी पर और दूसरा था "पाकिस्तान"। यद्यपि उस समय पाकिस्तान की स्थापना की चर्चा जोर पर चल रही थी, पर उसे कांग्रेस ने स्वीकार न किया था। "पाकिस्तान" नाटक में मैंने एक भविष्य-वाणी की कि पाकिस्तान स्थापित हो गया है। मेरे जेल से निकलने के बाद जब यह नाटक प्रकाशित हुआ तब इसे एक साहित्यिक भविष्यवाणी के रूप में माना गया।

नागपुर जेल में प्रान्त के कई राजनैतिक और साहित्यिक व्यक्तियों से मेरा व्यक्तिगत संपर्क हुआ। इनमें मुख्य थे दमोह के श्री हरिश्चन्द्र मारोठी और सागर के श्री ज्वालाप्रसादजी ज्योतिषी। श्री मारोठी तो घण्टों मेरे सैल में रहते और मेरे नाटकों की प्रतिलिपि किया करते। बड़े सुन्दर थे मारोठी के

अक्षर। पहले सुन्दर अक्षर एक बड़ा भारी गुण माने जाते थे, पर टाइप राइटर के ईजाद होने के बाद इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं रहा है। मैं "खुशखत" को अभी भी एक बहुत बड़ा गुण मानता हूँ।

नागपुर जेल में सारा कार्य व्यवस्थित ढंग से चलने लगा था, पर इसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी जिससे नागपुर जेल के उस समय के मुख्य राजनैतिक कैदी मद्रास प्रान्त के सुदूर जेल वैलोर भेज दिये गये। इनमें थे श्री विनोबा भावे, श्री काका कालेलकर, श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान, श्री सैयद अहमद सा० और मैं। व्योहारजी और चौहानजी का हाल ही में जबलपुर जेल से नागपुर जेल को तबादला हुआ था।

यह घटना इस प्रकार थी—

नागपुर जेल की जिन बैरकों और सैलों में हम नजरबन्द राजनैतिक कैदी रखे गये थे वह स्थान उस स्थल से बहुत निकट था जहाँ मृत्यु-दण्ड पाये हुए कैदियों को फाँसी दी जाती थी। हम लोग जब नागपुर जेल में थे उस समय शंकर नामक एक राजनैतिक कैदी को फाँसी हुई। इस फाँसी के २, ३ दिन पहले हमें मालूम हो गया था कि अमुक दिन यह फाँसी होनेवाली है। फाँसी के स्थल पर फाँसी की तैयारी शुरू हुई और हमारे यहाँ इस फाँसी के समय राष्ट्रीय नारों की। शंकर बहादुरी से बुलन्द से बुलन्द आवाज में "भारत छोड़ो" आन्दोलन के नारे लगाते हुए फाँसी के तख्ते पर चढ़ने आये। शंकर की आवाज हमारे यहाँ पहुँची और हमने भी नारे लगाना शुरू किया। शंकर की आवाज तो कुछ देर में फाँसी की रस्सी ने रोक दी पर हमारे यहाँ की आवाजें घण्टों तक चलकर सारे जेल में प्रतिध्वनित होती रहीं। जान पड़ता था कि शंकर की आवाज ही हमारे कण्ठों द्वारा उच्चारित हो रही है। नागपुर और उसके आस-पास के स्थानों में शंकर की फाँसी का यह दिन प्रति वर्ष मनाया जाता है।

वैलोर जेल का जीवन

समूचे भारतवर्ष में केवल दो प्रान्त ऐसे थे जहाँ के सन् ४२ के आन्दोलन के कुछ राजनैतिक बन्दियों का एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को तबादला हुआ था—एक मद्रास और दूसरा मध्य प्रदेश। मद्रास के कुछ राजनैतिक कैदी मध्य प्रान्त के अमरावती और दमोह जेल को भेजे गये थे और मध्य प्रान्त के कुछ राजनैतिक कैदी मद्रास के वैलोर जेल को। यह क्यों हुआ था इसका पता आज तक भी नहीं लग पाया है। गान्धीजी पूना में आगा खाँ के महल में कैद थे और डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी को छोड़ कर कांग्रेस कार्यकारिणी के शेष सदस्य अहमदनगर के किले में। बाकी के राजनैतिक कैदी मद्रास और मध्य-प्रदेश को छोड़कर शेष अपने-अपने प्रान्तों में ही थे।

मध्य प्रदेश के राजनैतिक बन्दियों में से पं० रविशंकरजी शुक्ल, पं० द्वारका-प्रसादजी मिश्र, पं० दुर्गाशंकरजी मेहता आदि भूतपूर्व मन्त्री और ठाकुर छेदीलालजी, श्री ब्रिजलालजी बीयाणी आदि उस समय के प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष तथा अन्य कई राजबन्दी पहले ही वैलोर जेल में जा चुके थे। अब हमारा जत्था पहुँचा। मध्य प्रदेश के राजबन्दियों के सिवा मद्रास प्रान्त के भी कुछ राजनैतिक कैदी वैलोर जेल में थे। वैलोर की आबहवा बड़ी अच्छी थी और जेल में रहने का स्थान भी बहुत सुविधाजनक था, कुछ बैरकें थीं, कुछ सैल थे। जेल का प्रबन्ध भी अच्छा था, हाँ, भोजन अवश्य मद्रास के ढंग का था—अधिकतर चावल, रसम, संभार आदि। चपाती बनाना वहाँ के जेल वाले नहीं जानते थे, और हम लोगों को जैसे भोजन करने की आदत थी, वैसे भोजन बनने की व्यवस्था बड़ी कठिनाई से हो सकी। कुछ लोग अपने लिए शाक आदि स्वयं बना लेते थ।

शुक्लजी और मिश्रजी एक ऐसी जगह रहते थे जहाँ दो ही कमरे थे। शायद यह उस जेल की सबसे अच्छी जगह थी। शेष व्यक्तियों ने भी अपने सुभीते के स्थान चुन लिये थे अतः हम लोग जो बाद में पहुँचे उन्हें जो स्थान

बताये गये उनका उतना अच्छा न होना स्वाभाविक था। मैंने अपने लिए एक सैल चुना। यद्यपि यह सैल सबसे घटिया कहा जा सकता था, पर इसकी विशेषता थी सबसे अलग रहना। मुझे यह देखकर कुछ निराशा-सी हुई कि किसी ने भी अपने स्थान की थोड़ी सी भी जगह मुझे देने के लिए निमन्त्रित न किया, मिश्रजी ने अवश्य दो दिन तक मुझे अपने स्थान पर रखा, पर मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे उनके लिए भी मैं भार रूप होऊँ। इस समय मुझे मिश्रजी के संग रहने के न जाने कितने प्रसंग और कितनी बातें याद आयीं। सन् १६२१ से मिश्रजी के मन्त्री होने तक याने १६३७ तक हम लोग सदा एक साथ ही रहे थे। १६३० में जब हम लोग गिरफ्तार हुए थे और अलग-अगल किये गये थे तब हमने कितना प्रयत्न किया था फिर से साथ होने का। सन् ३७ में हम लोग पहले-पहल अलग हुए थे और इन ५, ६ वर्षों में प्रायः अलग-अलग ही रहे थे। संयोग से वैलोर जेल में हमें फिर से इकट्ठा रहने का अवसर मिला, पर मैंने देखा कि संग रहने की वे पुरानी उत्कट भावनाएँ कहीं चली-सी गयी थीं। जीवन संग्राम का जेल में जो रूप देखने को मिलता है वह शायद कहीं नहीं, पर मुझे सर्वप्रथम इसका अनुभव वैलोर जेल में ही हुआ।

वैलोर का जेल जीवन भी लिखने-पढ़ने में कटना शुरू हुआ, हाँ विनोबाजी के नागपुर वाले प्रवचन यहाँ बन्द हो गये थे।

यहाँ मैंने जो कुछ लिखा उसमें होमर की "ईलियड" की एक कथा पर "स्नेह या स्वर्ग" नामक एक पद्यात्मक नाटक, "षट दर्शन" नामक एक गद्य काव्यात्मक एकपात्री नाटक और कुछ एकांकी नाटक जो थे रूस और चीन की कुछ सत्य कथाओं पर लिखे गये थे।

इस प्रकार वैलोर जेल के जीवन में कोई खास असुविधा न रहने पर और लिखना-पढ़ना चलते रहने पर भी घर से बहुत दूर रहने के कारण मन पर एक अजीब तरह का बोझा-सा रखा रहता था। मेरे मन में अनेक बार विचार उठता कि जो कैदी काले पानी भेजे जाते थे उन्हें वहाँ स्वतन्त्र रूप से रखे जाने पर भी उनके मन पर कैसा बोझ रहता होगा। गनीमत यही हुई कि थोड़े दिनों बाद हमें चिट्ठी लिखने और पाने की सुविधा दे दी गयी तथा अखबार भी मिल गये। सरकारी रुख में अब फिर कुछ मुलामियत आ चली थी, क्योंकि

बाहर का आन्दोलन प्रायः समाप्त हो चुका था ।

जब इस प्रकार वैलोर का जीवन चल रहा था तब एकाएक हमने पढ़ा कि गान्धीजी २१ दिन का उपवास करने जा रहे हैं । सारे देश के साथ ही हमारे जेल में भी इस खबर ने बड़ा भारी तहलका मचा दिया । गान्धीजी के इस उपवास का कारण और यह उपवास किस प्रकार चला तथा किस प्रकार समाप्त हुआ इस पर इतना अधिक लिखा जा चुका है कि इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना निरर्थक है । हाँ, वे दिन देश के साथ ही हमारे जेल में भी महान चिन्ता में व्यतीत हुए ।

गान्धीजी के उपवास की सहानुभूति में विनोबाजी ने भी २१ दिन का उपवास किया और हम सब ने भी तीन दिन का ।

गान्धीजी के उपवास की समाप्ति के पश्चात् फिर से वैलोर का जीवन पूर्ववत् हो गया और कई महीने बिना किसी विशेष घटना के बीते ।

एक दिन एकाएक मुझे खबर मिली कि पिताजी की सख्त बीमारी के कारण मेरा तबादला जबलपुर जेल को किया जा रहा है । यह संवाद हर्ष और शोक दोनों का मिश्रण था । मैं सब संगी-साथियों से मिल-भेंट कर जबलपुर रवाना हुआ ।

वैलोर से जबलपुर, जबलपुर में पिताजी से भेंट

मेरे वैलोर से जबलपुर तबादले की खबर ही नहीं, पर जिस गाड़ी से मैं वैलोर से जबलपुर आ रहा था इसके समाचार भी न जाने कैसे जबलपुरवालों को मिल गये थे। मेरी गिरफ्तारी को कोई १०॥ महीने बीत चुके थे और मुलाकात बन्द रहने के कारण इस लम्बे समय में मैं घर के किसी भी व्यक्ति से न मिल पाया था। जीवन में यह पहला अवसर था जब मैं इतने दीर्घकाल तक घर के किसी भी आदमी से न मिल सका होऊँ। अतः खबर पाते ही सभी घरवाले मुझ से मिलने को दौड़े। मेरे छोटे पुत्र जगमोहनदास नागपुर पहुँचे और जिस ट्रेन से मैं आ रहा था उसमें मुझे ढूँढकर मेरे डब्बे में आ डटे। जब मैं किसी रिजर्व डब्बे में यात्रा न कर रहा था तब कौन रोक सकता था इन्हें मेरे डब्बे में बैठने से। कितना हर्ष हुआ हम दोनों को एक दूसरे से मिलकर। इटारसी स्टेशन पर जहाँ मेरी गाड़ी बदलती थी, मेरीपत्नी और मेरी पुत्री रत्नकुमारी पहुँच गयीं। मेरी मद्रासवाली गाड़ी कुछ लेट पहुँची, जिसका नतीजा यह निकला कि इटारसी से जबलपुर जानेवाली गाड़ी चली गयी और दूसरे दिन तक जबलपुर जानेवाली कोई गाड़ी न थी। इटारसी में कोई जेल भी न था कि मैं वहाँ पर रखा जा सकता अतः मेरे साथ मद्रास की जो पुलिस थी, उसे मुझे स्टेशन के वेटिंग रूम में रखना पड़ा। वेटिंग रूम रिजर्व हो न सकता था, इसलिए मेरी पत्नी, रत्नकुमारी और जगमोहन भी उसी वेटिंग रूम में आ गये। हाँ, नागपुर में जगमोहन के मेरे डब्बे में आते ही मेरे साथ जो पुलिस थी वह घबड़ा अवश्य गयी थी। इटारसी में जबलपुर की गाड़ी चले जाने के कारण तथा इटारसी में कोई जेल न रहने और मेरे इन सब कुटुम्बियों के वेटिंग रूम में आजाने से इस पुलिस की घबराहट चरम सीमा को पहुँच गयी। उन्होंने मुझसे और मेरे घरवालों से बार-बार यह भी कहा कि हम आपस में बात न करें, पर भला हम काहे को माननेवाले थे। जब हमारी बातें बन्द न हो सकीं तब मेरे साथ की मद्रास की पुलिस का एक आदमी इटारसी के थाने

मे सहायता लेने को पहुँचा, पर इस विषय में मध्य प्रान्त की सरकार की कोई आज्ञा न होने के कारण इटारसी की पुलिस ने किसी प्रकार के भी हस्तक्षेप करने से साफ इनकार कर दिया। अब तो मद्रास की पुलिस की दशा दयनीय हो गयी। राइफिल, पिस्तौल, कारतूस, छुरे सब कुछ पास रहते हुए भी वे हमारी बातें न रोक सकते थे। उनमें से एक पुलिसवाला तो कहीं उसकी नौकरी न चली जाय, इस कारण इतना घबराया कि रोने लगा। हम एक दूसरे से बहुत समय बाद मिले थे, पिताजी अस्वस्थ थे, करुण रस की पूरी सामग्री थी, पर इतने पर भी वह दृश्य देख हम सभी खिलखिलाकर हँस पड़े। हमारी इस हँसी ने पुलिस को लज्जित कर दिया और अपने को असहाय पा अब उन्होंने हमारे बीच कोई दखल न देना ही उचित समझा।

हमारी गाड़ी इटारसी सन्ध्या को पहुँची थी। हम सबने बड़ी रुचि से एक साथ सन्ध्या का भोजन किया और सारी रात बातों में जागते-जागते ही बिता दी। कितनी बातें इकट्ठी हो गयी थीं इन साढ़े दस महीनों में और सभी कुटुम्बियों का आपसी स्नेह अत्यधिक होने के कारण कैसा उमड़ा हुआ मन था हम सबका एक दूसरे से सम्भाषण करने के लिए! जान पड़ता था जैसे हमारी यह भेंट १०॥ महीने नहीं १०॥ वर्ष वरन् १०॥ युगों के बाद हुई हो। इसी बातचीत में मालूम हुआ कि पिताजी अत्यधिक कमजोर हो गये हैं और उन्हें मूर्छा की बीमारी हो गयी है।

दूसरे दिन की डाक गाड़ी से हमें जबलपुर जाना था, पर डाक गाड़ी इतनी भरी हुई आयी कि हम उसमें न बैठ सके और उस दिन रात की पैसिंजर से चल पाये, जिसे हम पहले दिन चूक गये थे।

गाडरवारा स्टेशन पर मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द और बड़े पुत्र मनमोहनदास तथा अन्य अनेक व्यक्ति मिले। रात को जबलपुर स्टेशन पर माताजी के दर्शन हुए तथा मेरी बड़ी पुत्र-बधू मिलीं। उसी दिन रात को मैं जबलपुर जेल में बन्द कर दिया गया। जबलपुर जेल के साथियों को मेरे आने की खबर पहले से ही लग गयी थी और सभी बड़े उत्साह से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। सब ने फिर से मुझे अपने बीच पा मेरा हार्दिक स्वागत किया।

साढ़े दस महीने के बाद इस अत्यन्त अल्पकाल की एक प्रकार की स्वतन्त्रता

ने मुझे कितना सुख, कितना सन्तोष पहुँचाया।

× × ×

मैं वैलोर से जबलपुर पिताजी की अस्वस्थता के कारण लाया गया था अतः जबलपुर जेल-प्रवेश के दूसरे ही दिन प्रातःकाल जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर और जबलपुर जेल के सुपरिण्टैण्डैण्ट मुझ से मिलने को पहुँचे। इस समय जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर थे डूँगरपुर नरेश के छोटे भाई महाराज नागेन्द्रसिंह, जो अपनी खानदानी तथा व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार की भलमनसाहत के लिए सारे मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध थे। जबलपुर जेल के सुपरिण्टैण्डैण्ट वही डॉक्टर दाते थे, जिनका जिक्र पिछले एक अध्याय में आ चुका है। महाराज नागेन्द्रसिंहजी और डॉक्टर दाते ने मेरे पैरोल पर छूटने का प्रस्ताव रखा। जब मेरा पिताजी की अस्वस्थता के कारण वैलोर से जबलपुर जेल को तबादला हुआ उसी समय से सरकार के इस पैरोल के प्रस्ताव का मुझे अनुमान हो गया था, पर चूँकि सन् ३२ में मेरी पत्नी की अस्वस्थता के समय मैं पैरोल पर रिहा होना अस्वीकृत कर चुका था इसलिए मुझे इस विषय का निर्णय करने में कोई कठिनाई नहीं थी। ज्योंही महाराज नागेन्द्रसिंहजी और डॉक्टर दाते ने मेरे सामने वह प्रस्ताव रखा मैंने तत्काल पैरोल पर रिहा होने से इनकार कर दिया। मेरी इस अस्वीकृति से नागेन्द्रसिंहजी और डॉक्टर दाते तो स्तब्ध से रह गये, क्योंकि सन् ३२ की पैरोल पर रिहा होने की इसी प्रकार की मेरी अस्वीकृति से ये लोग अनभिज्ञ थे। महाराज नागेन्द्रसिंहजी ने अपनी स्वाभाविक भलमनसाहत का मुझे समझाने में पूरा उपयोग किया। उन्होंने मुझे यहाँ तक कह डाला कि सन् ४२ के इस आन्दोलन में किसी को पैरोल पर रिहा करना तो दूर की बात है, मुलाकातें तक नहीं दी जा रही हैं और मुझे पैरोल पर रिहा करने का कारण केवल सरकार के मन में मेरे पिताजी का खयाल है, जिसका मुझे सम्मान करना चाहिए, पर नागेन्द्रसिंहजी को उनके सारे कथनों पर धन्यवाद देने के सिवा मैं अपने निर्णय को न बदल सका। मैंने उन्हें इस अस्वीकृति का कारण भी बता दिया जो सन् ३२ में मैं नागपुर जेल के सुपरिण्टैण्डैण्ट कर्नल जटार को बता चुका था अर्थात् माफी माँग कर रिहाई और पैरोल की रिहाई में इतना ही अन्तर तो है न कि पहली स्थिति में

कैदी स्थायी रूप से अपनी कमजोरी स्वीकार करता है और दूसरी स्थिति में अस्थायी रूप से। मैं अस्थायी रूप में भी अपनी निर्बलता स्वीकार करने को तैयार न था। डिप्टी कमिश्नर, जेल सुरिण्टैण्डैण्ट और मेरी यह मुलाकात कोई एक घण्टे चली और अन्त में जब इसका कोई नतीजा न निकला तब कितनी निराशा हुई नागेन्द्रसिंहजी को। इस मुलाकात के अन्त में जिन भावनाओं को मैंने नागेन्द्रसिंहजी के चेहरे पर अंकित देखा उससे मुझे उनकी असाधारण भलमनसाहत का विश्वास हो गया। उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा था उसमें किसी प्रकार की बनावट का लेश मात्र भी न था। वे मेरे पिताजी को किसी प्रकार भी सन्तोष पहुँचाना चाहते थे और चूँकि इस विषय में वे सफल न हो सके थे इसलिए उन्हें हार्दिक निराशा हुई थी। बाद के जीवन में नागेन्द्रसिंहजी से मेरा कई बार सम्पर्क आया और मैं मुक्त कण्ठ से कह सकता हूँ कि नागेन्द्रसिंहजी के सदृश भले मैंने विरले व्यक्ति देखे हैं।

उसी दिन सन्ध्या को फिर से महाराज नागेन्द्रसिंह और डॉक्टर दाते पहुँचे और उन्होंने एक दूसरा प्रस्ताव मेरे सामने रखा। यह था मुझे राजा गोकुलदास महल में ले जाकर मेरे पिताजी से भेंट कराना। इस प्रस्ताव को रखते हुए नागेन्द्रसिंहजी ने कुछ इस प्रकार कहा—"जब दूसरे कैदियों को उनके रिश्तेदारों से जेल में भी मुलाकातें नहीं दी जा रही हैं तब सरकार आपको आपके मकान पर भेजकर आपके पिताजी को सन्तोष देना चाहती है। आज तक कोई भी कैदी उसके घर भेजकर उसके रिश्तेदारों से नहीं मिलाया गया।" सरकार के इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने का मेरे सामने सवाल ही न था। मैंने उनसे कह दिया कि जिस प्रकार सरकार मुझे एक शहर से दूसरे शहर और एक जेल से दूसरे जेल को ले जा सकती है उसी प्रकार वह मुझे मेरे घर ले जाने के लिए भी आजाद है। पिताजी की मेरी मुलाकात दूसरे दिन दस बजे प्रातःकाल निक्युत की गयी।

उस दिन रात को कितने विचार और कितनी भावनाएँ मेरे मन में उठीं। मैं सोचने लगा सचमुच अंग्रेज सरकार एक सभ्य सरकार है। मेरे पूर्वजों ने सन् १८५७ से लेकर अब तक इस सरकार को जो सहायताएँ दीं, इस सरकार की जो सेवा की, उनका कितना खयाल है इस सरकार को। मेरे पिताजी हृदय

से इस सरकार के हितैषी हैं यह सरकार भली भाँति जानती है और उन्हें किसी प्रकार भी सन्तुष्ट करने में वह कुछ भी उठा नहीं रखना चाहती। इतने बड़े देश में मेरे कुटुम्ब के सदृश राजभक्त न जाने कितने कुटुम्ब होंगे और मेरे पिताजी के सदृश न जाने कितने इस सरकार के हितैषी। इतने पर भी अपने पक्ष के एक-एक कुटुम्ब और एक-एक व्यक्ति तक का इस सरकार को कितना खयाल है। मैं चाहे इस सरकार के बड़े से बड़े विरोधियों में होऊँ पर चूँकि मेरा कुटुम्ब सरकारपरस्त कुटुम्ब रहा है, मेरे पिता राजभक्त रहे हैं, इसलिए ऐसे मामलों में जहाँ मेरे कुटुम्ब और मेरे पिताजी का सम्बन्ध आता है वहाँ सरकार मेरे कामों की ओर न देख उनकी ओर देखती है। मुझे लम्बी से लम्बी और सख्त से सख्त सज़ा और मेरे कुटुम्ब तथा मेरे पिताजी का उतना ही अधिक ख़याल! सचमुच दूसरे कैदियों को इस समय पैरोल पर छोड़ना तो दूर रहा, मुलाकातें तक नहीं दी जातीं। फिर किसी कैदी को उसके घर पर ले जा कर मुलाकात देना सर्वथा असम्भव कल्पना! बाद में मैंने यह भी सुना कि वैलोर से जबलपुर मेरा लाना और मेरे घर पर ले जा कर मुझे पिताजी से मिलाना यह सब प्रान्तीय सरकार भारत सरकार की इजाजत के बिना न कर सकती थी अतः इसके लिये प्रान्तीय सरकार ने भारत सरकार से अनुमति ली थी। अपनों के इस प्रकार के खयाल के कारण ही कदाचित् सात समुद्र पार से आये हुए अंग्रेजों का राज्य इस देश में इतने दीर्घकाल तक रह सका। इस राज्य के इस देश में कायम रहने में इस देश के निवासियों का इसी कारण कदाचित् इतना अधिक हाथ रहा। और जब मेरे मन में ये बातें उठीं उसी समय मुझे उस संस्था तथा उसके नेताओं का भी स्मरण आया जिस संस्था में मैं तेईस वर्षों से लगातार काम करता आया था और जिसके लिए मैंने अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दिया था। मानवोचित भावनाओं की दृष्टि से दोनों में कितना अन्तर था। जो अपने हैं उनके प्रति भी हमारी संस्था के संचालकों की कैसी भावनाएँ हैं?

पिताजी से मेरी मुलाकात का जो प्रबन्ध किया गया था वह अनेक दृष्टियों से बड़ा विशद प्रबन्ध कहा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह की गयी कि जेल से जो सड़कें राजा गोकुलदास महल तक आती थीं वह लगभग दो

मील की सड़कें मेरे मुलाकात को जाने के समय से लेकर मेरे लौटने तक सार्वजनिक आवागमन के लिए बन्द कर दी गयीं और इन सड़कों पर पुलिस का कड़ा पहरा हो गया। दूसरी बात यह हुई कि राजा गोकुलदास महल को पुलिस द्वारा इस प्रकार घेरा गया कि मेरी मुलाकात के समय न कोई महल में घुस सके और न कोई महल के बाहर निकल सके। तीसरी बात यह की गयी कि मेरी मुलाकात के समय मेरे जो कुटुम्बी उपस्थित रहेंगे उनके नामों की एक सूची मेरे पिताजी से ले ली गयी और वहाँ के शेष व्यक्तियों को मेरी मुलाकात के समय महल से बाहर कर दिया गया।

ठीक पौने दस बजे पुलिस की हिरासत में पुलिस की ही एक लारी पर मैं जेल से बाहर निकाला गया और दस बजे के कुछ पूर्व राजा गोकुलदास महल में पहुँचाया गया।

पिताजी इन दिनों बहुत समय से मकान के नीचे की मंजिल में ही रहने लगे थे, जिससे उन्हें सीढ़ियाँ चढ़नी-उतरनी न पड़ें। धड़कते हुए हृदय से मैंने पिताजी के कमरे में प्रवेश किया। पुलिस कमरे के बाहर ही ठहर गयी। कमरे में पिताजी अपने पलँग पर लेटे हुए थे और मेरे सारे कुटुम्बी भी उपस्थित थे। वैलोर से लौटते हुए अन्य कुटुम्बियों से तो मैं किसी से कहीं और किसी से कहीं, मिल ही चुका था, अब पिताजी के दर्शन किये और जैसी हालत उनकी देखी वह मुझे कँपा देने के लिए काफी थी। वे सचमुच ही अत्यन्त कमजोर हो गये थे। शरीर में केवल अस्थियाँ शेष थीं। पलँग से उठना कठिन था और बोल भी बहुत धीरे-धीरे सकते थे। मुझे देखते ही उनकी आँखों से चौधारे आँसू बह निकले और दोनों भुजाओं को फैला काँपते हुए हाथों से उन्होंने पलँग पर ही मुझे हृदय से लगा लिया। उस समय उस कमरे में एक भी ऐसा व्यक्ति न था जिसके आँसू न बह पड़े हों; लाख प्रयत्न करने पर भी मैं भी अपने आँसू न रोक सका। कैसा कारुणिक दृश्य था वह! और इस करुणा को, जो कुछ पिताजी ने कहा उसने, न जाने कितना बढ़ा दिया। वे धीरे-धीरे कुछ इस प्रकार बोले। उनके उस समय के शब्द मुझे अब तक लगभग वैसे के वैसे याद हैं।

"कितने सख्त मन के हो गये तुम, बाबू। मेरी इस हालत में तुम कुछ दिन भी मेरे पास रहने को तैयार नहीं, और न मेरे आखिरी वक्त का काम करने

को तैयार, जो तुम्हारा धर्म है। तुम्हारे जो भी सिद्धान्त हों पर एक वसीयत मैंने भी कर दी है। अगर तुम्हारे जेल में रहते मेरा शरीर छूटा तो वह बगीचे में एक तेल के हौज में तब तक रखा रहेगा जब तक तुम आकर उसे न जलाओगे। समझ रखना अगर तुम्हारी टेक न टूटेगी तो मेरी भी यह आखिरी वसीयत तोड़नेवाला घर में कोई पैदा नहीं हुआ।"

पिताजी की इस वसीयत की बात सुनकर मैं दंग रह गया। मैंने समझ लिया कि रामायण की कथा को याद कर उन्होंने यह वसीयत की है। जो कुछ हो, मैंने उस समय इस बात को ही उड़ा देना चाहा और उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ब्यौरेवार बातें पूछ उन्हें हर तरह ढाढस देने का प्रयत्न किया।

हमारी मुलाकात के लिए केवल बीस मिनिट का समय नियुक्त था। ठीक समय पुलिस ने मुझे चलने को कहा। किस प्रकार बीत गये थे ये बीस मिनिट, जान पड़ता था जैसे बीस सैकिण्ड भी न बीते हों! आँसू बहाते हुए पिताजी के चरणों में अपना सिर रख मैंने बिदा ली।

जब मैं लौट रहा था उस समय मेरे बड़े पुत्र मनमोहनदास ने मुझे कहा कि पिताजी के आज्ञा के अनुसार गोपालबाग के हमारे कुटुम्ब के स्मशान में आज से ही तेल का वह कुण्ड बनना आरम्भ हो गया है।

जेल आते ही मैं किसी एकान्त स्थल में जाना चाहता था। जब और कोई जगह न मिली तब मैंने बाथरूम की ही शरण ली। आज जो कुछ मैंने देखा और सुना था वह मुझे जी भरकर रोने के लिए बाध्य कर रहा था। कठिनाई से न जाने क्या-क्या याद कर मैं अपने आँसुओं को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। एकान्त पा यह रोकथाम समाप्त हुई और मैं तभी कुछ हलका हो पाया जब यह बाँध तोड़कर बहुत कुछ बहा सकने में मैं समर्थ हो सका।

जबलपुर जेल से पुनः तबादला

पिताजी की इस भेंट के दूसरे ही दिन मुझे खबर मिली कि मेरे पैरोल पर छूटने से इनकार कर देने को सरकार ने अपना अपमान माना है और वह मुझ से सख्त नाराज हो गयी है तथा इस नाराजी का तात्कालिक परिणाम यह है कि मेरा फिर से वैलोर जेल को तबादला हो रहा है। इस संवाद से मुझे कोई आश्चर्य न हुआ। जब अन्य राजबन्दियों की उनके अगणित प्रयत्न करने पर भी पैरोल पर रिहाई न हो रही थी तब मेरी पैरोल पर रिहाई के सरकार के प्रस्ताव को मेरे अस्वीकृत करने की मेरी इस कार्यवाही को सरकार का अपमान-जनक मानना अस्वाभाविक न था और इसके पश्चात् सरकार की मुझ पर जो सदा नाराजी रहती थी उसका बढ़ जाना भी स्वाभाविक था। मैं इस तबादले की प्रतीक्षा करने लगा।

मेरा तबादला तो हुआ जबलपुर जेल से, पर वह वैलोर न होकर दमोह किया गया। बाद में मुझे इसका कारण मालूम हुआ। मुझे फिर से वैलोर न भेजे जाने की वजह थी मेरे पिताजी का स्वास्थ्य। उनका स्वास्थ्य इतना खराब हो गया था कि किसी समय भी उन्हें कुछ भी हो सकता था और ऐसी स्थिति में मेरी जबलपुर में पुनः आवश्यकता पड़ सकती थी। दमोह जबलपुर से केवल ६६ मील है अतः दमोह से डेढ़ घण्टे में मैं जबलपुर लाया जा सकता था, जो वैलोर से हो सकना सम्भव न था। यदि कोई ऐसी परिस्थिति आवे तो उस समय सरकार क्या करे इसका भी सरकार ने निर्णय कर लिया था। सरकार का यह निर्णय था कि ऐसी परिस्थिति में पिताजी की अन्त्येष्टि करने सरकार मुझे पुलिस की हिरासत में उसी प्रकार ले जायगी जिस प्रकार उनसे मुलाकात कराने को ले गयी थी।

यह पहले कहा जा चुका है कि मद्रास के कुछ राजनैतिक बन्दी मध्य प्रदेश में आये थे। इनमें से कुछ दमोह जेल में भी थे। दमोह लाकर मैं इन्हीं के साथ रख दिया गया। इन राजबन्दियों में मुख्य थे—श्री अन्नपूर्णय्या, श्री लिंग-

राजू, श्री सत्यं, श्री तेवर और श्री चित्रा। अन्तिम व्यक्ति दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध चित्रकार थे।

मद्रास के इन भाइयों के साथ समय तो कटने लगा, परन्तु पिताजी की जैसी हालत मैं देखकर आया था उसके कारण चित्त उद्विग्न ही रहता था और मुझे सदा भय-सा लगा रहता था जबलपुर से किसी भी बुरे संवाद आने का।

चित्त को शान्त करने के लिए मैंने फिर से कुछ लिखने का विचार किया। पहले किसी नाटक लिखने की बात सोची, पर इस बार नाटक लिखने में मन नहीं जमा। अतः नाटक के अपने दायरे के बाहर जा मैं एक उपन्यास लिखने की बात सोचने लगा। वैलोर जेल से ही एक ऐसी कथा मेरे मन में उठ रही थी, जो काफी दीर्घकाय थी और जिसका नाटक में समावेश न हो सकता था। लेखन का कार्य बाल्यावस्था में मैंने उपन्यास से ही शुरू किया था, पर बाद में लेखक के रूप में जो थोड़ी-बहुत सफलता मैं प्राप्त कर सका वह नाटक के क्षेत्र में। उपन्यास लिखने में मैं कहाँ तक सफल हो सकूँगा, इस सम्बन्ध में संदिग्ध होते हुए भी मैंने प्रधानतया चित्त की शान्ति के लिए यह उपन्यास लिखना आरम्भ किया।

उपन्यास की कथा थी एक स्त्री की मनोवैज्ञानिक जीवनी, जिसकी पृष्ठ-भूमि में सन् १९१६ से अब तक का भारत का इतिहास भी आ जाता था। मेरा अन्दाज था कि उपन्यास ढाई-तीन सौ पृष्ठों में समाप्त हो जायगा और यह अन्दाज मेरा इसलिए था कि सदा योजना बनाकर उस योजना के अनुसार "सिनापसेस" लिख कर मैं कोई रचना करना आरम्भ करता था। मेरा हरेक पूरा अथवा एकांकी नाटक इसी नियम के अनुसार लिखा गया है। पर इस उपन्यास को लिखते-लिखते मैंने देखा कि इस उपन्यास के सम्बन्ध में मैंने जो योजना और सिनापसेस बनाया था उसमें न जाने कितनी नयी-नयी चीजें जोड़ी जारही हैं। नाटकों में एक सीमा तक ही पृष्ठ संख्या रह सकती है, चूँकि उपन्यास में ऐसी कोई कैद नहीं रहती इसीलिए कदाचित् यह हो रहा था। जो कुछ हो, दमोह जेल तथा जेल से छूटने के बाद भी इस योजना में कुछ न कुछ जुड़ता ही रहा और अन्त में जब यह उपन्यास छपा तब यह छपे हुए ९३२ पृष्ठों में समाप्त हो सका। यह उपन्यास हिन्दी का कदाचित् सबसे बड़ा उपन्यास है

और इसके प्रकाशित होने के बाद हिन्दी के सभी आलोचकों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने इस पर कुछ न कुछ लिखा है। अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद हो चुका है और यूरोप तथा अमरीका में कुछ प्रसिद्ध साहित्यिकों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस पर कुछ लिखने की कृपा की है। भारत के प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान और दार्शनिक डॉक्टर भगवानदास जी ने तो इस उपन्यास के सम्बन्ध में यहाँ तक लिख डाला—

"हम कह सकते हैं कि पुस्तक के कई अंश स्यात् कोई अन्य कथाकार भी लिख सकता, किन्तु इन्दुमती के साथ अपने मन का इतना पूर्ण तादात्म्य करके कल्पना द्वारा उसे अपनी मानसिक भूमि पर प्रतिष्ठित करके उसकी निरन्तर परिवर्तित मनोदशाओं का तथा परस्पर विरोधी विचारों, भावनाओं, वासनाओं और क्रियाओं के बीच झूलती हुई उसकी चित्तवृत्तियों का ऐसा अद्वितीय और मार्मिक निरूपण के लिए योग्यता ही अलं नहीं अपितु उत्कृष्ट प्रतिभा (जीनियस) भी चाहिए। मैंने प्रेमचन्द की प्रायः सभी छोटी-बड़ी कहानियों और कथाओं को पढ़ा है, जिनको साहित्यिक समाज में उपन्यास सम्राट् की पदवी दी है, किन्तु बहुविधि विविधता और मनोविश्लेषण की दृष्टि से उनका कोई भी आख्यान "सेवा-सदन" "कर्म-भूमि" "रंगभूमि" जो उनके सबसे बृहद् ग्रन्थ हैं, "इन्दुमती" की स्पर्द्धा नहीं कर सकता।"

दमोह जेल में ही सन् ३० में मैंने फिर से नाटक लिखना आरम्भ किया था। जब मैंने नाटक लिखना शुरू किया, उस समय भी जेल का समय काटने को। साहित्य में उन नाटकों का कोई स्थान होगा इसकी नाटक लिखना आरम्भ करते समय मुझे कोई कल्पना न थी। जिस दमोह जेल में मैंने नाटक लिखना आरम्भ किया उसी दमोह जेल में मैंने यह उपन्यास भी लिखा। जिस प्रकार नाटक लिखने में मेरा प्रधान उद्देश्य चित्त को शान्त रखना था वही उद्देश्य इस उपन्यास को लिखने में था, तथा जिस तरह नाटक लिखना आरम्भ करते समय उन नाटकों का साहित्य में कोई स्थान होगा इसकी मुझे कोई कल्पना न थी उसी तरह इस उपन्यास के लिखते समय भी नहीं। अन्तर इतना ही हुआ कि मेरा नाटक-लेखन जो दमोह जेल में आरम्भ हुआ था वह बराबर चलता रहा और पूरे तथा एकांकी काफी नाटक मैं साहित्य की भेंट

कर सका। उपन्यास के सम्बन्ध में यह नहीं हुआ। इसके बाद अब तक मैं और कोई उपन्यास नहीं लिख पाया हूँ। इसका कारण कदाचित् इस उपन्यास का अत्यधिक दीर्घकाय हो जाना है। ऐसे उपन्यास लिखने के बाद मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इससे भी बृहद् उपन्यास लिखने की बात मेरे मन में उठा करती है। इसके लिए कथाएँ और समस्याएँ भी न सूझती हों ऐसा नहीं, पर अब इससे बड़ी कोई चीज लिखने का समय कहाँ ?

इस उपन्यास के लिखने में मेरा कुछ ऐसा मन लगा कि कई बार तो एक-एक दिन और रात में मैंने इसे सोलह-सोलह घण्टे तक लिखा। प्रायः रात्रि को मैं नहीं लिखा करता, पर इस उपन्यास के कुछ अंश रात को दो-दो बजे एका-एक नींद टूटकर लिखे गये। इतना बड़ा उपन्यास पूरा करने में दमोह जेल में मुझे केवल पौने दो महीने लगे। एक कारण इसमें इतना अधिक मन लगने एवं इस कार्य के शीघ्र होने का और हुआ। यह था जबलपुर से पिताजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शुभ सूचनाएँ। उनसे मेरी भेंट का उनके मन पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उस भेंट के बाद से ही उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा।

इस उपन्यास का नाम है इसकी नायिका के नाम पर—"इन्दुमती"।

कुछ आलोचकों का मत है कि इस उपन्यास में जो ऐतिहासिक वर्णन आये हैं वे छोटे किये जा सकते थे या निकाले भी जा सकते थे, पर कुछ आलोचकों का मत इसके विपरीत भी है। हिन्दी साहित्य के वयोवृद्ध मान्य साहित्यिक श्री रामनरेशजी त्रिपाठी की राय तो यह है कि इतने लम्बे उपन्यास का भी एक वाक्य तक निरर्थक नहीं। वे लिखते हैं—"लेखन-शैली रोचक और साद्यन्त आकर्षक है। कोई वाक्य ऐसा नहीं है जो पाठक को ज्ञान की सीमा में आगे न ले जाता हो।" श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की राय है—"यह उपन्यास मानव-जीवन की इन्साइक्लोपीडिया है।"

जबलपुर की अस्पताल में

जब मैं वैलोर जेल में था उस समय पंडित रविशंकर शुक्लजी को नाक में कुछ तकलीफ थी। यद्यपि उनकी यह तकलीफ काफी समय से थी तथापि अब वह बढ़ गयी थी और डॉक्टर उसका आपरेशन आवश्यक मानते थे। शुक्लजी ने सरकार को लिखा था कि वे मद्रास की अस्पताल में आपरेशन करवाना चाहते हैं बशर्ते कि आपरेशन के समय और आपरेशन के बाद जब तक वे अस्पताल में रहें, उनके कुटुम्बियों को उनके पास रहने दिया जाय।

दमोह जेल में एक दिन मैंने सुना कि शुक्लजी की माँग को सरकार ने मँजूर कर उन्हें आपरेशन के लिए वैलोर से मद्रास भेज दिया है। इस संवाद को सुन मेरे मन में भी उठा कि मैं भी इन्हीं शर्तों को सरकार के सामने रख जबलपुर अस्पताल में अपने हर्निया का आपरेशन क्यों न करवा लूँ। इससे दो लाभ हो जायँगे। एक बीमारी से मेरा पिण्ड छूट जायगा और दूसरे कुछ दिन तक कुटुम्बियों के साथ रहने को मिल जायगा जिससे पिताजी के स्वास्थ्य को तो निश्चयपूर्वक और लाभ पहुँचेगा ही। चूँकि इस बार जेल की अवधि का कोई समय निर्धारित न था और वर्षों जेल में बीत जाना भी असम्भव न था, जैसा कि हुआ भी, अतः यह प्रस्ताव और भी आवश्यक जान पड़ा।

मेरा पत्र सरकार के पास पहुँचते ही जेल विभाग के उस समय के इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल जटार को सरकार ने मुझे देखने दमोह भेजा। जब दो बार सन् ३२ और ३३ में मैं नागपुर जेल में था उस समय जटार साहब वहाँ के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे अतएव मैं उन्हें भली भाँति जानता था। श्री जटार ने मुझे सावधानीपूर्वक देखा और वे इस निर्णय पर पहुँचे कि मुझे दोनों ओर का हर्निया है तथा वह काफी बढ़ गया है एवं उसका आपरेशन हो ही जाना चाहिए। सरकार ने मेरे कुटुम्बियों को मेरे साथ रखने की बात भी स्वीकार कर ली और मेरा जबलपुर की विक्टोरिया अस्पताल में तबादला कर दिया गया।

यद्यपि मैं अभी कैदी था और पुलिस का एक पूरा गार्ड मेरे कमरे के सामने तैनात था, परन्तु इतने पर भी एक प्रकार से मुझे पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी थी। मेरे सभी कुटुम्बियों को मेरे पास आने-जाने की पूरी आजादी थी। पिताजी दो बार आते-जाते। उन्हें देखकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ और मेरे इस प्रकार अस्पताल में आने से उन्हें। उनका स्वास्थ्य पहले से बहुत सुधर गया था। माताजी रोज एक बार आतीं। मेरी पत्नी तो प्रायः अस्पताल में ही रहतीं और वहीं सोतीं भी। मेरे बच्चे भी प्रायः आया-जाया करते। लगभग सवा वर्ष के पश्चात् यह स्वतन्त्रता मिली थी और यह मिली थी बहुत थोड़े दिन के लिए। आपरेशन के बाद मैं फिर जेल में चला जानेवाला था, फिर से एक अनिश्चित अवधि के लिए। अतः इस स्वतन्त्रता में सुखद और दुखद दोनों ही प्रकार की भावनाओं का मिश्रण था। ऐसी मिश्रित भावनाओं में आपरेशन की चिन्ता भी जुड़ी हुई थी। काफी बड़ा आपरेशन था और यदि वह ऐसे समय न होता तो आपरेशन के पक्ष-विपक्ष में न जाने कितनी चर्चा होती तथा इस चर्चा के बाद भी आपरेशन हो ही जाता यह कहना कठिन था। हाइड्रोसील के मेरे छोटे से आपरेशन के लिए भी मेरे घर के लोग कठिनाई से राजी हुए थे और वर्षों तक उस रोग को पालने के पश्चात् कहीं मैं उससे पिंड छुड़ा पाया था, फिर डबल हार्निया का आपरेशन! पर इस समय इस आपरेशन के कारण ही जो स्वतन्त्रता मिली थी। इस परिस्थिति में इतने बड़े आपरेशन की चिन्ता रहते हुए भी मेरे कुटुम्बियों ने इस आपरेशन का स्वागत किया।

जबलपुर के अस्पताल में आने के कोई एक सप्ताह के पश्चात् मेरा आपरेशन रखा गया। यद्यपि मेरे कुटुम्बियों को छोड़ अन्य किसी को मुझसे मिलने की इजाजत नहीं थी तथापि मेरे अस्पताल में आने की और आपरेशन की खबर दूर-दूर तक फैल गयी थी। अतः आपरेशन के दिन अस्पताल में भारी भीड़ जमा हो गयी और सरकार को पुलिस के कई गार्ड बुलाने पड़े।

हाइड्रोसील के आपरेशन के समय आपरेशन थिएटर, आपरेशन टेबिल और उसके चारों ओर के वायुमण्डल का मुझे अनुभव हो चुका था, अतः आज मुझे इस स्थान पर न कोई नयी बात जान पड़ती थी और न उस पहले

आपरेशन के सदृश किसी प्रकार की झिझक ही थी। डॉक्टर चारी ने मेरा पहला आपरेशन किया था और वे ही यह आपरेशन भी करने वाले थे इसलिए नवीनता और झिझक दोनों का और भी कोई स्थान न रह गया था।

हाइड्रोसील के आपरेशन में मुझे क्लोरोफार्म दिया गया था, पर इस आपरेशन में क्लोरोफार्म न देकर रीढ़ की हड्डी की दो पोरों के बीच एक ऐसी दवा का इन्जक्शन दिया गया जिससे नाभि के नीचे का शरीर सुन्न हो गया। यह इन्जक्शन देने के बाद मुझसे पैर के अँगूठे हिलाने को कहा गया। थोड़ी देर तक तो मैं अँगूठे को हिला सका, उसके बाद नहीं। अब जब मैंने अपने हाथ से अपनी जाँघ को स्पर्श किया तब मुझे मालूम हुआ कि जाँघ यद्यपि ठण्डी न हुई थी, पर मेरा हाथ जाँघ को छू रहा है इसका हाथ को बोध होते हुए भी जाँघ को बोध न हुआ था। कटि के ऊपर के मेरे शरीर में पूरी चेतनता थी, मैं बेहोश भी न था, पर कटि के नीचे का शरीर जीवित होते हुए भी किसी प्रकार की भी चेतनता से रहित था। कैसी, विचित्र बात थी, यदि प्रत्यक्ष में ऐसी बात न हो और हम किसी अतीत के वर्णन में इसे कहीं पढ़ें तो इसकी सत्यता पर कदापि विश्वास न करें।

बेहोश न रहने के कारण यद्यपि अन्य दर्शकों के समान मैं भी बिना पीड़ा के अपने ही शरीर का काटा जाना देख सकता था, पर इसकी मुझे इजाजत नहीं दी गयी। मेरी कमर पर कागज का एक ऐसा पुट्ठा खड़ा कर दिया गया जिससे कमर के नीचे के मेरे शरीर में क्या किया जा रहा है इसे मैं न देख पाऊँ। मैंने सुना कि दाहनी ओर कोई पाँच इंच और बायीं ओर कोई चार इंच का घाव किया गया। भीतर की अंतड़ियों को सिया गया और फिर बाहर के घाव को। सारे आपरेशन में कोई चालीस मिनिट लगे।

आपरेशन के बाद स्ट्रेचर पर जब मुझे अपने कमरे में पहुँचाया गया तब मैं मुस्कुराते और हँसते हुए सबसे इस प्रकार मिला जैसे कुछ हुआ ही न था। बिना हिले-डुले सीधे लेटे रहने के सिवा बोलने-चालने में मुझ पर कोई प्रतिबन्ध था भी नहीं। मेरे नीचे के धड़ में फिर से चेतना आ रही है यह मुझे तब मालूम हुआ जब आपरेशन का घाव दर्द करने लगा। यह हुआ आपरेशन के समाप्त होने के कोई आधा घण्टे बाद। कहते हैं कि हर्निया के आप-

रेशन के पश्चात् पेशाब कठिनाई से होती है, पर मुझे इस सम्बन्ध में भी कोई कठिनाई न हुई और आपरेशन के कोई दो घण्टे के बाद पेशाब भी खुलकर हो गयी ।

जिनका हर्निया का आपरेशन होता है उन्हें इक्कीस दिन लेटे रहना पड़ता है। इक्कीस दिन के बाद वे चल-फिर सकते हैं, सीढ़ी उतरने-चढ़ने अथवा किसी प्रकार का वजन उठाने की इजाजत उन्हें तीन महीने तक नहीं रहती । पिताजी चाहते थे कि मैं तीन महीने बाद अस्पताल से जेल भेजा जाऊँ, पर डॉक्टर चारी से उन्हें मालूम हुआ कि आपरेशन के बाईसवें दिन ही मेरे दमोह जेल लौटाये जाने की सरकार की आज्ञा है। यद्यपि मुझे अस्पताल में आये अभी एक सप्ताह ही हुआ था और अभी तीन सप्ताह मैं अस्पताल में और रहने वाला था तथापि इस संवाद से अस्पताल के उस एक सप्ताह के उत्साहपूर्ण वायुमण्डल में एकाएक निराशा की लहर-सी दौड़ गयी। मैं अस्पताल एक बड़े आपरेशन के लिए लाया गया था। आपरेशन के सम्बन्ध में कुटुम्बियों को चिन्ता भी थी। आपरेशन अत्यन्त सफलतापूर्वक हुआ था, इससे और इक्कीस दिन के बाद मैं अस्पताल से एक पूरे स्वस्थ व्यक्ति के सदृश निकल सकूँगा, इससे हर्ष होना चाहिए था। किसी अन्य परिस्थिति में यही होता भी, पर आज मैं जिस परिस्थिति में था उसमें सफल आपरेशन की किंचित-सी खुशी के सिवा इस संवाद से निराशा ही उत्पन्न हुई ।

मैं किसी तरह भी अस्पताल में अधिक किस प्रकार रह सकता हूँ अब इस का उपाय सोचा जाने लगा। मेरे कुटुम्बी ही नहीं, मैं भी जेल के उस परतंत्र जीवन से अधिक से अधिक समय तक मुक्त रहना चाहता था। अतः अपने कुटुम्बियों के साथ ही मैं भी इस उपाय के चिन्तन में लग गया। मेरे कुटुम्बी तो इस सम्बन्ध में कोई तरकीब न निकाल सके, पर मैंने एक तरकीब निकाल ली। मुझे खूनी बवासीर भी थी। कई बार बहुत अधिक खून जाता था अतः मैंने यह आपरेशन भी करा डाला जाय, यह प्रस्ताव अपने कुटुम्बियों के सामने रखा। इतने बड़े आपरेशन के बाद ही एक और आपरेशन इस बिना पर पहले तो मेरे घरवालों ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया, पर फिर यह देखकर कि इस कारण मैं कुछ समय और अस्पताल में रह सकूँगा, उन्होंने इसकी अनुमति दे दी।

मैंने जब डॉक्टर चारी से अपनी बवासीर के आपरेशन की बात कही तब उन्होंने उसकी जाँच की और कहा कि यदि मैं सरकार को इस आपरेशन के लिए भी लिखना चाहता हूँ तो वे इसकी अवश्य सिफारिश करेंगे, क्योंकि मेरी बवासीर के मसे काफी बड़े हैं।

हर्निया के आपरेशन के दसवें दिन मैंने सिविल सर्जन की सिफारिश के साथ बवासीर के आपरेशन के लिए सरकार को पत्र लिखा।

बड़ी उत्कण्ठा से इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा की जाने लगी, पर प्रतीक्षा बहुत अधिक नहीं करनी पड़ी। सरकार ने डॉक्टर चारी को लौटती डाक से इस आपरेशन करने की इजाजत भी भेज दी। जेल के तबादले में अब काफी समय था, हर्निया के घाव के टाँके इत्यादि भी कट चुके थे। इसलिए अब कुछ अधिक निश्चिन्तता और एक नये उत्साह से अस्पताल का समय बीतने लगा।

हर्निया के आपरेशन के कोई पाँच सप्ताह बाद बवासीर का आपरेशन हुआ। इसमें न क्लोरोफार्म दिया गया और न रीढ़ की हड्डी के पोरों के बीच में इन्जक्शन लगा कर नीचे का अंग ही सुन्न किया गया। इस आपरेशन के लिए आपरेशन की जगह पर ही कुकीन के कुछ इन्जक्शन लगाये गये। इन इन्जक्शनों, आपरेशन और आपरेशन के बाद भी बहुत अधिक पीड़ा हुई। हाइड्रोसील और हर्निया के आपरेशन में कोई कष्ट न हुआ था, पर इस आपरेशन और आपरेशन के बाद बहुत कष्ट हुआ। सबसे अधिक कष्ट होता पखाना जाते समय।

बवासीर के आपरेशन के तीन सप्ताह बाद मैं फिर से दमोह जेल भेज दिया गया। जिस दिन मैं गया उसके कोई एक सप्ताह पहले से मेरे भेजे जाने की खबर उड़ने लगी थी, पर तारीख और समय दोनों ही सरकार ने इसलिए अत्यन्त गुप्त रखे थे कि अस्पताल और मार्ग में भीड़-भाड़ न हो। इस खबर के उड़ने के बाद मेरे कुटुम्बी, विशेषकर मेरे पिता, माता और मेरी पत्नी कितने विह्वल हो गये थे। जब पुलिस की लारी मुझे लेने पहुँची, जान पड़ता था, जैसे उनका हृदय ही निकाल कर भेजा जा रहा है।

मेरा भी दमोह जेल तक मार्ग में और जेल में भी कुछ समय तक अजीब हाल रहा। क्षण मात्र को भी किसी बात में मन न लगता। कोई डेढ़ वर्ष का

समय इस बन्धन में बीत चुका था और आगे कितना समय और बीतने वाला है इसका कोई ठिकाना न था। घरवालों की विह्वलता और मेरी भी इस मानसिक दशा का प्रधान कारण इस बन्दी जीवन की अवधि का निश्चित न रहना ही था।

आज जब मैं अस्पताल में बीते हुए उस समय का स्मरण करता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि मेरे जीवन के बीते हुए अच्छे से अच्छे समयों में वह भी एक था। इसका कारण है। एक लम्बे बन्दी जीवन के बाद वह स्वतन्त्रता मिली थी और थोड़े दिनों की स्वतन्त्रता के पश्चात् फिर से वही बन्दी जीवन आरम्भ होने वाला था। यद्यपि उस स्वतन्त्रता में शारीरिक कष्टों की भरमार थी तथापि उस स्वतन्त्रता के कारण एक ऐसी मानसिक अवस्था का निर्माण हो गया था कि वे शारीरिक कष्ट नहीं के बराबर जान पड़ते थे। फिर चूँकि स्वतन्त्रता की अवधि का काल एक अल्प सा काल था इसलिए उस स्वतन्त्रता में अनेक सुखों को जल्दी से भोग लेने की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी थी और छोटे से छोटा भोगा जाने वाला सुख एक अपूर्व आनन्द प्रदान करता था। जब मैं उस समय की अपनी मानसिक स्थिति का स्मरण करता हूँ तब मुझे जान पड़ता है कि हमारे जीवन में नाना प्रकार के सुखों का एक कारण कदाचित् मृत्यु भी है। यदि हमारा अन्त होने वाला न हो और हम अमर हो जायँ तो जीवन कदाचित् उतना सुखी और रसमय न रहेगा, जितना इस कारण है कि एक न एक दिन उसका अन्त होनेवाला है। हमारे कुटुम्ब में एक दूसरे के प्रति अत्यधिक स्नेह और आकर्षण है। संयुक्त कुटुम्ब पद्धति के कारण हम वर्षों एक दूसरे के साथ ही रहे हैं। पर वर्षों के साथ ने हमें वह सुख न दिया था जैसा अस्पताल के कुछ सप्ताहों ने। फिर से हम एक दूसरे से शीघ्र ही अलग होनेवाले हैं यदि यह भावना हम सबके मनों में न होती तो अस्पताल का वह समय इतना सुखमय और रसमय न रहता।

अस्पताल के बाद का दमोह जेल का जीवन

जब मैं दमोह जेल लौटा उस समय मेरी जैसी मानसिक स्थिति थी उसका उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है। वैसी मानसिक स्थिति मैंने सुना कि मद्रास के राजबन्दियों को मद्रास तबादला करने की आज्ञा आगयी है तथा दमोह कोई अन्य राजबन्दी आ रहे हैं या नहीं और आ रहे हैं तो कौन आ रहे हैं, इसका कोई पता नहीं अतः मुझे अब दमोह जेल में अकेले रहना होगा। पहले भी मैं जेल में अनेक बार अकेला रह चुका था, अतएव अकेले रहना मेरे लिए कोई नयी बात नहीं थी, वरन् कई बार मेरे मन में अकेले रहने की उल्टी उत्सुकता हो जाती थी, क्योंकि एकान्त जीवन में पढ़ना-लिखना और भी अच्छी तरह होता था, परन्तु इस समय मैं जैसी मानसिक अवस्था में था उसमें अकेले रहने का यह संवाद मुझे बहुत बुरा प्रतीत हुआ, किन्तु किया ही क्या जा सकता था ?

मेरे दमोह लौटने के बहुत थोड़े दिन बाद मद्रास के राजबन्दी वहाँ से चल दिये। कितने प्रसन्न थे वे अपने प्रान्त को जाते समय ! अपनी भावनाओं को दबाते हुए मैंने इन बन्धुओं की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता मिला इन्हें बिदा किया।

इस प्रकार के अवसरों पर मैं सदा साहित्य की शरण लेता था और प्रयत्न कर यदि पढ़ने में नहीं तो लिखने में तो मैं मन लगा ही लेता था। परन्तु इस बार पढ़ने में दूर रहा लिखने में भी जरा भी मन न लगता था। बार-बार मुझे अस्पताल का जीवन याद आता था। आपरेशन के कष्टों की स्मृति तक सुखद जान पड़ती थी। कैसा है यह मानव मन ! ऐसी मानसिक दशा मेरी कभी न हुई थी। बहुत जल्दी इसका नतीजा भी निकला। एक दिन मैं एकाएक गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इस समय दमोह जेल के जेलर श्री कृष्णलाल सक्सेना नामक व्यक्ति थे। बड़े ही भले आदमी। इनसे अच्छे जेल अफसर का मुझे अब तक सम्पर्क न आया था। मेरी बेहोशी की खबर पाकर ये दौड़ते

हुए आये। डॉक्टर बुलाये गये। मैं होश में तो शीघ्र ही आ गया, पर उस दिन के बाद न जाने यह कैसी बीमारी मेरे पीछे लग गयी। कभी दस दिन में, कभी पन्द्रह दिन में, कभी बीस दिन में इसका दौरा सा होता। मैं एकाएक बेहोश हो जाता। मैंने सुना बेहोशी में मेरी साँस जोर-जोर से चलने लगती और हाथ-पैर पहले कड़े होते और फिर सारा शरीर काँपने लगता। होश में आने पर घण्टों मुझे अत्यधिक निर्बलता रहती। यह दौरा मुझे कभी भी हो जाता। कई बार तो घूमते फिरते। दो-चार बार छोटी-मोटी चोटें भी मुझे लगीं। मेरी इस बीमारी की खबर प्रान्तीय सरकार को दी गयी। उन्होंने अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल को मुझे देखने भेजा, पर जब वे आये उस समय वे दौरे की अवस्था में मुझे न देख सके अतः उनकी दृष्टि में मैं सर्वथा स्वस्थ सिद्ध हुआ। बात भी ठीक थी। जब दौरा न रहता तब मैं हर प्रकार से स्वस्थ ही रहता भी। हाइड्रोसील, हर्निया, बवासीर इन तीन बीमारियों से भी मेरा पिण्ड छूट गया था। मैं बड़ा तन्दुरुस्त आदमी हूँ ही अतः इन बेहोशी के दौरों की अवस्था में न देख साधारण स्थिति में देखने पर यदि इन्स्पेक्टर जनरल साहब को उनके शब्दों में मैं—"बूमिंग हेल्थ" में दिख पड़ा तो यह कोई आश्चर्य की बात न थी। बेहोशी के इन दौरों के आरम्भ होने के बाद मैं कोई सवा वर्ष और जेल में रहा। मेरे जेल में रहते और जेल से छूटने के बाद भी कई महीनों तक मैं इन दौरों से पिण्ड न छुड़ा सका। स्वतन्त्र होने के कुछ महीनों बाद ये आप से आप चले गये। इनके कारणों का जेल में और जेल से निकलने के बाद बम्बई तथा कलकत्ते जाकर जाँच कराने पर भी कोई पता न लगा। अनेक बीमारियाँ ऐसी होती हैं जिनका कोई भी चिकित्सा-विज्ञान पता नहीं लगा पाता। मैं समझता हूँ कि मेरे ये दौरे शरीर के अवयवों से सम्बन्ध न रख कर मस्तिष्क और मन से सम्बन्ध रखते थे।

दमोह जेल का मेरा यह एकाकी जीवन समाप्त हुआ तब जब वैलोर जेल से मध्य प्रान्त के राजबन्दी मध्य प्रान्त को वापस लाये गये। इनमें से अधिकांश राजबन्दी तो सिवनी जेल में रखे गये पर श्री ब्रिजलालजी बीयाणी और श्री दुर्गाशंकरजी मेहता दमोह लाये गये। बीयाणीजी के आने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

बीयाणीजी से मेरा बहुत पुराना मैत्री का सम्बन्ध होने के कारण तो उनके आने से मुझे प्रसन्नता हुई ही, पर इस प्रसन्नता की एक और भी वजह हुई और यह थी राजनैतिक। जबलपुर अस्पताल में रहते हुए मुझे घर की आर्थिक अवस्था के और सुधार का तथा मेरी कई पुस्तकों के अनेक पाठ्यक्रमों में हो जाने से उनसे आनेवाली रायल्टी का जो पता चला था, उससे मैंने अब जेल से छूटने के बाद अन्य कोई काम न कर पूरा समय राजनीति को देना तय किया था। अब तक भी जीवन में यद्यपि मेरा अधिकतर समय राजनीति में ही गया था और स्वतन्त्रता के संग्रामों में मैंने सब काम छोड़ कर सदा भाग लिया था, पर आर्थिक चिन्ताओं के कारण त्रिपुरी कांग्रेस के पश्चात् राजनैतिक क्षेत्र से अवकाश ग्रहण कर रोजगार-धन्धे के लिए कलकत्ता चला गया था। घर की सम्पत्ति से त्याग-पत्र देने के बाद यद्यपि मैंने एक पाई भी कभी घर से न ली थी तथापि घर की प्रतिष्ठा का मुझे ध्यान रहता ही था और मैं चाहता था कि घर को ऋण से मुक्त करने में मैं यदि कोई सहायता दे सकता हूँ तो दूँ। साथ ही मुझे अपनी जीविका की भी चिन्ता थी। घर उन्नति के पथ पर तो आ ही चुका था; जबलपुर अस्पताल में मुझे मालूम हुआ कि घर का कर्ज अब चुक गया है। निरर्थक जायदाद बिक कर ऐसी जायदाद भी बन गयी है जिससे घर का खर्च चल सकता है। लड़के अब सारा काम चलाने के लायक हो गये हैं। मेरी पुस्तकों की रायल्टी भी इतनी आने लगी है कि मैंने अपनी जो आवश्यकताएँ कम-से-कम कर दी हैं उनके अनुसार मेरा खर्च चल सकता है। अतः अब रोजगार-धन्धे आदि में जीवन का एक दिन भी मुझे लगाने की आवश्यकता नहीं। बीयाणीजी से प्रान्त की भावी राजनीति के विषय में वैलोर में भी मेरी चर्चा होती रहती थी, पर कोई निश्चित योजना बनने के पहले ही पिताजी की अस्वस्थता के कारण वैलोर से मेरा एकाएक तबादला हो गया था। अब वह योजना बन सकेगी इसलिए बीयाणीजी के दमोह आने से मुझे और अधिक हर्ष हुआ।

दमोह का जेल जीवन फिर से रस-मय हो गया। बीयाणीजी के सदृश मित्र का संग, कुछ राजनैतिक विचार-विमर्श और कुछ साहित्यिक काम। साहित्य का एक ऐसा काम भी निकला जो बीयाणीजी और मैं साथ-साथ

करते। यह काम था कुछ विशिष्ट कथनों का अनुवाद। पहले कहा जा चुका है कि अध्ययन करते समय महत्त्वपूर्ण स्थानों पर मैं सदा निशान लगा लिया करता था। कुछ दिन बाद इन स्थलों के महत्त्वपूर्ण भागों को मैं अपनी नोट बुक में लिख डालता था। इन नोट बुकों की काफी संख्या हो गयी थी। बीयाणीजी ने और मैंने सोचा कि इनका हिन्दी अनुवाद कर "विश्व विचार झाँकी" के नाम से इन्हें बीयाणीजी के और मेरे दोनों संयुक्त नामों से प्रकाशित करा दिया जाय। हमने भिन्न-भिन्न विषयों की एक तालिका बनायी और उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले कथन उस स्तम्भ के नीचे रख, हर कथन के आरम्भ में उसे एक शीर्षक दे तथा उसके अन्त में उसके लेखक का नाम दे, इन कथनों को सुन्दरता से लिखना आरम्भ किया। एक अच्छी चीज बनती हुई जान पड़ी, पर खेद यही है कि यह संग्रह उतना न हो सका, जितने की हमने आशा की थी। संग्रह को काफी बड़ा बनाने के लिए जेल में ही हमने उद्धरणों की कुछ पुस्तकें मँगानी चाहीं, पर उस समय ऐसी कोई पुस्तक न मिली। जेल से छूटने के बाद अंग्रेजी में ऐसी कुछ पुस्तकें मैं प्राप्त कर सका पर अब अनुवाद का अवकाश किसे? बीयाणीजी का और मेरा यह परिश्रम अधूरा ही पड़ा हुआ है। न जाने यह "विश्व विचार झाँकी" ग्रन्थ कभी प्रकाशित होता है या नहीं। इस संयुक्त साहित्यिक कार्य के सिवा कुछ साहित्यिक काम हम दोनों अलग-अलग भी करते। बीयाणीजी "कल्पना कानन" नामक एक ग्रन्थ तैयार कर रहे थे। जेल से छूटने के बाद इस ग्रन्थ के कुछ भाग प्रकाशित भी हुए। बीयाणीजी की इस कृति में पर्याप्त मौलिकता है, पर उनका अध्ययन मराठी भाषा में हुआ है इसलिए उनकी इस कृति में भाषा के काफी दोष हैं। मैंने इन दिनों रामायण की शबरी पर एक ऐसी पुस्तक लिखना आरम्भ किया जिसमें मैथिलीशरणजी की यशोधरा के समान कहानी, नाटक, काव्य सभी कुछ हों। बीयाणीजी को खाने-पीने का भी बड़ा शौक है। वे पाकशास्त्र के कुछ ज्ञाता भी हैं और भोजन की अनेक सामग्रियाँ बना सकते हैं। अतः हम लोग कई बार जेल में पिकनिक भी किया करते।

राजनैतिक विचार-विमर्श के बाद हम लोगों का जो कार्य-क्रम बना उसमें प्रधान बात थी पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र का विरोध कर प्रान्त में एक नये

राजनैतिक दल का निर्माण। मिश्रजी का और मेरा जैसा सम्बन्ध था उसका जिक्र पिछले कई अध्यायों में आ चुका है। मिश्रजी के मंत्री होने के पश्चात् उनका और मेरा उतना सम्पर्क न रह गया था जितना उनके मंत्री होने के पूर्व था। मेरी दृष्टि से मंत्री होने के बाद उनमें परिवर्तन हुआ था। धीरे-धीरे मेरा विश्वास-सा हो चला था कि मैंने जो कुछ भी उनके लिए किया है उसका न्यूनतम अंश भी वे मेरे लिए करने को तैयार नहीं। मुझे यह भी सन्देह हो गया था कि मेरे राजनैतिक क्षेत्र से हट जाने से उन्हें खेद न होकर हर्ष हुआ है और यदि में फिर से राजनैतिक क्षेत्र में आया तो मुझे सहायता देने के स्थान पर वे मार्ग में रुकावटें ही डालेंगे। मैं उन्हें कृतघ्न समझने लगा था और कहने लगा था कि मैंने अपने लिए एक भस्मासुर तैयार किया है। वैलोर जेल में मेरी दृष्टि से मिश्रजी का मेरे प्रति बड़ा रूखा-सूखा व्यवहार रहा, जिससे उनके प्रति मेरी इन नवीन भावनाओं को और प्रोत्साहन मिला। मैं यह तो न कहूँगा कि बीयाणीजी ने मिश्रजी के लिए मेरे हृदय में इन भावनाओं को उत्पन्न कराया, पर चूँकि मिश्रजी और बीयाणीजी के सम्बन्ध कभी भी अच्छे नहीं रहे थे और बीयाणीजी मिश्रजी को अहम्मन्य आदमी मानते थे इसलिए मेरे मन की इस कलहाग्नि को और अधिक प्रज्वलित करने में बीयाणीजी ने हवा का काम अवश्य किया। मिश्रजी के विरोध के सिवा मैंने तीन राजनैतिक कार्यों का और संकल्प किया, ये थे सन् ४२ में सरकार ने हमारे प्रान्त में जो ज्यादतियाँ की थीं उनकी जाँच, महाकोशल में सन् २० से अब तक के स्वतन्त्रता के संग्राम में जिन्होंने अपना बलिदान किया ऐसे शहीदों के एक भव्य स्मारक का निर्माण और जबलपुर से एक दैनिक पत्र का प्रकाशन।

दमोह जेल में बीयाणीजी के सिवा श्री दुर्गाशंकर मेहता तो बीयाणीजी के साथ ही आये थे, धीरे-धीरे कुछ और लोग आये, जिनमें मुख्य थे बिलासपुर के श्री रामगोपालजी तिवारी, दुर्ग के श्री मोहनलालजी बाकलीवाल और दाऊ ढालसिंहजी इत्यादि। हम में से किसी का सम्बन्ध भी एक दूसरे से बुरा नहीं रहा।

खून के दबाव की बीमारी के कारण श्री मेहताजी कुछ महीनों बाद छूट गये। अन्य व्यक्तियों में से भी धीरे-धीरे लोग छूटने लगे, पर जान पड़ता था

कि बीयाणीजी और मैं तो सारा जीवन वहीं बिताने वाले हैं ।

हम लोगों का रोज का सारा काम टाइम टेबिल के अनुसार चलता । इस टाइम टेबिल में कभी-कभी ही व्यतिक्रम होता और यह होता तब जब या तो मुझे बेहोशी का दौरा आता या घर के लोगों से मुलाकात होती या पिकनिक होती ।

घटिका पर घटिका, पहर पर पहर, दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, पक्ष पर पक्ष, मास पर मास और ऋतु पर ऋतु बीतती जा रही थी । सन् ३० में इसी दमोह जेल में बीयाणीजी और मैं साथ-साथ रहे थे । लगभग १४ वर्ष के बाद फिर उसी स्थान पर हम लोग साथ रह रहे थे, पर उस समय और इस समय की हमारी मनोवृत्ति में अन्तर था । उस समय वाला उत्साह और जोश अब हम में नहीं था । इसके कई कारण हो सकते हैं—उम्र का अन्तर, डेढ़ वर्ष से लगातार चलनेवाला जेल जीवन, और सन् ३० के जेल जीवन की अवधि निश्चित थी—बीयाणीजी की एक वर्ष और मेरी दो वर्ष, इस बार कोई अवधि निर्धारित न थी ।

लगभग तीन वर्ष के बाद जेल से रिहाई

हम लोग इस बार भारत रक्षा कानून के अनुसार नजरबन्द थे। इस कानून में छ: महीने से अधिक समय के लिए किसी को नजरबन्द रखने के गुंजाइश नहीं थी अतः कानून की धाराओं का पालन करने के लिए हर छ: महीने बीतने पर अगले छ: महीने तक फिर से नजरबन्द रखने का नया नोटिस उस राजबन्दी के लिये आ जाता जिसे सरकार न छोड़ना चाहती। जब चार महीने बीतने को होते अधिकांश व्यक्तियों के मन में यह उठता कि शायद अब उनके लिए नया नोटिस न आवे पर अधिकतर लोगों के छूटने की आशा निराशा में परिणत होते बहुत समय न लगता। बार-बार नोटिस परिवर्तित होने के कारण कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें छ: महीने की यह अवधि याद दिलाने पर ही याद आती। जिन्हें गत तीन वर्षों में पाँच बार नोटिस आ चुके थे उन्हें इस स्मृति की और अधिक आवश्यकता हो गयी थी।

सन् ४५ के अप्रैल की किसी आरम्भिक तारीख को नागपुर के अंग्रेजी दैनिक पत्र "हितवाद" में मेरे एकाएक छूटने की खबर छपी। छ: मास के नये नोटिस का समय भी अभी न आया था और जेल से रिहा न होकर मैं दमोह जेल में मौजूद था अतः इस संवाद पर खूब हँसी हुई, परन्तु दो ही दिनों में मालूम हो गया कि संवाद झूठा न था। मेरे छोड़ देने की प्रान्तीय सरकार की आज्ञा जिस दिन नागपुर से निकली थी उसी दिन "हितवाद" ने यह खबर छापी थी। कायदे के अनुसार किसी कैदी को छोड़ने की आज्ञा तार द्वारा न दी जा सकती थी, क्योंकि तार तो जाली भी बनाये जा सकते हैं, अतः नागपुर से मेरे छोड़ने का हुक्म डाक द्वारा रवाना हुआ था और इसे नागपुर से दमोह पहुँचने में दो दिन लग गये। घर के लोग तीन दिन पहले ही मुझ से मिल कर गये थे अतः घर में किसी की अस्वस्थता के कारण मेरी रिहाई हो रही है इसकी कोई सम्भावना न हो सकती थी। जेल से पिण्ड छूटने से मुझे हर्ष नहीं हुआ यह कहना एक असत्य बात कहनी होगी, पर इसमें भी सन्देह नहीं कि

बीयाणीजी को जेल में अकेला छोड़कर जाने में मुझे खेद भी हुआ। बीयाणीजी से यह कह कि वे भी अब बहुत जल्द छूटेंगे और उनसे मिल-भेंट कर मैं सन्ध्या को जेल के बाहर निकला। मेरे छूटने की खबर दमोह में फैल गयी थी अतः जेल के फाटक पर एक भीड़ जमा हो गयी थी। सबसे अभिवादन आदि कर मैं श्री प्रेमशंकरजी धगट के यहाँ पहुँचा, जहाँ दमोह में मैं सदा ठहरा करता था। श्री धगटजी और नागपुर जेल के मेरे निकटतम साथी श्री हरिश्चन्द्र मारोठी आदि दमोह के सभी मित्र छूट चुके थे। धगटजी के मकान पर एक सभा जुड़ गयी। जबलपुर तार गया और जबलपुर से मेरे सभी कुटुम्बी और मित्र मोटरों पर बैठ-बैठ रात को ही दमोह आ पहुँचे। लड़ाई अभी भी चल रही थी, पैटरोल मिलने में बड़ी कठिनाई थी, पर ऐसे अवसर पर पैटरोल का प्रबन्ध न हो सके इसकी तो कल्पना भी एक असम्भव कल्पना थी।

दमोह वालों के अत्यधिक आग्रह के कारण रात को मुझे दमोह ही ठहरना पड़ा। रात को भोजन हुए धगटजी के यहाँ और दूसरे दिन दोपहर को श्री मारोठी के यहाँ। दूसरे दिन दोपहर के भोजनोपरान्त ही मैं जबलपुर रवाना हो सका। जबलपुर में मेरे छूटने की खबर न पहुँचे यह कैसे हो सकता था! जबलपुर दमोह सड़क पर जबलपुर के निकट कितनी भीड़ जमा हो गयी थी। जुलूस और सभाएँ बन्द थीं। सबसे मिल-भेंट कर मैं पहले श्री गोपाललालजी के मन्दिर में दण्डवत करने पहुँचा। उसके बाद राजा गोकुलदास महल में गया और तदुपरान्त गोपाल बाग में अपने मकान। सभी जगह मिलने वालों के समुदाय के समुदाय खड़े थे। और इस प्रकार के समुदायों का आगमन तो न जाने कितने दिनों तक चलता रहा। सदा से जिस स्नेह और कृपा का मैं पात्र रहा था अभी भी उसमें किंचित् मात्र अन्तर मुझे न दिख रहा था। इस स्नेह और कृपा से मैं तो दबा सा जा रहा था।

लगभग तीन वर्ष के बाद मुझे यह स्वतन्त्रता मिली थी, पर जान पड़ता था कि तीन वर्ष नहीं तीस वर्ष के बाद मिली हो। अस्पताल की स्वतन्त्रता एक तो पूर्ण नहीं थी, दूसरे अस्थायी थी। फिर उसे भी तो काफी समय बीत चुका था। कितना हर्ष था आज मुझे और कितने हर्षित थे मेरे

कुटुम्बी, मित्र सभी। पर एक विचित्र बात हुई। जिस दिन मैं जबलपुर आया उस दिन तो अवश्य ऐसा जान पड़ा कि मैं न जाने कितने दीर्घकाल के पश्चात् आया हूँ, पर २, ४ दिन बाद ही यह बात चली गयी। फिर तो ऐसा जान पड़ने लगा जैसे मैं वहीं था, कहीं गया ही न था। इसके पहले भी जब-जब मैं जेल से छूटा था मुझे यह अवश्य मालूम होता था जैसे बन्दी जीवन में बहुत समय बीत गया है और कुछ दिनों बाद इस भावना का लोप भी हो जाता था, पर इस समय इस भावना के उदय और अस्त में जितनी उत्कृष्टता थी उतनी इसके पहले न जान पड़ी थी। इसका कारण कदाचित यही था कि इस बार की जेल यात्रा अत्यधिक लम्बी हो गयी थी और छूटने का कोई निश्चित समय नहीं था।

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.